ज्ञानपीठ लोकोदय ग्रन्थमाला सम्पादक और नियामक
श्री लक्ष्मीचन्द्र जैन, एम० ए०

प्रथम संस्करण ५०००
अगस्त १९५१
मूल्य आठ रुपये

प्रकाशक
मंत्री, भारतीय ज्ञानपीठ काशी
दुर्गाकुण्ड रोड, बनारस

मुद्रक
जे० के० शर्मा
लॉ जर्नल प्रेस, इलाहाबाद

परम स्नेही सहृदय

मातृ-बन्धु श्रेयामप्रसादजी शान्तिप्रसादजी !

"आपकी नज़्र है ये लालोगुहर थोड़े-से।
अश्के खूं थोड़े-से और लख़्तेजिगर थोड़े-से॥"

  

"तुम सलामत रहो हजार बरस।
हर बरसके हो दिन पचास हजार॥"

—गोयलीय

विषय-सूची

अवतरण

[उर्दू-शायरी पर एक नजर]

प्रारम्भिक युग

[दौरे मुतकद्दमीन]

दक्खनी शायर पृ० ५३

उर्दूके आदि शायर पृ० ५६

देहलवी शायर पृ० ६२

मध्यवर्त्ती युग

[दौरे मुतवस्सतीन]

पूर्वार्द्धयुगके शायर

उत्तरार्द्धयुगके शायर

अर्वाचीन युगपर सिंहावलोकन पृ० २३५-२७९

पूर्वार्द्ध

लखनवी शायर

लखनऊके नवाब शायर

लखनऊकी बेगमात

देहलवी शायर

उत्तरार्द्ध

लखनवी शायर

देहलवी शायर

बादशाह और नवाब शायर

———

सूचनाएँ—

१—शेरोसुखनके इस प्रथम भागमें प्रारम्भिककालसे अर्वाचीन युग (१९०० ई०) तकके केवल गजलगो शायरोंका परिचय दिया गया है। गजलका अर्थ है—इश्किया शायरी। इसलिए गजलोंके अतिरिक्त जो महानुभाव इसमें—गीत, नज्में, रुबाइयाँ, मर्सिये, कसीदे, मसनवियाँ[1] आदि खोजना चाहेंगे या दार्शनिक और नीति संबंधी[2] अशआर देखना चाहेंगे, अथवा राजनैतिक, सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक प्रश्नोंपर विचार विनिमय चाहेंगे या किसी नेता आदिकी प्रशस्ति खोजना चाहेंगे, तो वे धानके खेतमें बाजरा ढूँढेंगे।

२—पुस्तकमें प्रायः उन्हीं ख्यातिप्राप्त शायरोंका उल्लेख किया गया है, जिन्हें कि ऐतिहासिक महत्ता प्राप्त है। ऐसे बहुत-से शायर छूट गये हैं, जो कहनेको तो उस्ताद हुए हैं, मगर कलाम शागिर्दोंसे भी हलका है अथवा जिनके न तो कलामका नमूना मिलता है, न विशेष परिचय ही। और इससे अधिक समावेशकी पुस्तकके आकारने भी इजाजत नहीं दी। अनुक्रमणिकामें ऐसे बहुत-से शायरोंकी तालिका दी गई है, जिनका एक-एक दो-दो शेर भी दिया जाता तो पुस्तकका कलेवर दुगुना हो गया होता।

३—हमारा मुख्य लक्ष्य उत्तमोत्तम अशआरसे हिन्दी भण्डार-भरनेका रहा है। अतः हमने शायरोंका सभी तरहका कलाम न देकर हजार-हा अशआरमें-से गिनतीके श्रेष्ठ-से-श्रेष्ठ शेर देनेका प्रयत्न किया

---

[1]प्रसंगवश मसनवीके २-१ शेर आ गये हैं।

[2]इस तरहके अशआर भी मिलेंगे, मगर आटेमें नमकके समान।

है। इस चयनसे शायरोके समूचे कलामका अन्दाज़ा नही लगाया जा सकता। हमने सीपी-शख न बटोरकर केवल मोती चुननेका प्रयत्न किया है।

४—उर्दू-शायरीकी गति-विधिका परिचय देनेके लिए तत्कालीन भाषा-सम्बन्धी तथा चारित्रिक उत्थान-पतनके बतौर नमूना कुछ शेर अपनी रुचिके विरुद्ध भी देने पडे है, क्योकि शायरीके इतिहासमे उनका उल्लेख लाज़िमी था।

५—शायरोका परिचय अत्यन्त सक्षेपमे यथावश्यक दिया गया है। उनके खानगी झगडो, आचरणो और व्यर्थकी बातोसे गुरेज़ किया गया है।

६—पुस्तकमें वर्णित—मीर, दर्द, ज़ौक, मोमिन, गालिब, अमीर, दाग और हालीका परिचय शेरोशायरीमें दिया जा चुका था। फिर भी ऐतिहासिकक्रमको बनाये रखनेके लिए इनका प्रस्तुत पुस्तकमे उल्लेख अत्यन्त आवश्यक था। इनके बगैर इतिहास लँगडा-लूला रहता। अत हमने इनका परिचय और कलाम शेरोशायरीसे सर्वथा भिन्न और नवीन दिया है। हाँ, तुलनात्मक विवेचनमें, अथवा प्रसगवश शेरोशायरीमे उल्लिखित कुछ शेर भी आ गये है, किन्तु उनकी सख्या २५-३०से अधिक नही होगी।

७—प० दयाशकर 'नसीम'के अतिरिक्त अन्य किसी हिन्दू शायरका उल्लेख नही हुआ है, जब कि हिन्दुओंमे भी हजार-हा शायर हुए है। इसका कारण मुख्य तो यही है कि गज़लके लिए जैसी इश्क़िया-प्रकृत्ति और वातावरण चाहिए, वह हिन्दुओके लिए मुश्किल था। उनमे ज्यादातर फार्सीमे लिखते रहे, कुछ गीता-रामायण आदि धार्मिक ग्रथोको उर्दू-पद्यका रूप देनेमे लगे रहे, कुछ दार्शनिक और आध्यात्मिक शायरी करते रहे। कुछ गज़लके मैदानमे उतरे भी तो योग्य उस्तादके अभावमे, उचित प्रोत्साहन एव पब्लिसिटी तथा अनुकूल वातावरण न मिलनेके कारण कामयाब न हो सके। कुछ हुए भी तो उनके कविता-ग्रथ न छप

सके अथवा साम्प्रदायिक मनोवृत्तिके इतिहासकारों और तजकरे नवीसोंकी पक्षपात नीतिके कारण ऐतिहासिक महत्ता प्राप्त न कर सके। यही कारण है कि गजलगोईके मैदानमें एक भी हिन्दू उस्तादकी हैसियतसे मशहूर नहीं है, न उनके दीवान ही दस्तयाब हैं। हम चाहते तो १०-२० हिन्दू शायरोंका समावेश कर सकते थे, किन्तु इतिहासकी परम्पराको खलत-मलत करना हमने उचित नहीं समझा। यदि सम्भव हो सका तो कुछ अच्छे हिन्दू शायरोंका परिचय किसी पृथक पुस्तकमें देनेका प्रयत्न किया जायगा।

८—अक्सर हर शायरके अन्तमें हमने तारीख दी है, ताकि लेखन-कालका पता लग सके। कई जगह बहुत नजदीकी तारीखें अंकित हैं। उतने वक्फेमें वह मजमून लिखा ही नहीं जा सकता। इसकी वजह यही है कि कई-कई मजमून यथावश्यक और सुविधानुसार लिख लिये गये, परन्तु किसी वजहसे पूर्ण न हो सके और जब पूर्ण हुए तो लगातार होते चले गये और तभी मजमून समाप्तिकी तारीख डाल दी गई। शायरोंका कलाम पढ़ा कभी गया, उद्धृत कभी किया गया और परिचय आदि सुविधानुसार कभी लिखा गया। कुछ स्थल सुविधानुसार आगे-पीछे लिखे गये हैं और उन्हें बादमें क्रमबद्ध कर दिया गया है।

डालमियानगर,
१ जुलाई, १९५१ ई०

—गोयलीय

अहवाले वाक़ई

'शेरोशायरी' प्रकाशित हुई तो एक उर्दू-अदीबने फर्माया—"इसमे कई अच्छे शुअरा रह गये है ।" मैने अर्ज किया—"कई क्या, बहुत-से रह गये है, मगर मजबूरीका इलाज भी क्या[1] ? फर्माइये आप किन-किन शुअराको इसमें लाजिमी समझते है, ताकि दूसरे ऐडीशनमे घटाया-बढाया जा सके ?" जवाब मिला—"मीरके साथ सौदा तो जरूरी थे ।" मैने कहा—"उस दौरके सिर्फ दो शायर—मीर-ओ-दर्द—मैने चुने है,

---

[1]इस मजबूरीका स्पष्टीकरण 'शेरोशायरी'में इस प्रकार कर दिया गया था—

"शायरोकी निश्चित ३१ सख्याका बन्धन न होता और पुस्तकके आकारने इजाजत दी होती तो और भी कई शायरोका उल्लेख किया जा सकता था। ३१ शायरोमें अमुक शायर क्यो नहीं रक्खा गया, यह प्रश्न तो स्वाभाविक है, परन्तु वह किस अध्यायमें, कौनसे शायरके स्थानमें रक्खा जाय, यह बताना कठिन होगा।"

फर्माइये आप इनमें-से किसको निकालकर सौदाको रखना चाहते हैं ?" बोले—"इन दोनोंको तो निकालना नामुमकिन है।" फिर बोले—"इस्माइल मेरठी, नून-मीम राशिद, आरज़ू लखनवी भी लाजिमी थे।" मैंने कहा—"इनका स्थान 'नवप्रभात' 'प्रगतिशील युग' और 'मधुरप्रवाह' में है, आप फर्माएँ वहाँसे किन-किनको हटाकर इन्हें रक्खा जाय।" बोले—"जो हैं वे तो सब लाजिमी हैं, मगर यह भी ज़रूरी थे।" मैंने कहा—"बन्दानवाज ! वह भी होते तो अच्छा था, यह भी होते तो मुनासिब था। फिर तो निश्चित ३१ संख्याका बन्धन ही टूट जाता और पुस्तक भी इतनी बोझल हो जाती कि हज़रते इन्सानके उठाये न उठती।" एक उर्दू-अखबारने भी इसी तरहकी राय ज़ाहिर की थी।

इसी तरह एक ख्यातिप्राप्त विद्वानने उलाहना दिया कि "आपने न तो अमुक-अमुक शायरोंका जिक्र किया और न महात्मा गाधीपर नज्में दी" मैंने पत्रोत्तरमें लिखा—"मैं इनको इस कोटिका शायर ही नहीं समझता कि अपनी पुस्तकमें उनका उल्लेख करता। रही महात्माजी सम्बन्धी नज्में, सो मैंने पुस्तकमें उर्दू-शायरीका सक्षिप्त दिग्दर्शन कराया है, न कि नेताओंकी प्रशस्ति प्रस्तुत की है।" किन्तु, मुझे इस उत्तरसे सन्तोष न मिला। यूँ किस-किसका समाधान हो सकेगा। क्यों नहीं उर्दू-शायरीका प्रारम्भसे वर्त्तमान तकका इतिहास प्रस्तुत कर दिया जाय। धीरे-धीरे यह विचार जड पकडता गया और उसकी रूप-रेखा मस्तिष्कमें इस प्रकार आई—

शेरोसुख़न भाग १—प्रारम्भसे १९०० तककी ग़जलका इतिहास।
शेरोसुख़न भाग २—१९०१से १९५१ तककी गजलका इतिहास।
शेरोसुख़न भाग ३—नज्म और गीतोंका सकलन और परिचय।
शेरोसुख़न भाग ४—उर्दू-शायरोंके बापू।
शेरोसुख़न भाग ५—उर्दू-शायराएँ
शेरोसुख़न भाग ६—उस्तादोंकी इस्लाहें।

रूप-रेखा ऐसी बनी कि समस्त जीवन खपा दिया जाय, तो भी कार्य पूरा न हो सके। अत मन अस्थिर हो उठा। दूसरे जिन कुलियात-ओ-दीवानोके कई लाख पृष्ठ मै कई-कई बार पढ चुका था, उनको फिर पढनेसे जी भागने लगा। लेकिन विधिका विचित्र विधान देखिये कि लाख छटपटानेपर भी मुझे इस काममे जुतना ही पडा।

शेरोशायरी छपते-छपते १३ जनवरी १९४९को मेरा जवान भतीजा चलता बना। भाईसाहब इस सदमेको बर्दाश्त न कर सके और टी० बी०के चक्करमें आ गये। वे तो फरिश्ते थे, मासूम बच्चोकी सुबकियाँ और दुल्हनका बिलखना न देख सके, खुद भी तिल-तिलकर घुलते गये और आखिर कुर्बान हो गये। मगर मै बेहया जीता रहा और गम गलत करनेको फिर इन किताबोमें डूब गया। भाईसाहब एडियाँ रगड-रगडकर दम तोडते रहे और मै शुअराके कलामको पढता हुआ रोता और बिसूरता रहा—

"इन आँसुओकी हकीक़तको कौन समझेगा।
कि जिनमें मौत नहीं, ज़िन्दगीका मातम है।"

और उसी आलममें यह पहला हिस्सा तैयार भी हो गया। भाईसाहब जब मुझे इसीमे १२-१३ घटे डूबे हुए देखते तो सिहर उठते और मेरे अस्वस्थ शरीरकी चिन्ता उन्हे रुला देती। कभी भाभीसे कहते—"मुझसे तो यही अच्छा, जिसने दु खोंसे जूझनेका क्या खूब तरीका निकाला है।" जो मै रोज़ लिखता, उसे बडे चावसे सुनते। पुस्तक उनके सामने प्रेसमे चली गई थी, परन्तु वे इसे मुद्रित न देख सके। भाभी, बहू, बच्चे सब दहाड मारकर रो पडे और मैं पत्थर बना सब सहता रहा—

"हज़ार ऐशकी सुबहे निसार है जिसपर।
मेरी हयातमें ऐसी भी इक शबे गम है॥"

शेरोसुखनकी प्रेसकापी मेरे अनन्य मित्र सुमत साहबने' बहुत सावधानीसे देखी है। मैं स्वयं उनके पास एक माह रहा हूँ। जो शेर ज़रा भी वज़नसे गिरा मालूम दिया, निकाल बाहर किया। जिस स्थलपर तनिक भी सन्देह हुआ, तत्काल मूल ग्रन्थसे मिलान कर लिया। २००-२५०

'सुमत साहब देहलवी हैं और आजकल होशियारपुर (पजाब)में फर्स्टक्लास मजिस्ट्रेट हैं। उर्दू, हिन्दी, अंग्रेजी-साहित्यका बहुत अच्छा शौक़ रखते हैं। भारत विभाजनसे पूर्व आप रावलपिण्डीमें मजिस्ट्रेट थे और अदबी हलकोंके रूहेरवाँ। अच्छे-अच्छे शायर और अदीब आपके यहाँ महीनो मेहमान रहते थे। आपके जमानेमें वहाँ जो पुरलुत्फ सुहबतें और आलीशान मुशायरे हुए, उन्हे लोग भुलाये नहीं भूलते। हिन्दुओं-मुस्लिमोंके बीच अब दीवार खडी कर दी गई है, फिर भी उनकी याद लोगोके दिलोसे नहीं मिटती और अदीब-अहबाबके ख़तूत आते ही रहते हैं। जब आप रावलपिण्डीमें 'अंजुमने तरक्कीये उर्दू'के सदर मुन्तखिब हुए तो नवाब 'अच्छन' रामपुरीने लिखा—"इस हुस्ने इन्तखाबपर मैं अंजुमनको मुबारिकबाद पेश करता हूँ; और आपका शुक्रगुज़ार हूँ कि आपने इस ख़िदमते अदबको अपने जिम्मे ले लिया। हकीकत यह है कि बुरा-भला शेर कहनेवालोकी तो हिन्दुस्तानमें कमी नहीं है, हत्ताकि हम जैसे नाअहल भी कह लेते हैं। लेकिन शेरका समझना और जौके सलीम रखना, जबानका सही जौक और फसाहतका लफ्ज; ये ऐसी चीजें हैं कि गैर शायर तो क्या शुअ़रा हजरातमें भी कम पाई जाती हैं, और मैं बिला तसन्नो यह अर्ज करता हूँ कि मैंने यह सब चीजें आपमें कमाहक्क़ूक पाई। आप ही जैसे हजरात हक़ीकतन उर्दूकी सही मायनेमें ख़िदमत कर सकते हैं। वर्ना या ख़ालिस फार्सीका नाम उर्दू हो जायगा या ख़ालिस भाषाका, और हमारी उर्दू उस लोचसे जो इन दोनो जबानोकी आमेजिशसे पैदा हुआ है, महरूम हो जायगी।"

उर्दू-शायरी पर एक नज़र

१—मुस्लिम-शासनसे पूर्व भारतकी राष्ट्र-भाषा अपभ्रश थी
२—अपभ्रशका महान कवि स्वयभू
३—तुलसी, सूर, कबीरके प्रथम प्रेरक अपभ्रश-कवि थे
४—अपभ्रशसे पूर्व प्रचलित भाषाएँ
५—नागरी या हिन्दीका मूलस्रोत अपभ्रश है
६—हिन्दी-शब्दके आविष्कारक और उसके प्रथम कवि ख़ुसरो
७—हिन्दी-उर्दू दो भिन्न धाराएँ
८—उर्दूमे फारसी शब्दोकी अधिकताके कारण
९—फारसीकी नकलके कारण उर्दूकी हानियाँ
१०—उर्दूमें सस्कृतका असफल अनुकरण
११—उर्दू फारसीकी जूठन है
१२—उर्दू-शायरीमे समयकी आवश्यकतानुसार भाव क्यो नही ?
१३—उर्दू-शायरीकी ख़ूबियाँ
१४—उर्दूकी पाचनशक्ति
१५—हिन्दी-कविताके गुण-दोष
१६—उर्दू-शायरीकी जन्म-भूमि दक्षिण
१७—दक्खनी शायरी क्या है ?
१८—उर्दू-शायरीका जन्म

hands before h

उर्दू-शायरी पर एक नज़र

मुस्लिम-शासनसे पूर्व भारतकी राष्ट्र-भाषा अपभ्रंश थी

मुस्लिम-शासनसे पूर्व बारहवी सदी तक भारतकी राष्ट्र-भाषा अप-भ्रंश थी। यह भाषा हिमालयसे गोदावरी, और सिन्धसे ब्रह्मपुत्र तक बोली और लिखी जाती थी। यद्यपि इन प्रान्तोमे बहुत-सी बोल-चालकी भाषाएँ भी थी, परन्तु भिन्न-भिन्न प्रान्त-निवासी एक दूसरेपर अपने मनोभाव इसी भाषामे व्यक्त करते थे। सबकी सम्मिलित भाषा अपभ्रश ही थी। यह ई० स० आठवी सदीसे १३वी सदी तक प्रचलित रही। वर्त्तमान हिन्दीकी जननी या मूल अपभ्रश ही है। इसका दूसरा नाम देशी भाषा भी है।

अपभ्रशका महान कवि स्वयम्भू

महापण्डित राहुल साकृत्यायनने अत्यन्त परिश्रमसे अपभ्रश कविता-का सकलन किया है। वे लिखते है—"इसे अपभ्रश इसलिये कहते है कि इसमे सस्कृत शब्दोके रूप भ्रष्ट ही नही, अपभ्रष्ट—बहुत ही भ्रष्ट—है। लेकिन शब्दोका रूप बदलते-बदलते नया रूप लेना दूषण नही, भूषण है। इससे शब्दोके उच्चारणमे ही नही, अर्थमे भी अधिक कोमलता, अधिक मार्मिकता, आती है। 'माता' सस्कृत-शब्द है, उसका मातु, माई, मावो तक पहुँच जाना अधिक मधुर बननेके लिये था। खेद है, कि यहाँ भी कितने ही नीम हकीमोने शुद्ध सस्कृत 'माता'को ही नही लिया, बल्कि उसमे 'जी' लगाकर 'माताजी' बना उसके ऐति-हासिक माधुर्य्यको ही नष्ट कर डाला। अस्तु, यह निश्चित है कि अप-भ्रश होना दूषण नही, भूषण था। बारहवी-तेरहवी शताब्दी तक

द्राविड भाषा-भाषी—आन्ध्र, तामिल, केरल और कर्नाटकको छोडकर भारतके सभी प्रान्तोकी एक सम्मिलित भाषा भी थी। मराठी, उडिया, बँगला, आसामी, गोरखा, पजाबी, गुजराती आदि आधुनिक भाषाएँ वारहवी-तेरहवी शताब्दीमें अपभ्रशसे अलग होती दीख पडती है। जिस समय (आठवी सदीमे) अपभ्रश-साहित्य पहले-पहल तैयार होने लगा था, उस वक्त बँगला आदि उससे अलग अस्तित्व नही रखती थी।

"अपभ्रश-कवि हिन्दी-काव्यधाराके प्रथम स्रष्टा थे। उन्होने अश्व-घोष, माघ, कालिदास और वाणकी जूठी पत्तले न चाटकर एक योग्य पुत्रकी तरह काव्य-क्षेत्रमें नया सृजन किया है। नये भाव, नये चमत्कार पैदा किये है। नये-नये छन्दोकी सृष्टि करना तो उनका अद्भुत कृतित्व रहा है। दोहा, सोरठा, चौपाई, छप्पय आदि कई-सौ ऐसे नये छन्दोकी उन्होने सृष्टि की है, जिन्हे हिन्दी कवियोने बरावर अपनाया है। हमारे विद्यापति, कवीर, सूर, जायसी और तुलसीके ये ही उज्जीवक और प्रथम प्रेरक रहे है।

तुलसी, सूर, कबीरके प्रथम प्रेरक अपभ्रंश कवि थे

इन अपभ्रश-कवियोमें स्वयभू सबसे वडा कवि था। वस्तुत यह भारतके एक दर्जन अमर कवियोमें एक था। आश्चर्य्य और क्रोध दोनो होते है कि लोगोने कैसे ऐसे महान कविको भुला देना चाहा। स्वयभूके रामायण और महाभारत दोनो ही विशाल काव्य है। स्वयभूकी भापाका प्रवाह स्वाभाविक है। उसने खामख्वाह दुरूहता लानेकी कही कोशिश नही की। पद्यस्वर वडे ही कर्णप्रिय है। शब्द विल्कुल नपे-तुले है और रस-परिपाक तो वरावर ऊपर और-और उठता जाता है। उसका कवि-कौशल अत्यन्त श्रेष्ठ है। प्राकृतिक दृश्योका वर्णन करनेमे वह अद्वितीय है। सामन्त-समाजके वर्णनमे उसकी किसीसे तुलना नही की जा सकती। सौन्दर्यके वर्णनमे उसने कमाल किया है। विलापचित्रणमे भी उसे वडी

सफलता मिली है। मालूम होता है तुलसी बाबाने स्वयभू-रामायणको जरूर देखा होगा।"[1]

ई० पू० १५००से ६०० ई० पू० तक भारतीय भाषा संस्कृत थी। किन्तु ई० स० ५००-६०० पूर्व 'बुद्ध' और 'महावीर'के समयमे संस्कृतका स्थान पाली और प्राकृतने ग्रहण किया।

अपभ्रंशसे पूर्व प्रचलित भाषाएँ

पालीका प्रसार ई० सन्‌के पूर्व तक रहा, किन्तु प्राकृत ईसाकी छठी शताब्दी तक प्रचलित रही। संस्कृत, पाली, और प्राकृतमे परस्पर भेद होते हुए भी बहुत कुछ समानता है। "असमानता केवल यही है कि संस्कृतके क्लिष्ट उच्चारणको सरल बनाकर पालीने तद्भव शब्दोंकी रचना प्रारंभ की। उसके भारी-भरकम व्याकरण-कलेवरको कम किया। शुद्ध संस्कृत बोलनेके लिये जहाँ छः हज़ारसे ऊपर सूत्र-वार्तिकोंको याद रखनेकी जरूरत थी, वहाँ पालीने ८००-९०० सूत्रोंसे ही कार्य निकाला और प्राकृतने तद्भव या उच्चारणके सरलीकरण कार्य्यको और ज़ोर-शोरसे किया। अपभ्रंशने असाधारण परिवर्तन किया। उसने ढाँचा ही बदल दिया। अपभ्रंश, संस्कृत, पाली, प्राकृतसे अत्यन्त भिन्न हो गई और हिन्दीसे अभिन्न।"[2]

यही अपभ्रंश फिर नागरी और आगे चलकर हिन्दी कहलाई। 'नगर' या 'नागर' जातिके लोग 'मानसरोवर'के निकट 'हाटक' स्थानसे निकलकर पहले 'नगरकोट'में बसे। फिर धीरे-धीरे सारे भारतमे फैल गये यहाँ तक कि कूर्ग और बंगालमे भी फैल गये।

नागरी या हिन्दीका मूलस्रोत अपभ्रंश है

यह अपभ्रंश बोलते थे अतः इनके नगरकोटके निकासके कारण इनकी भाषा 'नागरी' भी कहलाई।

---

[1] हिन्दी-काव्यधाराकी भूमिका पृ० ५-५२

[2] हिन्दी-काव्यधाराकी भूमिका पृ० ८-९

पृथ्वीराज चौहानकी पराजयके बाद जब मुस्लिम आक्रमणकारियोंने लूटमार, डाकेज़नीके बजाय यहाँ साम्राज्य स्थापित करके स्थायी रूपसे रहना प्रारम्भ किया तो विजेता और विजित एक दूसरेकी भाषासे भिन्न होने लगे। काम चलाऊ शब्दोंका आदान-प्रदान होने लगा, परन्तु दोनोंकी भाषा संयुक्त न होनेके कारण बडी असुविधा रहती थी। आखिर खिलजियोंके शासन काल—(ई० स० १२९०-१३३०)में 'अमीर ख़ुसरो'[1] ने

हिन्दी-शब्दके आविष्कारक और उसके प्रथम कवि अमीर ख़ुसरो

---

[1] 'ख़ुसरो' ईसाकी तेरहवी सदीमें मु० पाटियाली, ज़िला एटामें पैदा हुए थे और खिलजी-शासनमें कई ओहदोंपर मुमताज़ रहे। गयासुद्दीन बलबन बादशाह इनकी बड़ी इज्जत करता था। 'तूतियेहिन्द' इनकी उपाधि थी। ये फारसीके बहुत बडे शायर हुए है, संगीतके भी अत्यन्त मर्मज्ञ थे। इन्होंने वीणासे सितारका आविष्कार किया है। कई पक्के गाने भी ईजाद किये है। इन्होंने सबसे पहले फारसी-मिश्रित कविताएँ लिखी। औरतोंके लिये गीत और बच्चोंके लिये पहेलियाँ, मुकरनियाँ, आदि लिखी। युवकों-युवतियोंके लिये दो-सुख़ने दोहे भी लिखे। बाज़ शेर ठेठ हिन्दीमे भी लिखे। उनकी भाषाका चमत्कार देखिये—

पहेली—

तरवरसे इक तिरिया उतरी उसने बहुत रिझाया।
बापका उसके नाम जो पूछा आधा नाम बताया॥
आधा नाम पितापर प्यारा बूझ पहेली मोरी।
अमीर ख़ुसरो यूँ कहे अपना नाम नबोली॥

उत्तर—निम्बोली

यानी तरवरकी तिरियाने अपने बापका नाम आधा (नीम)

ऐसी मिली-जुली भाषाका सूत्रपात किया, जिसे हिन्दू-मुस्लिम सरलतासे व्यवहृत कर सकें।

बताया। नीम फारसीमे आधेको कहते है और भारतमे नीम एक पेड होता है, और अपना नाम नबोली कहकर पहेलीमे जवाब भी दे दिया है और आधा नाम नीम-बोली कहकर सीधी-सादी बातको पहेली भी बना दिया। इसी तरहकी दो पहेलियाँ और भी दर्ज की जाती है—

फारसी बोली आईना, तुर्की सोच न पाईना।
हिन्दी बोलते आरसी, आये मुँह देखे जो उसे बताये॥
उत्तर—आईना (दर्पण)

बीसोका सर काट लिया।
ना मारा ना ख़ून किया॥
उत्तर—नाख़ून

मुकरनी—

सगरी रैन मोहि संग जागा, भोर भई तब बिछुड़न लागा।
उसके बिछुड़त फाटे हिया, ए सखि! 'साजन' ना, सखि! 'दिया'॥
उत्तर—दिया (दीपक)

इसमे 'साजन' और 'सखी' के बीचमे 'ना' डालकर भूल-भुलैयामे डाला है। 'ना' को साजनके साथ रखा नही कि सखीको दियाका जवाब मिल गया।

सरब सलोना सब गुन नीका। वा बिन सब जग लागे फीका॥
वाके सरपर होवे कोन। ऐ सखि 'साजन' ना, सखि! 'लोन'॥
उत्तर—लोन (नमक)

जिस मेल-जोलकी भाषाका ख़ुसरोने सूत्रपात किया था उसका उन्होने स्वय नाम-सस्करण 'हिन्दी' 'हिन्दवी' किया।—

वह आवे तब शादी होय, उस बिन दूजा और न कोय।
मीठे लागें वाके बोल ऐ सखि 'साजन' ना, सखि! 'ढोल'॥
उत्तर—ढोल

सावनके गीत—

जो पिया आवन कह गय अजहुँ न आये, स्वामी हो।
आवन कह गये आये न बारह मास॥

जिन स्त्रियोके पति देशमें ही है, वे फिर सावनमें क्या गाएँ? उनके लिए भी लिखा। नई नवेली ससुरालमे गीत गा रही है—

अम्मा मेरे बाबाको भेजियो री कि सावन आया।
बेटी तेरा बाबा तो बूढा री कि सावन आया॥

अम्मा मेरे भाईको भेजियो री कि सावन आया।
बेटी तेरा भाई तो बाला री कि सावन आया॥

अम्मा मेरे मामाको भेजियो री कि सावन आया।
बेटी तेरा मामा तो बाँका (छैला) री कि सावन आया॥

सीधे-सादे शब्दोमें पीहर जानेकी उमगको, और माके न बुला-सकनेकी मजबूरीको, कैसे हृदयग्राही शब्दोमे व्यक्त किया है, कि यही गीत विरदेज़बान (कण्ठस्थ) हो गये।

एक बार 'अमीर खुसरो' कही जा रहे थे। मार्गमे प्यास लगी तो पनिहारियोको कुएँ पर पानी भरते देख उनसे पानी पिलानेको कहा, तो पनिहारी उन्हे पहचान गई। चारो पनिहारियो ने अपना एक-एक शब्द—खीर, चर्खा, कुत्ता और ढोल दिया और जिद पकड़ गई कि जब तक

यानी अपभ्रंश भाषा जो नागरी भी कहलाने लगी थी और दिल्ली, मेरठके इलाकोमे जिसे खडी बोलीका रूप दिया जाने लगा था। 'अमीर

इन पर पहेली नही कहा जायगी वे पानी नही पिलायेगी। आखिर खुसरो ने खीजकर कहा—

'खीर' पकाई जतनसे 'चर्खा' दिया जला।
आया 'कुत्ता' खा गया, तू बैठी 'ढोल' बजा॥
ला पानी पिला॥

दुसुख़ने—

गोश्त क्यो न खाया, डोम क्यो न गाया ? उत्तर—गला न था।
जूता क्यो न पहना, समोसा क्यो न खाया ? उत्तर—तला न था।
अनार क्यो न चखा, वजीर क्यो न रखा ? उत्तर—दाना न था।

दुसुख़ने फारसी-उर्दू—

सौदागर चे मे बायद ? बूचेको क्या चाहिये ? उत्तर—दो कान
(सौदागरको क्या चाहिये) (अर्थ दुकानसे है और दो कानसे भी)
तिश्नारा चे मे बायद ? मिलापको क्या चाहिये ? उत्तर—चाह
(प्यासेको क्या चाहिये) चाहके मायने कुआँ और प्यार दो होते है।
शिकार ब चे मे बायद करद ? कुव्वते मग्जको क्या चाहिये ?
उत्तर—बादाम
(शिकार किस चीज़से करना चाहिए ? मस्तिष्कशक्तिको क्या चाहिये ?)
बादामका अर्थ 'जालके साथ' और मेवा भी है।

ग़ज़लका नमूना—

ज़हाले मसकीं मकुन तगाफुल दराये नैना बनाये बतियाँ।
कि ताबे हिजराँ नदारम ऐ जाँ! न लेवो काहे लगाय छतियाँ॥

ख़ुसरो'ने उसमे कुछ फारसी-तुर्की शब्द मिश्रित करके उसे 'हिन्दी'[1]

(हमारी मसकीन हालतसे वेख़वर न होकर नयनो मे आकर वात करो। प्रीतम! मुझमे अब हिज्र (विरह) सहन की शक्ति नही, मुझे सीने से क्यो नही लगाते?)

शबाने हिजराँ दराज चूँ ज़ुल्फ, बरोज़े वस्लत चूँ उम्र कोताह।
सखी पियाको जो मैं न देखूँ तो कैसे काटूँ अँधेरी रतियाँ?

(विरहकी रात जुल्फोकी तरह लम्बी और मिलनके दिन उम्रकी तरह छोटे है।)

यकायक अज़दिल दो चश्मे जादू बसद फरेबम बबुर्द तस्कीं।
किसे पडी है जो जा सुनावे पियारे 'पी'को हमारी बतियाँ॥

(यकायक दो जादू भरी आँखोने फरेब करके हमारे हृदयकी तस्कीन—शान्ति छीन ली।)

चूँशमअ सोजाँ, चूँजर्रा हैराँ, ज़कहरे आँ मह बगुश्तम आख़िर।
न नींद नैनाँ, न अग चैना, न आप आवें न भेजें पतियाँ॥

(शमाकी तरह जलती हूँ, ज़र्रेकी तरह हैरान हूँ, उस चन्द्रमुखीके अत्याचारसे मेरा बुरा हाल है।)

वहक्के रोजे विसाल दिलवर! कि दाद मारा फरेब 'ख़ुसरो'।
सपीत मनके दराय राखूँ जो जाय पाऊँ पियाके खतियाँ॥

(ए ख़ुसरो, सच वात तो ये है कि विसाल (मिलन) के रोज़ मुझे दिलवर ने फरेब दिया। यदि प्रियतमका पत्र मिले तो प्रेम पूर्वक उसे मनमे रखलूँ।)

—आवेहयात, पृष्ठ ७१-७७

[1] भारतवर्षका 'हिन्द' नाम यूनानियोके आक्रमण-कालमें पडा, क्योकि

'हिन्दवी'[१] नाम दिया। अमीर खुसरोने हिन्दु-मुस्लिम दो धाराओंका ऐसा समन्वय किया कि वह सगम बन गई। मौलाना आजादके शब्दोंमे—"खुसरोने फारसीका नमक मिलाकर हिन्दीके ज़ायकेमे एक अजीब लुत्फ पैदा कर दिया।"[२] परन्तु खेद है कि बादके शायरोने आटेमे नमक न मिलाकर नमकमे आटा मिला-मिलाकर सब स्वाद किरकिरा कर दिया। यानी आटेके बजाय नमकको ही खाद्य समझ लिया और उसमे ज़रा-सा आटा नमककी तरह डालने लगे। जिससे सब गुड गोबर हो गया।

खुसरोके इस हिन्दी-हिन्दवी सगमपर उसके बाद कबीर, जायसी, रहीम, रसखान वगैरह सैकडो कवियोने शख भी बजाया और अज़ान भी दी, परन्तु यह धारा अविछिन्न न बहने पाई और तास्सुबका बाँध बाँधकर (१७०० ई०के बाद) उसमेंसे एक अलग नहर निकाली गई जो पहले 'रेख्ता' और बादमे (१९०० सदीमे) 'उर्दू' कहलाई। अब खडीबोली नागरीकी दो धाराएँ बहने लगी। अरबी-फारसी मिश्रित भाषा 'उर्दू' और सस्कृत-निष्ठ भाषा 'हिन्दी' कहलाने लगी। परिणाम इसका यह हुआ कि हिन्दू-मुस्लिम सस्कृति एकीकरण होनेके बजाय वे उत्तरोत्तर दूर-दूर बहती चली गईं। "हकीकत यह है कि ज़बानेउर्दू उस हिन्दी या भाषाकी शाख है जो सदियो तक देहली और मेरठकी तरफ बोली जाती थी और जिसका तअल्लुक 'सूरशेनी-

हिन्दी-उर्दू दो भिन्न धाराएँ

वे 'स'का उच्चारण 'ह' करते थे और सिन्धु नदीके पार बसे होनेके कारण वे भारतको 'हिन्द' और उसके निवासियोको हिन्दुस्तानी कहने लगे थे।

[१] अर्थात् भारतवर्षकी भाषा।

[२] आबेहयात, पृ० ७१

प्राकृत'से विलावास्ता था। यह भाषा जिसे मगरबी (पश्चिमी) हिन्दी कहना वजा है ज़बाने उर्दूकी अस्ल माँ[1] समझी जा सकती है।"[2]

आमतौरपर 'उर्दू' फारसीकी एक शाख़ समझी जाती है, परन्तु यह धारणा भ्रामक है। वास्तवमे 'उर्दू' हिन्दी-खडीबोलीकी ही एक विरासत है जिसे रग-बिरगे फूलोसे अलकृत किया गया है। 'उर्दू'में अरबी-फारसीकी अधिकताके निम्न कारण थे—

उर्दूमे फारसीकी अधिकताके कारण

१—शासक अरबी-फारसी भाषा-भाषी थे।

२—फारसी राज्य-भाषा होनेके कारण हिन्दू भी पढनेको विवश हुए और शासकोकी भाषा होनेके कारण फारसी-शब्दोको अधिक-से-अधिक व्यवहृत करनेमे उसी प्रकार गर्वका अनुभव करते थे, जिस प्रकार वर्तमानमें अधिकतर व्यक्ति अंग्रेज़ी-शब्दोके उच्चारणमे शान समझते है, और बेमलाल अंग्रेजी-बाहुल्य भाषाका प्रयोग करते है।[3]

३—शासक अपने साथ बहुत-सी—वस्त्र[4], भोजन[5], फल-

---

[1] 'मा' नही 'नानी' लिखना चाहिये। माँ तो अपभ्रश है और अपभ्रशकी जननी प्राकृत है।

[2] तारीख़े अदबे उर्दू, पृ० १।

[3] जैसे—एक डाक्टर चाहे वह हिन्दू हो या मुसलमान, कुछ इस तरहकी ज़बान बोलेगा—'मै कैलकटासे थर्सडेको स्टार्ट होकर फ्राइडेको मौर्निङ्ग ट्रेनसे इलाहाबाद पहुँचा। वहाँ पेशेण्टको देखा, वह होपलेस कण्डीशनमें था, फिर भी प्रसक्रिप्शन लिखना पड़ा।"

[4] लबादा, कुरता, कबा, चोगा, आस्तीन, गिरेबान, पायजामा, इज़ार, रूमाल, शाल, दुशाला, तकिया, गावतकिया, बुर्का, आदि।

[5] दस्तरख़्वान, चपाती (हिन्दीमें रोटी कहते थे रोटी हिन्दी शब्द है जो उर्दूने भी अपना लिया है), शीरमाल, बाकरख़ानी, पुलाव, ज़र्दा

मेवा[1] आदि ऐसी नई वस्तुएँ लाए, जो यहाँ पहले होती ही न थीं। इसलिये उन वस्तुओंके मूल शब्द ज्यों-के-त्यों बोले जाने लगे। जिस प्रकार कि अंग्रेजीके—रेलवे, पोस्टआफिस, डाक्टरी, इंजीनियरिंग, बिजली, साइन्स, मशीनरी, फैक्टरी, फर्नीचर, राजनीति, शासन, फैशन, युद्ध आदि सम्बन्धी कई हजार शब्द जाने-अनजाने जबानपर चढ गये हैं और अशिक्षित भी अनायास ही प्रयोगमें लाते रहते हैं।

८—कई हजार ऐसे शब्द जो राज्य-भाषा-भाषी होनेके कारण बार-बार प्रयुक्त होते थे, जबानपर इस तरह रवाँ हो गये कि उनके हिन्दी शब्द सर्वसाधारणको सूझ नहीं पडते हैं और प्रयत्न करनेपर ही हिन्दी पर्यायवाची शब्द याद आते हैं।[2] और-तो-और शतरंज (चतुरंगिनीसे

कलिया, कोरमा, मुतजन, तुरजन, फिरनी, हरीरा, लौंज, मुरब्बा, फालूदा, गुलाब, बेदमुश्क, ख़्वान, तबक, तश्तरी, रकाबी, कफगीर, चमचा, नान-बाई, हलवाई, आदि।

पिश्ता, शहतूत, बेदाना, खुबानी, अजीर, नाशपाती, अनार, फालसा, चिलगोजा, आदि।

[2] जैसे—कमर, दुआ, बीमारी, तकलीफ, तबियत, मिजाज, दूकान, मकान, बाजार, बन्द, महल, देहात, फैसला, अमीर-गरीब, आबादी, बरबादी, बहार, तकाजा, कागज, कलम, दावात, जिक्र, सिपाही, मालिक, इज्जत, आबरू, याद, क़द, तेज, सुस्त, ख़रीदार, माल, दारोगा, नजराना, शिकायत, हौसला, बला, ऐब, होश-हवास, होशियार, मस्त, सरकार, दरबार, जुलूस, कौल-क़रार, जादू, परहेज, बदजबान, बयान, रंगीन, रंगरेलियाँ, मजबूत, प्याला, किस्सा, शौक, बदनाम, रोशनी, नशा, मजाक, मौसम फस्ल, मामला, रिश्ता, शोरगुल, आदत, आमदनी, दीवार, दर-वाजा, तमाशा, सैर, नोक, नक्शा, परदा, बरामदा, मैदान, चादर, मसनद, बिस्तर, इरादा, नीयत, तूफान, ताजा, पेशा, फर्श, जायदाद, दलाल,

चतुरग) भारतीय आविष्कार होनेपर भी बिल्कुल 'बी पर्शियन' दीख पडने लगी। उसका राजा 'बादशाह', मत्री 'वज़ीर' हस्ती 'फील' या

वकील, नकल, अस्ल, मनहूस, परीशान, परी, पलग, पासग, पुल, पेच, पेशगी, पैदावार, बराबर, बर्फ, बगल, रेशम, मायने, सादा, बदनाम, आम, खास, दीवानख़ाना, तूल-तवील, गुजाइश, आसार, पैरवी, रिहाई, रसाई, तारीख़, पता, जिगर, रज, अमीन, सरदार, फुर्सत, रुख़सत, मज़दूर, शर्त, मेज़, तख्त, शऊर, महकमा, रियासत, ख़जर, मख़मल, चिकन, हरकत, रुतबा, नकाब, नाज़ुक, फीलख़ाना, कद्र, पजा, मालूम, सलाह, मशवरा, मुहर, वास्ते, इलज़ाम, मुकाबला, शहर, पसन्द, दिलचस्प, शहीद, मुहल्ला, जर्राह, नमूना, इत्र, रोग़न, काफी, अर्सा, तनाव, मददगार, जवानी, वज़न, पिजरा, नहर, रफ्तार, कसरत, परवरिश, दबदबा, दगा-बाज़, नसीहत, गलतफहमी, बहाना, हीला-हवाला, मलाल, पोशाक, जोश-खरोश, पुर्ज़ा, गुमराह, बदला, तब्दीली, गारत, शर्बत, कब्ज़, मामूली, कस्बा, तसल्ली, ज़बरदस्ती, रईस, हैरानी, लिफाफा, गश, पहलवान, चुस्त, चालाक, मुर्दा, लाश, कफ़न, चीख़, इमारत, रद्दी, बालिग, यानी, तबला, सितार, क़ैची, करामात, किराया, बदमाश, दावा, मुहावरा, कारखाना, लिहाफ, शाबाश, गबन, पानदान, शौकीन, माजरा, जल्लाद, नाश्ता, गनीमत, गुलदस्ता, मसविदा, जहाज़, ऐलान, ऐयारी, ख़फा, रिश्वत, वगैर, चश्मा, ऐनक, सदमा, मोम, मीनाकारी, नक्श, नौकर, विलायत, चुगली, मवेशी, हौज़, बनफ्शा, ज़ीरा, ज़ुकाम, मर्दाना, ज़नाना, कलई, मरहम ज़मानत, शोख़ी, सुख़न, चर्ख़ा, दरकार, जिल्द, दस्तकारी, आतशबाज़ी, मालामाल, दर्ज़ी, मुकदमा, पैरवी, यकतरफा, मुनादी, चापलूस, हजामत, बज़ाज, बस्ता, कमीना, गप, बिसाती, तरस, बारात, चन्दा, दहेज, लतीफा, लकवा, लुच्चा, नागा, बुरादा, मकर, कसरत, पुल, हर्जाना, जुर्माना, चेचक, वगैरह ।

'हाथी', अश्व 'असप' (घोडा), रथ 'रुख़', और पदाति 'पियादा' बन बैठा। और बिसातको पहले क्या कहते थे, यह हमे स्वयं याद नही आ रहा है। इसी तरह यहाँ घुड़सवारीका प्राचीन रिवाज था, परन्तु इसमे भी ऐसा

अरबी-फारसीके बहुत-से शब्द अर्थ-परिवर्तन करके उर्दूमें लिये गये। जैसे--

फीलसोफ--यूनानी शब्द है। जिसका अर्थ हकीम होता है, किन्तु उर्दूमें तेज, तर्रार, फरेबी, मक्कार, बदबातिनको कहते है।

खसम--अरबी शब्द है जिसका अर्थ शत्रु है, किन्तु उर्दू में देखिये कितना प्राणप्यारा 'शौहर' अर्थ हुआ है।

तमाशा-सैर--अरबीमें रफ्तारके अर्थमें आता है। उर्दूमें जुदा ही लुत्फ देता है।

इख़लास--अरबीमें खालिस करनेको कहते हैं। उर्दूवाले प्यार, मुहब्बत, इखलास एक मायनोमें इस्तेमाल करते हैं।

ख़ैरात--अरबीमें नेकियो और उर्दूमें दानके लिये आता है।

तकरार--अरबीमें दोबारा कहने या काम करनेके लिये प्रयुक्त होता है, उर्दूमें झगडेके लिये।

खातिर--अरबी-फारसीमें दिल या खयालके मौकेपर बोलते है, उर्दूमें आदरके लिये।

रोजगार--फारसीमें ज़मानेको, उर्दूमें आजीविकाको कहते है।

दाई--फारसीमें मासी (माँकी बहन)को और उर्दूमें बच्चा जनानेवाली या दूध पिलानेवालीको कहते है।

पतंग--फारसीमें रोशनदानको और उर्दूमें परवानेको तथा. हिन्दीमें कनकौवेको कहते है।

परचम--फारसीमें पहाडी गायोके बाल और दुमको, उर्दूमें झण्डेको कहते है।

कायाकल्प किया कि देखते ही बनता है। सवार, साईस, अस्तवल, ज़ीन, ज़ीन-पोश, लगाम, तग, नाल, वाग, सब ऐसा भेष बदलकर आये कि सूरत पहचानी नही जाती।

५—यह आश्चर्यकी बात है कि उर्दूका प्रारम्भ गद्यसे न होकर पद्यसे हुआ। गोया बच्चीने बोलनेसे पहले गान अलापा। प्रारम्भके सभी कवि अभारतीय और फारसीके मँजे हुए शायर थे। अत वे अधिक-से-अधिक फारसी और कम-से-कम उर्दू-हिन्दीका व्यवहार उसी प्रकार करते थे जिस प्रकार वर्तमानमे अगरेज अग्रेजी-हिन्दीका समिश्रण करके बोलते है।

६--उर्दूके प्रारम्भिक शायर चूँकि सब अभारतीय थे, और शासक जातिके थे, अत स्वभावत उन्हें अपनी सस्कृतिपर गर्व और यहाँकी अच्छी-से-अच्छी बातसे चिढ या नफरत होना लाज़िमी था। इसीलिये उन्होने देशी भाषाके शब्दोके बजाय अधिक-से-अधिक फारसी-अरबी शब्दोका समावेश किया। छन्दकी बहरे भी फारसीकी चुनी और उपमा, उदाहरण और अलकार भी फारसीसे ही उठा लिये। उन्हें नौशेरवाँ बादशाहके समक्ष भारतके सूर्यवशी, कुरुवशी न्यायी शासक सुझाई ही न पडे। हातिमकी सख़ावतके आगे उन्हे कर्ण, मोरध्वज, हरिश्चन्द्र, दधीचि

पिशवाज़—फारसीमें मुसाफिर या मेहमानके स्वागतको और उर्दूमें उस लिबासको कहते हैं, जिसे पहनकर वेश्या महफिलमें नृत्य करती है।

दबग--फारसीमें पस्त-फितरत (कायर)को और उर्दूमें बारौब और दिलेरको कहते हैं।

दंग—फारसीमें अहमकको और उर्दूमें हैरतज़दा हो जाने या आश्चर्यान्वित होनेको कहते हैं।

फ़मरा—फारसीमें उस स्थानको कहते हैं जहाँ रातको चौपाये बाँधे जाते हो और उर्दूमें मकानके एक विशेष स्थानको कहते हैं।

भावोको प्रतिविम्बित करता रहता है।[1] जब आजीविकाका साधन बादशाहो, नवावो और रईसोको समझा जाने लगा तो, उनकी कृपादृष्टि प्राप्त करनेके लिये खुशामदाना कसीदे ही नही लिखे गये, अपितु शायर परस्पर कीचड भी उछालने लगे। प्रतिद्वन्द्वितामे एक दूसरेको उखाड फेकनेका जघन्य-से-जघन्य उपाय करने लगे। यहाँ तक कि जो कला कविता-क्षेत्रमे प्रकृतिकी ओरसे सौन्दर्य भर देनेके लिये बख्शी गई थी, उसका सदुपयोग (?) परस्पर फब्तियाँ कसनेमे होने लगा। ऐसी हालत देखकर 'मुसहफी'को लिखना पडा—

वज्मे शुअरा है या यह मुर्गियो की पाली है ?

इसी प्रतिद्वन्द्विताके कारण उर्दू-शायरीमे 'हिजो'[2]का आविष्कार हुआ। मौ० मुहम्मदहुसेन 'आजाद' लिखते है—"एक बार मुसहफी और इशामे हिजो हुई तो नवाब आसफुद्दौला लखनऊसे वाहर गये हुए थे। वापिसीपर जब उन्हे इस हिजोबाज़ीका इल्म हुआ तो उन्हे अपनी इस गैरमौजूदगीका वडा मलाल रहा। उन्होने फौरन दोनो वाकमालोकी हिजो मँगाकर वडे शौकसे सुनी और दोनोको इनाम दिया"।[3]

रेख्ती और हिजोपर ही सब्र नही हुआ, रगीन मिजाजोने 'हज़ल'[4] का

---

[1]रेख़्तीके आविष्कारक सआदतयारखाँ 'रगीन' थे। उनका और रेख़्तीका परिचय मध्यवर्ती अध्यायमें क्रमानुसार मिलेगा।

[2]हिजोके ईजाद करनेवाले 'सौदा' थे। उनका और हिजो का उल्लेख मध्यवर्ती अध्यायमें क्रमानुसार मिलेगा।

[3]आबेहयात, पृ० २८५

[4]"हज़ल'का एक भी उदाहरण देनेमें हम असमर्थ है। इसे सुनकर निर्लज्जता भी दुम दबाकर भाग जाती है। मीर अट्ल नारनौली, मीर जाफरजटल, जानी, चिरकीन, उफक़, शफीक़ और मीरग़ुलामहुसेन बुरहानपुरी इस तरहकी गन्द उछालनेमें मशहूर हुए है।

२—फ़ारसी-अरबीके रीतिरिवाज तथा पारिभाषिक शब्दोकी भरमारसे उर्दू वास्तविकतासे हटकर सिर्फ नकलची रह गई।[1]

३—फारसीमे जिन भावोको हज़ारो शायर प्रकट कर चुके थे, उन्ही उगले हुए भावोको उर्दूमें सँजोनेके लिये होड-सी लग गई। हर शायर बार-बार इन कहे हुए भावोमे नवीनता और चमत्कार लाना चाहता था। सचाई कबतक साथ देती ? लाचार झूठका पल्ला पकडना पडा, और फिर ऐसी बेतुकत झूठ बोली और बेपरकी उडाई कि शायरी का नाम ही झूठ हो गया। 'आतिश' जैसो को लिखना पडा—

'आतिश' बुरा न मानियो हक़-हक़ जो पूछिये।
शायर हैं हम, दरोग[2] हमारा कलाम है॥

४—फारसीकी अन्धी अनुयायी होनेके कारण उर्दूने अप्राकृतिक व्यभिचार (लौंडेबाजी) भी गलेमे बाँध लिया।

५—फारसी-शायरी विलासितामे सराबोर थी। भारतके बादशाह और नवाब भी विलासी थे। अधिकाश उर्दू-शायरोकी आजीविकाके साधन यही लोग थे। अत इनको प्रसन्न करनेके लिये खुशामदाना कसीदे और विलासिताको उभारनेके लिये जो गज़लें कही गईं उनमे चाटुकारी, ऐय्यारी और अकर्मण्यताका समावेश होना लाज़िमी ही था। गज़लोमें अप्राकृतिक व्यभिचार और बाजारू इश्ककी भरमारसे ही तसल्ली नही हुई। बल्कि 'रेख़्ता' कहते-कहते कुछ लोग 'रेख़्ती' भी कहने लगे, जिसे हिजडोकी बोली कहा जा सकता है। उस वक्त नवाबो, बादशाहोके चालचलन कैसे थे, आमजनताका झुकाव किस तरफ था—यह रेख़्तीके आविष्कारसे भली भाँति जाना जा सकता है, क्योकि साहित्य तो एक दर्पण है, जो अपने सृजन-समयकी जनता और कविके

---

[1]तारीख़े अदबे उर्दू, पृ० ४२

[2]झूठ

अक्लके लिये इस कदर तारीफपर कनाअत (सब्र, सन्तोष) नही करते कि वह इकबालमे सिकन्दरे यूनानी और अक्लमें अरस्तूए सानी है, बल्कि कहेंगे—

"अगर इसका हुमाएअक्ल, उरूजे इकबालसे साया डाल तो हर शख्स किश्वरे दानिशो दौलतका सिकन्दर और अरस्तू हो जाये।" अक्ल तो हुमाकी यह सिफत खामखयाली है। उसपर इकबालका फलक (आसमान) और एक आसमानके बीच नया तैयार करना और उसपर फर्जी 'हुमा'का जाना देखिये। फिर जमीनपर उस खयाली आस्मानके नीचे यूनान बसाना देखिये। फिर उस फर्जी हुमाकी बरकतका इस कदर फैजेआम देखिये कि जिससे दुनियाके जाहिल इस खयाली यूनानमें जाकर अरस्तू हो जाएँ। शायरोमे इस मुबालिगा आमेजीका सबब पूछते है तो जवाब मिलता है—"कोई समझे-तो-समझे जो न समझे, वह अपनी जहालतके हवाले।"[1]

हिन्दी-साहित्यकी वर्णन-शैलीकी कई पृष्ठोमे प्रशसा करते हुए मौलाना आजाद अपने हृदयकी वेदना इन शब्दोमे वखरते है— "यह अफसोस दिलसे नही भूलता कि उन्होने (उर्दू-शुअराने) एक कुदरती फूलको जो अपनी खुशबूसे महकता और रगसे लहकता था मुफ्त (व्यर्थमे) हाथसे फेंक दिया। हमारे नाजुकखयाल और बारीकबीन शायर इस्तआरे (अलकार) और तशबीहो (उदाहरणो)की रगीनी और मुनासिबतेलफ्जीके जौक-शौकमे खयाल-से-खयाल पैदा करने लगे और असली मतालिबको अदा करनेमे बेपरवाह हो गये।"[2]

सस्कृतमें एक-एक शब्दके कई-कई अर्थ होते है। अत सस्कृत-

---

[1]आबेहयात, पृ० ५४

[2]आबेहयात, पृ० ६१

भी आविष्कार कर डाला, जिसमें स्त्री-पुरुषोके गुह्य अगोका खुल्लम-खुल्ला उल्लेख और मैथुनका विस्तारके साथ अश्लील से-अश्लील शब्दोमे वर्णन किया। इन हज्जलियातमें वह कीचड उछाली गई है कि हया और गैरतकी आँखें नीची हो जाती है।

उर्दूमे फारसीके इतने अधिक सम्मिश्रणसे तग आकर मौलाना मुहम्मदहुसैन 'आज़ाद'-जैसे उर्दूके अमर लेखकको खीजकर लिखना पडा—
"उर्दूमे फारसीका रग बहुत तेज़ीसे आया। यह रग अगर उसी कदर आता कि जितना चेहरेपर उबटनेका रग या आँखोमे सुर्मा, तो खुशनुमाई और बीनाइ (नेत्रज्योति) दोनोको मुफीद होता। मगर अफसोस कि फार्सीकी शिद्दत (अधिकता)ने हमारे कूवतेबयान और आँखोको सख्त नुकसान पहुँचाया। और ज़बान (साहित्य)को खाली बातोंसे फकत तवहुमातका स्वाँग (खोखला-निर्जीव) बना दिया। नतीजा यह हुआ कि भाषा और उर्दूमें ज़मीन-आसमानका फर्क हो गया।"[1]

हिन्दी-उर्दूकी खूबियोका बयान करते हुए मौलाना आज़ाद लिखते हैं—"उर्दूकी इशापरदाज़ी (उम्दा मज़मून लिखनेकी महारत)में जो दुश्वारी और हिन्दीकी इशापरदाज़ीमे जो आसानी है, उसमें एक नुक्ता गौरके लायक है। वह यह कि भाषा (हिन्दी) ज़बान जिस शय (वस्तु) का बयान करती है, उसकी कैफियत उन खतोखाल (ढग)से समझाती है, जो खास उसी शयके छूने, देखने सूँघने, चखनेसे हासिल होती है। दूसरे सुननेवालेको देखनेका-सा मज़ा आता है। बरखिलाफ, उर्दूके शायर जिस शयका जिक्र करते है, साफ उसीकी भलाई-बुराई नही दिखाते, बल्कि उसके मुशाबह (उदाहरण-स्वरूप, तुलनामें) एक और शयका बयान करते है। हमारे शायर किसी बादशाहके इकबाल और

[1]आबेहयात पृ० ५२

सामाजिक, आर्थिक, क्रान्तिकारी, भावनाएँ क्यो नही आई ? प्राकृतिक सौन्दर्य और जीवनको उभारनेवाले सन्देश क्यो नही ? इन

उर्दू-शायरीमें समयकी आवश्यकतानुसार भाव क्यो नही ?

५००-६०० वर्षोमे अनेक उलट-फेर, बडे-बडे युद्ध हुए, दुर्भिक्ष पडे, बादशाहते खत्म हुई, कत्लेआम हुए। ताजमहल-जैसा सजीव इश्कका स्मारक खडा हुआ। हीर-राँझा, सोहनी-महिवाल, नूरजहाँ-जहाँगीर-जैसे प्रेमपुजारी आये और चले गये। पद्मिनी-जैसी हुस्ने शोलाखू, मजरेआमपर आई जिसकी लौमे अल्लाउद्दीन झुलस गया। राणा प्रताप-जैसे पानीदार भी हुए। गदर भी हुए, कयामते भी आई, परन्तु कही किसीका उल्लेख नही मिलता। वही बुलबुल और पिंजरा, वही साकी ओ शराब, वही महफिलोमाशूक और वही रोना-बिसूरना—

सदसाला दौरे चर्ख़ था सागरका एक दौर।
निकले जो मयकदेसे तो दुनिया बदल गई॥

—रियाज़ ख़ैराबादी

उर्दू-शायरीका इतना अविकसित रहनेका कारण यही है कि यह जनताकी शायरी न रहकर दरबारी शायरी बन गई। उर्दू-शायरीकी दिल्ली, लखनऊ, रामपुर और हैदराबाद चार हुकूमते सरपरस्त रही है। इन हुकूमतोकी सरपरस्तीसे उर्दू-शायरीका खूब प्रसार हुआ और शायर भी आजीविकासे निश्चिन्त रहे, परन्तु यही सरपरस्ती उर्दू-शायरीके लिये घातक सिद्ध हुई। शायर आजीविकाकी निश्चिन्तताके कारण अकर्मण्य बन गये और इस अकर्मण्यताके कारण आजीविकाकी रक्षाके लिये उन्हे वही बोल बोलने पडे जो उनके आश्रयदाता चाहते थे। इस परतन्त्रताके जीवनपर 'इकबाल'ने कैसी करारी चोट मारी है।

कवि अनेकार्थक श्लोक लिखकर अपनी प्रतिभाका परिचय देते रहे है। उसीका अनुसरण उर्दूमे भी करनेका प्रयत्न किया गया, परन्तु

उर्दूमें सस्कृतका असफल अनुकरण

सफलता नही मिली।[1] इन्ही द्विअर्थक शेरोमें बाज बाज़ शायरने बडी अश्लीलता बखेरी है। शाह हातिमने बडी कोशिश करके इन रग-आमेज़ियोसे उर्दूको पाक (मुक्त) किया।

मौलाना आ.जाद उर्दू-शायरोके नकलचीपनसे दुखी होकर फर्माते है—

"ये मज़मून इस क़दर मुस्तामल हो गये है कि सुनते-सुनते कान

उर्दू फारसीकी जूठन है

थक गये। वही मुकर्रर (दुहराई हुई) बाते है। गोया खाये हुए बल्कि औरोके चबाये हुए निवाले है। उन्हीको चबाते है और खुश होते है।"[2]

उर्दू-शायरी इतनी अविकसित क्यो रही? उसमे राजनैतिक,

---

[1]बानगी मुलाहिज़ा हो—

तुम देखो या न देखो हमको सलाम करना।
यह तो क़दीम ही से सरपर हमारे कर है॥

'कर' सस्कृतमे हाथको हिन्दीमे महसूलको कहते है और सरके बालोकी जडोमें जो खुश्की हो जाती है, उसे भी कहते है।

नहीं मुहताज ज़ेवरका जिसे ख़ूबी ख़ुदा देवे।
कि आख़िर बदनुमाँ लगता है देखो चाँदको गहना॥

गहना जेवरको भी कहते है और ग्रहण लगनेको भी।

[2]आबेहयात, पृ० ८४

अरबी	६३३०
फारसी	५४५५
उर्दू	२४१५
हिन्दी	९०३५
तुर्की-ईरानी	११७
अंग्रेजी	७२६५
संस्कृत	१४२
मुहावरे	६६४५
कुल	३२७०४

आवश्यकतानुसार नवीन शब्द भी गढे जाते रहे है। 'भगी' 'चूहडा' शब्द बहुत अपमानजनक है। ये लोग जितनी कठिन जनताकी सेवा करते है, उसको देखते हुए उक्त शब्द उच्च समाजकी कृतघ्नताके द्योतक थे। अकबरने इसे महसूस किया और उसने इनके लिये 'हलालखोर' शब्द प्रचलित किया। जहाँगीरने शराबका नाम 'रामरगी' और औरगजेबने आमोको 'सुधारस' और 'रसनाविलास' नाम दिये। 'नारगी' और 'सन्तरा' दोनो ही नाम इस फलके लिये मौजूँ नही, क्योकि इतना रगीन होते हुए नारगी और इतना लतीफ होते हुए भी सग (पत्थर) तरा कहलाये, यह जौकेसलीमके लिये जेब नही। इसलिये मुहम्मदशाहने 'रगतरा' नाम दिया। मगर यह प्रचलित नही हुआ। शाबाशीके काम-पर या खुशीके मौकेपर हार पहनाना कुछ बदशगुन या कर्णकटु-सा मालूम होता था। उसे मुहम्मदशाहने फूल-माला नाम दिया। हजारो हिन्दी-शब्दोमें अपनी जबानकी आधी पुट मिलाकर उन्हें दूध-मिश्रीकी तरह समरूप कर लिया।[1] और हजारो हिन्दी-उर्दू गगाजमुनी शब्दोके मेल-

---

[1]जैसे—राग-रग, रंगमें भग, रग-रूप, राह-बाट, धन-दौलत

ऐ तायरे लाहूती उस रिज़्क़से मौत अच्छी,
जिस रिज़्क़से आती हो परवाज़में कोताही ॥[१]

उर्दू-शायरीमे अरबी-फारसी शब्दोकी भरमार न होती और अन्धाधुन्ध उसके उदाहरणो, अलकारो और भावोकी भर्ती न हुई होती तो उर्दू भारतकी सर्वोच्च भाषा हुई होती। उर्दू-शायरोने शब्दोको इस खूबीसे ख़रादपर चढाया है, कि उनकी आभा पहले से कही ज्यादा चमक उठी है। महावरोको इस जाँफिशानीसे तराशा है कि दाद देनेको शब्द ढूँढे नही मिलते। बात-बातमें वह गुलकारियाँ की है कि लोग देखकर सकतेमे आ जाते है। नाज़ुक खयालोकी ऐसी भीनी और रसभरी फुआरें छोडी है कि सावनी समाँ भी शर्माये। यासोहिरमाँके व पुरअलम बोल बोले है कि कलेजा मुँहको आने लगता है। कल्पनाकी उडान, विरहका वर्णन, सब इस तरहके जवाहरपारे है कि सीनेसे लगा लेनेको जी चाहता है। उसकी सज-धज, शोखी, अदा, बाँकपन, भावुक हृदयको दीवाना बनाये बगैर नही रहते। उसके जमालियात (प्रेयसीका रूप-वर्णन)पर लतीफ शेर किसे सिर फोडनेपर मजबूर नही करते?

उर्दू-शायरीकी खूबियाँ

उर्दू-भाषामें हिन्दीकी तरह बडा गुण ये है कि इसमें दुनियाकी समस्त भाषाओके शब्द तत्सम या तद्भव रूपमें बडी आसानीसे पच-खप जाते है। उर्दूकी सईदी डिक्शनरी (पृ० सख्या १४०६)मे जो शब्द आये है, वे कुल ३२,७०४ है और वे निम्न भाषाओके है—

उर्दूकी पाचनशक्ति

---

[१]ओ अनन्त आकाशमें उडनेकी क्षमता रखनेवाले पक्षी! इस पिजरेमें रखे भोजनसे मृत्यु श्रेष्ठ है, क्योकि पिजरेमे भोजन तो स्वादिष्ट मिलता है, परन्तु उडनेकी स्वतन्त्रता नष्ट हो जाती है।

जोलसे हजारो ऐसे मुहावरे गढे है, जो जवानमे एक खास चटखारा पैदा कर देते है ।

प्राचीन हिन्दी-कविता नवरसो—१ शृगार २ हास्य ३ करुण ४ रौद्र ५ वीर ६ भयानक ७ वीभत्स ८ अद्भुत ९ शान्तरस—में विभक्त है ।

हिन्दी कविताके गुण-दोष

प्राचीन कवियोमें—तुलसी, सूर, कबीर, देव, सेनापति, बिहारी, केशव, मतिराम, विद्यापति, भूषण दास, वेनीप्रवीन, जायसी, रहीम खान खाना, काफी प्रसिद्ध है । इनकी अमर रचनाओसे हिन्दीकी वडी श्रीवृद्धि हुई है । नवरसोमें शृगाररस सबसे प्रधान माना गया है और इस रसमे यूँ तो सैकडों कवियोने कौशल दिखलाया है, परन्तु कम-से-कम एक दर्जन ऐसी कृतियाँ भी विद्यमान है, जिनपर हिन्दी-साहित्य गर्व कर सकता है । भारतीय ललना पतिव्रता और सती होती है । इसलिये हिन्दी-कवितामे उसके पति-प्रेम, विरह, लाज आदिका वडा ही सजीव और स्वाभाविक वर्णन मिलता है । वह अपने पतिपर आसक्त होती है । इसलिये उर्दू-शायरीके अनुसार वह आशिक और पति माशूक होता है । अत वह अपने प्रेमी पतिको रिझानेके अनेक उपाय करती है । हिन्दी कवियोने स्त्रियोचित हाव-भावोमे इन सबका निरूपण किया है । इसके विपरीत उर्दू-शायरीमें आशिक स्त्री न होकर पुरुष होता है और माशूक स्त्री या कमसिन छोकरा । और स्त्री या छोकरे उस आशिकसे नफरत करते है । अपने पास भी नही फटकने देते । इसीसे वह दुखी रहता

हुक्का-पानी, शाम-सवेरे, जादू-टोना, वोल-वाला, धींगा-मुश्ती, रिश्ता-नाता, खत-पत्तर, पहरेदार, समझदार, चोली-दामन, चिराग़-बत्ती लाज-शरम, दाना-घास, किस्सा-कहानी, वाग-वाडी, ईमान-धरम, देर-सवेर, रीत-रिवाज, दान-दहेज, जात-पाँत, वेटा-दामाद, चिट्ठी-रसाँ, कुरता-धोती, पूँजीपति, वगैरह ।

"ऐसनके द्वारे कबौं मूतन न जाएँगे"

मालूम होता है ये कवि शायद अमृतधारा मूतते थे। अश्लीलताके साथ उर्दूकी तरह पुनरुक्ति-दोष, भावापहरण, बेपरकी उड़ान, झूठके अम्बार और असम्भवताकी भीड़ लग गई, जिससे हिन्दी शृंगार कविता हतप्रभ हो गई। वह केवल पोथियोंमें दबकर रह गई। सूर्पणखाका रूप लेकर जनता तक पहुँचनेका उसे साहस नहीं हुआ।

हिन्दी-भाषामें वह पाचनशक्ति रही है कि इसने संस्कृतके ४०,००० शब्दोंको तत्सम और तद्भव रूपमें उदर-गह्वरमें रख लिया। अरबी-फ़ारसी, पुर्तगाली, तुर्की, ईरानी और अंग्रेज़ीके भी कितने ही हज़ार शब्द पचा लिये। प्रान्तीय भाषाओंके लिये तो इसके दर सदैव खुले रहे हैं। एक जीवन-सन्देशदायिनी भाषाको इससे अधिक और सुविधा चाहिये भी क्या?

परन्तु खेद है कि हिन्दुओंकी तरह हिन्दीकी पाचनशक्ति भी अब नष्ट हो चुकी है। हिन्दुओंने ग्रीक, शक, हूण, आदिको अपनाकर आत्मसात कर लिया और अब मालूम भी नहीं होता कि वे अपनाये हुए लोग कौन-कौन हैं? किन्तु पाचनशक्ति बिगड़ी तो पीछेके आक्रमणकारियोंको न भगा ही सके न अपना ही सके। इस अनुदारताका दुष्परिणाम जो भारतको भोगना पड़ा वह मरकर भी भारतवासी नहीं भूलेंगे।

यही अनुदार मनोवृत्ति हिन्दीमें भी आ गई है। तद्भव शब्दोंके बजाय तत्सम शब्दोंका प्रचलन आरम्भ हो गया है। दूसरी भाषाओंके वे शब्द भी जो दूध-मिश्रीकी तरह घुल-मिल गये थे, मुँहमें उँगली देकर वमन किये जा रहे हैं। आवश्यकतानुसार शब्दोंका सृजन दूषण नहीं भूषण है, परन्तु अभ्यस्त शब्दोंकी चोटी पकड़कर निकालना और नवीन रंगरूटोंकी भर्ती करना भी कहाँतक उपयुक्त है, यह भविष्य ही

उर्दू-शायरीकी जन्म-भूमि

यह भी एक आश्चर्यकी बात है कि जिस दिल्लीको उर्दूपर इस कदर नाज और फख़ है और जो दिल्ली मुसलिम-शासकोंकी चहेती रही है, उसके बतन (औरस)से उर्दूका जन्म न होकर दकनसे हुआ है। इसका मुख्य कारण यह था कि दिल्लीमे गो फारसी-शायर अच्छे-अच्छे मौजूद थे, लेकिन देशी जबानसे परिचित न थे। हालाँकि फारसी राज्य-भाषा घोषित हो जानेके कारण फारसी शब्द हिन्दुओंमे धीरे-धीरे प्रचलित होने लगे थे। यहाँ तक कि सूर, तुलसी, कबीर, नानक आदिकी रचनाओंमे भी यत्र-तत्र फारसी शब्दोकी पुट मिलती है। मुसलमानोंमे देशी भाषाके शब्द रूढ होने लगे थे। 'बाबर' हिन्दमे नया-नया आता है वह भी अपने शेरमे—रोती (रोटी), मोती, कुज (कुछ), और मुजको (मुझको) जैसे हिन्दी-शब्द लाता है। हुमायूंके शासन-कालमें मलिक मुहम्मद जायसीकी पद्मावत इस बातकी साक्षी है कि मुसलमानोंमें देशी भाषाका प्रचलन किस हद तक हो गया था, और अकबरके युगमें तो हिन्दीके सैकड़ो शब्द फारसीके सरकारी रुक्को और दैनिक व्यवहारमें व्यवहृत होने लगे थे। अकबरकी हिन्दू-मुस्लिम-प्रेमकी भावनाने हिन्दुओंमे फारसी और मुसलमानोंमे हिन्दीके लिये काफी आकर्षण उत्पन्न किया। यहाँ तक कि अकबरी युगमे फारसी-शायर भी अपनी रचनाओंमे हिन्दी-शब्दोका समावेश करने लगे। जैसे—हार, चमेली, राग, बोबी, तमोली, गुड़हल, मौलसिरी, वगैरह। दिल्ली और उसके इर्द-गिर्द फारसी-हिन्दी मिश्रित भाषाका कुछ-कुछ प्रचार हो चला था, परन्तु वह साहित्यिक रूप नहीं ले पाई थी। इसी साहित्यिक भाषाका जन्म दकनमे हुआ।

दक्खनी शायरी क्या है?

प्रारम्भिक युग

[दौरे मुतक़द्दमीन]

यह सोचते ही रहे और बहार खत्म हुई।
कहाँ चमनमे नशेमन बने, कहाँ न बने!

—असर लखनवी

पूर्वार्द्ध

दक्खनी शायर

आदिल और कुतुबशाही शासन-काल ई० स० १५८० से १६८६ तक

उत्तरार्द्ध

उर्दूके आदि शायर

औरंगजेब शासन-काल १६८६से मुहम्मदशाह शासन-काल १७४८ तक

हो गई। फौजी लश्करोमे जा-जाकर फौजियोसे दीदे लडाने लगी तो इसे सब बाज़ारू, लश्करी (उर्दू) कहने लगे।

हिन्दू-मुस्लिम-मिलापके फलस्वरूप जिस शायरीका जन्म हुआ, उसमे प्रेम, इश्क-विरहका वर्णन अत्यन्त स्वाभाविक, अकृत्रिम, सीधे-सादे ढगपर किया जाता था। इस नवोत्पन्न भाषाके पास शब्दोका भण्डार बहुत कम था, होता भी तो सुरक्षित रखनेका तब शऊर भी क्या हो सकता था? इस नवोत्पन्न शायरीने आँखें खोली तो देशी भाषाओके गीत थिरकते देखे। लामुहाला इसने भी वही नकलो-हरकत शुरू की। परन्तु रक्तमें फारसियतका अश भी था। वह असर रग दिखाये बिना न रहा। और यह बच्ची अपनी हमजिन्स सहेलियोको प्यार करनेकी बजाय छोकरोके साथ खेलने लगी।[1] फिर भी सत्सगतके कारण इश्कके इज़हारमे स्वाभाविकता बनी रही। अत माशूकके लिये तुर्कीहूरके बजाय सजन, पिया, बुलबुलके बजाय पपीहाको प्यार किया। रीति-रिवाज भी स्थानीय बर्ते। स्थानीय ही अलकारोसे अलकृत हुई।

यही कारण है कि इस ३०० वर्षकी मेलजोलकी शायरीको उर्दू-इतिहासकारोने उर्दू-शायरी तस्लीम नही किया है। इसे वह शायरीका बीजारोपण समझते है, और यही कारण है कि इन तीन सदियोकी विशाल शायरीका कही भी किसीने उदाहरण नही दिया। कितने खेद और दु खकी बात है कि यह हिन्दु-मुस्लिम सस्कृतिके ऐक्यका साकार उदाहरण इन मज़हबी दीवानोके तास्सुबके कारण नजरोसे ओझल हो गया, और नही कहा जा सकता कि उसका कुछ अश कही सुरक्षित भी है या सब दीमकों, चूहोके पेटमे चला गया।

२० जून १९४९

---

[1]यानी हिन्दी-कवितामें स्त्रीका पतिसे और पतिका स्त्रीसे प्रेम वर्णन किया जाता था, परन्तु उर्दूके आशिक़ने स्त्रीसे इश्क़ न करके छोकरोसे किया। इसीको 'अमरद परस्ती' कहते है।

१—इब्राहीम आदिलशाह—यह बीजापुरकी आदिलशाही हुकूमतमे पाँचवाँ बादशाह (ई० स० १५७९-१६२६) हुआ है। यह ९ वर्षकी उम्रमे सिहासनारूढ हुआ। इसे सगीतका बहुत अच्छा ज्ञान था। हजारो सगीतज्ञ इसने राजधानीमे एकत्र किये और 'नवरसमाया' एक ग्रथ भी सगीतपर लिखा। यह स्वय गीत लिखता था और उन्हे गाता भी था। क्योकि इसे हिन्दी गीतोसे रुचि थी इसीलिये गीतोमे दक्खनी हिन्दी-शब्द भी फारसीके साथ मिले होते थे। यही गीत धीरे-धीरे फारसी-छन्दोमे आनेपर उर्दूकी प्रथम शायरी समझे गये। परन्तु अफसोस कि इनकी कविताका नमूना कही भी नजर नही पडा। अत नही कह सकते इनकी भाषा कैसी थी।

२—मुहम्मद कुली क़ुतुबशाह—यह गोलकुण्डाकी कुतुबशाहीका पाँचवाँ बादशाह (ई० स० १५८०-१६१२) था। यह बडा रगीन और गुणज्ञ था। इसने 'भागमती' नामक हिन्दू ललनासे शादी की और प्रेम-स्मारक-स्वरूप गोलकुण्डा राजधानीके समीप 'भागनगर' बसाया। जो वर्तमानमें हैदराबाद कहलाता है। यह बहुत अच्छा शायर था। फारसी जबानके अलावा मुल्की ज़बानमे भी शेर कहता था। इसकी रचना 'सनीमेकुलयात' मौजूद है। अल्लामा नियाज फतेहपुरी लिखते है—"सनीमेकुलियातके देखनेसे मालूम होता है कि जब अकबरी अहद्‌मे फारसी और भाषाने सिर्फ बोलचालकी सूरत अख्तियार करनेके अलावा कोई और शक्ल अख्तियार नही की थी, ठीक उन्ही दिनो यह बादशाह इस नई ज़बानमें शायरी कर रहा था।"[1]

नमूना— पियाहूँ हजरतके हित आबेकौसर।
तो शाहाँ ऊपर मुझ फलसकर बनाया॥

इसके बाद इसी वशमे निम्न तीन बादशाह और हुए है ये तीनो ही शायर थे।

---

[1] इन्तक़ादियात भाग २, पृ० ८२-८३

दक्खनी शायर

१ इब्राहीम आदिलशाह
२ मुहम्मदअली कुतुबशाह
३ सुलतान मुहम्मद कुतुबशाह
४ सुलतान अब्दुल्ला कुतुबशाह
५ अब्दुलहसन तानाशाह

उर्दूके आदि शायर

१ वली
२ दाऊद
३ सिराज

देहलवी शायर

४ फाइज़
५ आरज़ू
६ मज़हर
७ हातिम
८ मज़मून
९ आबरू
१० नाजी
११ यकरंग
१२ अहसन
१३ फुग़ाँ

यद्यपि दक्खनी शायरोंका परिचय और उनकी शायरीके नमूने उर्दू-नक्क़ादोंके नाम्सुबकी वजहसे दस्तयाब नहीं हैं, फिर भी जिनको उन्होंने उर्दू-शायरीके प्रारम्भिक शायरोंमें समझकर उल्लिखित किया है, उनका संक्षिप्त परिचय और उनकी शायरीका एक-एक दो-दो नमूना बतौर बानगी पेश किया जाता है।

रुस्मी, नुसरती, हाश्मी, दौलत, आजिज, वहरी, वली दक्खनी, वज्दी, आज़ाद, मशहूर शायर हुए हैं। इन सबने मसनवियोंकी ओर अधिक ध्यान दिया और प्रस्तुत पुस्तकमें गजलका उल्लेख हो रहा है। मसनवियोंके सिर्फ एक-एक, दो-दो नमूने देनेमें ही पुस्तक भर जाय, इसलिये यहाँ उससे गुरेज़ किया जाता है और कभी अवसर मिला तो उनकी मौलिक प्रकाशित-अप्रकाशित रचनाओंकी खोज करके नमूने देनेका प्रयत्न किया जायगा और तभी विस्तारसे दक्खनी शायरीपर भी प्रकाश डाला जायगा। यहाँ तो क्रम बनाये रखनेके लिये उल्लेख मात्र कर दिया है। इस प्रकार प्रारम्भिक युग (दौरमुतकद्दमीन) का पूर्वार्द्ध युग समाप्त होता है।

३—सुलतान मुहम्मदक़ुतुबशाह—(ई० स० १६११-१६२५)के कलामका नमूना—

पिया साँवला मन हमारा भुलाया।
नज़ाकत अजब सब्ज़ रगमें दिखाया॥

साक़िया! आ, शराबेनाब कहाँ?
चन्द्रकी प्यालीमें आफताब कहाँ?

४—सुलतान अब्दुल्लाक़ुतुबशाह—(१६२५-१६७४ ई०)की शायरीका नमूना—

ऐ परी पैकर! तेरा मुख आफताब।
देखता हूँ नूर है या मुझमें ताब॥

तिरी पेशानीपर टीका झमकता।
तमाशा है उजालेमें उजाला॥

५—अब्दुलहसन तानाशाह—की शायरीका नमूना—

किस दर कहाँ काँ जाऊँ मुझदिलपै भल बझराट है।
इक बात किये होगे सजन याँ जी ही बारावाट है॥

विजापुर और गोलकुण्डेके शासक स्वय शायर और कलाविद थे, अत वे शायरो और कलाकारोको आदर भी खूब देते थे। जवाहरातकी कद्र जौहरी ही कर सकते है, भीलनी नही।

हज़ारो साल नरगिस अपनी बेनूरीपै रोती है।
बड़ी मुश्किलसे होता है चमनमें दीदावर पैदा॥

—इक़बाल

अत इन दोनो सल्तनतोमे उत्साह मिलनेपर जनतामें भी शायर हुए। गोलकुण्डा सलतनतमे इब्ननिशाती, गवासी, वाहवी, तहसीन, कुतबी, तवई, शाहमलिक, अमीन और विजापुरमे नूरी शाही, मिर्ज़ा

शुहरत हुई। दिल्ली-यात्राके बाद वलीके कलाममें फारसीयत बढ़ती गई और हिन्दी-शब्द बहिष्कृत होते गये। जो वली दिल्ली जानेसे पूर्व लिखा करता था —

'तेरे आनेकी बाट ऊपर बिछाये हूँ मैं अँखियाँको।'

दिल्लीसे वापिस आनेपर ऐसे बोल बोलने लगा—

सहर है सरवे गुलजबीकी सदा।

वलीकी उर्दू-शायरीके नमूने—

दिल छोड़के यार क्योंकि[1] जावे ?
ज़ख्मी है शिकार क्योंकि जावे ?

अजब कुछ लुत्फ रखता है शबेखिलवतमें[2] दिलबरसे।
सवाल आहिस्ता-आहिस्ता जवाब आहिस्ता-आहिस्ता॥

ख़ूबरू[3] ख़ूब काम करते हैं।
इक निगहमें गुलाम करते हैं॥

याद करना हर घडी तुझ यारका।
है वजीफा[4] मुझ दिले बीमारका॥

बेवफाई न कर ख़ुदासूँ डर।
जग हँसाई न कर खुदासूँ डर॥

जिस वक़्त ऐ सरीजन ! तूँ बेहिजाब[5] होगा।
हर जर्रा तुझ झलकसूँ जूँ आफताब होगा॥

---

[1] क्योंकर;
[2] एकान्त रात्रिमें,
[3] हसीन, रूपवान,
[4] पाठ करना,
[5] बेपर्दा।

उर्दूके आदि शायर

१

वली

[ई० स० १६६८-१७४४]

शम्स उद्दीन 'वली' औरंगाबाद दकनके रहनेवाले थे। ये दो बार दिल्ली गये। उर्दू-इतिहासकार इन्हीको उर्दूका प्रथम शायर मानते है। अमीर खुसरोने जिस भाषाको जन्म दिया था और जिसे शाहानेदकनने पाला था, उसी बच्चीको इन्होने अरबी-फारसीके परिधानमे लपेटकर मलकये हिन्द देहलीको गोद दे दिया। सबसे प्रथम वलीने अमीर खुसरो-की ईजादकर्दा भाषासे हिन्दी-शब्दो, मुहावरो, उपमाओ, अलकारो और उदाहरणोका बहिष्कार प्रारम्भ किया। दूसरे शब्दोमें यूं कहिये कि अमीर खुसरोके बनाये हुए सगमपर तास्सुबका बाँध बाँधकर वलीने एक अलग नहर निकाली।

औरंगजेबने (ई० स० १६८६मे) जब दक्षिणकी सल्तनतोको समाप्त किया और औरंगाबादको अपना केन्द्र बनाया तो बिजापुर और गोल-कुण्डाके शायर भी वही पहुँच गये। वहाँ दिल्ली और ईरानके फारसी शायरोकी सुहबतसे शायरीमें परिवर्त्तन होने लगा। वली प्रथम बार १७०० ई०मे औरंगजेबके शासनकालमे दिल्ली गये। वहाँ शाह गुलशनसे इनका परिचय हुआ जो प्रतिष्ठित और वयोवृद्ध शायर थे। वलीसे हिन्दी-बाहुल्य शेर सुनकर इन्होने वलीको फारसी लफ्ज़ोंके इस्तेमालकी तरगीब दी। दूसरी बार वली दिल्ली मुहम्मदशाहके शासनकाल ई० स० १७२४मे गये और अपने साथ 'कलामेरेख्ता' भी ले गये, जिसकी वहाँ काफी

२

दाऊद

मिर्ज़ा दाऊद औरंगाबादके रहनेवाले और वलीके समकालीन थे। एक छोटा-सा दीवान इनकी यादगार है।

रात दिन है पुकारमें 'दाऊद'।
ज्यूँ पपीहा 'पिया, पिया' तुम बिन ॥

मेरा अहवाल चश्मेयारसे पूछ।
हक़ीक़त दर्दकी बीमारसे पूछ ॥

ऐ ज़ाहिदाँ! उठाओ जबीँको[1] ज़मीनसे।
जो सरनविश्त[2] है उसे काँ तक मिटाओगे?

—इन्तख़ादियात, भाग २, पृ० ८९

---

[1] मन्तव्यको, [2] भाग्यमें लिखा।

मुझको हुआ है मालूम ऐ मस्ते जामे ख़ूनी ।
तुझ अखड़ियाँके देखे आलम ख़राब होगा ॥

लिया है जबसूं मोहनने तरीक़ा ख़ुदनुमाईका[1] ।
चढा है आरसीपर तबसे रंग हैरत फिज़ाईका ॥

ऐ 'वली' ! रहनेको दुनियामें मुकामेआशिक़[2] ।
कूचयेज़ुल्फ[3] है या गोशयेतनहाई[4] है ॥

ज़िन्दगी जामेऐश[5] है लेकिन ।
फायदा क्या अगर मुदाम[6] नहीं ॥

---

[1]अपने प्रकट करनेका,
[2]प्रेमियोंका स्थान,
[3]प्रेयसीकी लटें,
[4]एकान्त कोना,
[5]सुखका प्याला,
[6]स्थायी ।

तेरे जोशे हैरते हुस्नका असर इस कदरसे अयाँ[1] हुआ।
कि न आइनेमें जिला[2] रही न परीकी जल्वागरी[3] रही॥

—प्रदवे-उर्दूसे

शुक्रे अल्लाह, इन दिनो तेरा करम होने लगा।
शेवयेजौरोसितम[4] फिलजुमला[5] कम होने लगा॥

मुद्दतसे गुम हुआ दिले बेगाना ऐ 'सिराज'!
शायद कि जा लगा है किसी आश्नाके हाथ॥

—इन्तक़ादियात भा० २, पृ० ८८

इसी दौरमे आजिज़, यार, महरूम, ईमा, दाग, रगीन, महदी, अजीज़ महर, पनाह, रज़ा, ईराकी, महताब, शराफत, शहीद, ज़िया, काज़िम मुब्तिला, नज्म, हमदम, दर्द, हशमत, हाजी, कादर, फख्र, कद्र वगैरह शायर हुए है, जिनका उल्लेख करना यहाँ व्यर्थ है। वही सब पुराने ढगकी शायरी है। मालूमातके लिये इस ढगके तीन शायरोका उल्लेख ऊपर कर ही दिया है।

३

सिराज

सैय्यद सिराजुद्दीन 'सिराज' भी औरंगाबाद-निवासी थे। ये बारह वर्षकी उम्रसे ७ साल तक उन्मत्तावस्थामें मारे-मारे फिरे।

शहेबेख़ुदीने[1] अताकिया[2] मुझे अब लिबासेबरहनगी[3]।
न ख़िरदकी[4] बख़ियागरी रही न जुनूँकी परदादरी रही॥

चली सिम्तेग़ैबसे[5] इक हवा कि चमन सरूरका[6] जल गया।
मगर एक शाख़ेनिहालेग़म[7] जिसे दिल कहें सो हरी रही॥

नज़रेतग़ाफ़ुलेयारका[8] गिला[9] किस ज़बाँसे बयाँ करूँ।
कि शराबेसदक़दहे आरज़ू[10] ख़ुमेदिलमें[11] थी सो भरी रही॥

वह अजब घड़ी थी कि जिस घड़ी लिया दर्सेनुस्ख़ये इश्क़ का[12]।
कि किताब अक़्लकी ताकपर[13] ज्यूँ धरी थी त्यूँ ही धरी रही॥

---

[1]दीवानगी रूपी बादशाहतने, [2]दान किया, [3]नग्नतारूपी पोशाक, [4]अक्लकी, [5]अन्तरिक्षकी ओरसे, [6]आनन्दका, [7]रजकी टहनी, [8]प्रेयसीकी उपेक्षा-दृष्टिकी; [9]शिकायत, [10]अभिलापारूपी शराब, [11]दिलके वर्तनमें, [12]प्रेमपाठ, [13]आलेपर।

शायरीसे भी चिमट गये। इस युगमें जो मशहूर शायर हुए हैं, उनका अत्यन्त संक्षिप्त परिचय और कलामका नमूना इस अध्यायमें दिया गया है।

ध्यान रहे यह उर्दू-शायरीका प्रारम्भिक युग है। वह कहाँ और कैसे पैदा हुई, उसने किस प्रकार आँखें खोली, कैसे घुटनियों चली, यही सब इस दौरमें देखनेकी चीज़ है। ज़बान किस तरह पैदा होती है, किस तरह बढ़ती है, प्रारम्भमें क्या-क्या खामियाँ रहती हैं, और फिर वह किस प्रकार सँवरकर अपने परायोंको आकर्षित करती है, यही भाषित करनेके लिये अत्यन्त संक्षेपमें इस युगके कवियोंका परिचय और उनकी शायरीके नमूने दिये हैं। इस युगकी शायरी बहुत हल्की और अविक-

---

तक सब ऐशो-आराममें मस्त थे। सभीकी आँखोंमें विलासिताका मद छाया हुआ था। दीन-दुनियाकी किसीको चिन्ता नहीं थी। इन्हीं दिनोंमें उचित अवसर जानकर नादिरशाहने (ई० स० १७३९में) हिन्दुस्तानपर आक्रमण कर दिया। लाहौरके शासकने इस आक्रमणकी सूचना मुहम्मद-शाहको भेजी, तब वहाँ शराबका दौर चल रहा था। शराब पीकर हर-एक बदमस्त था। सन्देश सुनकर एक दरबारीने हँसकर कहा—"अजी हुज़ूर! असल बात तो यह है कि लाहौरवालोंके मकान इतने ऊँचे हैं कि उन्हें बहुत दूरकी सूझती है। न कोई नादिरशाह है, न उसकी इतनी हिम्मत ही है कि वह हुज़ूर-जैसे शाहका सामना कर सके।" दूसरे बोले—"अमाँ, आता है तो आने भी दो, हम तो जनानेमें हो लेंगे।" तीसरे बोले—"हम भी तो देखें नादिरशाह कैसे लड़ता है, वह बहरेतवील गाऊँ कि वज्दमें न आजाय (बेहोश न हो जाय) तो मेरा ज़िम्मा!" इसी तरह सबने ही-ही-हू-हू करते हुए आक्रमणकी बातको टाल दिया और लाहौरके शासकका सन्देश-पत्र शराबमें घोलकर पी लिया गया। आखिर मुहम्मद-शाहको अपनी अकर्मण्यताके कारण नादिरशाहसे [illegible]। लालकिलेपर उसका अधिकार हो गया और दिल्लीमें कत्लेआम हुआ।

देहलवी शायर

वलीकी रेख़्ता-शायरीका दीवान दिल्ली पहुँचा तो वहाँ धूम मच गई। कहनेको दिल्ली मुस्लिम शासनकी राजधानी थी। भारतके ख्याति प्राप्त लोग यहाँ रहते थे। फारसीके अच्छे-अच्छे शायर यहाँ विद्यमान थे, परन्तु रेख़्ता-शायर कोई न था। विधिका विचित्र विधान देखिये कि जो दिल्ली उर्दूकी प्रामाणिकताके लिये सनद समझी जाती है, उस दिल्लीमे उर्दूका जन्म न होकर दक्षिणमे होता है, और वहाँसे यह बच्ची अमानतन लेकर यहाँ परवान चढाई जाती है और बडी आँफिशानीसे सँवारकर इस तरह नोक-पलक निकाले जाते हैं कि जो देखता है लहालोट हो जाता है।

गरज यह, कि वलीके रेख़्ता-कलामको देखकर अहले देहलीके दिलोमे भी रेख़्ता कहनेका ज़ौक-शौक हुआ और यहाँके फारसी शायर भी मुँहका ज़ायका बदलनेको फारसी शेर कहते-कहते दो-चार रेख़्ता शेर भी कहने लगे; परन्तु मुहम्मदशाह रँगीले (ई० स० १७१९)से पूर्व कोई खास रेख़्ता-शायर देहलीमे नही हुआ। मुहम्मदशाह रँगीलेकी रँगीली तबियतने जब रग पकडा तो इसके यहाँ गवैयो और शायरोके झुण्ड इकट्ठे होने लगे।[1]

कुदरतका करिश्मा देखिये कि इधर मुस्लिम सल्तनतका सितारा डूब रहा था और उधर शायरीका आफताब आसमानमे चढ रहा था। उर्दू-शायरीका प्रारम्भ ही सल्तनतके ज़वालसे हुआ है, इसलिये ज़वालके वक्त सल्तनतमे ऐय्याशी, काहिली बुज़दिली वगैरह जो ऐब' आगये थे, वे सब

---

[1] इस समय दिल्ली विलासिताके रगमे डूबी हुई थी। हुस्नोइश्ककी शायरीका बाज़ार गर्म था। शूर-वीर और विद्वानोके स्थानपर दरबारमे भाँड और मीरासी सुशोभित हो रहे थे। बादशाहसे लेकर रैयत

मगर जब 'वली'का दीवान हि० स० ११३२मे देहली आया और उनका कलाम हर तबकेमें मकबूल हुआ तो हातिमने 'नाजी' 'मज़मून' और 'आबरू'-के साथ उर्दूमे शेर कहना शुरू किया। फाइज़ अपना कुलियात (दीवान) जिसमे उर्दू दीवान भी शामिल है हि० स० ११२८मे पूर्ण कर चुके थे। इससे यह नतीजा निकलता है कि फाइज़का कुलियात सम्पूर्ण हो चुकनेके एक साल बाद हातिमने फारसीमे और पाँच साल बाद उर्दूमे शेर कहना शुरू किया।

गुलाम मुस्तफाखाँ 'यकरग' भी हातिमके हमअसरोमे शुमार किये जाते है, मगर मालूम होता है वे हातिमसे बहुत पहले उर्दूमे शेर कहने लगे थे। फाइज़ने अपनी एक गज़लके मक्ते (उपनामवाले शेर)मे यकरगका एक मिसरा तजमीन कर दिया है (यकरगके मिसरेपर गिरह लगाई है) इससे प्रकट होता है कि यकरगकी गज़ल पहलेसे मौजूद थी, और उसी गज़लपर फाइज़ने गजल कही है।

रिजवी साहबको फाइजकी २२ कृतियोका अभीतक खोज मिला है, जिनमे २० तो वे स्वय देख चुके है। फाइज़के फारसी दीवानमे सम्भवत. बीस हज़ार शेर थे, किन्तु वर्त्तमानमे चौदह हजारके करीब मिलते है। फारसीके इसी दीवानमे फाइजका उर्दू-कलाम भी शामिल है, परन्तु अनुमानसे मालूम होता है कि उनका उर्दू-दीवान फारसीसे अलग भी प्रकाशित हुआ था। 'तारीखे अदबीयाते हिन्दी और हिन्दोस्तानी' के लेखकने लिखा है कि फाइजका हिन्दोस्तानी-दीवान गज़लो, कसीदो और छह मसनवियोपर मुश्तमल है।

४

फ़ाइज़

न जाने कितने ऐसे गुमनाम शायर ससारके उदरगह्वरमें छिपे पडे हैं, जिनपर ऐतिहासिकोकी दृष्टि तक नही पडी। उनमें बहुतोके तो दीवान ही मुरत्तिब होनेकी नौबत न आई और किन्हीके दीवान मुरत्तिब या मुद्रित भी हुए तो जनतातक न पहुँचकर पुस्तकालयोमे रखे-रखे दीमकोके केवल क्रीडास्थल बने रहे।

'शेरोसुख़न' कम्पोज़ हो जानेके बाद एक ऐसे ही गुमनाम शायर 'फाइज़'-का पता हमे 'आजकल' उर्दू (अगस्त १९५०)में प्रकाशित जनाब मसऊदहसन साहब रिज़वीके खोजपूर्ण लेखसे विदित हुआ। उसी शोधखोजपूर्ण लेख़मे 'फाइज़'का सक्षिप्त परिचय और कलाम साभार दिया जा रहा है।

नवाब सदरुद्दीन मुहम्मदख़ाँ बहादुर 'फाइज़' दिल्लीके रईसोमेंसे एक थे, जो कि औरगज़ेब बादशाहके अन्तिम समयसे मुहम्मदशाहके शासनकालतक मौजूद थे। सम्भ्रान्त कुलमे उत्पन्न होनेके अतिरिक्त स्वय भी अच्छा व्यक्तित्व रखते थे। तत्कालीन शिक्षा-दीक्षामें पारगत थे और बाईस पुस्तकोके रचयिता थे। फारसी और उर्दू दोनो ज़बानोमे शायरी करते थे। 'फाइज़' उपनाम था। उत्तरी भारतके जिन उर्दू शायरोका हाल अबतक मालूम हुआ है, सम्भवत उनमे 'फाइज'से पुराना कोई नही है।

बाज़ लोग शाह 'हातिम'को दिल्लीका प्रथम शायर करार देते है, परन्तु उनकी यह धारणा ठीक नही है। हातिमकी शायरीकी शुरूआतका उल्लेख दो जगह मिलता है। एक 'दीवानज़ादह हातिम'के दीबाचेमे, दूसरे मुसहफीके 'तज़किरयेहिन्दी'में। इन दोनो बयानोपर गौर करने से मालूम होता है कि हातिम हि० स० ११२८से फारसीमें शेर कह रहे थे।

नहीं तुझ-सा और कोई ऐ मन-हरन !
तेरी बात दिलकूँ नियारी लगे ॥

भवाँ तेरी शमशीर-ओ-जुल्फाँ कमन्द ।
पलक तेरी जैसे कटारी लगे ॥

वही मर्द 'फ़ाइज़' जानें बहार ।
जिसे इश्क़ का ख़ास कारी लगे ॥

वली—

ख़ूबरू ख़ूब काम करते हैं ।
यक निगह में गुलाम करते हैं ॥

देख ख़ूबाँ को वक़्त मिलने के ।
जिन अदा सूँ सलाम करते हैं ॥

कमनिगाही से देखते हैं वले ।
काम अपना तमाम करते हैं ॥

दिल को लेते हैं ऐ 'वली' जिसका ।
उसके ऊपर निगाह करते हैं ॥

और उन्हीपर फाइज़ने गज़लें कही। यहाँ चन्द गज़लोंके कुछ तुलनात्मक अशआर दिये जा रहे हैं—

वली— ऐ शोख़ ! तुझ नयनमें देखा निगाह कर-कर।
आशिकके मारनेका अन्दाज़ है सरापा ॥

फ़ाइज़— तिर्छी निगाह करना, कतराके बात सुनना।
मजलिसमें आशिक़ोंकी अन्दाज़ हैं सरापा ॥

गमज़ह, निगह, तगाफुल, अँखियाँ सियाह चंचल।
यारब ! नज़र ना लागे अन्दाज़ हैं सरापा ॥

वली— जिसे इश्कका तीर कारी लगे।
उसे ज़िन्दगी जगमें भारी लगे ॥

न छोरे मुहब्बत दमेमर्गतक।
जिसे यारजानीसूं यारी लगे ॥

न होवे उसे जगमें हरगिज़ करार।
जिसे इश्क़की बेकरारी लगे ॥

हर इक वक्त मुझ आशिकेज़ारकूं।
पियारे तेरी बात प्यारी लगे ॥

'वली'कूं कहे तू अगर यक वचन।
रकीबोंके दिलमें कटारी लगे ॥

फ़ाइज़— तिरी गाली मुझ दिलकूं प्यारी लगे।
दुआ मेरी तुझ मनमें भारी लगे ॥

तिरी कद्र आशिककी बूझे सजन।
किसी साथ अगर तुझकूं यारी लगे ॥

भुला देवे वोह ऐशोआराम सब।
जिसे ज़ुल्फसें बेकरारी लगे ॥

ख़ाकसेती सजन उठाके किया।
इश्क़ तेरेने सरबुलन्द मुझे॥
सूरजका जलानेकूँ जिगर ज्यूँ दिले 'फाइज़'।
ऐ नार! तू क्यो धूपमें सर खोल खडी है॥

तुझ वदनपर जो लाल सारी है।
अक़्ल उसने मेरी बिसारी है॥
ओढनी ऊदीपर किनारी जर्द।
गिर्द शबके सूरजकी धारी है॥
कनकसूँ सफादार है वह बदन।
कँवल डालसे हाथ, गुलसे चरन॥
केलेके गाभेसे मुलायम दो हात।
देखके मुरझाते थे केलेके पात॥
रगसूँ है पैरहन सब गुलसे लाल।
नैन है रगों कँवलसे अज़ गुलाल॥
नैन दो कँवल और दो गुल है गाल।
कली चम्पेकी नाकको है मिसाल॥
तिरछी नज़रोंसे देखना हँस-हँस।
मोर-सी चाल तुझ न्यारी है॥
जूडा नहीं गेंद है कन्हैयाकी।
या सहसनागनी है दरियाकी॥
हरइक पनहारिन वाँ इक अपछरा थी
कुएँके गिर्द इन्दरकी सभा थी॥
दिलफरेबीकी अदा उसकी अनूप
रूपमें थी राधिकासूँ भी सरूप॥
२२ सितम्बर १९५०

ख़ुदाके वास्ते इनको न टोको ।
यही इक शहरमें क़ातिल रहा है ॥

लोग कहते हैं मरगया 'मज़हर' ।
फ़िलहक़ीक़तमें घर गया 'मज़हर' ॥

जो तूने की सो दुश्मन भी नहीं दुश्मनसे करता है ।
ग़लत था जानते थे तुमको जो हम महर्बां अपना ॥

—[illegible]

६

मज़हर

[१६६८–१७८१ ई०]

शमशुद्दीन जानजानाँ 'मजहर' मिर्ज़ा जानके बेटे थे, और मालवेमें पैदा हुए थे। देहली रहते थे। उर्दूके मशहूर शायर हुए हैं। शहरमें ताज़िये निकल रहे थे, इनके मुँहसे अनायास निकल गया—"बारह सौ बरस बाद इस कदर शोरोगुल और मातम करना और कागज़ और बाँसके ढाँचोंका इस कदर अहतराम करना खिलाफेअक़्ल है।" यह वाक्य ताज़ियेदारोंने सुन लिए और एक रोज दो मज़हबी दीवानोंने आकर इन्हें भी हसन-हुसेनके पास भेज दिया। मज़हर इस दौरके न सिर्फ बेहतरीन बल्कि प्रामाणिक शायरोंमें से थे।

चले अब गुलके हाथोंसे लुटाकर कारवाँ[1] अपना।
न छोड़ा हाय! बुलबुलने चमनमें कुछ निशाँ अपना॥

यह हसरत रह गई किस-किस मज़ेसे ज़िन्दगी करते।
अगर होता चमन अपना, गुल अपना, बागबाँ अपना॥

गरचे इलताफके[2] काबिल यह दिलेज़ार न था।
लेकिन इस जौरोजफाका[3] भी सज़ावार न था॥

---

[1]काफ़िला, मुसाफ़िरोंमें माल-असबाब, [2]कृपादृष्टिके, [3]अत्याचारोंका।

जिन्दगी दर्देसर हुई 'हातिम' !
कब मिलेगा मुझे पिया मेरा ?

सितमसे तेरे मैं जाता हूँ फिर न कहियो तू ।
कि आश्नाईका 'हातिम' निबाह भी न किया ॥

तुम कि बैठे हुए इक आफत हो ।
उठ खडे हो तो क्या क़यामत हो !

मुफलिसी और दिमाग ऐ 'हातिम' !
क्या कयामत करे जो दौलत हो ?

—इन्तख़ादियात भा० २, पृ०

७

शाह हातिम

[१६६६-१७६१ ई०]

ज़हूरुद्दीन 'हातिम' शेख़ फतहउद्दीनके बेटे थे और दिल्लीमें जन्मे थे। सिपाही पेशा थे। दो दीवान छोड़ गये हैं।

जबसे तेरी नज़र पड़ी है झलक।
तबसे लगती नहीं पलकसे पलक॥

हिज्रकी[1] जिन्दगीसे मौत भली।
कि जहाँ सब कहें विसाल[2] हुआ॥

—इन्तकादियात भाग २, पृ० ६४

यारका मुझको इस कदर डर है।
शेख़, ज़ालिम है और सितमगर है॥

आबेहयात[3] जाके किसूने पिया तो क्या?
मानिन्दे ख़िज्र जगमें अकेला जिया तो क्या?

सरको पटका है कभू, सीना कभू कूटा है।
हमने शब[4] हिज्रकी[5] दौलतसे मजा लूटा है॥

—आबेहयात, पृ० ११७

---

[1]विरहकी, [2]मिलन, (मृत्युसे आलिंगन),
[3]अमृत, [4]रातको
[5]विरहकी।

६

आबरू

[लगभग १८५० ई०]

शाह मुबारिक 'आबरू' अपना कलाम खान 'आरज़ू'को दिखाया करते थे। ये अपने ज़मानेमें रेख्ताके प्रामाणिक शायर समझे जाते थे। इस युगमें तजनीसको दिलचस्प और शब्दकी तरक्क़ी तुकमें समझते थे। रदीफकी कुछ ज़रूरत ही न थी। मुहावरोंको शेरमें लानेकी बड़ी कोशिश करते थे। उनकी मिर्ज़ा जानजानाँ 'मज़हर'से खूब चशमकें रहती थी।

पलगको छोड़ ख़ाली गोदमें उठ गये सजन मीता।
चित्रकारी लगी खाने हमनको घर हुआ चीता॥

लगा दिल यारसें उसको क्या काम 'आबरू' हमसे।
कि ज़ख़्मी इश्कका फिर माँगकर पानी नहीं पीता॥

नैनसे नैन जब मिलाय गया।
दिलके अन्दर मेरे समाय गया॥

मत क़हर सेती हाथमें ले दिल हमारेको।
जलता है क्यूँ पकड़ता है ज़ालिम अंगारेको॥

—आबेहयातसे

७

शाह हातिम

[१६९९–१७९१ ई०]

ज़हूरुद्दीन 'हातिम' शेख़ फतहउद्दीनके बेटे थे और दिल्लीमे जन्मे थे। सिपाही पेशा थे। दो दीवान छोड गये है।

जबसे तेरी नज़र पड़ी है झलक।
तबसे लगती नहीं पलकसे पलक॥

हिज्रकी[1] जिन्दगीसे मौत भली।
कि जहां सब कहें विसाल[2] हुआ॥

—इन्तकादियात भाग २, पृ० ९४

यारका मुझको इस कदर डर है।
शेख़, ज़ालिम है और सितमगर है॥

आवेहयात[3] जाके किसूने पिया तो क्या?
मानिन्दे ख़िज्र जगमें अकेला जिया तो क्या?

सरको पटका है कभू, सीना कभू कूटा है।
हमने शब[4] हिज्रकी[5] दौलतसे मज़ा लूटा है॥

—आवेहयात, पृ० ११७

---

[1]विरहकी, [2]मिलन, (मृत्युसे आलिंगन),
[3]अमृत, [4]रातको
[5]विरहकी।

नाजी

सैयद मुहम्मदशाकिर 'नाजी' [illegible] इन्तकाल कर गये। इनका दीवान मौजूद है। तेज मिजाज और शोख थे। राहचलतोंसे झगड़ा मोल ले लिया करते थे। हजव ज्यादा कहते थे।

जिसने देखे तेरे लबेशीरों[1]।
नज़र उनकी नहीं शकरकी तरफ ॥

छोड़ते कब हैं नक्दे दिलको सनम।
जब ये करते हैं प्यारकी बातें ॥

न टोको यारको कि खत[2] रखाता या मुंडाता है।
मेरे नशेकी खातिर लुत्फसे सब्जी बनाता है ॥

—आबेहयात, पृष्ठ १०४

न सैरेबाग, न मिलना, न मीठी बातें हैं।
यह दिन बहारके ऐ जान! मुफ्त जाते हैं ॥

आज तो 'नाजी' सजनसे करले अपना अर्ज़े हाल।
मरने जीनेका न कर बिसवास होना, हो सो हो ॥

—इन्तकादियात भा० २, पृ० ९२

---

[1]मधुर ओठ।

[2]नाजीका माशूक भी लडका है। वह कभी खत (मुंहके बाल) रखता है कभी मुंडाता है।

८

मज़मून

[लगभग १७४५ ई०]

शेख शरफुद्दीन 'मजमून' अकबराबादके रहनेवाले और सिपाही पेशा थे। एक दीवान छोड गये है। खान 'आरजू'के शिष्य थे। सौदाने इनका ज़माना देखा था।

खत[1] आगया है उसके, मिरी है सफेद रीश।
करता हूँ अब तलक भी वोह मिलनेमें शाम-सुबह॥

हँसी तेरी पियारे फुलझड़ी है।
यही गुचेके दिलमें गुल झड़ी है॥

—आबेहयात, पृ० १०३

मेरा पैग़ामेवस्ल ऐ क़ासिद!
कहियो सबसे उसे जुदा करके॥

चला कश्तीमें आगेसे जो वह महबूब जाता है।
कभी आँखें भर आती है कभी दिल डूब जाता है॥

—इन्तक़ादियात भा० २, पृ० ६४

---

[1]यह शेर अमरदपरस्ती (लौंडेबाजी)से सम्बन्धित है। यानी 'मजमून'के माशूकके मुंहपर बाल (खत) आ गये है और खुदके सफेद दाढी है। मगर इश्कका चलचला मौजूद है। रस्सी जल चुकी है, मगर बल बाकी है।

१३

फ़ुग़ाँ

अल्लामा नियाज़ फ़तहपुरी इस युगके ग़ज़लगो शायरोंमें अशरफ़-अलीख़ाँ 'फ़ुग़ाँ'को तरजीह देते हैं। ये अहमदशाह बादशाहके दूध-भाई (बादशाहको दूध पिलानेवाली धायके लड़के) और 'नदीम'के शिष्य थे। लतीफ़ेगो भी थे। इनके यहाँ व्यथा-वेदनाका अंश पाया जाता है, जो उस युगके अन्य शायरोंमें नहीं था।

ख़त दीजियो छिपाके मिले वह अगर कहीं।
लेना न मेरे नामको ऐ नामावर कहीं॥

बावर[1] तुझे अगर नहीं आता तो देख ले।
आँसू ढलक गये कहीं, लख़्ते जिगर कहीं॥

ईज़ा,[2] 'फ़ुग़ाँ'के हक़में यहाँतक रवा[3] नहीं।
ज़ालिम! यह क्या सितम है? ख़ुदासे भी डर नहीं॥

क्या हाल पूछते हो 'फ़ुग़ाँ'का, सुना नहीं?
ख़ानाख़राब इश्क़ने दुनियासे खो दिया॥

मुझसे जो पूछिये तो बहरहाल शुक्र है।
यूँ भी गुज़र गई मिरी यूँ भी गुज़र गई॥

—इन्त० भा० २, पृ० ९५

---

[1] विश्वास, [2] तकलीफ़,
[3] जायज़।

निकले तुम आ सबाकी[1] तरह जब चमनसे भूल।
गुलशनके देख तुमको गये हाथ-पाँव फूल॥

क्या हुआ मर गया अगर फरहाद।
रूह पत्थरसे सर पटकती है॥

कौल 'आबरू'का था न जाऊँगा उस गली।
होकरके बेक़रार देखो आज फिर गया॥

—इन्तक़ादियात भा० २, पृ० ९२

---

[1] मृदु पवनकी।

मध्यवर्ती युग

[दौरेमुतवस्सितीन]

थमते-थमते थमेंगे आँसू ।
रोना है कुछ हँसी नही है ।।

—मीर

पूर्वार्द्ध

उर्दूके रुहेरवाँ (प्राणप्रतिष्ठापक) शायर

शाहआलम बादशाह शासनकालीन १७५०-१८०० ई० दिल्ली,
नवाब आसफुद्दौला शासनकालीन १७७५-१७९७ ई० लखनऊ

उत्तरार्द्ध

मसख़रे और जिन्दादिल शायर

नवाब सआदतअलीख़ाँ शासनकालीन १७९७-१८१४ ई० लखनऊ

११

यकरंग

मुस्तफाखाँ 'यकरग' मिर्ज़ा मज़हर जानजानाँके शिष्य थे।

न कहो यह कि यार जाता है।
मेरा सब्रोकरार जाता है॥

सुनता ही नहीं है बात किसीकी तू ऐ सजन!
तुझको तेरा ग़रूर न जानूं करेगा क्या?

इन्त० भा० २, पृ० ९३

पारसाई और जवानी क्योंके[1] हो।
एक जागा[2] आग पानी क्योंके हो॥

जुदाईसे तेरी ऐ सन्दली रंग।
मुझे यह ज़िन्दगानी दर्देसर है।

—आबेहयात, पृ० १०७

१२

अहसन

मुहम्मद अहसन भी इसी युगमे हुए है—

तरस तुझको नहीं ऐ शोख़! इतनी क्या है तरसाई।
तेरे दीदारको मैं दीदयेतरसूँ[3] खड़ा तरसूँ॥

—आबेहयात, पृ० १०४

---

[1]क्योंकर, [2]स्थानपर; [3]अश्रुपूर्ण नेत्र लिए।

मध्यवर्तीयुग पर सिंहावलोकन

यह मध्यवर्त्तीयुग मुगल-शासनका राहु-युग और उर्दू-शायरीका सुवर्ण-युग है। इसी युगमें एक ही समय और एक ही स्थान (किले मुअल्ला) में मुगल सल्तनत एडियाँ रगड-रगडकर दम तोडनेपर मजबूर हो रही है और उरूसे-शायरी (कविता रूपी दुलहिन) सखी-सहेलियोकी छेड-छाडका लक्ष्य बनी हुई है, और तारीफ ये है कि जो 'नमाजे जनाज़ा' पढने आये है, वही दुल्हिनका डोला सजा रहे है। या यूँ कहिये कि जो प्राणप्रतिष्ठापक उर्दू-शायरीमे जान डाल रहे है, वही मुगल सल्तनतकी उस हालतेनजअ (मृत्य समयकी अवस्था) पर आँसू बहा रहे है। एक ही घरसे सीना पीटने और शादियानोकी सदाएँ आ रही है।

यह युग मुगलशासनके अस्तका होते हुए भी उर्दू-शायरीकी उन्नतिका सबसे बडा युग है। इसी युगके पूर्वार्द्धमे मीर, दर्द, सौदा और सोज़——जैसे रूहेरवाँ (उर्दू-शायरीमे जान डालनेवाले) शायरेआजम हुए है। ये लोग अपनी शायरीकी वह मिसाल पेश कर गये है कि अर्वाचीन युगके अमर कलाकार ज़ौक, गालिब, मोमिन, नासिख और आतिश-जैसे उस्तादोने भी इनका लोहा माना है और इनकी काव्य-प्रतिभाकी मुक्त-कण्ठसे प्रशसा की है।

जो उर्दू-शायरी अभी घुटनियो चल रही थी और तुतलाकर बोलती थी, इन उस्तादोने धीरे-धीरे कुछ ऐसी कयामतकी चाल सिखलाई और ज़बानमे कुछ ऐसी मिसरी घोली कि देखने-सुननेवाले कलेजा थामकर रह गये। जो अभी देशी पोशाक पहने हुए थी, उसे फारस-ओ-ईरानके नई वजह-क़तअके लिबास और जेवरातसे इस तरह आरास्ता किया कि

क्या तू शबेफिराक़में[1] जीता रहा 'फुगा' !
याँ तक गुमा[2] न था तेरे सब्रोक़रारका ॥

दिलबस्तगी[3] क़फसमें[4] यहाँतक मुझे हुई ।
गोया मेरा चमनमें कभी आशियाँ[5] न था ॥

—इन्त० भा० २, पृ० १७८

२६ जून १९४९ ई०

[1] विरहरात्रिमें, [2] यक़ीन, [3] तबियत लगी, [4] कारागृहमें, [5] घोंसला ।

हमने उक्त सभी शायरोंके चुने हुए शेर देनेका प्रयत्न किया है। इससे यह नहीं समझ लेना चाहिए कि सम्पूर्ण दीवान उनके ऐसे ही जवाहरपारोंसे भरे हुए होंगे। नहीं, उनमें बहुत हल्के शेर भी है और उनमे भावोंकी पुनरावृत्ति भी।[1]

इस युगके उत्तरार्द्धमे मुसहफी, इंशा और जुरअत—जैसे रंगीन और जिन्दादिल शायर हुए है, क्योंकि यह लोग मीर, दर्दके बुढापेमे जवां थे इसलिये इनकी हर चीज जवां है। इनकी शायरीमे शोखी और चुलबुलापन है। इनकी जबान रसीली और चाल कयामतखेज है। मीरो-दर्द बुजुर्ग थे, वे फिर भी पुरानी वजह-कतअके लोग थे। ये जवां ठहरे और पुरानी बातोंसे बगावत करना जवानोंका खमीर ठहरा। इस-लिये इन्होंने हर पुरानी बात तर्क कर दी। पुरानी जबान नये साँचेमे ढाल दी। बहुत-से हिन्दी-शब्द अव्यवहृत कर दिये। और तो और,

---

एक नई शान पैदा की, और उसे एक जुदागाना मसलक (नवीन मार्ग) बनाकर पेश किया। बगैर इनको पढे हमारा उर्दू-गजलका मुतालआ (अध्ययन) नामुकम्मिल रह जाता है। इनकी सबसे बड़ी खसूसियत ये है कि ये लोग इश्के हकीकी (ईश्वरीय-प्रेम) और इश्के मजाजी (कामुक-प्रेम) मे तफरीक (अलहदगी) महसूस नही होने देते। इनके यहाँ इश्क, इश्क है।"

तनकीदी हाशिये, पृ० ९३-९४

[1]"इस दौरके शायरोंके कलाममें पस्तखयालातके साथ बुलन्द खयालात और सखीफ (बेहूदे, छिछोरे, तग) अल्फाजके साथ शानदार और फसीह अल्फाज मिले-जुले हैं। इनकी गजलोमे शुतुरगुर्बगी (शुतुर मुर्गकी एक टाँग नीची एक ऊँचीकी तरह) बुलन्दी और पस्ती पुराने तजकरे नवीसोको दिखाई दी है।"

तारीखे अदबे उर्दू, पृ० ११६

मध्यवर्त्तीयुगपर सिंहावलोकन

पूर्वार्द्धयुगके शायर

१४	सौदा	२३	ज़िया
१५	मीर	२४	हसन
१६	सोज़	२५	वयान
१७	दर्द	२६	अफ़सोस
१८	क़ायम चान्दपुरी	२७	लुत्फ़
१९	असर	२८	हसरत
२०	तावा	२९	हिदायत
२१	यक़ीन	३०	फ़िराक़
२२	वेदार	३१	हज़ीं

उत्तरार्द्धयुगके शायर

३२	मुसहफ़ी	३६	हविस
३३	इंशा	३७	शहीदी
३४	जुरअत	३८	रंगीन
३५	रासिख़		

पहलीकी लखनऊने तो लोगोंका मन हटाया, परन्तु शुद्ध और स्वाभाविक प्रेमका मार्ग न बताकर बाज़ारू शायरीके कूएँमे धकेल दिया—खाईसे निकालकर कुएँमे डाल दिया।'

शायरीने महबूबकी निस्वानी हैसियतको मुनअय्यन नही किया था (अर्थात् स्त्रीको प्रेयसी न समझकर छोकरोंको माशूक, हबीब अथवा प्रेम-पात्र समझा जाता था) जिस तरफ़ देखिये वही सब्ज़ये ख़त (मुंहका नवीन रुआँ) नज़र आता था।"

इन्तक़ादियात भा० २ पृ० १८८

''इस वक्त लखनवी मुआशरत (रहन-सहन, वातावरण)मे शाहिदाने बाजारी (सुन्दरी वेश्याओ)के साथ ताल्लुकात पैदा करना आम बात थी। इसलिये कंघी, चोटीका भी जिक्र शुरू हुआ। चोली और महरम (औरतोके सीनेबन्द)का भी बयान होने लगा। जो ब-लिहाज़ेफितरती मीलान काबिलेकद्र था। लेकिन इस सिलसिलेमे उरयानियाँ (नग्नता) इतनी बढ गई कि आखिरकार देहलवी रगेतगज्जुलकी लताफत बिल्कुल परसेपुश्त डाल दी गई, और जज्बात (भावो)का रुख़ हद दर्जा पस्तीकी तरफ माइल हो गया। 'हसरत'की ऐसी शायरीके नमूनेका एक कितआ मुलाहिज़ा हो—

चोली मसकी, बन्द हैं टूटे, सरके बाल परीशाँ हैं।
इस बिगडे आलमपै तेरे लाख बनावट कुर्बाँ हैं॥

कपडे बदनके मले-दले हैं, बल्कि बदन सब मला-दला।
शबके बासे फूलोका आलम किससे कहें हम, हैराँ हैं॥

मुंह उतरा है, गाल है नीला, पलकें झुकीं, आँखोमें ख़ुमार।
नामेख़ुदा बिगड़े आलमपर जमा अदाएँ पिनहाँ हैं॥

वह हिन्दवीके बजाय तुर्की हूर[१] मालूम होने लगी। कुछ लोगोंने इसकी सज-धज और निखारपर माथा पीट लिया, मगर ज्यादातर इसके जोबनके उभार, कयामतकी चाल, शोख़ीभरी हँसी, बाँकी चितवन और अल्हड जवानीपर शैदाई होकर इसके कूचेमें दीवानावार चक्कर काटने लगे।

इन उस्तादोंकी करिश्मासाजियोंकी बदौलत उर्दू-शायरी नये-नये लिबास और ज़ेवरातसे आरास्ता होकर अजीब-अजीब अन्दाज़से पहलू बदलने लगी[२]। दिन-दूना, रात-चौगुना शबाब बढ़ने लगा, निखार आने लगा।

इसी दौरमें मीर, दर्द, सौदा और सोज़—जैसे सिद्धहस्त उस्तादोंके अतिरिक्त नौजवाँ शायरोंमें कायम, असर, हसन, यकीन, ताबा बयाँ, मीर ज़िया और बेदार प्रथम श्रेणीके शायर हुए हैं।[३]

---

[१]यानी मीर, दर्दने अपने कलामसे हिन्दी शब्द निकालने शुरू किये, तथा इस युगके शायरोंने सईदी, हाफिज़, नासिरअली, जलाल, असीर, बेदिल, और तालिब वगैरह फारसी शायरोंका अनुसरण करते हुए उनके रंगमें कहना शुरू किया। फारसीसे नई बहरें, उपमाओं, उदाहरणों, और अलकारोंको भी माँग लिया। बहुतसे शब्द बहिष्कृत कर दिये। मतलब ये है कि इस दौरमें उर्दू-शायरीपर फारसियतका पूरा गलबा हो गया और वह बिल्कुल ईरान-ओ-तुर्कके कालिबमें ढल गई।

तारीख़े अदबे उर्दू, पृ० ११४

[२]अर्थात् मीरने—वासोख़्त (वह नज़्म जिसमें माशूकके जौरोजफा और आशिकके रंजोमलाल, नफरतोबेज़ारीका इज़हार हो), मुसल्लस, मुखम्मस (तीनपदी, चौपदी कविता) और सौदाने कसीदा और हिजो ईजाद की।

[३]"जिस तरह मीरने गमेहस्तीकी टीसोंको राहतआफरीन बनाया, दर्दने गमेइश्क़को एक नया जलाल बख़्शा, उसी तरह इन लोगोंने इश्क़में

रानीमें परिवर्तित हो गई। जो जितना अधिक चापलूस¹ जालिया, साजिशी,

---

¹इशाकी चापलूसीका यह आलम था कि वह पैसेकी खातिर मँगतोंसे भी ज्यादा गिर जाता था। एक नमूना देखिये—

'दिल्लीमें अगर्चे बादशाह उस वक्त फकत बादशाहेशतरज थे।' मगर इशा अपना मतलब हजार तरहसे निकाल लिया करते थे। मसलन जुमेरातका दिन होता तो बातें करते-करते दफअतन खामोश होते और कहते कि—"पीरोमुरशद! गुलामको इजाजत है?"

बादशाह कहते—"खैर बाशद, कहाँ?"

इशा—"हुजूर! आज जुमेरात है गुलाम नबीकरीम जाये। शाहे-दीनोदुनियाका दरबार है कुछ अर्ज करे।"

बादशाह—"भई, हमारे लिये भी कुछ अर्ज करना।"

इशा—"हुजूर! गुलामकी और आरजू कौन-सी है? यही दीनकी आरजू, यही दुनियाकी मुराद।"

यह कहकर फिर खामोश होते। बादशाह कुछ और बात करने लगते। एक लमहेके बाद फिर यह कहते कि—"पीरोमुरशद! फिर गुलामको इजाजत हो।" बादशाह कहते कि, "है, भई इशा! अभी तुम गये नही?"

इशा कहते—"हुजूर! बादशाहेआलीजाहके दरबारमे गुलाम खाली हाथ क्योंकर जाय? कुछ नज़रोनियाज़ (पूजा-भेंट), कुछ चिरागी (दिया-बत्ती)को तो मरहमत हो।" बादशाह कहते—"हाँ भाई' दुरुस्त-दुरुस्त, मुझे तो खयाल ही नही रहा।" जेबमे हाथ डालते और कुछ रुपये निकालकर देते। मीर इशा लेते और एक-दो फिकरे दुआके कहकर फिर कहते—"हुजूर! दूसरी जेबमे दस्तेमुबारिक जाय तो फिदवीका काम चले, क्योकि वहाँसे फिरकर भी तो आना है।" बादशाह कहते कि

देहलीकी दाख़िली[1] शायरीको तलाक देकर लखनऊकी ख़ारजी शायरी को घरमे डाल लिया। तात्पर्य्य यह, कि जो चाहा और जैसे भी चाहा इन उत्तरवर्ती शायरोने लिखा। पुरानी पाबन्दियाँ सब हटाकर फेंक दी।

यह वह युग था जब देहली बरबाद हो रही थी। मुगलिया सल्तनत का चिराग टिमटिमा रहा था और अवधका नवाब स्वतन्त्र हो गया था। भूखे मरते क्या न करते? सभी नामवर शायर आजीविकाकी तलाशमे दिल्ली छोडकर लखनऊ चले आये थे। नवाबको नई-नई स्वतन्त्रता मिली थी। फ़ैज़ाबादसे हटकर अवधकी राजधानी लखनऊ बन चुकी थी। नवाबको नई सल्तनत और स्वतन्त्र अधिकारोका नशा था। धन-वैभव उसके आँगनमे किलकारियाँ मारते थे। विलासिता उसके पाँवोमें लोटती थी। शेरो-सुखनका शौक था। अत एक-एक करके 'दर्द'को छोडकर 'मीर'से लेकर प्राय अधिकतर शायरोने लखनऊको अपना रगस्थली बना लिया। पूर्वार्द्ध युगके शायर तो लखनऊ पहुँचनेपर भी देहलीके दाख़िली रगमें ही सराबोर रहे, परन्तु इस भोग-विलासकी चमक-दमकमे उत्तरार्द्धके शायर चौंधिया गये और इन्होने लखनऊका ख़ारजी रग धीरे-धीरे अपना लिया।

इस ख़ारजी रगके प्रथम आविष्कारक 'हसरत'[2] थे। इन्होने अमरद-

---

[1]दाख़िली और ख़ारिजी शायरी क्या है? देहलवी और लखनवी शायरीमें क्या अन्तर है? यह सब अगले अध्यायमें विस्तारसे मिलेगा।

[2]"जाफ़रअलीख़ाँ 'हसरत'ने सबसे पहले लखनऊका एक अलहदा रग कायम करके अमरदपरस्ती (छोकरेबाज़ी)की तरफसे शायरोंकी तवज्जहको हटाया। 'जुरअत' जिनकी बेबाक उरयानियाँ (नग्न कविताएं) मशहूर है हसरतके ही शागिर्द थे। इस वक्ततक दिल्लीकी

अश्लील कलाम भी कहने लगे। गरज पेटके लिये आत्मा तो वेच ही दी थी, जाहिरा इज्जत-आवरू भी वेच दी।

जब शायरोकी यह हालत हो गई तो उनके कलाममे अमरत्व कहासे और कैसे आता ? परिणाम इसका यह हुआ कि—

१—गजलसे मतानत, पुख्तगी, सजीदगी, पाकीजगी, जाती रही। भाव और विचार उच्चकोटिके न रहकर निम्न श्रेणीके रह गये, और भविष्यकी उन्नतिमे एक वडी खाई वन गई।

२—शेरकी आत्मा नष्ट कर दी गई और उसके निर्जीव शरीरको अधिक-से-अधिक सजाया गया।

३—माशूक अवसे खुल्लम-खुल्ला वेश्या या छिनाल औरत समझी जाने लगी।

४—कामुकताका प्रचार वेधडक और वेझिझक किया जाने लगा, क्योकि तत्कालीन नवाव और रईस ऐसे ही इश्क और कलामको पसन्द करते थे और ऐसे ही शायरोको पुरस्कृत करते थे।

५—शायरीसे रूहानियत और तसव्वुफका रग कतई जाता रहा।

इस उत्तरार्द्ध युगमे मुसहफी जरूर ऐसे शायर हुए है, जिनपर उर्दू शायरी नाज करती है। ये देहलवी और लखनवी शायरीके दोराहेपर खडे है। इनकी अन्तरात्मा देहलवी दाखिली रगमे गजल कहलवाती थी, परन्तु लखनऊ आनेके वाद इशा-जुरअत जैसे जवॉदराजोसे पाला पडनेके वाद अपनी आजीविका वनाये रखनेके लिये लखनवी रगमे भी रोते-पीटते कहनेको वाध्य होते थे। नवावके यहाँसे इतना अल्प वेतन मिलता था कि ये अपनी गजले वेचा करते थे। उस वक्त लोगोके पतनका यह हाल था कि शायरीसे कोसो दूर है, परन्तु दूसरोसे गजले लिखवाकर अपने उपनामके साथ मुशायरेमे पढते थे और नकली शायर वनकर अपने शौकको यूं पूरा करते थे। ऐसे ही नकली शायरोके हाथ मुसहफी अपनी गजलें वेचा करते थे। मुशायरेके मिसरा तरहपर सैकड़ो शेर लिखकर

शायर अब शायर न रहकर भाँड[1] बन गये। जब शाही और नवाबी नजरे-इनायतको लोगोने प्रतिष्ठा और गौरवके बढानेमे सहायक समझ लिया तो उसे हासिल करनेकी हर शायर कोशिश करने लगा। यही होड धीरे-धीरे चापलूसी, खुशामद, मकरोफरेब, झूठ और लनत-

---

[1]क—एक बार अवधके रेज़िडेण्ट 'जानबेली' दरबारमें आये तो इशा नवाबके पीछे खडे होकर रूमाल हिला रहे थे। बातें करते-करते साहबने इनकी तरफ देखा तो इन्होने मुँह बिगाड लिया। साहबने आँखे नीची कर ली। फिर देखा तो अजीब मुँह बना लिया। शरमाकर साहब दूसरी तरफ देखने लगा। गरज़ जब भी देखा भाँडपनेकी नकलो-हरकत करते थे। साहबको जब मालूम हुआ कि ये इशा है तो वह इनके इस मसखरेपन पर खूब हँसा।

—आबेहयात, पृ० २९०

ख—एक बार गोमतीके घाटपर पण्डित बनकर जा बैठे, और स्नानार्थियोके तिलक लगाकर पैसे वसूल करते रहे।

ग—एक दिन नवाबने रोज़ा रक्खा तो दरबानको आदेश दे दिया कि आज कोई भी अन्दर न आये। इशाको ज़रूरी काम था। इन्होने जब दरबानसे नवाबका आदेश सुना तो जनाने कपडे पहनकर अन्दर घुस गये और नाकपर उँगली रखकर बोले—

मैं तेरे सदके न रख मेरी पियारी रोज़ा।
बन्दी रखलेगी तेरे बदले हज़ारी रोज़ा॥

इशाकी इस हरकतने नवाबको हँसी आ गई और ये अपना काम बनाकर बाहर आगये।

—आबेहयात, पृ० २८९

इन बातोकी परवाह नही होती। इसीलिये आशिक अपने माशूककी प्राप्तिके लिये सभी सम्भव-असम्भव उपाय काममे लाते है।

ध्रुव और प्रह्लादने अपने माशूक ईश्वरका जलवा देखनेके लिये घोर तप किया और अनेक कष्ट सहे। मीरा अपने मोहनको रिझाने मेवाड़से नगे पाँव मथुरा-वृन्दावन पहुँची। पार्वतीने महादेवकी कामनामें घोर तपश्चर्य्या की। जुलेखा जैसी मलिका अपने ही जरखरीद गुलाम-यूसुफको रिझानेमें दर-दरकी भिखारिन बन गई। शकुन्तला मानापमान-की चिन्ता किये बिना ही दुष्यन्तकी खोजमे कहाँ-से-कहाँ जा पहुँची। मजनूंने लैलीके लिये जगलोकी जीवन भर खाक छानी। फरहादने शीरी-के लिये पहाड़ काटते-काटते प्राण दे दिये। सोहनी-महिवाल, हीर-राझा की प्रेम-गाथाएँ प्रसिद्ध है। और न जाने कितने असख्य आशिकोने अपने माशूकोकी प्राप्तिके लिये कष्ट सहे है, प्राण न्योछावर किये है, और भविष्यमें न जाने कितने करते रहेंगे।

स्त्री मन, वचन, कायसे अपने पति-प्रेममे लीन रहती है। उसकी कृपा-प्राप्तिके लिये हर सम्भव उपाय करती है। उसे ईश्वर समझकर पूजती है। पतिके अतिरिक्त पर-पुरुषकी स्वप्नमें भी कामना नही करती। पति-दर्शनकी अभिलाषा दिन-रात बनी रहती है। पति-वियोग असह्य हो उठता है। उसके विरहमें तारे गिन-गिनकर रातें काटती है। तिनके चुन-चुनकर दिन गुज़ारती है।

और पुरुष ? यदि वह सयमी और शीलवान है और उसे मन-पसन्द स्त्री मिली है, तब तो वह भी अपनी स्त्रीके प्यारको आदर देता है, अन्यथा अपनी स्त्रीकी उपेक्षा करना, उसे विरह ज्वालामे जलाना, परकीयासे प्रेम करके उसे सन्ताप देना, बाधा डालनेपर अत्याचार करना, पुरुषका अदना-सा काम है।

स्त्रियाँ स्वभावत लजालु, शीला, कोमल होती है, उनका हृदय पति-प्रेमसे ओत-प्रोत होता है, और पुरुषोमे ये गुण उतनी अधिकता लिये हुए

चुगलखोर,[1] ज़बाँदराज़, और भाँड होता, उतना ही नज़रे इनायत पानेका हकदार होता। इस आपाधापीके कारण एक दूसरेपर गन्द भी उछाली जाने लगी और वह यहाँतक बढी कि होलीके भडुवे भी मात खा गये।

इशा और मुसहफीकी छेडछाड इस दौरकी शायरीपर बदनुमा धब्बा है। यह छेड-छाड दरबारतक ही सीमित रहती तो भी ग़नीमत थी। नवाबोको साँडो, बटेरो, तीतरो और मुर्गोंकी लडाइयाँ देखनेका तो शौक था ही। अगर जानवरोकी तरह हज़रते इन्सान और वह भी किबलओकाबा शायर लडने लगें तो कहना ही क्या? फिर तो इस शौकमे चार चाँद लग गये। दरबारोमे चोच लडाते-लडाते बाज़ारोमे निकल पडे। शायर-शायर तो आपसमे लडे ही। जुरअत भाँडसे भी उलझ गये।

चूरन, चना ज़ोर गरम बेचनेवाले, ख़यालिये, लावनिये, तुर्रे,-कलगी-बाज़ और झूलनेबाज़, तो एक दूसरेके बोलका जवाब देकर निहायत सजीदगीके साथ चुप हो जाते थे, परन्तु हमारे इन शायरे-आज़मोको इतनेसे सन्तोष कहाँ? हर शायर, हर नीच-से-नीच उपायसे अपने अन्न-दाता नवाबको प्रसन्न रखना चाहता था। अत ये शायर जनाने वेष भी धारण करने लगे। परस्पर कमीने वार भी करने लगे। अश्लील-मे-

---

"हाँ भई सच है, सच है। भला वहाँसे दो-दो खजूरे तो लाकर किसीको दो। बालबच्चे क्या जानेगे कि आज तुम कहाँ गये थे।"

आबेहयात, पृ० २६४

[1]अपने प्रतिद्वद्वियोको नीचा दिखानेके लिये इशाने बादशाहसे कह दिया कि अमुक लोग आपकी गज़लका मज़ाक उडाते हैं। इससे प्रति-द्वन्द्वियोको बडा सदमा पहुँचा।

—आबेहयात, पृ० २२४

बनी रहती है। यहांतक कि महशरमें जब अल्लाहमियाँ सबके पुण्य पापका न्याय करेंगे, तब भी माशूक सामने हो। यही मनोकामना उर्दूके आशिककी बनी रहती है।

स्त्रियां जो स्वभावत संकोची, लज्जावती, सुशील, दयालु, ममतामयी, और स्नेहशील होती हैं, उनको माशूककी कल्पना करके पुरुषोचित दुर्गुणोंसे लादना, उर्दू-शायरोंको भी खटकता था, परन्तु संशोधनका कोई उपाय नही था। उर्दू-शायरीका निर्माण-ही इस प्रकार हुआ है कि उसमेंसे यह दोष निकाला नही जा सकता।

कुछ नासमझ और मनचले लोगोंने हिन्दीकी इस विशेषताका अनुकरण करना चाहा भी तो वे सफल न हुए। उल्टा मुँहके बल औंधे गिर पडे, और उनका यह दुस्साहस उर्दू-शायरीका कलंक बनकर रह गया। उन्होंने स्त्रीको आशिक तो बना दिया परन्तु वे स्त्रियोचित लज्जा, शील, उसमें स्थापित न कर सके और माशूकके ज्यों-के-त्यों अवगुण उसमें रहने दिये। परिणाम इसका यह हुआ कि आधा तीतर आधा बटेर, न औरत न मर्द। ज़नानो, हीजड़ोंकी शायरी बन गई, जिससे भले आदमी कोसों दूर भागते हैं। यही जनानी शायरी 'रेख़्ती' कहलाती है।

रेख़्तीके आविष्कारक तो 'रंगीन' समझे गये हैं, परन्तु इनके गहरे मित्र 'इंशा' भी कभी-कभी रेख़्ती कहते थे। सबसे बडे रेख़्तीगो मीर-यारअलीख़ाँ 'जान' साहब समझे जाते हैं।

हजल

इसी दौरमें हज़ल भी ईजाद हुई। इसके अश्लील रूपकी ओर हम पहले संकेत कर चुके हैं, इसका उल्लेखतक करनेकी हम अपनेमें क्षमता नही पाते।

अब हम ऐसे शब्दोंकी तालिका दे रहे हैं जो इस युगमें व्यवहृत होते थे और वे उत्तरोत्तर शायरों द्वारा अव्यवहृत होते गये।

रख लेते थे और ये बोगस शायर अपने मनपसन्दके शेर खरीद ले जाते थे। जो बचते थे, उन्हें मुसहफी मुशायरेमे पढ दिया करते थे। बाज़ दफा तो इनके पास ऐसे फुसफुसे शेर रह जाते थे कि दाद भी न मिलती थी, और ये गज़ल फाडकर फेक देते थे।

ऐसे ही बचे-खुचे शेरोसे मुसहफीके आठ दीवान भरे हुए है, और इस कूडेकरकटमे भी वह अनमोल हीरे-मोती छिपे रह गये है कि मुसहफीके समकालीन शायरोके यहाँ उनका शानो-गुमान भी नही। काश! यह दिल्ली ही रहे होते और लखनऊ न जाते। लखनऊ जाने और इशा जुर-अतके झमेलोमें फँसनेसे मुसहफी बहक गये, और इससे उर्दू-शायरीकी बडी हानि हुई। मुसहफी-जैसे-शायरसे ऐसे अशआर निकलना उसकी नैतिक मृत्यु है—

> नै उन्सके ख़्वाहाँ है, नै प्यारके भूखे है।
> हम लोग है बाज़ारी, दीदारके भूखे है॥

इसी दौरमे मियाँ रगीन हुए, उन्होने रेख़्ता कहते-कहते रेख़्ती ईजाद कर डाली।

रेख़्ती क्या है ?

'आशिक' चाहनेवालेको और जिसे चाहा जाय उसे 'माशूक' कहते है। जो ईश्वरको चाहते है वे भक्त आशिक है और उनका माशूक ईश्वर है। स्त्री अपने पति-प्रेममें लीन है तो वह आशिक और पति उसका माशूक है। कोई युवक किसी कुमारीसे प्रेम करता है तो वह युवक आशिक और वह कुमारी उसकी माशूक है। यह चाहत या प्रेम यदि दुतर्फा हो, तब तो कहने ही-क्या? परन्तु अक्सर ऐसा नही होता। चाहनेवाला गरज़मन्द होता है। उसे अपने माशूकका प्यार प्राप्त करने, उसे रिझाने अथवा वसमे करनेकी अभिलाषा होती है और अक्सर माशूकोको

मुझपे	मुझे	बोलिया	बोली
तूने	तूने	जानूं हू	जानता हूँ
जूं	ज्यों	पिण्ड	जिस्म
उसने	उसने	सभूं	सभी
जिसने	जिसने	ठांव	जगह
जियो	जो	तिसपे	उसपर
तुझकूं	तुझको	जो मैं	जो मैंने

इन शब्दोंके अतिरिक्त मियां, जूं रेंगती, बीच, छिपाई-जैसे और सैकड़ों शब्द प्रचलित थे, जो इस युगकी शायरीमें यत्र-तत्र मिलते हैं। इस युगमें हिन्दीके शब्द उत्तरोत्तर अव्यवहृत किये गये और अनेक भोण्डे और करख्त शब्द या तो बदल दिये गये या सानपर चढ़ाकर सौम्य बना लिये गये।[1]

१७ अगस्त १९४८

---

[1] "इस जमानेमें भी वही पुरानी तरकीब—हिन्दी अलफाज़ तर्क करने और उनकी जगह फारसी और अरबी अलफाज दाखिल करनेकी—बराबर जारी रही। इसमें शक नहीं कि बाज़ हिन्दी और भाषा लफ्ज जो खारिज किये गये बदनुमाँ और सकील (कठिन) जरूर थे और नज़मकी सनफे-नाजुक उसकी मुत्तहमल नहीं हो सकती थी। मगर उनके एक कलम निकाल दिये जानेसे देशी ज़बानकी तरकीबोंको सख्त नुकसान पहुँचा। ऐसे जवाहररेज़े जो संस्कृत और प्राकृतके खज़ानोंसे ज़बाने उर्दूके कब्ज़ेमें एक अर्सेदराज़से चले आते थे, फारसियतके गलबेसे अब खारिज हो गये। कदीम उर्दू-शायर संस्कृत और हिन्दीसे नावाकिफ थे। इसीलिये उन्होंने हिन्दी अलफाजकी कोई कद्र नहीं की।"

—तारीखेअदबे उर्दू, पृ० २७।

नही होते। इसीलिये सस्कृत और हिन्दी-कवियोने स्त्रीको आशिक औ
पुरुषको माशूककी सज्ञा देकर अपनी अनोखी सूझ और परिष्कृत बुद्धिव
परिचय दिया है। इससे सस्कृत और हिन्दी कवितामें इतनी स्वाभाविकत
आ गई है कि अन्यत्र इसकी मिसाल मुश्किलसे-ही मिलेगी। और अरबी
फारसी, उर्दू-शायरीमे तो चिराग लेकर ढूंढनेपर भी यह चीज़ नही मिलेगी

इसके विपरीत उर्दू-शायरीका आशिक स्त्री न होकर पुरुष होत
है, और माशूक पुरुष न होकर बीस प्रतिशत स्त्री और अस्सी प्रतिश
कमसिन छोकरे होते है। प्रथम तो यही अप्राकृतिक है कि पुरुष पुरुषक
चाहे। इस दूषित मनोवृत्तिसे जनताका कितना पतन होता है, औ
कितने सक्रामक रोग घर कर लेते है, लिखनेकी आवश्यकता नही, औ
जब स्त्री या छोकरेको माशूक तस्लीम कर लिया गया तो उनमें उन स
अवगुणोकी भी कल्पना कर लेनी पडी जो माशूकमें होते है।

माशूक अक्सर अपने आशिककी उपेक्षा करता है। अन्यको चाहतक
दृष्टिसे देखता है। इसीलिये उर्दू-शायरोनें माशूकको शोख, हरजाई
बदज़बान, उद्दण्ड, जालिम, बेवफा-जैसे अनेक विशेषणोसे अलकृत किय
है। उर्दूका माशूक आशिककी परछाँईसे भी दूर भागता है। घर
न घुस आये इसलिये पहरेदार रखता है। आशिक पत्र भेजता है तो
जवाब नही देता है। ज्यादा तग आ जाता है तो पत्र-वाहकको ही मा
डालता है। उर्दूका माशूक इतना बाज़ारू होता है कि भरी महफिल
दूसरोंसे आँखे लडाता है। अपने तथा कथित आशिकको धक्के देक
निकलवा देता है। आशिक महफिलसे निकाल दिये जानेपर भी अपन
हरकतोंसे बाज़ नही आता। माशूकके कूचेमें दीवानावार फिरता है
उसकी खिड़कीके नीचे पडे रहने और मरनेपर वही समाधि पानेमें जीवन
की सार्थकता समझता है। वहाँ कब्र न बन सके तो अपने जनाज़ेको उस
कूचेसे होकर कब्रिस्तान तक ले जानेको कह मरता है। मरनेके उपरान
भी कब्रपर फूल चढाने, चिराग जलानेको माशूक आये यही अभिलाष

कैफियते चश्म उसकी मुझे याद है 'सौदा'।
सागिरको मेरे हाथसे लीजो कि चला मैं॥

समझके रखियो कदम दश्तेजारमें[1] मजनूँ।
कि इस नवाहमें 'सौदा' वरहनापा[2] भी है॥

फिक्रे मआश[3]-ओ-इश्केबुताँ,[4] यादेरफ्तगाँ[5]।
इस जिन्दगीमें अब कोई क्या-क्या किया करे?

किसकी मिल्लतमें गिनूँ आपको[6] बतला ऐ शेख!
तू मुझे गबरू कहे गबरू[7] मुसलमाँ मुझको॥

'सौदा'! खुदाके वास्ते कर किस्सा मुख्तसिर।
अपनी तो नींद उडगई तेरे फसानेसे॥

यह तो नहीं कहता हूँ कि सचमुच करो इन्साफ।
झूठी भी तसल्ली हो तो जीता ही रहूँगा॥

होती नहीं है सुबह न आती है मुझको नींद।
जिसको पुकारता हूँ वह कहता है "मर कहीं"॥

पैगाम्बरने देर लगाई तो है, वले[8]।
धड़के है दिल कि यह न कहे "रात हो गई"॥

क्या जिद है मेरे साथ खुदा जाने, वगर्ना।
काफी है तसल्लीको मेरे एक नजर भी॥

---

[1]जगलमें, [2]नगेपाँव, [3]आजीविकाकी चिन्ता; [4]माशूकोसे इश्क, [5]स्वर्गस्थोकी स्मृतियाँ, [6]स्वयको; [7]काफिर [8]लेकिन।

मध्ययुगमे प्रचलित	वर्तमान रूप	मध्ययुगमे प्रचलित	वर्तमान रूप
तैं	तूने	रल	मिल
नित	हमेशा	तनक	ज़रा
टुक	ज़रा	मिरे	मेरे
तिधर	उधर	नगर	शहर
मत, ने	न	कने	पास
एको	एक	तुम	आप
लोहू	खून	आइयाँ	आये
कहो हो	कहते हो	दिखलाइयाँ	दिखलाई
हमपास	हमारे पास	वास	वू
लागा	लगा	वे	वह
नदान	नादान	वसतियाँ है	रहते है
ओर	तरफ	तरसतियाँ है	तरसते है
तईं	लिये	बेपरवाइयाँ	बेपरवाही
माटी	मिट्टी, खाक	आइयाँ	आई, आये
विरह	हज्र	मैला	गन्दा
अखडियाँ	आँखे	जिन्होके	जिनके
पडियाँ	हो पडी	इन्हूँ	इन्हे
बुलबुलाँ	बुलबुले	मै जब	मैने जब
महबूबाँ	महबूब	ऐधर	इधर
सेती, से	मे	पौन (पवन)	हवा
देखियो	देख	कैधर	किधर
बीका	बाँका	मुखड़ा	मुँह
कबलग	कबतक	हम ईजाद किया	हमने ईजाद किया
तूँ	तू	मोतियाँ	मोती

मीर— चमनमें गुलने जो कल दावयेजमाल[1] किया।
जमालेयारने मुंह उसका खूब लाल किया॥

सौदा— बराबरीका तेरे गुलने जब ख़याल किया।
सबाने मार तमांचा मुंह उसका लाल किया॥

मीर— एक महरूम चले 'मीर' हमीं दुनियासे।
वर्ना आलमको ज़मानेने दिया क्या-क्या कुछ॥

सौदा— सौदा! जहांमें आके कोई कुछ न ले गया।
जाता हूं एक मैं दिलेपुरआरजू[2] लिये॥

मीर— रात सारी तो कटी सुनते परीशांगोई[3]।
'मीरजी'! कोई घड़ी तुम भी तो आराम करो॥

सौदा— 'सौदा'! तेरी फरियादसे आंखोमें कटी रात।
अब आई सहर[4] होनेको, टुक तो कहीं मर भी॥

मीर— मत रजकर किसीको कि अपने तो ऐतकाद[5]।
दिल ढायकर जो कावा बनाया तो क्या हुआ?

सौदा— कावा अगर्चे टूटा तो क्या जाएग़म है शेख़!
यह किसरेदिल[6] नहीं कि बनाया न जायगा॥

मुईन, हाशिम, माहिर, अमानी, उम्मीद आदि सौदाके शिष्य थे।

हिजो—सौदा वडे गुस्सेल थे। ज़रा किसीसे नाराज़ हुए नही कि चट 'हिजो' कहने लगे। आज़ाद लिखते है—"उनका 'गुचा' एक नौकर था। हर वक्त खिदमतमे रहता था और साथ कलमदान

---

[1]सौन्दर्य का दावा, [2]अभिलाषासे ओत-प्रोत,
[3]व्यथा और परेशानियोकी दास्तान, [4]सुवह,
[5]विश्वास, [6]हृदयमन्दिर।

पूर्वार्द्ध युगीन उर्दूके प्राणप्रतिष्ठापक शायर--

१४

सौदा

मिर्ज़ा मुहम्मदरफी 'सौदा'के पिता मुहम्मदशफी कावुलसे देहली आये थे। सौदा देहलीमे ही उत्पन्न हुए। प्रारम्भमें सुलतान कुलीख़ाँ दाऊदके और वादमे शाह हातिम[1]के शिष्य हुए। शाहआलम वादशाह इन्हें अपना कलाम दिखाया करते थे, परन्तु अनवन हो जानेसे सौदाने उनके यहाँ जाना छोड दिया था। यह वह युग था जव कि देहली उजड रही थी और अवध सल्तनत वहारपर थी। सौदा भी घवराकर पहले फ़र्रुखावाद और वादमें नवाव आसफुद्दौलाके शासनमे लखनऊ पहुँचे। ये ७० वर्षतक जीवित रहे। मीरके प्रतिद्वन्द्वी समझे जाते थे, परन्तु इनकी गज़लोमे वह सोजोगुदाज कहाँ जो मीरके यहाँ पाया जाता है। फिर भी इसमें शक नही कि सौदाका मर्तवा शायरीमें वहुत वुलन्द नज़र आता है।

मसनवी, क़सीदे, गज़ल, मर्सिये, तर्जीहवन्द, मुखम्मस, रुवाई, किते, हिजो सभी कुछ तो इन्होने लिखा है, लेकिन गजलमे सफल नही हुए। हाँ, क़सीदे और हिजोमे अपना उदाहरण नहीं रखते। मसनवियोमें भी भावोकी सरलता और मधुरताकी आवश्यकता है। इसीलिये गज़लकी तरह मसनवियोमें भी मीरके मुकाविलेमे कामयाव नही हुए।

---

[1]शाह हातिमका उल्लेख प्रारम्भिक युगमें सातवे नम्बरमें हो चुका है।

आबलेकी-सी तरह टीस लगी फूटी भी।
दर्दमन्दीमें कटी सारी जवानी इसकी ॥

इश्क़ आदममें नहीं कुछ छोड़ता।
हौले-हौले कोई खा जाता है जी ॥

फरहादोकैस जिससे मुझे चाहो पूछ लो।
मशहूर है फ़क़ीर भी अहलेवफाके बीच ॥

अल्लाहरे अन्दलीबकी आवाज़े दिलख़राश[1]।
जी ही निकल गया जो कहा उसने 'हाय गुल' ॥

चाहें तो तुमको चाहें, देखें तो तुमको देखें।
ख़्वाहिश दिलोंकी तुम हो, आँखोंकी आरज़ू तुम ॥

हमने अपनी-सी की बहुत लेकिन।
मरज़ेइश्क़का[2] इलाज नहीं ॥

मुत्तसिल[3] रोते ही रहिये तो बुझे प्रातिशेदिल[4]।
एक-दो आँसू तो और आग लगा जाते हैं ॥

डूबे-उछले हैं आफताब हनूज़[5]।
कहीं देखा था उसको दरियापर ॥

मस्ती शराबकी-सी है यह आमदेशबाब।
ऐसा न हो कि तुमको जवानी नशा करे ॥

मीरजी! राज़ेइश्क़ होगा फाश[6]।
चश्म हर लहज़ा[7] मत पुरआब[8] करो ॥

---

[1]हृदयवेधक, [2]प्रेमरोगका, [3]बराबर, [4]हृदयकी आग, [5]अभीतक [6]प्रकट, [7]हर समय, [8]अश्रुपूर्ण।

आशिककी भी कटती है क्या ख़ूब भली रात।
दो-चार घड़ी रोना दो-चार घडी बातें॥

'सौदा'! जो तेरा हाल है इतना तो नहीं वोह।
क्या जानिय तूने उसे किस आनमें देखा?

नसीम भी तेरे कूचेमें और सबा भी है।
हमारी ख़ाकमें कुछ देखिये रहा भी है॥

जुर्म है उसकी जफाका कि वफाकी तक़सीर।
कोई तो बोलो मियां! मुंहमें जबां है कि नहीं?

नीचे हम 'मीर' और 'सौदा'के चन्द शेर आबेहयातसे दे रहे हैं। उनसे मीर और सौदाका मर्तबा मालूम होगा।

मीर— हमारे आगे तेरा जब किसूने नाम लिया।
दिले सितमजदाको हमने थाम-थाम लिया॥

सौदा— चमनमें सुबह जो उस जगजूका नाम लिया।
सबाने तेगका मौजेरवांसे काम लिया॥

मीर— गिला मैं जिससे करूँ तेरी बेवफाईका।
जहांमें नाम न ले फिर वह आशनाईका॥

सौदा— गिला लिखूं मैं अगर तेरी बेवफाईका।
लहूमें गर्क सफीना[1] हो आशनाईका॥

दिखाऊँगा तुझे जाहिद! उस आफतेदींको[2]।
ख़लल दिमागमें है तेरे पारसाईका[3]॥

---

[1]नाव, [2]धर्मच्युत करनेवालेको, [3]संयमी और सदाचारी होनेका।

दिलको नही बीमारी ऐसी जिसमें हो उम्मीदेशफा[१]।
क्या सम्भलेगा 'मीर' सितमकश, वह तो मारा ग़मका है ॥

ख्वार फिराया गलियों-गलियों सर मारे दीवारोंसे।
क्या-क्या उनने सलूक किये हैं शहरके इज्ज़तदारोंसे ॥

अब फायदा सुराग़से[२] बुलबुलके बाग़बाँ!
इतराफेबाग़[३] होंगे पड़े मुश्तेपर[४] कहीं ॥

हम देखें तो देखें उसे, फिर परदा बहतर है, यानी—
और करें नज्जारा उसका हमको यह मजूर नहीं ॥

ख़तका जवाब न लिखनेकी कुछ वजह न जाहिर हमपै हुई।
देरतलक कासिदसे पूछा, मुंहमें उसके जवाब नहीं ॥

यूँ नाकाम रहेंगे कबतक जीमें है इक काम करें।
रुसवा होकर मारे जावें, उसको भी बदनाम करें ॥

जिसने सर खींचा दयारेइश्क़में[५] ऐ बुलहविस[६]!
वोह सरापाआरजू[७] आख़िर जवाँ मारा गया ॥

दर्दमन्दोंसे तुम्हीं दूर फिरा करते हो कुछ।
पूछने वर्ना सभी आते हैं बीमारके पास ॥
बूएखूँ आती है बादेसुबहगाहीसे[८] मुझे।
निकली है बेदर्द हो शायद किसी घायलके पास ॥

---

[१]रोगसे मुक्त होनेकी आशा, [२]तलाशसे खोजसे
[३]बागके चारो ओर, [४]मुट्ठीभर पख,
[५]प्रेममार्गमे, [६]विषयासक्त,
[७]अभिलाषाकी मूर्ति, [८]प्रातःकालीन समीरसे।

हर जिन्सके[1] ख्वाहाँ[2] मिले बाजारे जहाँमें।
लेकिन न मिला कोई खरीदारे मुहब्बत॥

'मीर' साहब! जमाना नाजुक है।
दोनो हाथोंसे थामिये दस्तार[3]॥

हंगामा[4] मेरी नाश[5] पै तेरी गलीमें है।
ले जाएँगे जनाजाकशाँ[6] याँसे कब मुझे?

क्या 'मीर' है यही जो तेरे दरपै खड़ा था।
नमनाक चश्मो[7] खुश्कलबो[8] रंग जर्द था॥

एक दिन मैंने लिखा था उसको अपना दर्देदिल।
आजतक जाता नहीं खामाके[9] सीनेसे शिगाफ॥

पहुँचा तो होगा समएमुबारिकमें[10] हाले 'मीर'।
इसपर भी जीमें आवे तो दिलको लगाइये॥

तलवारके तले ही गया अहदेइम्बसात[11]।
मर-मरके हमने काटी हैं अपनी जवानियाँ॥

कासिद जो वाँसे आया तो शर्मिन्दा मैं हुआ।
बेचारा गिरियानाक[12] गिरेबाँदुरीदा[13] था॥

गदाशाह दोनों हैं दिलबाख्ता[14]।
अजब इश्कबाजीका दस्तूर है॥

---

[1]वस्तुके, [2]खरीदार, [3]पगड़ी, [4]शोरोगुल, [5]अर्थी, [6]अर्थी उठानेवाले, [7]डबडबाई आँखें, [8]सूखे ओठ, [9]कलमके, [10]मुबारिक कानोंमें, [11]मुसीबतका जमाना, [12]रोता हुआ, [13]फटे वस्त्र, [14]बदहवास।

यह भी तुरफा माजरा है कि उसीको चाहता हूँ ।
मुझे चाहिए है जिससे बहुत अहतराज'करना ॥

कभू तो दैरमें हूँ मैं, कभू हूँ काबेमें ।
कहाँ-कहाँ लिये फिरता है शौक उस दरका ॥

बहुत रोनेने रुसवा कर दिखाया !
न चाहतको छुपी हमसे अलामत ॥

अब्दुलरसूल निसार, मिर्ज़ा गुलबन, मुहम्मद मुहसन, मजनूं, मुश्ताक, बिन्दराबन, राक़िम, ग़रीब, वगैरह 'मीर'के शिष्य थे । किन्तु इनमें एक भी मीरकी प्रतिष्ठाके अनुकूल न हुआ । होता भी कहाँसे ? मीर जैसी व्यथा-वेदना हर किसीके हिस्सेमें कहाँसे आती ? और जबतक आह-पीड़ा, व्यथा-वेदना अपनी निजी सम्पत्ति नहीं, तब दूसरोंसे उधार लेनेपर वे भाव कहाँ आ सकते हैं ? हृदयगत भावों और बनावटी भावोंमें पृथ्वी-आकाशका अन्तर होता है । अपने घरमें आग न लगाकर दूसरोंकी लगाई आगसे तापनेके क्या मायने ?

कबिरा खडो बजारमें लिये लुकाटी हाथ ।
जो घर फूंके आपुनो चले हमारे साथ ॥

३० जून १९४९ ई०

'बचाव, परहेज़ ।

बैठने दे है कौन फिर उसको।
जो तेरे आस्ताँसे उठता है॥

बेखुदी पर न 'मीर'के जाओ।
तुमने देखा है और आलममें[1]॥

फुरसतमें यक नफसके[2] क्या दर्देदिल सुनोगे।
आये तो तुम व लेकिन वक्तेआखीर आये॥

रात तो सारी गई सुनते परीशाँगोई[3]।
'मीर'जी कोई घडी तुम भी तो आराम करो॥

तुम छेडते हो बज्ममें मुझको तो हँसीसे।
पर मुझपै जो हो जाय है, पूछो मेरे जीसे॥

किसकी मस्जिद, कैसे मयखाने, कहाँके शेखोशाब[4]।
एक गर्दिशमें तेरे चश्मे सियहके सब खराब॥

मुझसे लेने लगे हैं इबरत[5] लोग।
आशिकीमें यह एतबार हुआ॥

जुल्म हुए हैं क्या-क्या हमपर, सब्र किया है क्या-क्या हम।
आन लगे हैं गोर[6] किनारे उसकी गलीमें जा-जा हम॥

इश्क किया है उस गुलका या आफत लाये सरपर हम।
झाँकते उसको साथ सबाके[7] सुबह फिरे हैं घर-घर हम॥

हम न कहा करते थे तुमसे "दिल न किसूसे लगाओ तुम।
जी देना पडता है इसमें, ऐसा न हो पछताओ तुम॥"

---

[1]स्थितिमें [2]पल भरमें, [3]दुःख-गाथा।
[4]युवकवृन्द, [5]सबक, [6]कब्र,
[7]हवाके।

एकबारी धक्से होकर दिलकी फिर निकली न साँस ।
किस शिकारन्दाज़का[1] यह तीरे बेआवाज़ है ॥

दो दिनकी यह ज़ीस्त[2] 'सोज़' साहब !
जिस तरह निभे तुम अब निबाहो ॥

मैं काश उस वक़्त आँखें मूँद लेता ।
यह मेरा देखना मुझको बला था ॥

जिसका तू आश्ना हुआ होगा ।
उसने क्या-क्या सितम सहा होगा !

लोग कहते हैं मुझे यह शख़्स आशिक़ है कहीं ।
आशिक़ी मालूम लेकिन दिल तो बेआराम है ॥

मेरा जान जाता है यारो बचा लो ।
कलेजेमें काँटा गड़ा है निकालो ॥
न भाई मुझे ज़िन्दगानी न भाई ।
मुझे मार डालो, मुझे मार डालो ॥
ख़ुदाके लिये ऐ मेरे हमनशीनो[3] !
वह बाँका जो जाता है उसको बुला लो ॥
अगर वह ख़फ़ा होके कुछ गालियाँ दे ।
तो दम[4] खा रहो, कुछ न बोलो न चालो ॥
न आवे अगर वह तुम्हारे कहेसे ।
तो मिन्नत करो घेरे-घारे मना लो ॥

---

[1] अचूक निशानेबाज़का, [2] ज़िन्दगी ।
[3] पड़ोसियो, साथियो, [4] दम साध लो, चुप रहो ।

कभू 'मीर' उस तरफ आकर जो छाती कूट जाता है।
ख़ुदा शाहिद है अपना तो कलेजा लोट जाता है॥

अगर्चे अब तो ख़फा हो लेकिन मुएगयेपर[1] कभू हमारे
जो याद हमको करोगे प्यारे, तो हाथ अपने मला करोगे

वन जो कुछ बन सके जवानीमें।
रात तो थोडी है बहुत है स्वांग॥

हस्ती अपनी हुबाबकी[2]-सी है।
यह नुमायश सराबकी[3]-सी है॥
नाज़ुकी उसके लबकी क्या कहिये?
पखडी इक गुलाबकी-सी है॥
बार-बार उसके दरपै जाता हूँ।
हालत अब इज़्तराबकी[4]-सी है॥
मैं जो बोला, कहा—"कि यह आवाज—
उसी ख़ानाख़राबकी-सी है"॥

तुम्हें तो ज़ुहद-ओ-रिआपर[5] बहुत है अपने ग़रूर।
ख़ुदा है शेख़जी! हमसे भी गुनहगारोंका॥
दिलके वीरानेका क्या मज़कूर[6] है।
यह नगर सौ मर्तबा लूटा गया॥

वसीयत 'मीर'ने मुझको यही की।
कि सब कुछ होना, तू आशिक न होना॥

---

[1]मर जानेपर, [2]बुलबुलेकी, [3]मृगमरीचिकाकी; [4]बेचैनीकी, [5]छलपूर्ण भक्ति उपासना पर; [6]ज़िक्र।

तू रोके वस्लमें ऐ 'सोज़'! अपने आँसू पोंछ।
अभी बहुत है तुझे हिज्रे यारमें रोना॥

शरमाता है अबतलक खुरशीद[१]।
सामने तेरे आ गया होगा॥

ऐ 'सोज़'! अज़्मे[२] कूचये क़ातिल न कर अबस[३]।
तू एक भी बता दे कि वाँ जाके आ सका॥

जिनको नित देखते थे अब उनका।
देखना ही ख़यालोख़्वाब[४] हुआ॥

रातको नींद है न दिनको चैन।
ऐसे जीनेसे ऐ ख़ुदा! गुज़रा[५]॥

सोज़! अब भी रहा है कुछ बाक़ी।
छोड़ दे अब सरायेफ़ानीको[६]॥

जनाज़ेवालो! न चुपके क़दम बढ़ाये चलो।
उसीका कूँचा है, टुक करते 'हाय-हाय' चलो॥

ग़म है या इन्तज़ार है, क्या है?
दिल जो अब बेक़रार है, क्या है?

सर ज़ानूपै[७] हो उसके और जान निकल जाये।
मरना तो मुसल्लिम[८] है, अरमान निकल जाये॥

—इन्तख़ाबियात, भा० १ से

---

[१] सूर्य, [२] इरादा,
[३] व्यर्थ, [४] सपनेकी बात,
[५] बाज़ आया, [६] असार संसारको,
[७] जंघापै, [८] अवश्यमेव।

१६

सोज़

इस दौरके तीसरे शायर सैय्यद मुहम्मदमीर 'सोज़' थे। ये पहले 'मीर' उपनाम रखते थे, परन्तु मीर तकीका उपनाम भी 'मीर' होनेके कारण इन्होंने अपना फिर 'सोज़' उपनाम रख लिया था। आबेहयातमे लिखा है कि 'मीर' इन्हे चौथाई शायर मानते थे, मगर यह बात ग़लत है। मीरने इनका वर्णन अत्यन्त सुन्दर शब्दोमे किया है। 'सोज़' दिल्लीमें उत्पन्न हुए। ४० वर्षकी आयुमे दिल्ली छोड़कर फर्रुखाबाद और मुर्शिदाबाद रहकर अन्तमें लखनऊ पहुँचे और नवाब आसफुद्दौलाके काव्य-गुरु हुए।

"मीर सोज़की जबान अजीब मीठी ज़बान है, और हकीकतमे गज़लकी जान है। मालूम होता है गुलाबका फूल हरी-भरी टहनीपर कटोरा-सा धरा है और सब्ज़-सब्ज़ पत्तियोमें अपना असली जोबन दिखा रहा है। सोज़के कलाममे मुहावरोंकी सफाई और ज़बानका लुत्फ हमेशा ज़र्बुल-मिसल (दृष्टान्तस्वरूप) रहा है। उनके शेर ऐसे मालूम होते हैं जैसे कोई चाहनेवाला अपने चहीते अज़ीज़से बैठा बातें कर रहा है*।"

---

*इन्तख़ादियान भा० १, पृ० १०७

झुकता नहीं हमारा दिल तो किसी तरफ याँ।
जीमें समा रहा है अजबस[1] शरर तेरा॥

मदर्सा, या दैर था या काबा या बुतख़ाना था।
हम सभी महमान थे वाँ तू ही साहिबख़ाना था॥
भूल जा, ख़ुश रह अबस[2] वे सानहे[3] मत यादकर।
'दर्द' यह मज़कूर क्या है, आशना था या न था॥

शरर और बर्कको-सी भी नहीं याँ फुर्सतेहस्ती।
फलकने हमको सौंपा काम जो कुछ था शिताबीका[4]॥
मैं अपना दर्ददिल चाहा कहूँ जिस पास आलममें।
बयाँ करने लगा किस्सा वोह अपनी ही खराबीका॥

गर्चे वोह ख़ुरशीदरू[5] नित है मिरे सामने।
तो भी मयस्सर[6] नहीं भरके नज़र देखना॥

मिसलेनगीं जो हमसे हुआ काम, रह गया।
हम रूस्याह जाते रहे, नाम रह गया॥
साकी मेरे भी दिलकी तरफ टुक निगाह कर।
लबतिश्ना[7] तेरी बज़्ममें यह जाम रह गया॥

की तो थी तासीर आहेआतशीने[8], उसको भी।
जबतलक पहुँचे ही पहुँचे राखका याँ ढेर था॥

---

[1]वहुत, [2]व्यर्थ,
[3]घटनाएँ, [4]जल्दीका
[5]सूर्य जैसी आभावाला; [6]प्राप्त, [7]प्यासा,
[8]अग्निरूपी आहने।

कहो—'एक बन्दा तुम्हारा मरे है।
उसे जानकन्दनसे[1] चलकर बचा लो॥
जलोकी बुरी आह होती है प्यारे!
तुम उस 'सोज़'की अपने हक़में दुआ लो॥

की फरिश्तोकी[2] राह अब्रने बन्द।
जो गुनह कीजिये सवाब है आज॥

अहले ईमाँ 'सोज़'को कहते है काफिर हो गया।
आह, या रब! राजेदिल उनपर भी ज़ाहिर हो गया॥

तड़पती क्यों है ऐ बुलबुल! कमाल इतना तो पैदा कर।
कि तेरा अश्क जिस जा गिर पड़े गुलज़ार पैदा हो॥

बुलबुल कहीं न जाइयो जिनहार[3] देखना।
अपने ही मनमें फूलके गुलज़ार देखना॥

एक दिल था जानेमन! उसकी बिसात* ?
तूने लूटा 'सोज़' लोटे है पड़ा॥

तू मनए गिरिया[4] न कर मुझको नासहे बेदर्द!
नहीं है अब तो मेरे अख़्तियारमें रोना॥

---

[1]मृत्यु- पीड़ासे, [2]देवताओंका मार्ग तो बादलोंने रोक लिया, [3]कभी भी, हरगिज़ [4]रोनेसे मना।

*इसी मज़मूनका सीमाब अकबराबादीका यह शेर भी कितने गज़बका है—

दिलकी बिसात क्या थी निगाहे जमालमें।
यह आईना था टूट गया देख-भालमें॥

सौ बार देखीं मैंने तेरी बेवफाइयाँ।
तिसपर भी नित ख़्याल है दिलमें निबाहका॥

कुछ है खबर तुझे भी कि उठ-उठके रातको।
आशिक तेरी गलीमें कई बार हो गया॥
बैठा था खिज्र आके मेरे पास एकदम।
घबराके अपनी ज़ीस्तसे[1] बेजार हो गया॥

तुमने तो एक दिन भी न इधर गुजर किया।
हमने ही इस जहानसे आख़िर सफर किया॥
जिनके सबबसे दैरको[2] तूने किया ख़राब।
ऐ शेख़! उन बुतोंने मेरे दिलमें घर किया॥

जूँ चाहिए उस तरह बयाँ हमसे न होगा।
कर अपने दहनसे ही तू वस्फ[3] अपनी कमरका॥

ठहर जा टुक बातकी बात[4] ऐ सबा!
कोई दममें हम भी होते हैं हवा॥

तुझमें कुछ देखा न हमने जुज़जफा[5]।
पर, वोह क्या कुछ है? कि जीको भा गया॥
फिरती है मेरी ख़ाक सबा दरबदर लिये।
ऐ चश्मेअश्कबार[6] यह क्या तुझको हो गया॥

वाइज़[7]! किसे डराइये योमेहिसाबसे[8]।
गिरया[9] मेरा तो नामयेऐमाल[10] धो गया॥

---

[1]ज़िन्दगीसे, [2]मन्दिरको, [3]तारीफ, [4]क्षणभरको, [5]अत्याचारके अतिरिक्त, [6]अश्रुपूर्ण नेत्र, [7]उपदेशक, [8]यमराजके न्यायसे, [9]आँसू, रोना, [10]दुष्कर्मोंकी तालिका।

तज़करेमे मीरने 'दर्द'के सम्बन्धमें जो लिखा है उसका हिन्दी अनुवाद निम्न प्रकार है—

"दर्दकी कविता गूढ मन्तव्यको सरल और स्पष्ट रूपसे व्यक्त करती है। उसकी लिपि कागज़पर इस प्रकार सुन्दर प्रतीत होती है, जैसे भोर-बेलामें फैली हुई प्रेयसीकी जुल्फें। उसकी कल्पनाशक्ति पूर्णरूपसे विकसित है, और भावनाके उद्यानमें मृदु-पगसे चहलकदमी-सी करती प्रतीत होती है। उसकी कविताके शब्द मानो उद्यानके फूल हैं। उसके विचारोके फूलोको तोडनेवालेकी टोकरी सहज भर जाती है। वह रेख़्ताका महान कवि है। कला-कुशल, मृदुभाषी, महमाँनवाज़ और सच्चा स्नेही है।"*

दर्दका दीवान अत्यन्त सक्षिप्त है। उसमेंसे कुछ नमूने यहाँ दिये जाते है—

*दीवाने दर्द [illegible] मी[illegible] दद, पृ० [illegible]

नजर जब दिलपै की देखा तो मस्जूदेखलायक़[1] है।
कोई काबा समझता है कोई समझे है बुतख़ाना ॥

कुछ कशिशने तेरी असर न किया ॥
तुझको ऐ इन्तजार देख लिया ॥
तिश्नगी[2] और भी भड़कती गई ॥
जूँ-जूँ मैं आँसुओंको अपने पिया ॥

मरना ही लिखा है मेरी किस्मतमें अजीजाँ[3]।
गर जिन्दगी होती तो यह आजार[4] न होता ॥

नासह ! मैं दीनोदिलके तईं अब तो खो चुका।
हासिल नसीहतोंसे जो होना था हो चुका ॥
जाहिद किया करे है वजू गो कि रोजोशब।
चाहे कि दिलसे धोए कुदूरत,[5] सो धो चुका ॥

मुहब्बतने हमको समर[6] जो दिया।
सो यह है कि सब कामसे खो दिया ॥

आईनेकी तरह गाफिल ! खोल छातीके किवाड़।
देख तो है कौन बारे[7] तेरे काशानेके[8] बीच ॥

हँस कब्रपै मेरी खिलखिलाकर।
यह फूल चढ़ा कभी तो आकर ॥

और तो छुट गये मरके भी ऐ कुंजेकफस[9] !
एक हम ही रहे हर तरह गिरफ्तार हनूज[10] ॥

---

[1]विश्वका पूज्य, [2]प्यास, [3]मित्रो, [4]रोग;
[5]मनका मैल, [6]फल, [7]सौभाग्यसे, [8]मनमन्दिरके;
[9]बन्दीगृह, [10]अभीतक।

हिर्स[1] करवाती है ख़्वाह बाजिश[2] सब वर्ना याँ।
अपने-अपने बोरियेपर जो गदा[3] था शेर था॥
अश्कने मेरे मिलाये कितने ही दरियाके पाट।
दामनेसहरामें वर्ना इसक़दर कब घेर था॥

काम याँ जिसने जो कि ठहराया।
जबतलक होवे, आप ही काम आया[4]॥
बेतरह कुछ उलझ गया था दिल।
बेवफाईने तेरी सुलझाया॥
आँसू कबतक कोई पिये जावे।
इस मुहब्बतने जी बहुत खाया॥
दुश्मनीमें सुना न होवेगा।
जो हमें दोस्तीने दिखलाया॥

मूरिदेकहर[5] तो याँ हम ही हैं।
और किसपर यह करम[6] कीजियेगा॥

बावजूदे[7] कि परोबाल न थे आदमके।
वाँ यह पहुँचा कि फरिश्तेका भी मकदूर[8] न था॥

हाल मुझ ग़मज़देका जिस-तिसने।
जब सुना होगा रो दिया होगा॥

अन्दाज़ वो ही समझे मिरे दिलकी आहका।
ज़ख़्मी जो हो चुका हो किसीकी निगाहका॥

---

[1] तृष्णा,
[2] संन्यासी,
[3] अत्याचारके पात्र,
[4] यद्यपि,
[5] लोमड़ी जैसी इन्सान यानि छल फरेब,
[6] आप ही समाप्त हो गया,
[7] कृपा,
[8] सामर्थ्य।

नजर जब दिलपै की देखा तो मस्जूदेखलायक[1] है।
कोई कावा समझता है कोई समझे है बुतखाना ॥

कुछ कशिशने तेरी असर न किया ॥
तुझको ऐ इन्तजार देख लिया ॥
तिश्नगी[2] और भी भड़कती गई ॥
जूं-जूं मै आंसुओंको अपने पिया ॥

मरना ही लिखा है मेरी किस्मतमें अज़ीज़ाँ[3]!
गर जिन्दगी होती तो यह आजार[4] न होता ॥

नासह! मै दीनोदिलके तईं अब तो खो चुका।
हासिल नसीहतोंसे जो होना था हो चुका ॥
जाहिद किया करे है वजू गो कि रोजोशव।
चाहे कि दिलसे धोए कुदूरत,[5] सो धो चुका ॥

मुहब्बतने हमको समर[6] जो दिया।
सो यह है कि सब कामसे खो दिया ॥

आईनेकी तरह गाफिल! खोल छातीके किवाड़।
देख तो है कौन बारें[7] तेरे काशानेके[8] बीच ॥

हँस कब्रपै मेरी खिलखिलाकर।
यह फूल चढ़ा कभी तो आकर ॥

और तो छुट गये मरके भी ऐ कुंजेकफस[9]!
एक हम ही रहे हर तरह गिरफ्तार हनूज़[10] ॥

---

[1]विश्वका पूज्य, [2]प्यास, [3]मित्रो, [4]रोग;
[5]मनका मैल; [6]फल, [7]सौभाग्यसे, [8]मनमन्दिरके;
[9]बन्दीगृह, [10]अभीतक।

तुझीको यहाँ जलवा फरमा न देखा।
बरावर है दुनियाको देखा न देखा॥

अपना तो नहीं यार मैं कुछ, यार हूँ तेरा।
तू जिसकी तरफ होवे, तरफदार हूँ तेरा॥
कुढनेपै मेरे जी न कुढा, तेरी बलासे।
अपना तो नहो गम मुझे, गमख्वार हूँ तेरा॥
तू चाहे न चाहे मुझे कुछ काम नहीं है।
आजाद हूँ इससे भी, गिरफ्तार हूँ तेरा॥
तू होवे जहाँ मुझको भी होना वहीं लाजिम।
तू गुल है मेरी जान तो मैं खार हूँ तेरा॥
है इश्कसे मेरे ही तेरे हुस्नका शुहरा[1]।
मैं कुछ नहीं पर, गर्मियेबाजार हूँ तेरा॥

जबतक है दिलके शीशेमें रग इम्तियाजका[2]।
है ऐ. परी! तभी तई आईना नाजका॥

फैला है कुफ्र यां तक काफिर! तेरे सबबसे।
शमएहरम[3] भी दे है माथेपै अपने टीका॥

अपनी आंखो उसे मैं देखूं।
ऐसा भी कभू खुदा करेगा॥

अहले जमाना आगे भी थे और जमाना था।
पर अब जो कुछ है यह तो किसूने सुना न था॥

किसूसे क्या क्यो कीजे उस अपने हालेअबतरका[4]।
दिल उसके हाथ दे बैठे जिसे जाना न पहचाना॥

---

[1]प्रसिद्धि, [2]भेदभावका,
[3]मस्जिदका दीपक, [4]शोचनीय अवस्थाका।

हमारी इतनी ही तक़सीर है कि ऐ ज़ाहिद !
जो कुछ है दिलमें तेरे हम वोह फाश[1] करते हैं ॥

अश्कसे मेरे फकत दामनेसेहरा नहीं तर ।
कोह भी सब हैं खडे ता-ब-कमर[2] पानीमें ॥

आह ! परदा तो कोई मानएदीदार[3] नही ।
अपनी ग़फलतके सिवा कुछ दरोदीवार नहीं ॥

जिन्दगी जिससे इबारत है सो वोह जीस्त कहाँ ।
यूं तो कहनेके तईं कहिये कि हाँ जीते हैं ॥

सूरतें क्या-क्या मिली हैं ख़ाकमें ।
है दफीना हुस्नका जेरेज़मीं ॥

आगे ही बिन कहे तू कहे है—"नहीं-नहीं" ।
तुझसे अभी तो हमने वे बातें कही नहीं ॥

बेवफाईपै उसके दिल मत जा !
ऐसी बातें हजार होती हैं ॥

देख मेरे जोफको[4] कहने लगा रोकर तबीब[5]—
"कोई दममें यह भी उसकी नातवानी[6] फिर कहाँ" ॥

हरदम बुतोकी सूरत रखता है दिल नजरमें ।
होती है बुतपरस्ती अब तो ख़ुदाके घरमें ॥

अफसोस अहलेदीदको गुलशनमें जा नहीं ।
नरगिसकी गो कि आँख है, पर सूझता नहीं ॥

---

[1]प्रकट, [2]कमरतक,
[3]देखनेमें बाधक, [4]निर्बलताको,
[5]चिकित्सक, [6]निर्बलता ।

सैयाद ! अब रिहाईसे क्या मुझ असीरको ?
फिर किसको जिंदगीकी तवक्क़ो[1] बहारतक ॥

यारब ! दुरुस्त गो न रहूँ तेरे अहदपर[2] ।
बन्देसे पर न हो कोई बन्दा शिकिस्ता दिल ॥

अपने मिलनेसे मना मत कर ।
इस बिन बेअख़्तियार हैं हम ॥

हमें तो बाग तुझ बिन ख़ानयेमातम[3] नज़र आया ।
इधर गुल फाड़ते थे जेब, रोती थी उधर शबनम ॥

गुल अब तो मिले हैं हँसके लेकिन !
बुलबुल ! यह चुभेंगे ख़ार जी में ॥
यूँ पास बिठा जिसे तू चाहे ।
पर जगह न दीजो यार जी में ॥

हस्ती है जबतक हम हैं इसी इज़्तराबमें[4] ।
जूँ मौज आ फँसे हैं अजब पेचोतावमें ॥

ज़ालिम ! जफ़ा जो चाहे सो कर मुझपे तू वले ।
पछतावें फिर तू आप ही ऐसा न कर कहीं ॥
फिरते हो सज बनाये तो अपनी इधर-उधर ।
लग जाये देखियो न किसीकी नज़र कहीं ॥

यावरी[5] देखिये नसीबोंकी !
दोस्त भी हो गये मेरे दुश्मन ॥

---

[1] आशा,
[2] आदेशपर,
[3] शोकगृह,
[4] चक्कर मे,
[5] [illegible]।

दिल बुरा होता है कोई तुझसे, पर यूँ ही अबस[1]।
हम सदा ग़ैरोसे मिलना सुनके घबराया किये ॥

कभू रोना, कभू हँसना, कभू हैरान हो रहना।
मुहब्बत क्या भले-चंगेको दीवाना बनाती है।

याँ कौन आश्ना है तेरा किसको तुझसे रब्त ?
कहनेको यह भी लोगोके इक बात रह गई ॥
बाजी बदी थी उनने मेरी चश्मेंतरके साथ।
आखिरको हार-हारके बरसात रह गई ॥

ग़मनाकिए-बेहूदा[2] रोनेको डुबोती है।
गर अश्क बजा टपके आँसू नही मोती है ॥

मनअसहबा[3] न कर मुझे ऐ शेख़ !
मयपरस्तोके हकमें दारू है ॥

हम इतनी उम्रमें दुनियासे हो गये बेज़ार।
अजब है ख़िज्रने क्योकर के जिन्दगानी की ॥

उसके तईं भी दुख़्तरेरज़ टुक तू मुँह लगा।
मैं जानूँ फिर यह जाहिद अगर घरको मुँह करे ॥

५ जुलाई १९४९

---

[1]व्यर्थ, [2]व्यर्थका शोक, [3]मद्यनिषेध।

ऐ दर्द ! रफ्ता-रफ्ता किया आपको भी गुम ।
इस राहमें चला था मैं किसके सुराग़को ?

जिस तरहसे सुबहको होता है बेरौनक चिराग़ ।
देख तुझको उड गया गुलशनमें गुलका रंगो-बू ॥

चमकते हैं सितारोंकी तरह सूराख़ सीनेके ।
छुपाया गो कि ज्यूं ख़ुरशीद मैंने दाग़ेपिनहाँको[1] ॥

नहीं शिकवा मुझे कुछ बेवफाईका तिरी हरगिज़ ।
गिला तब हो अगर तूने किसीसे भी निबाही हो ॥

मुझे यह डर है दिलेज़िन्दा तू न मर जाए ।
कि ज़िन्दगानी इबारत है तेरे जीनेसे ॥

बसा है कौन तेरे दिलमें गुलबदन ऐ 'दर्द' ।
कि बू गुलाबकी आई तेरे पसीनेसे ॥

मत इबादतपै भूलियो ज़ाहिद !
सब तुफ़ैलेगुनाहेआदम है ॥

बन्द अहकामेअक्लमें रहना ।
यह भी एकनोअकी[2] हिमाक़त है ॥

एक ईमान है बिसात अपनी ।
न इबादत न कुछ रियाज़त है ॥

मेरे अहवालपै न हँस इतना ।
यूं भी ऐ महर्बान ! पड़ती है ॥

---

[1] छुपे हुए दाग़ोंको,
[2] बुद्धिके आज्ञापालनमें,
[3] एक पागलपन ।

हिजोके उस्ताद थे, गजलमे मीर और दर्द जैसा रुतवा नही रखते। इस-लिये उक्त शायरोकी सौदासे तो तुलना करनी ही व्यर्थ है। इनकी तुलना मीरोदर्दसे की जा सकती है। इनके कलाममे भी मीरोदर्द-जैसी भावोकी स्वच्छता, भोलापन, भाषाकी सरलता, पवित्रता, मिठास पाई जाती है। फिर क्या कारण है कि मीरो-दर्द तो आसमाने शायरीपर चमक रहे है और ये पुस्तकालयोके आलोमे धरे टिम-टिमा रहे है।

देशके उत्थान-पतनमे शायरोका बहुत बडा हाथ होता है। वे चाहे तो अकर्मण्य और परतन्त्र जनतामे उत्साह, उल्लास, उमग, नव-चेतना लाकर उसे परतन्त्रताकी बेडियाँ काटनेको प्रस्तुत कर दे, अथवा चाहे तो स्वतन्त्र और समृद्धिशाली देशको परतन्त्रता और अकर्मण्यताके दल-दलमे गिरा दें। शायर पशुओको मनुष्य और मनुष्योको पशु बनाने-की क्षमता रखते है। उनकी वाणीमे अमृत और विष दोनो होते है। जहाँ वे राणा प्रतापके डगमगाते पाँवोको अगदका वल प्रदान कर सकते है, शिवाजी-जैसे साधनहीनको औरगजेब जैसे शाहनशाहसे भिडा सकते है, वहाँ वे शाहआलम बादशाहको निरीह बनाकर उसकी आँखे निक-लवा सकते है, वे बहादुरशाह बादशाहको दया-पात्र बनाकर बन्दी होनेको लाचार कर सकते है, वे बेगमातको नादिरशाहके सामने नाचनेको प्रस्तुत कर सकते है। वे लखनवी नवाबोको जनखा बना सकते है। पगुको पर्वतपर चढा सकते है, गूंगेको वाणी दे सकते है। मृगोको सिहोसे, कबूतरो-को बाजोसे भिडा सकते है। और वे वीरोको कायर बना सकते है, सिहो-को कुत्तोके साथ भोजन करनेको तैयार कर सकते है। वे स्वर्गको नरक और दोज़खको बहिश्त बनानेकी क्षमता रखते है।

जो शायर देश-समाजमें उत्साह, नवजीवन, चेतना फूंकते है, उन्नतिके नवीन मार्ग खोजते है, बल-विक्रम भरते है, विकारी मानवोका कायाकल्प करते है, निराश और उद्यमहीनोमें आशा और कर्मवीरताके भाव लाते है, वही शायर चिरजीवित रहते है। इसके विपरीत जो शायर व्यथा,

१८

क़ायम चान्दपुरी

शेख़ कयामुद्दीन 'कायम' चाँदपुर ज़िले विजनौरके रहनेवाले थे; परन्तु मुलाज़मतके कारण दिल्लीमे रहने लगे थे। पहले हिदायतुल्लाहसे कवितामे सशोधन लेते थे। उनसे विगडनेपर मीर दर्दसे और उनसे भी विगाड हो जानेपर सौदासे मशविरा लेने लगे। आज़ादके शब्दोमे—"क़ायम फन्नेशेरमे कामिल थे। इनका दीवान हरगिज़ मीर और मिर्ज़ाके दीवानसे नीचे नही रख सकते।" मजनूँ गोरखपुरी लिखते है कि—"शेफ्ताको छोडकर अक्सर तज़करे नवीसोने कायमके कलामकी वुलन्द पायगी (श्रेष्ठता) तस्लीम की है। 'मुसहफी' उनकी पुख्तगीए कलामके कायल है। मीर हसन उनके तर्ज़को फारसी गज़लगो 'तालिब आमिली' का तर्ज़ बताते है। करीमुद्दीन उन्हें शायरे खुशगुफ्तार वुलन्दमर्तबा, मौजूंतवा, आलीमिकदार लिखते है। इस तज़कर नवीसका खयाल है कि जो लोग 'कायम' को 'सौदा'से बहतर समझते है वे सच्चे है। राय लक्ष्मीनारायण साहब 'शफीक' दक्खनीने कायमके जहनेसलीम और फिक्रेमुस्तकीमको माना है, और अपने चमनिस्ताने शुअरामे इनकी लताफत और सलाहतकी पूरी-पूरी दाद दी है[1]।"

कायम और उनके समकालीन असर, ताबाँ, यकीन, बयान, बेदार इस युगके प्रथम श्रेणीके शायर कहे जाने चाहिएँ। सौदा तो खैर और

---

[1]तनक़ीदी हाशिये, पृ० ६५

है। इस दौरके शायरोमे—असर, यकीन, और ताबाँ इसकी बहतरीन मिसाले है। पढनेवालोके दिलोमे उनका कलाम एक तपिश और बेचैनी पैदा कर देता है। इनके यहाँ उन तवाजुनका बहुत कम पता चलता है जो जवानीकी दोपहर ढल जानके बाद होता है। इनका काम सिर्फ तडपना और तडपाना है। 'बयान' इस दौरसे गुज़र चुके है, और ज़िन्दगीके अन्तमे कदम रख चुके है। इस दौरकी शायरी अमूमन यादकी शायरी होती है। यानी शायर माज़ी (भूतकाल)की यादमे ठडी साँस भर-भरकर रह जाता है। उसकी सर्द आहोमे तासीर और तास्सुरात (प्रभाव, असर), सोज़ोगुदाज़ (व्यथा, तडपन), तो बहुत होती है, मगर वह न खुद तडपता है, न दूसरोको तडपाता है। यह याद महज़ बुढापेकी याद नही होती बल्कि इस यादके अन्दर एक गर-मजोशी, एक वालिहाना (आशिकाना) अन्दाज़, एक वारफ्तगी (दीवानगी, मस्ती), होती है, जिसके आसार बुढापेमें बहुत कम रहते है। इस यादकी बहतरीन मिसालमे 'बयान'का यह शेर पेश किया जा सकता है —

पियो शराब जवानो ! कि मौसमे गुल है।
हमें भी याद वह अहदे शबाब आता है॥

मीरोदर्द बुढापेके शायर है। जब कि इन्सानके अन्दर इन्तहाई सजीदगी, इन्तहाई मतानत और इन्तहाई बरगजीदगी आ जाती है क़ायम अधेड उम्रके शायर है और उनके अक्सर अशआर इस यादेगमके बहतरीन नमूने है।''[1]

---

[1]तनकीदी हाशिये, पृ० ७३

आह, निराशा, रुदन, विलासिता, अकर्मण्यता आदिका दूषित वातावरण उत्पन्न करते हैं, वे थोड़े काल जीवित रहते हैं और समाप्त हो जाते हैं।

जीवनको उभारनेवाले तत्त्व प्राचीन उर्दू-शायरीमें हैं ही नहीं। उसका जन्म ही मुगलिया सल्तनतके पतनकालमें होता है। अतः उसमें भी वे सब दोष आ गये हैं, जो किसी देशकी पतनोन्मुख स्थितिमें होते हैं। उर्दूके कविशिरोमणि शायर मीरोदर्दके यहाँ भी व्यथा, वेदना, आह, रुदन, निराशा, लाचारी, तड़प, पाई जाती है। इनका लक्ष्य ही हुस्नोइश्ककी शायरी है। वकील मजनूँ गोरखपुरी—"मीरोदर्दके यहाँ गिनतीके ऐसे अशआर निकलेंगे जिनमें ज़िन्दगीकी नाकामियों और मायूसियोंका बयान न हो, मगर यह बयान अमूमन एक पिन्दार (गर्व) और अहसासे विकार (इज्जतके भावों) के साथ होता है। उनकी सुपुर्दगीमें एक फातहाना अन्दाज़ होता है, और हम उनको पढ़कर थोड़ी देरके लिये अपनी सतहसे बुलन्द और बरतर हो जाते हैं। बरखिलाफ 'कायम', 'असर' वगैरह हमारी तलखी और बेज़ारीको पहलेसे कहीं ज़्यादा बढ़ा देते हैं। वह गमको राहतफिज़ा बनाना नहीं जानते। यही वजह है कि हम ज़्यादा देरतक उनकी शायरीके मुत्तहमल (साथ) नहीं रह सकते।"[1]

कायमके यहाँ उनके समकालीन—असर, ताबाँ, यकीन, बयान, बेदारकी निस्बत तलखी और मायूसी कम, संजीदगी और मतानत अधिक पाई जाती है।

मजनूँ गोरखपुरी लिखते हैं—"कायमको अधेड़ उम्रका शायर कहना शायद बेजा न होगा। मुख्तलिफ शायर उम्रके मुख्तलिफ दौरके लिये होते हैं। जवानीके शायरोंमें उस हैजान (जोश) और इज़्तराब (तड़प) की फरावानी (अधिकता) होती है, जिसको जवानीसे ताबीर करते

---

[1] नुकतए हाशिये, पृ० ६८

समझके शीशयेदिलको पटकियो ऐ बुतेमस्त !
बजाये बादा[1] लहू है इस आबगीनेमें ॥*

यह जानता मैं नही हूँ कि दिल है क्या 'क़ायम' ?
पर इक ख़लिश-सी रहे है मुदाम[3] सीनेमें ॥

दिल गँवाना था इस तरह 'कायम' !
क्या किया हाय तूने ख़ानाख़राब[4] !

ले गया ख़ाकमें हमराह अपना दिल 'कायम' ।
शायद इस जिन्सका[5] याँ कोई ख़रीदार न था ॥

न दिल भरा है न अब नम रहा है आँखोमें ।
कभू जो रोये थे, ख़ूँ जम रहा है आँखोमें ।
मुआफकतकी[6] बहुत शहरियोसे मै, लेकिन ।
वही गजाल[7] अभी रम रहा है आँखोमें ।

किसे गुलगश्तेगुलशनकी हविस है ।
असीरीका जिगरपर दाग़ बस[8] है ॥
न पूछो मुझसे गुलशनकी हकीकत ।
बरस गुज़रे कि मैं हूँ और क़फस है ॥

---

[1]शराब, [2]प्यालेमे, [3]सदैव,

*कुछ-कुछ इसी मजमूनसे लडता हुआ किसीका एक शेर और याद आया ।

हमारे शीशयेदिलको सम्भलकर हाथमें लेना ।
नजाकत इसमें इतनी है नजरसे जब गिरा टूटा ॥

[4]अभागे, [5]वस्तुका, [6]मेल-जोल बढाया,
[7]मृगनयनी, [8]पर्याप्त ।

दर्देदिल कुछ कहा नहीं जाता।
आह, चुप भी रहा नहीं जाता॥

काबा अगर्चे बिगडा तो क्या जाए ग़म है शेख़!
कुछ क़िसरे दिल नहीं कि बनाया न जायगा॥

क़िस्मतको देख टूटी है जाकर कहाँ कमन्द।
कुछ दूर अपने हाथसे जब बाम रह गया†॥

बेदिमाग़ीसे न उसतक दिलेरंजूर[1] गया।
मर्तबा इश्क़का याँ हुस्नसे भी दूर गया॥

मुझे इस अपनी मुसीबतसे है फ़राग़[2] कहाँ?
किसीसे चाहूँ कि सुहबत रखूँ, दिमाग़ कहाँ?

वे दिन गये कि उठाता था बारे निकहते गुल[3]।
है बेदिमाग़िये दिल[4] इन दिनो गिराँ[5] मुझको॥

फलक जो दे तो ख़ुदाई भी अब न ले 'कायम'
वे दिन गये कि इरादा था बादशाहीका॥

---

†आश्चर्य है कि यही शेर हू-ब-हू सौदाके दीवानमे भी मिलता है। यह शेर आमतौरपर यूँ मशहूर है।

क़िस्मत की ख़ूबी देखना टूटी कहाँ कमन्द।
दो-चार हाथ जब कि लबेबाम रह गया॥

[1]दुखी, कुम्हलाया हुआ, [2]अवकाश, [3]फूलोकी सुगन्धिका भार, [4]दिलका चिड़चिड़ापन, [5]भारस्वरूप।

हमसे मिले न आप तो हम भी न मर गये।
कहनेको रह गया ये सुखन, दिन गुज़र गये॥

फिरे ज़माना जहाँतक है हमसे या न फिरे।
किसीके फिरने न फिरनेसे क्या, ख़ुदा न फिरे॥

एक जागहपै नहीं है मुझे आराम कहीं।
है अजब हाल मेरा, सुबह कहीं, शाम कहीं॥

घुल गया आपी-आप कुछ 'क़ायम'।
क्या बला इस जवानपर आई?

बरगे गुंचा बहार इस चमनकी सुनते थे।
पै ज्यों ही आँख खुली मौसमे ख़िज़ाँ देखा॥

न कहते थे तुझे 'क़ायम' कि दिल किसीको न दे।
मज़ा कुछ इसका भला तूने ऐ मियाँ! चक्खा?

कब मैं कहता हूँ कि तेरा मैं गुनहगार न था।
लेकिन इतनी तो अक़ूबतका[1] सज़ावार न था॥

एवज़तरबके[2] गुज़िश्तोंका[3] हमने ग़म खींचा[4]।
शराब औरोंने पी और ख़ुमार[5] हम खींचा॥

पल मारते करे है इशारोंसे मुत्तहम[6]।
टुक इस सितमज़रीफ़का बोहतान[7] देखना॥

---

[1]दण्ड, कष्टका, [2]ख़ुशीके बदले,
[3]भूतकालका अथवा अपने स्वर्गासीन इष्टजनोंका, [4]दुख माना,
[5]नशेके उतारकी अवस्था, जो नशेबाजको बडी अरुचिकर होती है;
[6]अपराधी, [7]दोषारोपण।

अब तो नै गुल न गुलसिताँ है याद।
उसी मुखड़े की हर जनाँ है याद॥
आह! ए पीरेचर्ख़!! 'क़ायम' नाम।
याँ जो रहता था, इक जवाँ, है याद?

हविस है इश्क़की अहलेहवाको,[1] हम तो मियाँ।
सुनेसे नाम मुहब्बतका जर्द होते हैं[2]॥

क्यों न रोऊँ मैं देख ख़न्दयेगुल[3]।
कि हँसे था वोह बेवफा भी यूँ ही॥

कोई मुख़्तार कहो या कोई मजबूर हमें।
हम समझते हैं जहाँतक कि हैं मकदूर[4] हमें॥

न कर ग़रूर तू मुनअम[5]! कि एक गर्दिशमें।
फ़क़ीरका-सा पियाला है ताजेशाहीका॥

'क़ायम' कदम सम्भालके रख कूएइश्कमें[6]।
यह राह बेतरह[7] है मिरी जान! देखना॥

'कायम' आता है मुझे रहम जवानीपै तेरी।
मर चुके हैं इसी आजारमें[8] बीमार बहुत॥

बहारे उम्र है 'कायम' कोई दिन।
इसे ज्यूँ गुल पियारे काट हँसकर॥

ख़ुश्कोतर फूँकती फिरती है सदा आतिशेइश्क़[9]।
बचियो इस रजसे ऐ पीरोजवाँ, सुनते हो?

---

[1] शेखीबाज़ोको, [2] पीले पड जाते है, [3] फूलोंकी मुस्कराहट; [4] सामर्थ्य, [5] धनिक, [6] प्रेमपथमे, [7] भूलभुलैया, [8] रोगमे, [9] प्रेम-अग्नि।

रोजोशब[1] है हालते-अजामे-मयनोशी[2] मुझे।
किसकी आँखोंने दिया पैगामेबेहोशी मुझे?

आना है तो आ वगर्ना प्यारे।
हम आपसे[3] आज जा रहे हैं॥

आप जो कुछ करार करते हैं।
कहिये, हम एतबार करते हैं॥

चलिये 'क़ायम' कि रफ्तगाँ[4] अपना।
देरसे इन्तजार करते हैं॥

—तनकीदी हाशिए से।

वह है कौन दिन कि तेरे लिये मुझे तुझ गलीमें गुजर नहीं॥
है यह क्या सितम कि तुझे सजन! मेरी अब तईं भी ख़बर नहीं॥

गैरसे मिलना तुम्हारा सुनके गो हम चुप रहे।
पर सुना होगा कि तुमको इक जहाँने क्या कहा?

जालिम तू मेरी सादा दिलीपै तो रहमकर।
रूठा था आप तुझसे मैं और आप मन गया॥

बुतोंकी दीदको जाता हूँ दैरमें 'क़ायम'!
मेरा कुछ और इरादा नहीं, ख़ुदा न करे॥

—इन्तख़ाबियात भा० २ से

२५ जुलाई १९४९ ई०

---

[1] दिनरात,
[2] शराबके नशेकी-सी अवस्था,
[3] अपनी जानसे जा रहे हैं अर्थात् मर रहे हैं,
[4] स्वर्गस्थ।

गो तग़ाफुलसे[1] मेरा काम[2] हुआ।
पर भला तू तो नेक नाम हुआ॥

सेहतका जीमें चाव न आज़ारकी[3] हविस[4]।
नागुफ़्तनी[5] है कुछ तेरे बीमारकी हविस॥

सीखे हो किससे सच कहो प्यारे यह चाल-ढाल।
तुम इक तरफ़ चलो हो तो तलवार इक तरफ़॥
किस बातपर तेरी मैं करूँ एतबार हाय!
इक़रार इक तरफ़ है तो इन्कार इक तरफ़॥

आमादये सोख़्तन[6] हूँ इक बार।
ऐ बर्क़![7] मेरे भी आशियाँ[8] तक॥

तेरे दामन तलक ही पहुँचूँ—और
ख़ाक होनेसे कुछ मुराद नहीं॥

आशिक़ न था मैं बुलबुल! कुछ गुलके रंगोबूका।
इक उन्स हो गया था इस गुलसिताँसे मुझको॥

एक हमीं ख़ार थे आँखोंमें सभीके सो चले।
बुलबुलो! ख़ुश रहो अब तुम गुलोगुलज़ारके साथ॥

हमनशीं[9]! ज़िक्रेयार कर कुछ आज।
इस हिकायतसे जी बहलता है॥

ज़ालिम! ख़बर तो ले, कहीं 'क़ायम' ही यह न हो।
नालाँओमुतज़रब[10] पसेदीवार[11] है कोई॥

---

[1]उपेक्षासे, [2]मैं नष्ट हो गया, [3]रोगकी,
[4]अभिलाषा, [5]न कहने योग्य, [6]जलनेको आतुर,
[7]बिजली, [8]घोसला, निवासस्थान, [9]साथी,
[10]चीख़ता और तड़पता, [11]दीवारके पीछे।

तेवर बताते है कि वे इस मजिलपर किस रास्तेसे पहुँचे है[1] और किन खतरातेइश्कसे उनको गुज़रना पडा है।"

"कहते हुए डरता हूँ कि कही बेअदबी न हो। वर्ना शायद इससे इनकार करना इन्साफ न हो कि असरकी जबानमे 'मीर'से ज्यादा तलखी, तंज़ और घुलावट मौजूद है।"[2]

गर हम ही हम है आह! तो हम-हम कभू नही।
और तू ही तू है सब कहीं तो हम कहाँ नहीं ?

दिलन मुझसे 'असर' किया सो किया।
क्या कहूँ ? महरबान अपना है॥

जो सजा दीजे है बजा मुझको।
तुझसे करनी न थी वफा मुझको॥
वही मैं हूँ 'असर' वही दिल है।
अब ख़ुदा जाने क्या हुआ मुझको॥

बेवफा तेरी कुछ नही तक्सीर।
मुझको मेरी वफा ही रास नही॥

कभी दोस्ती है कभी दुश्मनी।
तेरी कौन-सी बातपर जाइये॥

सर्फेग़म,[3] हमने नौजवानी की।
वाह, क्या ख़ूब जिन्दगानी की॥

---

[1]साफ कहिये कि 'असर' भी 'मोमिन'की तरह काबेको गये मगर 'कूएबुताँ होकर'।

[2]तनक़ीदी हाशिये, पृ० ११४

[3]ग़मकी भेंट।

१६

असर

ख्वाजा पीरमुहम्मद 'असर' दर्दके छोटे भाई थे। प्रथम श्रेणीके शायर और सगीतमे पारगत थे। समवेदनशील हृदय रखते थे। ईश्वर भक्त फकीर थे। दर्दके बाद यही मसनदे दरवेशीपर आसीन हुए। 'ख्वाबोखयाल' मनसवी उनकी श्रेष्टतम कृति है। खेद है कि उनका जीवन-परिचय इससे अधिक नही मिलता। असरके वडे भाई ख्वाजा-मीर 'दर्द' सम्भवत असरके कविता-गुरु थे।

मजनूँ गोरखपुरीके शब्दोमे—"असरने अपनी तमाम उम्र ग़ज़ल-गोईमे लगादी। इश्क और वारदातेइश्क उनका मौज़ूए सुखन (कविताका विषय) था और फिर उन्होने जिस सादगी और सहूलियत, जिस दर्दमन्दी और दिलसोज़ीके साथ इन वारदातेइश्कको वयान किया है, वह उनको एक जुदागाना असलूबका मालिक माननेमें मजबूर करते है।"[1]

"असरको जज्वात (भावो)की पुख्तगीके साथ ज़वानकी पुख्तगी भी वैसी ही नसीव हुई। वे आपवीतीको जगवीती वना देते है। मुआमलातेइश्कको ऐसी वरजस्तगी और वेतकल्लुफीसे वयान करते है कि हर एक यही समझता है कि मेरे दिलकी वात कही गई है। जो वातें वे कहते है दिलको मोह लेती है।"[2]

"असर सूफी थे, ज़ाहिद थे, इवादतगुज़ार थे, लेकिन कलामके

---

[1] तनकीदी हाशिये, पृ० ६७

[2] तनकीदी हाशिये, पृ० ६६

तू न आया वले[1] 'असर'के तईं ।
मरते-मरते भी इन्तज़ार रहा ॥

शमा परवानेको जलाती है ।
साथ, पर उसके आप जलती है ॥
जीते जी तक ब-हसरतो अफ़सोस[2] ।
सरको धुनती है हाथ मलती है ॥

जीमें अपने जो है सो है प्यारे ।
फ़ायदा क्या तुझे जतानेसे ॥

राह तकते ही तकते हम तो चले ।
आइये भी कहीं जो आना है ॥
कभू मेरा भी कहना मानियेगा ।
जो कहा तूने, मैंने माना है ॥

अगर ऐसा ही अब सताइयेगा ।
ख़ैर जीता मुझे न पाइयेगा ॥
दिल हरइकसे लड़ाते फिरते हो ।
आँख तो हमसे भी लड़ाइयेगा ॥
'असर' इतना तो इल्तमास[3] करूँ ।
हर किसूकी दग़ा न खाइयेगा ॥
जानतक दो जिसे कि चाहो तुम ।
दिलको टुक देखकर लगाइयेगा ॥

बस[4] हो या रब ! यह इम्तहान कहीं ।
या निकल जाय अब ये जान कहीं ॥

---

[1] लेकिन, [2] अभिलाषा और खेदसहित,
[3] प्रार्थना, [4] समाप्त ।

आहके साथ दिल निकल न गया।
आह ! ऐ आह ! ! यह ख़लल न गया॥

इतना बतलाओ, ग़मगलत, प्यारे !
कौन-सी तेरी बातपर कीजे॥

कर दिया कुछ-से-कुछ तेरे गमने।
अब जो देखा तो वह 'असर' ही नहीं॥

दिलेपुरइज्तराबने[1] मारा।
इसी ख़ानाख़राबने मारा॥

दिलजलोंका है दिलकी लाग इलाज।
आगके जूँ जलेका आग इलाज॥

आह सारा है यह जहान ग़लत।
दोस्तीका है याँ गुमान गलत॥

जो किसीका कभू न यार हुआ।
वही किस्मतसे यार अपना है॥

बेवफाई वोह गो हज़ार करे।
याँ वफा ही शुआर[2] अपना है॥

कुछ न पूछो निपट ही मुश्किल है।
औरके हाथमें मेरा दिल है॥

राहपर उनको लगा लाये तो हैं बातोंमें।
और खुल जाएँगे दो-चार मुलाकातोंमें॥

जब कि तेरा ख़याल लाता हूँ।
सारी बातोंको भूल जाता हूँ॥

---

[1]व्यथित हृदयने, [2]स्वभाव।

असरकी मसनवीका नमूना—

कुछ न खुलता था क्या मरज़ है उसे।
आहोज़ारीसे क्या गरज़ है उसे॥
किस लिये ज़ार-ज़ार रोवे है।
किस लिये ढाढ़ें मार रोवे है॥
किस लिये बेहवास रहता है।
किस लिये यूं उदास रहता है॥
यूं जो सूखे है, क्या उसे दिक है?
या किसी शख़्सपर यह आशिक है?
हाल पूछो तो ख़ैर रोने लगे।
और उलटे ख़फीफ होने लगे॥
बिन कहे आप ही आप बकता है।
बात पूछो तो मुँहको तकता है॥
एक तो उसके जौरने मारा।
और यारोंके ग़ौरने मारा॥
आह यारब! किधर निकल जाऊँ?
दोस्त, दुश्मनको मुंह न दिखलाऊँ।
दिन कहाँ चैन, रात ख़्वाब कहाँ?
बिन तेरे आये दिलको ताब कहाँ?
नहीं आती है इन्तज़ारसे नींद।
उड़ गई है ख़यालें यारसे नींद॥
मुन्तज़िर तेरा बस कि रहता हूँ।
'कौन है' हर सदापै कहता हूँ॥
कोई हो, ले उठूं मैं तेरा नाम।
'आ भी ज़ालिम' हुआ है तकियाकलाम॥

असरकी मसनवीका नमूना—

कुछ न खुलता था क्या मरज़ है उसे।
आहोज़ारीसे क्या गरज़ है उसे॥
किस लिये ज़ार-ज़ार रोवे है।
किस लिये ढाड़ें मार रोवे है॥
किस लिये वेहवास रहता है।
किस लिये यूँ उदास रहता है॥
यूँ जो सूखे है, क्या उसे दिक है?
या किसी शख्सपर यह आशिक है?

हाल पूछो तो ख़ैर रोने लगे।
और उलटे ख़फीफ होने लगे॥
बिन कहे आप ही आप बकता है।
बात पूछो तो मुँहको तकता है॥
एक तो उसके जौरने मारा।
और यारोंके गौरने मारा॥
आह यारब! क़िधर निकल जाऊँ?
दोस्त, दुश्मनको मुँह न दिखलाऊँ।
दिन कहाँ चैन, रात ख़्वाब कहाँ?
बिन तेरे आये दिलको ताब कहाँ?
नहीं आती है इन्तज़ारसे नींद।
उड़ गई है ख़यालें यारसे नींद॥
मुन्तज़िर तेरा बस कि रहता हूँ।
'कौन है' हर सदापै कहता हूँ॥
कोई हो, ले उठूँ मैं तेरा नाम।
'आ भी ज़ालिम' हुआ है तकियाकलाम॥

ऐसेके ख़ैरख़्वाह हुए हम कि जिसको आह !
बदख़्वाहमें है फ़र्क़ न कुछ ख़ैरख़्वाहमें ॥

ग़म ही दिखलाती है सदा क़िस्मत ।
वाह अपनी बनी है क्या किस्मत ॥
जिसकी ख़ातिर सभी हुए दुश्मन ।
न हुआ दोस्त वह ही, या किस्मत !

तू ही बता बनेगी यूँ ही बात किस तरह ।
बिलफ़र्ज़ दिन कटा, पै कटे रात किस तरह ?

तुझसे न था जो कुछ कि गुमाँ सो यक़ीं हुआ ।
जो तुझसे था यक़ीं सो अब उसका गुमाँ नहीं ॥

यूँ तो क्या बात है तेरी लेकिन ।
वोह न निकला जो था गुमाँ दिलको ॥
बेगुनाहोंसे दिलको साफ करो ।
नहीं तकसीर, पर मुआफ़ करो ॥
तू मेरी जान गर नहीं आती ।
ज़ीस्त होती नज़र नहीं आती ॥
कीजे नामहर्बानी ही आकर ।
महर्बानी अगर नहीं आती ॥
हालेदिल मिस्ले शमआ रोशन है ।
गो मुझे बात कर नहीं आती ॥
नहीं मालूम दिलपै क्या गुज़री ?
इन दिनो कुछ ख़बर नहीं आती ॥
दिन कटा जिस तरह कटा लेकिन ।
रात कटती नज़र नहीं आती ॥

—निगार, जनवरी १९५०

वह घबराकर जनाजा देखने बाहर निकल आये।
किसीने कह दिया मय्यत जवाँ मालूम होती है॥

—अज्ञात

तावाँकी इस जवाँ मौतपर उर्दू-शायरीके हर तज़्करेनवीसने आँसू बहाये हैं। मीर' जैसे बद्दिमाग़ने भी जो शाज़ोनादर ही किसीकी प्रशसा करते थे, लिखा है—

दाग़ है तावाँ अलेहुर रहमताका दिलपै 'मीर'।
हो निजात उसको बिचारा हमसे भी था आश्ना॥

तावाँ किसके शिष्य थे? इसपर लोग एकमत नही है। शेफ्ता इन्हें 'सौदा'का शिष्य लिखते है। 'गुलशनेहिन्द' और 'गुलज़ारेहिन्द'के लेखक इन्हे 'मजहर' और 'सौदा' दोनोका शिष्य बताते है। मुसहफी इन्हें 'शाहहातिम' और मुहम्मदअली 'हशमत'का शिष्य प्रमाणित करते है। मीरने भी 'हशमत'को तावाँका उस्ताद तस्लीम किया है। स्वय तावाँ भी हशमतके प्रति इस प्रकार श्रद्धाका परिचय देते है—

परस्तिश क्यो न दुनियामें करें हम उसकी ऐ 'तावाँ'!
हमारा किबला हशमत, दीन हशमत, रहनुमा हशमत॥

तावाँके कलाममे मज़हर और हातमका रग झलकता है, परन्तु सौदाकी कोई खसूसियत नही पाई जाती। तावाँ इतने रूपवान और सजीले थे कि जो उन्हे देखता था गरवीदा हो जाता था। यही कारण है कि हर उस्ताद इन्हे अपना शिष्य बनानेको उत्सुक रहता था, किसी

न वहाँ कोई ज़ाहिद होगा न नासेह। न नये रगरूट होनेकी झिझक। तावाँ जैसे पियक्कड़पर यह फब्ती कौन कस सकता था?

जिनको पीनेका तरीका न सलीका मालूम।
जाके कौसरपै यकायक वोह पिएँगे क्योकर?

'ताबाँ'पर जहाँ अनेक जान फिदा किये हुए थे, वहाँ वह खुद भी एक सुलेमान छोकरेको दिल दे बैठे थे। माशूक भी किसीपर आशिक हो, तभी उसे आशिकोके हृदयमें सुलगनेवाली आगका ज्ञान होता है। आशिकोकी उपेक्षा करने, उन्हें विरह-अग्निमें जलाने-सतानेसे कितना कष्ट होता है, यह माशूक तभी जान सकता है, जब उसका भी दिल किसी पर आये। बकौल 'गालिब'—

आशिक हुए हैं आप भी इक और शख़्सपर।
आख़िर सितमकी कुछ तो मकाफात चाहिए॥

मालूम होता है 'तावाँ' असफल प्रेमी रहे, या सुलेमानने अन्ततक मुहब्बत नही निभाई। 'तावाँ' कफेअफसोस मलते हुए कहते हैं—

सुलमाँ! क्या हुआ गर तू नज़र आता नहीं मुझको।
मेरी आँखोकी पुतलीमें तेरी तसवीर फिरती है॥

तावाँ शराब बहुत पीते थे। हर वक्त नशेमे चूर रहते थे। अल्हड जवानी, कयामत ढानेवाला हुस्न, गदराया हुआ जोवन और फिर नशेमें चूर! बकौल दाग—

इस अदाका कहीं जवाब भी है?

तावाँने लोगोके समझाने-बुझानेपर शराब छोडी भी तो एक सप्ताहमें इस दुनियासे कूच कर गये[1]। उनकी इस जवान मौतपर सारे दिल्ली शहरने शोक मनाया।

(विषयासक्त मनुष्योके कौन-से गुण नष्ट नही होते? न उनमें विद्वत्ता रहती है, न मनुष्यता रहती है, न स्वाभिमान रहता है और न सत्य वचन ही रहता है।)

[1]शायद इसीलिये कि जन्नतमें कौसरपर बैठकर मनमानी पियेंगे।

अख़गरको[1] छिपा राखमें मैं देख यह समझा।
'तावाँ' तू तहेख़ाक भी जलता ही रहेगा॥

उड़ाये सबा ख़ाक मेरी अगर तू।
तो कूचेमें उस बेवफा ही के लेजा॥

आश्ना हो चुका हूँ मैं सबका।
जिसको देखो सो अपने मतलबका॥
हम तो तावाँ हुए हैं लामज़हब[2]।
मजहला[3] देख सबके मज़हबका॥

रखता था एक जी सो तेरे गममें जा चुका।
आख़िर तू मुझको खाकमें ज़ालिम मिला चुका॥
बेताबियोका इश्कमें करता है क्यो गिला।
'तावाँ' अगर यह दिल है तो आराम हो चुका॥

बेवफाओसे दिलमें है 'तावाँ'।
और सब कुछ करूँ, वफा न करू॥

है आरज़ू यह जीमें उसकी गलीमें जावें।
और ख़ाक अपने सरपर मनमानती उडावें *॥

---

[1]आगकी चिनगारीको,

[2]धर्महीन,

[3]अज्ञानता,

*एक तरफ 'तावाँ'की यह आरज़ू है, दूसरी तरफ चकबस्तकी आरजू देखिये—

'रख दे कोई जरासी खाके वतन कफनमें'

बहाने तावाँकी मुलाकातके लिये लालायित रहता था। सौदा, हातिम, मज़हर, मीर, सभी तावाँकी कविता-सशोधन करनेमें गौरव और सुख समझते थे। मज़हर तो भरी महफिलमे तावाँकी शोख़ियो और बेअदबियोसे प्रसन्न होते थे। और लोगोकी नज़रे बचा-बचाकर इन्हीको घूरते रहनमे जीवन सफल समझते थे। तावाँके कलामकी प्रशसा यूँ तो सभीने की है, परन्तु मीर जैसे ख़ुदाये-सुख़नने भी तारीफोतोसीफके दरिया बह दिये है। "नौजवाँ बामज़ाक', 'बिसयार ख़ुश फिक्र', 'शायरेख़ुशज़ाहिर', गरज़ कि क्या-क्या नही कहा है। मीरका किसीकी ज़बानेरगीको बर्गेगुल (फूलोकी पखडी)से भी पाकीज़ातर (पवित्र, कोमल) बताना कोई मामूली ख़िराजेतहसीन (कविताकी प्रशसा करना) नही है[1]।"

---

[1]तनकीदी हाशिये, पृ० १३७

तू देख मुझको नज़अमें[1] मत कुढ कि मेरे बाद।
मुझसे बहुत हैं, एक न होगा तो क्या हुआ?

अजब अहवाल है 'ताबाँ'का तेरे।
कि रोना रात-दिन और कुछ न कहना॥

हमको तुम बिन एकदम ऐ जान! जीना है मुहाल।
तुम तो होते हो जुदा लेकिन हमारा क्या इलाज?

तू भली बातसे भी मेरी ख़फा होता है।
आह! यह चाहना ऐसा ही बुरा होता है॥

—तनकीदी हाशियेसे

नहीं है दोस्त अपना, यार अपना, महर्बां अपना।
सुनाऊँ किसको ग़म अपना, अलम अपना, बयाँ अपना॥

रहता हूँ ख़ाकोखूँमें सदा लोटता हुआ।
मेरे गरीब दिलको इलाही यह क्या हुआ?
मैं अपने दिलको गुंचयेतसवीरकी तरह।
या रब! कभू खुशीसे न देखा खिला हुआ॥
नासेह! अबस[2] नसीहतें बेहूदा तू न कर।
मुमकिन नहीं कि छूट सके दिल लगा हुआ॥

जफासे अपनी पशेमाँ न हो, हुआ सो हुआ।
तेरी बलासे मेरे जीपै जो हुआ, सो हुआ॥
सबब जो मेरी शहादतका[3] यारसे पूछा।
कहा कि—'अब तो उसे गाड़ दो, हुआ सो हुआ'॥

---

[1] मृत्युसमयमे, [2] व्यर्थ,
[3] बलिदानका।

कहते है असर होगा रोनेमें, ये हैं बातें।
एक दिन भी न यार आया रोते ही कटी रातें॥

सौदामें[1] गुज़रती है-क्या ख़ूब तरह 'ताबाँ'।
दो-चार घड़ी रोना, दो-चार घड़ी बातें* ॥

मैं दिल खोल 'ताबाँ' कहाँ जाके रोऊँ।
कि दोनो जहाँमें फ़रागत नहीं है॥

बयाँ क्या करूँ नातवानी[2] मै अपनी।
मुझे बात करनेकी ताकत कहाँ है?

ग़म वस्लमें है हिज्रका, हिजराँमें वस्लका।
हरगिज़ किसी तरह मुझे आराम ही नहीं॥

किससे फरियाद करूँ मैं कि वोह हरजाई है।
आह इस बातमें मेरी भी तो रुसवाई है॥

गुल ज़मींसे जो निकलते हैं बरगेशोला[3]।
कौनजाँ सोख़्ता[4] जलता है तहेख़ाक हनूज़[5]॥

---

[1]उन्मादावस्थामें,

*यह शेर 'सौदा'-जैसे उस्तादके शेरसे हू-ब-हू लड़ गया है। मुशायरोमें ग़ज़ल पढते समय किन्ही दो शायरोका, एक ही मज़मून, एक ही जैसे शब्दोमें बाँधना कमालेशायरी समझा जाता है—

आशिककी भी कटती है क्या ख़ूब भली रातें।
दो-चार घड़ी रोना, दो-चार घड़ी बातें॥

—सौदा

[2]निर्बलता, [3]आगकी तरह, [4]दिलजला, [5]अभीतक।

२१

यक़ीन

इनामुल्लाख़ाँ 'यकीन' मिर्ज़ा 'मज़हर'के शिष्य थे। २५ वर्षकी आयुमें इन्तकाल फर्मा गये। अफसोस कि उम्रने वफा न की वर्ना मुसहफीकी राय यह थी कि मीरो मिर्जाका यकताईका दावा बाकी न रहता। ये नवाव ज़हीरुद्दीनके बेटे थे।

मुफ़्त कब आजाद करती है गिरफ्तारी मुझे।
जी ही लेके छोडेगी आख़िर यह बीमारी मुझे॥

'यक़ीं'की वाकयेकी सुन ख़बर वोह बदगुमाँ बोला—
"यह दीवाना मगर ऐसा न था बीमार, क्या कहिये?"

—इन्तक़ादियात, भा० २

न हुआ हाय 'यक़ीं'! वर्ना दिवाना होता।
आज इस तरहका देखा है परीज़ाद कि बस!

ख़ुदा देता मुझे गर मीरसामानी ख़ुदाईकी।
तो मैं इन बुलबुलोको गुलशनोका बाग़बाँ करता॥

सरीरेसल्तनतसे[1] आस्तानेयार बहतर था।
हमें ज़ुल्लेहुमासे[2] साययेदीवार बहतर था॥

---

[1]राज्यसिंहासनसे।

[2]हुमा पक्षीकी छायासे (रवायत ये है कि हुमा जिसके सरपर बैठ जाता है, वह बादशाह होता है।)

भले-बुरेकी तेरे इश्क़में उड़ादी शरम।
हमारे हक़में कोई कुछ कहो, हुआ सो हुआ ॥
न पाई ख़ाक भी 'ताबाँ'की हमने फिर ज़ालिम !
वोह एकदम ही तेरे रूबरू हुआ सो हुआ ॥

जब पान खाके प्यारा गुलशनमें जा हँसा है।
बेअख़्तियार कलियाँ तब खिलखिलाइयाँ हैं ॥

—आबेहयातसे

१० अगस्त १९४९ ई०

मेरा जो काम वफ़ा था सो हो सका न 'यक़ीं' ।
वगर्ना उसकी जफ़ामें तो कुछ क़ुसूर न था ॥

सच कहो ऐ बलबुलो ! किस बागसे आती हो तुम ?
है हमारे भी तुम्हें कुछ आशियानेकी ख़बर ?

कोई दिन और करने दो जुनूं मुझको बहारोंमें ।
अबस सीते हो इसको क्या रहा है अब गरीबाँमें ॥

शिकवा जफ़ाएयारसे करना वफ़ा नहीं ।
बन्दोको एतराज ख़ुदापर रवा नहीं ॥
काबेमें हम गये, न गया पर बुतोका इश्क़ ।
इस दर्दकी ख़ुदाके भी घरमें दवा नहीं ॥

फ़िक्र मरहमकी मेरे वास्ते मतकर नासेह !
ख़ूब होता नहीं इस इश्कका नासूर कभी ॥

नासहो ! यह भी कुछ नसीहत है ?
कि 'यक़ीं' यारसे वफ़ा न करे ॥

—निगार जनवरी ५०

११ अगस्त १९४९ ई०

बहार आख़िर[1] हुई है अब तो सीने दे ग़रीबाँको।
'यक़ीं' करता है कोई इस क़दर दीवानापन, बसकर॥

मजनूँकी ख़ुशनसीबी करती है दाग दिलको।
क्या ऐश कर गया है ज़ालिम दिवानापनमें॥

यह पूछो तो कि क्या यह सरज़मीं मजनूँका मदफन है।
चली आती हैं यासअंगेज़[2] यादें उस बयाबाँसे॥

गिरेबाँ चाक करनेसे हमारे तुझको क्या नासेह!
हमारे हाथ जानें और हमारा पैरहन[3] जाने॥

दिल छोड़ गया हमको दिलबरसे तवक़्क़ोह[4] क्या?
अपनेने किया यह कुछ, बेगानेको क्या कहिये॥

—तनक़ीदी हाशिये

ख़फ़ीफ़[5] मुझसे उलझकर अबस[6] हुआ वाइज़।
कि मैं तो मस्त था उसको भी क्या शऊर न था॥

तेरी उल्फ़तसे मरना ख़ुश नहीं आता मुझे वर्ना।
यह एसा कारेआसाँ इसक़दर दुश्वार क्यों होता?

शिकोहे हुस्नसे[7] आँसू हमारे सूख जाते हैं।
'यक़ीं' सूरजके आगे कब असर रहता है शबनमका॥

आँखसे निकले पै आँसूका ख़ुदा हाफ़िज़ 'यक़ीं'!
घरसे जो बाहर गया लड़का सो अबतर हो गया॥

---

[1]समाप्त, [2]निराशाभरी, [3]वस्त्र,
[4]आशा, [5]अपमानित, [6]व्यर्थ,
[7]सौन्दर्य्यकी आभासे।

शिकवा क्या कीजे अपनी ग़फलतका।
नाम 'बेदार' ख़्वाबमें रहना॥

कहीं-कहीं मीर-दर्दका रंग झलकता है—

देता नहीं दिल लेके वोह मग़रूर किसीका।
सच है कि न ज़ालिमपै चले ज़ोर किसीका॥
'बेदार' मुझे याद उसीकी है शबोरोज़।
नै बात किसीकी है, न मज़कूर किसीका।

हमपै सौ ज़ुल्मोसितम कीजियेगा।
एक मिलनेको न कम कीजियेगा॥
गर यही ज़ुल्फो यही मुखड़ा है।
ग़ारत दैरोहरम[1] कीजियेगा॥

किस-किसका दिल न शाद किया तूने ऐ फलक[2]!
इक मैं ही ग़मज़दा[3] हूँ कि नाशाद[3] रह गया॥
'बेदार'! राहेइश्क किसीसे न तय हुई।
सहरामें[4] कैस[5] कोहमें[6] फरहाद रह गया॥

जो अबके छोड़े मुझे ग़म तेरी जुदाईका।
तमाम उम्र न लूँ नाम आशनाईका॥

देखते ही उसके सौदा[7] हो गया।
क्या हुई 'बेदार'! वोह दानाइयाँ[8]॥

'बेदार'! छुपायेसे छुपते है कहीं तेरे।
चेहरेसे नुमायाँ हैं आसार मुहब्बतके॥

---

[1]मन्दिर, मस्जिद, [2]आस्मान, [3]सुखरहित, [4]जंगलमें, [5]मजनूँ, [6]पर्वतमें, [7]उन्माद, [8]चतुराइयाँ।

२२

बेदार

पीर मुहम्मदअली 'बेदार' दिल्लीमे उत्पन्न हुए और वही शिक्षा-दीक्षा प्राप्त की। बेदार फारसीमें फिराकके और उर्दू-शायरीमे दर्दके शिष्य थे। मौलाना फखरुद्दीनसे प्रभावित होकर फकीराना वेश-भूषामे रहते थे। बेदारकी भाषा मँजी और निखरी हुई है। उनके भावोमे भी व्यथा और टीस घुली-मिली है। बेदारके दीवानमें चारित्रिक, पारलौकिक और प्रेम सम्बन्धी यूँ तो सभी तरहके अशआर मिलते हैं; परन्तु अपने अन्य समकालीन कवियोकी तरह इनका भी मुख्य ध्येय कूचये इश्ककी सैर करना रहा है। इनकी भाषामे भी लालित्य और कोमलताका अच्छा परिचय मिलता है।

सूफियाना रग—

कुछ न एधर[1] है नै उधर तू है।
जिस तरफ कीजिये नज़र तू है॥
वह तो 'बेदार' है अयाँ[2] लेकिन।
उसके जलवेसे बेख़बर तू है॥

इस हस्तियेमौहूम[3] पै ग़फलतमें न खो उम्र।
'बेदार'! हो आगाह, भरोसा नहीं दमका॥

'बेदार' वह तो हरदम सौ-सौ करे है जलवे।
इसपर भी गर न देखे तो है कुसूर तेरा॥

---

[1]इधर, [2]प्रकट, [3]क्षणिक जीवन।

मस्त मैं तो हो गया तेरी निगहसे साकिया !
अब नहीं मुझमें रहा है और पैमानेका होश ।।

आख़िर तेरे ग़ममें मर गये हम ।
भरना था जो दुख सो भर गये हम ।।

किस-किस तरहसे हमने किया अपना जी निसार[1] ।
लेकिन गईं न दिलसे तेरे बदगुमानियाँ ।।

जो बेताबी दिलेउश्शाककी[2] बातिल[3] समझते थे ।
मेरे सीनेपै आकर इन दिनो वे हाथ धर देखें ।।

हुए हम बुतके बन्दे बिरहमनसे राह[4] करते हैं ।
हरमके रहनेवालो, तुमसे इश्क अल्लाह करते हैं ।।

दश्तमें कर चलनेकी तदबीर होना हो-सो-हो ।
तोड दीवाने तू अब ज़जीर होना हो-सो-हो ।।

मौत आजाये कहीं इस दिले शैदाईको ।
रोज समझाये कहाँतक कोई सौदाईको[5] ।।

आती है बात-बातपर हरदम ।
रंजिशें दरम्यान क्या कीजे ?

न जाने क्या तुझे उल्फत थी गुलसे ऐ बुलबुल !
कि अपने जीसे गई, पर चमनसे तू न गई ।।

पटकने दे मुझे सर उसके आस्तानेसे ।
ख़बर करूँ हूँ मैं अपनी इसी बहानेसे ।।

---

[1]न्यौछावर, [2]आशिकके दिलकी, [3]झूठी, [4]मेलजोल, [5]पागलको ।

२८

हसरत

मिरज़ा जाफरअली 'हसरत' लखनऊके थे और रायसरूपसिंह 'दीवाना' के शिष्य थे। दो दीवान छोडे है। 'जुरअत' और 'हसन' इन्हीके शिष्य थे। इनका कलाम पाकीज़ा होता था और ज़बानकी सफाई और मौज़ूनीए तरकीबके लिहाज़से खास पायेका।

ख़ुदा हाफिज़ है क्यो महफिलमें उसका नाम आता है।
तडपनेसे मेरे दिलको अभी आराम आया था॥

बहारें हमको भूलीं, याद है इतना कि गुलशनमें।
गिरेबाँचाक करनेका[1] भी एक हगाम[2] आया था॥

यह भी इक सितम था कि ख्वाबमें मुझे अपनी शक्ल दिखा गये।
कभी नींद बरसोमें आई थी सो वे इस तरहसे जगा गये* ॥

यह शेर तो उनका ज़र्बुल मिसल हो गया है—

तुम्हें ग़ैरोसे कब फुरसत हम अपने ग़मसे कब ख़ाली।
चलो बस हो चुका मिलना, न तुम ख़ाली न हम ख़ाली॥

—इन्तक़ादियात, भा० २

---

[1]कपडे फाडनेका, [2]समय।

*मुझको न इन्तज़ारमें नींद आये उम्रभर।
आनेका वादा कर गये आये जो ख्वाबमें॥

—ग़ालिब

२६

हिदायत

हिदायत अल्लाखाँ 'हिदायत' भी 'दर्द'के शिष्य थे।

जी तो करता नहीं कूचेसे तेरे जानेको।
गर तेरी इसमें ख़ुशी है तो चला जाता हूँ॥

भला बता तो मेरी जान! कुछ 'हिदायत'ने।
तुम्हारे जौरसे शिकवा कभी किया होगा?
मगर यही ना कि बेअख़्तियार होके कभी।
कुछ और बस न चला होगा, रो दिया होगा॥

—इन्तकादियात, भा० २

नातवानीका[1] भी अहसाँ है मिरी गर्दनपर।
कि तेरे पाँवसे सर मुझको उठाने न दिया॥

वोह क्या करे कि मुहब्बतका मक़्तज़ा[2] है यही।
वगर्ना फ़ायदा उसको मेरे सतानेसे?

शबेहिजराँमें तेरे, सुबहके होते-होते।
इस्तख़्वाँ[3] शमअ़सिफ़त[4] बह गये रोते-रोते॥

—दीवानेदर्द

---

[1]निर्बलताका, [2]तकाज़ा, [3]हड्डियाँ, [4]मोमबत्तीकी तरह।

सुराग़[1] पूछूँ मैं क्या अश्को-आहका दिलसे।
कि इस दयारसे हो कितने काफिले निकले॥

जिगरके ज़ख़्मोको जाना था भर चले 'हसरत'।
ख़राशे नाख़ुने ग़मसे[2] वोह सब छिले निकले॥

दिलको ले आये थे उस कूचेसे होकर हम ख़फा।
पर दिलोजाँ हमपै अब मिलकर बला लाये बहुत॥

रोना नहीं जो यारो अपना दयार छूटा।
मरना है यह कि हमसे अब कूए यार छूटा॥
गर रजे राह खींचा तो कुछ अलम नहीं है।
है यह अलम कि हमसे वोह रहगुज़ार छूटा॥
—निगार, अगस्त १९४९

तेरा तो तब एतबार कीजे।
जब होवे कुछ एतबार अपना॥

ऐ दिल अगर तड़पना तेरा यही रहेगा।
काहेको तू जियेगा, काहेको जी रहेगा॥

भूलता ही नहीं, वोह दिलसे उसे।
हमने सौ-सौ तरह भुला देखा॥

कल किसीने जो कहा मरता है आशिक़ तेरा।
हँसके ग़ैरोंकी तरफ, कहने लगा "और सुना?"॥

देखते ही शमअको जाता है परवानेका होश।
आह! पर रहता है क्योंकर उसको जल जानेका होश?
—निगार, जुलाई १९४९

---

[1]खोज। [2]ग़मरूपी नाख़ूनोंके कुरेदनेसे।

३१

हज़ीं

मीर मुहम्मद 'हज़ीं' मज़हरके शिष्य थे और दिल्ली छोडकर अज़ीमाबादमें नवाब साहबके पास चले गये थे।

हाल ऐ कासिद ! मेरा जो कुछ कि तू जाता है देख।
इस तरहसे उससे मत कहियो कि वह महजूब[1] हो ॥

कुछ कहा शायद उसने क़ासिदसे ।
दिलमें मेरे धोह इज़्तराब[2] नहीं ॥

हर नसीहत मैं तेरी मानूँगा ऐ नासेह ! पर एक।
दिलबरोंके देखनेमें जी मेरा नाचार है ॥

—तारीख़े अदबे उर्दू

१५ अगस्त १९४९ ई०

---

[1]शर्मिन्दा, [2]बेचैनी।

३०

फ़िराक़

हकीम सना उल्लाह 'फिराक' भी दर्दके मशहूर शिष्य थे।

दिल थामता कि चश्मपर करता तेरी निगाह।
साग़रको देखता कि मैं शीशा सम्हालता॥

गो दर्देसरए नासेह ! है गर्दिशे पैमाना।
पर हमको तो सन्दल है ख़ाकेदरे मयख़ाना॥

असीरोकी कसम तुझको, सबा ! सच कह कि गुलशनमें।
कोई उन हमनवाओंमें[1] मुझे भी याद करता है ?

—दीवानेदर्द

---

[1]साथियोंमे।

यहाँ भी दुर्भाग्यने साथ न छोड़ा और इन्हे फिर दिल्ली छोडकर लखनऊ जाना पडा। सौभाग्यसे इस बार लखनऊमे मिर्ज़ा सुलेमान शिकोहकी सरकारमे इनकी पहुँच हो गई और धीरे-धीरे इनकी धाक बैठ गई। लखनऊमें इनके अनेक शिष्य हो गये और मिर्ज़ा सुलेमान भी अपना कलाम दुरुस्त कराने लगे। किन्तु—

पिनहाँ था दामेसख़्त क़रीब आशियानेके,
उड़ने न पाये थे कि गिरफ़्तार हम हुए॥

'इशा' और 'जुरअत'के पहुँचनेपर फिर इन्हे दुर्भाग्यने आ घेरा। उनकी शोख़बयानी, चुलबुली तबियत, मसख़रे स्वभाव और भाण्डपनेके सामने इनकी शायरी दबकर रह गई। ढोल-ताशोके आगे बुलबुलके नग्मे किसको सुनाई देते? बकौल 'अकबर'—

तुमसे उस्तादोमें मेरी शायरी बेकार है।
साथ सारगीका बुलबुलके लिये दुश्वार है॥

लाचार मुसहफीको भी अपना रग बदलना पडा, और इस पिंजरेके सुग्गेको वह सब बोल बोलने पडे जो पिंजरेवाला और लखनऊका बहुमत चाहता था। जो मुसहफी दिल्लीमें इस तरहके नग्मये पुरदर्द छेडता था—

तेरे कूचे इस बहाने मुझे दिनसे रात करना।
कभी इससे बात करना, कभी उससे बात करना॥

कभू तकके दरको खडे रहे, कभी आह भरके चले गये ᳵ
तेरे कूचेमें अगर आये भी तो ठहर-ठहरके चले गये॥

कुंजे क़फसमें हम तो रहे 'मुसहफी' असीर।
फ़स्लेबहार बाग़में धूमें मचा गई॥

उत्तरार्द्ध युगके ज़िन्दादिल शायर—

३२

मुसहफ़ी

ग़ुलाम हमदानी 'मुसहफी'के पिता शेख वलीमुहम्मद अमरोहेके रहनेवाले थे, किन्तु मुसहफी युवावस्थामें ही शाहआलम बादशाहके शासन-कालमे दिल्ली आ गये थे। वचपनसे ही शिक्षाकी ओर रुचि थी और शेरोसुखनका स्वाभाविक शौक था। अत' मुसहफी दिल्ली-जैसे शायरीके केन्द्रमें आकर अभ्यास करते-करते अच्छे शायरोमें गिने जाने लगे। यह मीर, दर्द, सौदा और सोज़ जैसे वयोवृद्ध ख्यातिप्राप्त अनुभवी शायरोका युग था। अत मुसहफीपर भी इन सवकी छाप पडी। ये भी देहलवी वजह-क़तहके सोलह आने पावन्द हो गये। इनकी शायरीमें भी उक्त उस्तादोका रंग झलकने लगा; परन्तु इन दिनों मुग़लशासनका सूर्य अस्त हो रहा था और दिल्ली उजडती जा रही थी। धीरे-धीरे मीर, सौदा, सोज़ वग़ैरह जैसे बाकमाल उस्ताद दिल्ली छोड चुके थे। केवल 'दर्द' अपने पहलूमें दर्द छुपाये पडे रह गये थे। जव अहले देहली और ख्याति-प्राप्त शायर दिल्ली छोडनेपर लाचार हो गये, तव मुसहफी तो आखिर परदेशी थे, कवतक टिकते और क्या खाकर दिल्लीमें रहते? मजबूरन इन्हें भी दिल्ली छोडनी पडी।

मुसहफी दिल्लीसे टाण्डा (ज़िला फैज़ावाद) गये और वहाँ 'क़ायम' चान्दपुरीके अनुग्रहसे नवाव मुहम्मदयारखाँके दरवारमें मुलाज़िम हुए, किन्तु नवावी शासनके पतनके वाद इन्हें टाण्डा भी छोडना पडा। टाण्डेसे लखनऊ गये, परन्तु वहाँ भी न जम सके और दिल्ली वापिस चले आये।

द्वन्द्विताका थपेड़ा खाकर हिजोका रूप धारण कर बैठी। मुसहफी बेचारा वयोवृद्ध और शुद्ध कलाकार इशा–जैसे मसखरे और शोख तबियतके सामने कबतक ठहरता ? मौलाना आज़ादके शब्दोमे—

"इशाने बहुत-सी जटिल और फहाश हिजो ऐसी कही कि जिनका एक-एक मिसरा हज़ार कमची और चाबुकका तडाका था।"[1]

यह पारस्परिक प्रतिद्वन्द्विता और हिजोबाज़ी दरबारतक ही सीमित न रही, अपितु यह नवाबी साँड बाज़ारोमे भी घूम-घूमकर लडने लगे। पहले मुसहफीके शिष्य शोहदोका स्वाँग बनाकर बाज़ारोमे इशाकी हिजो कहते हुए उनके घर पहुँचे। फिर इशाने इसके जवाबमे एक बारात निकाली। कुछ लोग हाथियोपर थे, कुछ डडे बजाते हुए हिजो कह रहे थे, कुछके हाथमें गुड्डे-गुडिया थे। दोनोको लडाते जाते थे और यह पढते जाते थे—

स्वाँग नया लाया है देखना चर्खेकुहन।
लड़ते हुए आये है मुसहफी और मुसहफन[2]॥

इन मार्कोमें मिर्ज़ा सुलेमान शिकोहने और अधिकाश अमीरोने इशाका साथ दिया, क्योकि इशा अपनी रगीन मिज़ाजी और लखनवी रगमे सराबोर होनेके कारण हर दिल अज़ीज़ बने हुए थे। एक बार तो इन लोगोने शहर कोतवालसे कहकर मुसहफीके जवाबी स्वागको रूकवा भी दिया था। इस हरकतसे मुसहफीको जो आघात पहुँचा, वह उन्होने इस तरह व्यक्त किया है—

जाता हूँ तेरे दरसे कि तौकीर[3] नहीं याँ।
कुछ इसके सिवा अब मेरी तदबीर नहीं याँ॥

---

[1]आबेहयात, पृ० ३२४ [2]मुसहफीकी स्त्री,
[3]इज्ज़त।

मुसहफी— मै अजब यह रस्म देखी मुझे रोजे ईदे क़ुर्बां।
वही जिबह भी करे है वही ले सवाब उलटा ॥

इशा— तोड़ूँगा ख़ुमे बादयेअगूरकी[1] गरदन।
रख दूँगा वहाँ काटके इक हूरकी गरदन ॥

मुसहफी— सर मुश्कका[2] है तेरा तो काफूरकी गरदन।
ने मुएपरी[3] ऐसे न यह हूरकी गरदन ॥

इशा— तब आलमेमस्तीका मजा है कि पडो हो।
गरदनपै मिरी उस बुते मख़मूरकी[4] गरदन ॥

मुसहफी— इक हाथमें गरदन हो सुराहीकी मजा है।
और दूसरेमें साक़िये मख़मूरकी गरदन ॥

इशा— परतौसे चाँदनीके है सहने बाग़ ठडा।
फूलोंकी सेजपर आ, करदे चिराग़ ठडा ॥

मुसहफी— पीरीसे हो गया यूँ इस दिलका दाग़ ठडा ॥
जिस तरह सुबह हुइये करदे चिराग़ ठडा ॥

इशा— मयकी सुराही ऐसी ला वर्फमें लगाकर।
जिसके धुएँसे होवे साक़ी ! दिमाग़ ठडा ॥

मुसहफी— सरगरमेसैरे[5] गुलशन क्या ख़ाक हो कि अपना।
नजलेसे हो रहा है आपही दिमाग़ ठडा ॥

यही गजलें फिर धीरे-धीरे हिजोका रूप लेने लगी। गरदनवाली गजलमे मगरूरकी गरदन बँधते-बँधते लगूरकी गरदन बँधने लगी। एक दूसरेकी गजलोमें दोष निकाले जाने लगे। धीरे-धीरे यही गजले प्रति-

---

[1]अगूरकी शराबका घडा, [2]कस्तूरीका, [3]परीके बाल,
[4]मदोन्मत्तकी, [5]सैर करनेमें व्यस्त।

गूंजते थे, पहले दिल्लीसे फिर लखनऊ से। इन्ही नग्मोकी नरम आँच 'आतिश' व दीगर शागिर्दानेमुसहफी-ओ-आतिशकी शोलानवाइयाँ बन गई। मुसहफीके नग्मोकी पखडियोने वोह दाग बेल डाली कि नासिख और खान्दानेनासिखतक शायरोने उनसे फूल और कलियाँ चुनकर अपने दामन भर लिये। 'अनीस'के मरसियो, सलामो और रुबाइयोमे ज़बान जिस तरह साँचेमे ढली हुई है, उनके मिसरोकी नरम रवी, बयानकी रगीनी और निखार हमे मुसहफीकी याद दिलाते है। 'शाद' अज़ीमाबादी-के बहुतसे अशआर और मुतअद्दद गजले सूबे बिहारके वे शायर जो वहाँके मज़ाकेसुखनके नुमाइन्दे कहे जा सकते है, सब हमे इसी रगे तबीयत, इसी जमालयाती मिज़ाजकी याद दिलाते है, जिसकी पहली रगारग झलकियाँ मुसहफीने दिखाई थी। 'अमीर' और उनके शागिर्द और शागिर्दोके शागिर्द तो खान्दाने मुसहफीसे मुत्तलिक है, अगर्चे कभी ज्यादा कभी कम।"[1]

"मीर और मुसहफीमे वही फर्क है जो दोपहर और गरूबेआफतावके वक्तमे पाया जाता है। जिस तरह शामको अफताबमें सातो रग झलकने लगते है, उसी तरह रगीनफिज़ामे वह खारजीयत निखरती और सँवरती है, जिसकी झलक मुसहफीकी शायरीमें मिलती है। अगर हम सगीतके इस्तआरेको काममे लाये तो यूँ कह सकते है कि मुसहफीके नग्मोमें वही दिलफरेब कैफियत पैदा हो गई है, जो आवाज़में पत्ती लग जानेसे पैदा होती है।"[2]

"बाज़ ज़मीनोमे 'इशा' और 'मुसहफी'की गज़लें है, मगर इशाकी शोखी और गरमागरमी इतनी बेपनाह चीज़ है कि 'मुसहफी' दब जाता है; लेकिन यह रग मुसहफीके शायानेशान भी न था, इसलिये वह इशाकी तरह खुल खेलनेसे माजूर था। 'गालिब' और 'अनीस' मामूली

---

[1]अन्दाज़े, पृ० ८९, [2]अन्दाज़े, पृ० ३९-४०

ऐ 'मुसहफी' ! बेलुत्फ है इस शहरमें रहना ।
सच है कि कुछ इंसानकी तौक़ीर नहीं यां ॥

किन्तु जबर्दस्त मारे और रोने न दे । अत मुसहफीने तुरन्त मिर्ज़ा शिकोहकी खुशामदमें ४१ शेरोका एक कसीदा पढा । जिसमें अपनेको अत्यन्त तुच्छ और निरीह बताते हुए मिर्ज़ा शिकोहको आस्मानपर बिठाने-का प्रयत्न किया है ।

मुसहफी उर्दू-शायरीके दुराहेपर खडे हुए है । वे दिल्ली और लख-नऊकी दो भिन्न धाराओके अकेले प्रतीक है । एक तरफ उन्होने मीर, सौदाका अन्तिम युग देखा था । दूसरी ओर जुरअत और इशाके मार्कोमे हिस्सा ले रहे थे । उनके कलाममें जहाँ मीर, सोज़, दर्द और सौदाकी व्यथा मिलती है, वही इशा और जुरअतकी रगीनियाँ भी ।

"मुसहफीका यह दुर्भाग्य था कि उन्हें इशा और जुरअत जैसे भाँडोंसे पाला पडा । जहाँतक शायरी और उसकी फितरतका सवाल है, मुसहफी और इशामें कोई मुनासबत नही ।"[1]

"मुसहफीके कलाममें उस शोहदेपनका शायबा बहुत कम है, जिसकी जुरअत वगैरहके यहाँ बहुतायत है । इनकी शायरी खालिस शायरी है । इनके अन्दर जितनी नज़ाकतें और लताफतें और जितनी रगीनियाँ मिलती हैं, उनकी ज़बान और तर्ज़ेअदामें जो सजावट और तरहदारी होती है, वह सब उनके ज़ौक़ेशायरी और मुतायलेका नतीजा है । . . मुसहफ़ी उर्दूके पहले शायर है, जिन्होंने गज़लके अशआरमें रग और फिज़ाका अहसास पैदा किया ।"[2]

"मुसहफीके नग्मे अबसे पौने दो सौ बरस पहले हिन्दुस्तानकी फिज़ामें

---

[1]तनकीदी हाशिये, पृ० १७८

[2]तनकीदी हाशिये, पृ० १९३-१९४

असरसे बचकर हम अपने दिलकी धडकनोको इशा और मुसहफीकी हमतरह गज़लोसे हमआहग करने (सुर मिलाने)की कोशिश करें तो 'इशा' साज़ेबेआहग (बेसुरा साज़) होकर रह जायगा और मुसहफी साजे ब-आहग (सुर मिला हुआ साज़) साबित होगा। इशा हमारे तखैय्युली समाअत (कल्पना रूपी कानो)को तशफ्फी (सन्तोष) नही बख्शता और मुसहफी सामअनवाज़ी करता (मधुर कविता सुनाता) है।"[1]

"बहरहाल लखनऊकी ज़बान वज़ह करनेमे मुसहफीका खास हिस्सा है। मुसहफी एक खास बातमे तमाम उस्तादोसे बढे हुए है। यानी जो सफाई और रवानी (प्रवाह) उनके कलाममे है, वह मीर, सौदा, जुरअत और इशा किसीके कलाममे नही पाई जाती।"[2]

नियाज़ फतहपुरीके शब्दोमे—"मुसहफी अपनी हमागीर तबियतके लिहाज़से सौदा थे, मगर तगज्जुलमें यकीनन सौदासे बुलन्द मर्तबा रखते थे। मुश्किल बहरोमें बगैर किसी तकल्लुफके बहतरीन अशआर निकालना उनकी खसूसियत थी, और पुरगोई (अधिक कहने)का यह आलम था कि बावजूद हजारो गजले फरोख्त कर देनेके आठ दीवान अपने बाद छोड गये है। माना कि हुकूमतेवक्त (तात्कालीन शासको)ने इनकी कद्र न की, लेकिन लखनऊकी शायरी हमेशा इनकी ज़ेरबारे अहसान रहेगी, क्योकि बादके जितने नामवर शायर हुए है, वे सब मुसहफीके शागिर्द या शागिर्दोके शागिर्द थे।"[3]

मुसहफी ७६ वर्षकी आयुमे समाधिको प्राप्त हुए।

---

[1]अन्दाज़े, पृ० ७४-७६

[2]अन्दाज़े, पृ० ८७

[3]इन्तकादियात भा० २, पृ० ११८

लोग न थे; लेकिन अनीस, गालिबके अन्दाज़मे एक गज़ल भी नही कह सकते थे, और न गालिब अनीसके अन्दाज़में मरसिये कह सकते थे। इनमेंसे कोई एक दूसरेका रग उडाना चाहता तो मुँहकी खाता। गज़ल ही को ले लीजिये। 'ग़ालिब' ज़राफत, शोख़ी, और तजके बादशाह है; लेकिन 'दाग'के चचल रगमें 'गालिब'से भी गज़ल न होती और 'दाग'से 'गालिब'की शोखी न निभती। इसलिये अगर 'मुसहफी' वोह शोखी व तर्रारी न दिखा सके जो 'इशा'के लिये मखसूस थी, तो हम यह नही कह सकते कि 'मुसहफी' किसी तरह भी 'इशा'से कम थे। यह बात याद रहे कि बडे-से-बडा शायर इसलिये बडा नही है कि वह अपने रगमें लासानी है या निहायत कामयाब है, बल्कि इसलिये भी बडा है कि वह दूसरेके रगमें कहनेसे माज़ूर है। हकीकी शायरीमे कुछ माज़ूरियाँ भी शामिल होती है। शायर बहरूपिया नही होता। 'इशा' और 'मुसहफी'की जो हमतरह गज़ले मिलती है और जिनमें 'इशा' और 'मुसहफी'ने अपने-अपने रगको कामयाबीसे निभाया है, उन्हे देखकर यह कहना पडता है कि 'इशा'की गज़लें अपनी जगहपर है और मुसहफी-की अपनी जगहपर। हरचन्द कि 'मुसहफी'के कलाममें तरन्नुम, सलासत और रगीनी सब कुछ है और ज़बानके मामलेमें भी 'मुसहफी'को 'इशा'-पर तफव्वुक हासिल है और मानवियत (अर्थकी गहराई)में तो वोह इशासे कोसो आगे है, लेकिन इसको क्या कहा जाय कि सतही बल्कि बाज़ारी जज़्बात भी ज़ोरेबयान और जोशेबयानसे निखर आते है और यही एक आँचकी कसर 'मुसहफी'के बयानको पूरी तरह निखरने नही देती। बात यह है कि 'मुसहफी' और 'इशा'की उन गज़लोका एक साथ फैसला करना ऐसा ही है, जैसा कुदरती फूलो और आतिशबाज़ीके फूलोका मुकाबिला करना। इशाकी शायरी हमारे वजदान (जाननेकी शक्ति)की ज़ाहिरी सतहको ले उडती है, और हममें मुत्तासिर (प्रभावित) होनेकी सलाहियत ही नहीं रह जाती, लेकिन इन

अब तो इस दर्दे दिलकी ताब नहीं।
'मुसहफी' कुछ दवा किये ही बने॥

ख़्वाब था, या ख़याल था, क्या था?
हिज्र था, या विसाल था, क्या था?
जिसको हम रोजे हिज्र समझे थे।
माह था या वो साल था, क्या था?
'मुसहफी' शब जो चुप तू बैठा था।
क्या तुझे कुछ मलाल था, क्या था?

यादे अय्याम बेकरारिये दिल।
वह भी यारब! अजब ज़माना था॥

हम समझे थे जिसको 'मुसहफी'! यार।
वह ख़ाना ख़राब कुछ न निकला॥

प्यार तो आया था मेरे जीमें रात।
पर मैं तेरी वजहसे डरकर[1] गया॥

चली भी जा जरसे ग़ुचाकी सदा[2] पै नसीम!
कहीं तो काफिलये नौ बहार ठहरेगा॥

हादसे[3] होते हैं ज़मानेमें।
इस कदर इनक़लाब किस दिन था?[4]

---

[1]डर गया काफी था यहाँ 'कर' व्यर्थ है, परन्तु उन दिनों यह जायज़ था।

[2]कलीके चटख़नेकी आवाज़। [3]घटनाएँ,

[4]मसाइब और थे पर दिलका जाना।
अजब इक सानहा-सा हो गया है॥ —मीर

देख उसको इक आह हमने करली।
हसरतसे निगाह हमने करली॥

क्या जानें कोई कि घरमें बैठे।
उस शोख़से राह हमने करली।
दी जब्तमें जबकि 'मुसहफी' जान।
शर्म उसकी गवाह हमने करली॥

कभू तकके दरको खडे रहे, कभू आह भरके चले गये।
तेरे कूचेमें जो हम आये भी तो ठहर-ठहरके चले गये[1]॥

हम तो उस कूचेमें घबराके चले आते हैं।
दो कदम जाते हैं, फिर जाके चले आते हैं॥
वोह जो मिलता नहीं, हम उसकी गलीमें दिलको।
दरोदीवारसे बहलाके चले आते हैं॥

खींचकर तेग़ यार आया है।
इस घडी सर झुका दिये ही बने[2]॥
यारका सुवहपर है वादये वस्ल।
एक शब और भी जिये ही बने॥

---

[1]होगा किसू दीवारके सायेमें पड़ा 'मीर'।
क्या काम मुहव्वतसे उस आरामतलबको॥

कहता था किसीसे कुछ, तकता था किसीका मुंह।
कल 'मीर' खडा था यां,सच है कि दीवाना था॥

[2]अभी हूँ मुन्तज़िर जाती है चश्मेशौक़ हर जानिब।
बुलन्द उस तेग़को होने तो दो, सर भी झुका लेगा॥

दामनकी एक झपकने मदहोश कर दिया है।
मिसले चिराग़ हमको ख़ामोश कर दिया है॥

तुम रात वादा करके जो हमसे चले गये।
फिर तबसे ख़्वाबमें भी न आये, भले गये॥

पुकारता है तुझे 'मुसहफी' जवाब तो दे।
खड़ा रहे यह तेरे आस्ताँपै, या फिर जाय?

हैरान है किसका, जो समन्दर—
मुद्दतसे रुका हुआ खड़ा है॥

तू देखते ही उसको जो दीवाना हो गया।
सच कहियो 'मुसहफी' तेरे क्या जीमें आगई॥

उठने लगे जो वोह मेरी बालींसे[1] वक़्तेनज़अ[2]।
निकला यही ज़बानसे आहिस्ता "क्या चले?"

मुलजिम तेरी बातोंसे हमें आप ही होना।
और तुझको किसी बातमें इलज़ाम न देना॥

ऐ 'मुसहफी'! अफसोस कहाँ था तू दिवाने?
कल उसके तईं हमने अजब आनमें देखा॥

जब कोहोबयावाँमें जा हमने कदम मारा।
फरहाद न कुछ बोला, मजनूँने न दम मारा॥

कल उसे मैं ले चला था सैरे गुलशनकी तरफ।
कुछ समझकर साथसे मेरे वह टलकर रह गया॥

---

[1]सिरहानेसे,

[2]मृत्युके वक़्त।

भटका फिरा हूँ तेरी दिल इक अदाका मारा ।
कह किस तरफको जाये अब यह खुदाका मारा ?

जुम्बिशेलबने[1] तिरी मेरी ज़बाँ करदी बन्द ।
तूने कुछ पढ़के अजब मुझपे यह मन्तर मारा ॥

'मुसहफी' कहते हैं राहेइश्कमें मारा पडा ।
कौन जाने क्या हुई इस बेवतनकी सरगुज़िश्त[2] ॥

क्या यारके दामनकी ख़बर पूछो हो हमसे ?
यां हाथसे अपना ही गिरेबान गया था ॥

शमये शबेफिराक बने हम तो 'मुसहफी' ।
हम दिलजलोंको इश्ककी महफिलसे क्या ग़रज़ ?

वही ठोकर है और वही अन्दाज़ ।
अपनी चालोंसे तू न आया बाज़ ॥

जिस बयाबाने ख़तरनाकमें अपना है गुज़र ।
'मुसहफी' काफिले उस राहमें कम निकले हैं ॥

बिन देखे जिसको पलमें आँखें भर आइयाँ हों ।
क्या कहर है जो उससे बरसों जुदाइयाँ हों ॥

एक दिन रोके निकाली थी मैं वाँ कुल्फतेदिल[3] ।
आजतक दामनेसहरा है ग़ुबारआलूदा[4] ॥

मैं तेरे वास्ते सर पटकूं हूँ दीवारोंसे ।
चैन किस तरह तुझे खानाख़राब आता है ॥

---

[1]ओष्ठ-कम्पनने, [2]हालत ।
[3]दिलकी भड़ास, [4]धूल-धूसरित

आस्तीं उसने जो कुहनीतक चढाई वक़्ते सुबह ।
आरही सारे बदनकी बेहिजाबी हाथमें ।।

मुझे रहम आये है हसरतपै आह ! उस मुर्ग़ बेपरकी ।
कि उड़ सकता न हो और हो ब-ज़ेरेआशियाँ[1] बैठा ।।

हसरतपै उस मुसाफिरे बेकसके रोइये ।
जो थकके बैठ जाता हो मंजिलके सामने ।।

तुझे किसने रोक रक्खा तेरे जीमें क्या यह आई ?
कि गया तू भूल ज़ालिम इधर इल्तफात[2] करना ।।

जब कि तू उसमेंसे झाँके है सितारोकी तरह ।
जगमगाती है तेरे गुरफेकी[3] जाली, क्या ख़ूब ?

हमसायगीपर[4] यारके क्या दिलको ख़ुश करूँ ।
मुझसे तो ह खिचा[5] वोह हयादार बेतरह ।।

कहाँ तलक फिरें उडते इधर-उधर सैयाद !
तेरे ही नज्र हैं अब ले यह मुश्तेपर[6] सैयाद !!

जो हाथ दिलबरोके दामनको खींचते थे ।
वे खिचके रह गये है कैसे कफनके अन्दर ।।

देखा था एक दिन कहीं उस गुलको बाग़में ।
आवारये चमन है नसीमो-सबा हनूज़[7] ।।

---

[1]घोसलेके नीचे, [2]कृपा-कटाक्ष, [3]खिडकीकी, [4]पडोसी होनेपर, [5]नाराज [6]मुट्ठीभर पख; [7]अभीतक ।

'मुसहफ़ी' ! हम तो ये समझे थे किहोगा कोई ज़ख्म ।
तेरे दिलमें तो बहुत काम रफ़ूका निकला ॥

तू गया प्यारे सफ़रको, छोड़कर मेरे तईं ।
रफ़्ता-रफ़्ता मैं तेरे जीसे बिसरकर रह गया ॥

शबे हिजरां थी, मैं था, और तनहाईका आलम था ।
ग़रज़ उस शब अजब इक बेसरोपाईका आलम था ॥

हुस्न उसका अब समां कुछ और दिखलाने लगा ।
चाँद-सा परदेसे वोह मुखड़ा नज़र आने लगा ॥
या वोह आलम था कि कोई उससे वाकिफ भी न था ।
या यह आलम है कि आलम उसपै मर जाने लगा ॥

कभी जो यूँ भी मिले तुम तो महर्बानी है ।
ग़रज वह वस्लका वादा तो दरकिनार रहा ॥
मिले न आके कभी 'मुसहफ़ी'से तुम अफसोस ।
उमीदवार तुम्हारा उमीदवार रहा ॥

भीगेसे तेरा रंगेहिना और भी चमका ।
पानीमें निगारीं[1] कफ़ेपा[2] और भी चमका ॥
जूँ-जूँ कि पड़ी मुँहपै तेरे मेंहकी बूँदें ।
जूँ लालयेतर[3] हुस्न तेरा और भी चमका ॥

दिल ले गया है मेरा वह सीमतन[4] चुराकर ।
शरमाके जो चले है सारा वदन चुराकर ॥

---

[1]चमकीला, [2]तलवा, [3]लालेके ताज़ा फूलकी तरह ।
[4]शुभ्रवदनी,

अब कहाँ हम, कहाँ वोह कुंजेक़फस ।
कोई दिन वाँ भी आबोदाना था ॥

मत मेरे रगे ज़र्दका चर्चा करो कि याँ ५
रग एकसा किसीका हमेशा नही रहा ॥

तुझे ऐ मुसहफी ! क्या है ख़बर दर्देमुहब्बतकी ।
न ऐ बेदर्द मेरे सामने ले नाम दरमाँका[1] ॥

सदमे सौ दिलपै हुए हमने न जाना क्या था ।
हायरे जौक ! वोह उल्फतका जमाना क्या था ॥

कहता न था मै ऐ दिल ! जाना न उस गलीमें ।
आख़िर तू मुझपै आफत ख़ाना ख़राब लाया ॥

फलक गर हँसाता है मुझपर किसीको ।
मै हँसकर फलककी तरफ देखता हूँ ॥

क्या करें जाके गुलसिताँमें हम ।
आग रख आये आशियाँमें हम ॥

छुपाया तुमने मुँह ऐसा कि बस जी ही जला डाला ।
तगाफुलने तुम्हारे ख़ाकमें हमको मिला डाला ॥

हरगिज़ वोह दस्तो बाज़ू हिलते कभी न देखे ।
जो तीर उसने मारा सो बेगुमान मारा ॥

मुहब्बतमें सादिक यह अगयार ठहरे ।
हम इक बात कहकर गुनहगार ठहरे ॥

—तनक़ीदी हाशिये

१० जुलाई १९४९ ई०

---

[1] इलाजका ।

जीमें आता है कि बोसा कफेपाका[1] ले लूँ।
रंग होटोंपै तेरे ताजा हिनाका ले लूँ॥

तुम्हारे वादोंपै हमको तो अब नहीं ठहराव।
मगर[2] नया कोई उम्मीदवार ठहरेगा॥

सोया था लिपटकर मैं उस साथ, वले[3] उसने।
पहलूसे मेरे पहलू तासुबह जुदा रक्खा॥

किसीको गर्मिये तकरीरसे अपने लगा रक्खा।
किसीको मुँह छुपाकर नर्मिये आवाज़से मारा॥

इश्कसे मेरे जो घबराया तो फिर नाचार हो।
आके घर मेरे वोह मुझको आप समझाने लगा॥

अँगडाई लेकर अपना मुझपर ख़ुमार डाला।
काफिरकी इस अदाने बस मुझको मार डाला॥

जमनामें कल नहाकर जब उसने बाल बाँधे।
हमने भी अपने दिलमें क्या-क्या ख़याल बाँधे॥

तू दरको शौक़से रख बन्द पर न इतना भी।
कि आवे जो कोई, वोह होके बदगुमाँ फिर जाय॥

कहता था वोह शब डालके बाहोंको गलेमें।
गर्दनपै तेरे हैं कई अहसान हमारे॥

—अन्दाजेसे

ओ दामन उठाके जानेवाले।
टुक हमको भी ख़ाकसे उठाले॥

---

[1]तलवेका, [2]शायद, [3]लेकिन।

वलका सही उपयोग न करके व्यर्थके मसखरेपन और इधर-उधरकी बातोमे व्यतीत कर दिया। आजादके शब्दोमे इशाकी गजलोके दीवानमे—"अजब तिलिस्मातका आलम है। जबानपर कुदरते कामिल, बयानका लुत्फ, मुहावरोकी नमकीनी, तरकीबोकी खुशंनुमा तराशे, देखनेके काबिल है, मगर यह आलम है कि अभी कुछ है अभी कुछ है। जो गजले या गजलोमे अशआर बाउसूल हो गये, वे ऐसे है कि जवाब नही, और जहाँ तबियत और तरफ जा पडी, वहाँ ठिकाना नही, गजलोमे फिर उसूलकी पाबन्दी नही।"[1]

इशा मुशायरेमे या दरबारमे जाते तो एक तरफ आदाबे माकूलियतसे सलाम किया। एक तरफ मुस्करा दिया, एक तरफ मुँह चिडा दिया। कभी दिल्लीके बाँके, कभी आधी दाढी मुडा ली, कभी भवे साफ करा ली। इसमें शक नही कि किसी जलसेमे इशाका आना, भाँडके आनेसे कम न था। मुसहफीने कुछ झूठ नही कहा—

वल्लाह कि शायर नहीं तूँ भाण्ड है भड़वे[2]।

[1]आबेहयात, पृ० २७१

[2]आबेहयात, पृ० २८३

३३

इंशा

[१८१७ ई०]

सैयद इशा अल्लाखाँ 'इशा' इसमें शक नही कि बलाके ज़हीन थे, और दुनियाकी ऐसी कोई बात नही, जिसे वे शेरमे न कह सकते थे। परन्तु गजल जिस चीज़का नाम है, वह उनके हिस्सेमे न आ सकी। भाग्य वेशक बहुत अच्छा था कि नवाव सआदतअलीखाँकी नज़रोमे चढ गये, और मुसहफी-जैसे उस्तादकी कुछ न चली।[1]

इशा मुर्शिदाबादमे उत्पन्न हुए और शाहआलम बादशाहके शासन-कालमें दिल्ली आये और अपने चातुर्य्य तथा मसखरेपनके कारण सबपर छा गये। दरबारी और बाहरी शायरोसे बडी नोक-झोक रखते थे। शाहआलमके मुफलिस होनेपर नवाव आसफुद्दौलाके शासनकालमें लख-नऊ चले गये और वहाँ भी मिर्ज़ा सुलेमान शिकोह (शाहआलम बादशाहके पुत्र)के दरबारमे प्रभाव जमा लिया। यहाँ मुसहफी-जैसे योग्य उस्ताद पहलेसे विद्यमान थे, परन्तु इशाने इन्हे नीचा दिखाकर इनका स्थान हथिया लिया। और शनै-शनै वहाँसे सआदतअलीखाँके दरबारमें पहुँच गये और वहाँ बडा गौरव प्राप्त किया, किन्तु नवावके दिलमे इनकी ओरसे बाल आ गया और अन्त समय इनका अत्यन्त निर्धनतामें व्यतीत हुआ।

इशा विद्वान और चतुर थे, किन्तु खेद है कि उन्होंने अपनी बुद्धि-

---

[1]इन्तकादियात भाग २, पृ० ११६

३४

जुरअत

शेख कलन्दर अलीबख्श 'जुरअत' के पिता हाफिज़ अमान दिल्ली-निवासी थे। और इनके पूर्वज बादशाही सल्तनतमे दरबानीका कार्य्य करते थे। नादिरशाही हमलेके बाद ये लोग फैज़ाबाद आ गये और यही जुरअतका लालन-पालन हुआ। मौलाना आज़ाद लिखते हैं—

"मियाँ जुरअतकी खुशमिज़ाजी, लतीफागोई, मसख़रेपनकी हदमे गुज़री हुई थी, और उस वक्तके हिन्दुस्तानके अमीरोको न इससे ज़रूरी काम था, न इससे ज्यादा कोई नेअमत। मिर्ज़ा कतील, सैयद इशा और शेख जुरअतका यह हाल था कि घरमे रहने न पाते थे। आज एक अमीरके यहाँ, दूसरे दिन दूसरे अमीर आये और सवार किया और साथ ले गये। ४-५ दिन वहाँ रहे। कोई और नवाब आये, वहाँसे वे ले गये। जहाँ जायें, आरामोआसाइशसे ज्यादा ऐशके सामान मौजूद। रात-दिन कह-कहे और चहचहे। एक बेगम साहिबाने घरमे उनके चुटकले और नक़ले सुनी। बहुत ख़ुश हुई, और नवाब साहबसे कहा—"हम भी बाते सुनेंगे, घरमे लाकर खाना खिलाओ।" परदे या चिलमने छुट गईं। अन्दर वे बैठी और बाहर जुरअत बैठे। चन्द रोज़के बाद खासखास बीबियोका बरायेनाम परदा रहा। बाकी घरवाले आमनेसामने फिरने लगे। रफ्ता-रफ्ता यगानगीकी यह नौबत हुई कि आप भी बाते करने लगी। घरमे कोई दादा, नाना, कोई मामू-चचा कहने लगी। जुरअत-की आँखे दुखनी आईं तो चन्द रोज़ ज़ोफेबसर (क्षीण-दृष्टि)का बहाना करके ज़ाहिर किया कि आँखे माज़ूर (बेकार) हो गई। मतलब यह

यह अपनी चाल है उफ़्तादगीसे[1] अब कि पहरों तक ।
नज़र आया जहाँपर सायए दीवार, बैठे हैं ॥

कहाँ सब्रोतहम्मुल[2]? आह ! नंगोनाम क्या शै है ?
मियाँ ! रो-पीटकर इन सबको हम यकबार बैठे हैं ॥

नजीबोंका[3] अजब कुछ हाल है इस दौरमें यारो ।
जहाँ पूछो यही कहते हैं, "हम बेकार बैठे हैं" ॥

भला गरदिश फलककी चैन देती है किसे 'इंशा' !
गनीमत है कि हमसूरत यहाँ दो चार बैठे हैं ॥

१४ जुलाई १९४९

---

[1] निर्बलतामें, [2] सन्तोष, [3] कुलीन मनुष्योंका ।

जो मैंने कहा उससे दिखा मुझको रुख़ अपना, बस दे न अज़ीयत[1] ।
तो क्या कहूँ किस शक्लसे झुँझलाके वह बोला, "तू देखेगा सूरत ?"
दिल देके अजब हम तो मुसीबतमें फँसे हैं, इक परदानशीको ।
नै जानेका घर उसके है मकदूर[2] हमारा, नै रहनेकी ताकत ॥
गर ख़्वाबमें देखे मुझे तो चौंक उठे और, फिर मून्दे न आँखें ।
आवाज़ जो मेरी-सी सुने तो वही घबरा, खाने लगे दहशत ॥

—आबेहयातसे

आये जो मेरे पास तो मुँह फेरकर बैठे ।
यह आज नया आपने दस्तूर निकाला ॥

ख़ुदा जाने करेगा चाक किस-किसके गरीबाँको ?
अदासे उनका चलनेमें उठा लेना यह दामाँको ॥

क्या जानिये कमबख़्तने क्या हमपै किया सहर[3] ।
जो बात न थी माननेकी मान गये हम ॥

शब उसने तोड़कर मोतीके सुमरन[4] मुझसे गिनवाये ।
दिखाया वस्लमें आलम नया अख़्तरशुमारीका[5] ॥

चाहकी चितवन मेरी, आँख उसकी शरमाई हुई ।
ताड़ ली मजलिसमें सबने, सख़्त रुसवाई हुई ॥

—इन्तख़ाबियात भा० २से

वह गया उठकर जिधरको मैं उधर हैरान-सा ।
उसके जानेपर भी कितनी देरतक देखा किया ॥

---

[1]तकलीफ, [2]सामर्थ्य,
[3]जादू, [4]मालाके दाने,
[5]तारे गिननेका ।

आँखोंकी राह निकले हैं क्या हसरतोंसे जी।
वह रूबरू जो अपने दमेंवापिसीं[1] नहीं॥

याद आता है तो क्या फिरता हूँ घबराया हुआ।
चंपई रंग उसका और जोबन वोह गदराया हुआ॥
बेसबब जो मुझसे है वोह शोलाखू[2] सरगर्मेजंग[3]।
मैं तो हूँ हैराँ कि ये किसका है भड़काया हुआ?
नोंकेमिजगाँ[4]पर दिलेपजमुर्दा[5] है यूँ सरनगूँ[6]।
शाखपर झुक आये है जूं फूल मुरझाया हुआ॥
जाऊँ-जाऊँ क्या लगाई है, अजी बैठे रहो।
हूँ मैं अपनी जीस्तसे[7] आगे ही उकताया हुआ॥

यह वफा की मैंने तिसपर, मुझे कहते बेवफा हो।
मेरी बन्दगी है साहब, यह मिला खिताब उलटा॥

इस ढबसे किया कीजिये मुलाकात कहीं और।
दिनको तो मिलो हमसे, रहो रात कहीं और॥

जब यह सुनते हैं कि हमसाये[8] हैं आप आये हुए।
क्या दरोबाम पै हम फिरते हैं घबराये हुए॥

जुज़बेकसी-ओ-यास[9] नहीं है कोई जिस जा, है अपनी वोह तुरबत।
अफसोस करे कौन बजुज़ दस्तेतमन्ना,[10] हूँ कुश्तये हैरत[11]॥

---

[1]मृत्युके समय;
[2]गुसैल
[3]लड़नेको उद्यत,
[4]पलकोंके बालोंपर,
[5]मुरझाया दिल,
[6]नतमस्तक,
[7]जिन्दगीसे,
[8]पड़ोसमें;
[9]मजबूरी और निराशाके सिवा,
[10]अभिलाषा रूपी हाथके सिवा;
[11]अचम्भेका मारा हुआ।

खारजी अन्दाजकी थी। उन्होंने गजलमें एक बिल्कुल दूसरी धुन अख्तियार की थी—यानी मुआमलाबन्दी और अदाबन्दी। उर्दूमें अन्दाज़, अदा और मुआमलेकी शायरी (Poetry of Behaviour) जुरअतसे शुरू होती है। लखनवी दबिस्ताने शायरीके बानी दरअसल जुरअत थे।[1]"

१७ जुलाई, १९४९

---

[1]तनक़ीदी हाशिये, पृ० १८०

जुरअतके कलाममें तगज्जुलके अच्छे शेर भी कहीं-कहीं नज़र आते हैं—

वाँ से आया है जवाबे ख़त कोई सुनियो ज़रा।
मैं नहीं हूँ आपमें, मुझसे न समझा जायगा॥

जब तलक करते रहे मज़कूर[1] उसका मुझसे लोग।
जी में कुछ सोचा किया मैं और दिल धड़का किया॥

मुल्केदिल मेरा सदा सुनसान ही रहता है आह!
सब नगर बसते हैं या रब! इस नगरको क्या हुआ॥

ख़ाक हो जाना दिले सोज़ाँका[2] क्या आता है याद।
ख़ाक होते देखते हैं, जब किसी अख़गरको[3] हम॥

लोग सब कहते है इस बीमारे गमको क्या हुआ?
जानते हम भी नहीं हैं यह कि हमको क्या हुआ॥

दिल है जबतक इश्क से इन्कार कर सकते नहीं।
पर, जो वोह पूछे है तो इकरार कर सकते नहीं॥

यारो कहो हरबार न कुछ कानमें अपने।
क्या जानें कि हम बैठे है किस ध्यानमें अपने॥

पड़े है बज़्ममें जिस शख़्सपर निगाह तेरी।
वोह मुंहको फेरके कहता है "उफ पनाह तेरी"॥

मकतूबाते नियाज़, भाग २, पृ० ६६

"जुरअत गज़लगो जरूर थे, लेकिन उनकी गजलसराई तमामतर

---

[1]ज़िक्र, [2]दग्ध हृदयका, [3]चिनगारीको।

ये दो बार आसफुद्दौला और ग़ाज़ीउद्दीन हैदरके शासनकालमे लखनऊ भी गये थे । ७६ वर्षकी आयुमे समाधि पाई ।

ज़ब्ते गिरिया[1] तो है, पर दिलमें जो इक चोट-सी है ।
क़तरे आँसूके टपक पड़ते हैं दो-चार हनूज़[2] ॥

था जीमें कि दुश्वारिये हिज्र[3] उससे कहेंगे ।
पर जब मिले कुछ रंज-ओ मुहन[4] याद न आया ॥

यूँ मूरिदेजफा[5] इसी तकसीर[6] पर हुए ।
अहलेवफा थे हम, यह हमारा क़ुसूर था ॥

फकत रंज ही हम तो खींचा किये ।
गलत है कि राहत है मेहनत के बाद ॥

दस्तो पा गुमकरदा[7] 'रासिख' हम तुम्हें पाते हैं आह !
दिल कहाँ खो बैठे साहब ! तुम हुए मफ्तूँ[8] कहाँ !

आने में सदा देर लगाते ही रहे तुम ।
जाते रहे हम जानसे, आते ही रहे तुम !

कुछ न समझे गये किसू से तुम ।
बारे इतना तो हमने समझा है ॥

फस्ले गुल लाई शगूफे तो बहुत पर तुम बिन ।
दिल ही तसवीरके गुंचेकी तरह वा न हुआ[9] ॥

---

[1]आँसू रोकना, [2]अब भी, [3]विरहकी कठिनाई,
[4]कष्ट [5]अत्याचारके प्रेरक,
[6]दोष; [7]हाथ पैर खोए हुए;
[8]प्रेमासक्त, [9]खिला नही ।

३५

रासिख़

शेख ग़ुलामअली 'रासिख' अज़ीमाबाद (बिहार) के निवासी थे। ये 'मुसहफी' के समकालीन और उनसे दो वर्ष बड़े थे। प्रारम्भमे इन्होने मशवरये शेरो सुख़न 'फिदवी' से लिया और जब कलाममे पुख्तगी आगई तो उनसे इसलाह लेना छोडकर, परोक्षरूपमें 'मीर'के शिष्य बन गये। मीरसे कोई साक्षात् परिचय या पत्र व्यवहार नही था, किन्तु उनका कलाम पढकर उनका अनुसरण करने लगे, उनको अपना उस्ताद मानकर उनके रगमे गज़ल कहने लगे। कलाममें निखार और विकास हुआ तो अपनेको मीरसदृश[1] समझने लगे और मीरकी मृत्युके बाद फख्रिया फर्माया--

> है 'मीर' गुजिश्ताके वदल हज़रते 'रासिख़'।
> अब उनको सलामत रखे अल्लाह तआला॥

और आगे चलकर तो वे मीरसे अपनी तुलना करना भी कसरे शान समझने लगे थे। हालाँ कि कहाँ मीर, कहाँ रासिख?

> 'शफाई' और 'नज़ीरी' का है वदल 'रासिख़'।
> यह उसका फख़्र नहीं गर 'नज़ीर' 'मीर' हुआ॥

---

[1]प्रोफेसर अताउल्लारहमानने दिसम्बर १९५० के 'निगार' मे 'मीर' और 'रासिख' का तुलनात्मक कलाम दिया है।

हविस

नवाव मिर्जा मुहम्मदतकीखाँ 'हविस' 'मुसहफी'के शिष्य थे। फैजावादके रहनेवाले थे, परन्तु लखनऊमे शिक्षा-दीक्षा प्राप्त की थी। इनकी कवितामे 'मीर'की कविता-जैसा ग्रानन्द ग्राता है।

शग़ले शबे तनहाई[1] किससे कहें हम ग्रपना।
दो-चार घडी रोकर वहलाते हैं ग़म ग्रपना॥

ग्राशिक तो था 'हविस' कहो दीवाना कव हुग्रा।
लो उठ गया हिजाव, वडा ही गजब हुग्रा॥

ग्रा चुका था साफ मेरे सामने वोह बेहिजाब।
कुछ यूँ ही इक शर्मका परदा-सा हाइल[2] हो गया॥

---

[1]विरहरात्रि काटनेका उपाय, [2]वीचमे ग्रा गया।

मरना उस बिन कि जीते रहना।
'रासिख' ! कहो क्या करार पाया ॥

मत पूछ कुछ मुझ से हाल मेरा।
हैरतजदा क्या बयाँ करेगा ॥

यही कह-कहके मारा अपने बीमारे मुहब्बतको।
"कि तू मरनेसे डरता है, बहुत जी तुझको प्यारा है ॥"

नहीं होशवालो पै कुछ हसद मुझे रश्क है तो उन्हीं पै है।
जिन्हें तेरे जलवेके सामने मेरी तरह बेखबरी रही ॥

काश मख़सूसेयकनिगह[1] होती।
क्यो तजल्लीएयार[2] आम हुई ॥

१८ दिसम्बर, १९५०

---

[1]एक दर्शकके लिए सुरक्षित,
[2]प्रेयसीकी सौन्दर्य्य-छटा।

३८

रगीन

सआदतयारखाँ 'रगीन'के पिता तूरानसे आकर लाहौरमें मुलाजिम हुए। फिर लाहौरसे नौकरी छोडकर दिल्ली आये और यहाँ पेशगाहे सुलतानीसे सात हजारीका पद और महकमुद्दौला ऐतज़ाद जगबहादुरका खिताब इनायत हुआ। 'रगीन' सरधनेमे उत्पन्न हुए थे। जवाँ होनेपर लखनऊमें मिर्ज़ा सुलेमान शिकोहकी नौकरीमे चले गये। ये बहुत अच्छे घुडसवार और सैनिक थे। हैदराबाद दकनमे निजामकी सेनामें तोप-खानेके अफसर भी रहे, परन्तु वहाँसे त्यागपत्र देकर स्वतत्रतापूर्वक घोडो-का व्यापार करने लगे थे। 'इशा'के वडे गहरे मित्र थे।

जवानीकी चौखटपर पाँव रखनेसे पहले ही शायरीमे दामन उलझा चुके थे। 'मीर' जैसे ख्यातिप्राप्त उस्तादका शिष्य बननेकी अभिलाषा थी, किन्तु मीर पुट्ठेपर हाथ कब रखने देते थे?[1] लाचार 'रगीन'

---

[1] "'मीर' साहबके पास १४-१५ बरसकी उम्रमें 'रगीन' बडी शानो-शौकतसे गये और गजल इसलाह (सशोधन)के लिये पेश की। सुनकर कहा—"साहबजादे! आप खुद अमीर है, अमीरजादे हैं। नेजाबाज़ी, तीरन्दाज़ीकी कसरत कीजिये। शहसवारीकी मश्क फरमाइये। शायरी दिलखराशी और जिगरसोज़ीका काम है। आप इसके दरपै न हो।" जब रगीनने बहुत इसरार किया तो फरमाया कि "आपकी तबियत इस फनके मुनासिब नही। यह आपको नही आनेका। ख्वाहमख्वाह मेरी और अपनी औकात ज़ाया करनी क्या ज़रूरी है?" आबेहयात, पृ० २१८

३७

शहीदी

करामतअली 'शहीदी' अब्दुलरसूलखाँके पुत्र और बाँसबरेलीके रहनेवाले थे, किन्तु लखनऊमे अधिकतर रहे। 'मुसहफी'के शिष्य थे। मदीनेकी यात्रामे परलोक सिधारे। इनकी कवितामें भी व्यथा, पीडा काफी पाई जाती है। नातिया (धार्मिक) गज़लें लिखनेमें काफी ख्याति पाई। आशिकाना गज़लें भी खूब कहते थे।

आम है उसके तो अलताफ़[1] 'शहीदी' सबपर।
तुझसे क्या ज़िद थी, अगर तू किसी क़ाबिल होता॥

अन्दोहेदायमीमें[2] कटे किस ख़ुशीसे ग़म।
गर मुझको ग़म न हो तरबे गाह-गाहका[3]॥

कर चुके नीम निगहपर मेरे दिलका सौदा।
न ख़रीदो, यह अभी और भी अरज़ाँ होगा॥

रहम आता है मुझे इस नौजवानीपर तेरी।
ऐ 'शहीदी'! रात-दिनका रंजोग़म अच्छा नहीं॥

१६ जुलाई, १६४६

---

[1]कृपायें, [2]स्थायी दुखमें,
[3]कभी-कभीकी ख़ुशीका।

लिबासको तरजीह देने लगा। रगीनके शेर क्या थे, मानो कोक शास्त्रके श्लोक थे। भला इसे शेर क्योकर कहिये—

चली वाँसे दामन उठाती हुई।
कडको कडेसे बजाती हुई॥

रगीनके मिज़ाजमें रडीबाज़ीसे जो शोहदापन आ गया था, उसने रेख्ताको छोडकर रेख्ती इसलिए ईजाद की कि भले आदमियोकी बहू-बेटियाँ पढकर मश्शाक हो और यह उनके साथ अपना मुँह काला करे। भला यह कलाम क्या है?

ज़रा घरको रगींके तहकीक़ करलो।
कि याँसे है कै पैसे डोली कहारो॥

मर्द होकर कहता है—

कहीं ऐसा न हो कम्बख़्त "मै मारी जाऊँ।"[1]

तारीख़े अदबे उर्दूका योग्य लेखक कहता है—"इस किस्मके शेर जज़्बाते नफ्सयाती वरअगेख़्ता करने (कामवासना सम्बन्धी विचारोको भडकाने) की गरज़से कहे जाते थे, और इसी वजहसे वोह निहायत फहाश (अश्लील) और मख़रूबे अख़लाक (चरित्रको नष्ट करनेवाले) और शुरफा (भले मनुष्यो) के कानो तक को नागवार होते थे। ऐसी कुल चीज़े जो औरतोके पढनेके काबिल नही होती, गैरमुहज्ज़ब (असभ्य) और फहाश (अश्लील) होती है। खुदाका शुक्र है कि यह सनफे शायरी ज़मानेके साथ बहुत बदल गई है, और तकरीबन अब मतरूक (अव्यवहृत) है।[2]

८० वर्षकी आयुमे रगीन परलोक सिधारे।

---

[1]आबेहयात, पृ० ११०

[2]तारीख़े अदबे उर्दू, पृ० २८

शाह हातमके शिष्य हुए। फिर मुहम्मदअ्मान 'निसार'से सशोधन लेने लगे, और शायद 'मुसहफी'से भी कुछ दिनो सशोधन लिया।

रगीनको भ्रमणका अत्यन्त व्यसन था। अत्यन्त रगीन और आशिक मिज़ाज थे। धनी और हसीन भी थे। इसलिए बकौल लेखक तारीख़े अदवे उर्दू—"ज़िन्दगी निहायत ऐशोइशरतसे परियोके जमघटेमें गुज़ारते थे"।[१] इनकी निम्न रचनाएँ मिलती हैं—

१—मसनवी दिलपज़ीर—इसमें शाहज़ादा माहेजबी और रानी श्रीनगरकी कहानी दो हज़ार शेरोमे है।

२—ईजादेरगी—यह एक अश्लील मसनवी है।

३—मसनवी मज़हरउलअजायब—इसमें हिकायतें हैं।

४—मजालिसेरगीन—इसमे तत्कालीन शायरोका परिचय है।

५—फरसनामा मुसन्नफ—इसमें घोडोकी पहचान और इलाज है।

६—चार गज़लोके दीवान—१ दीवानेरेख़्ता, २ दीवानेबेख़्ता, ३ दीवाने आमेख़्ता और ४ दीवाने अगेख़्ता। तीसरे दीवानमें हज़लियात (अश्लील कविताएँ) हैं और शैतानकी प्रशसामे एक कसीदा है। चौथा दीवान रेख़्तीका है। इसकी भूमिकामे रगीनने स्त्रियोंके विशेष-विशेष मुहाविरे उनके पारिभाषिक शब्दोके अर्थ और बाज़ारी औरतोकी बोल-चालके नमूने दिये हैं, और फिर रेख़्ती गज़ले हैं।

भाग्यका खेल देखिये कि एक सुलझा हुआ सैनिक तलवार और नेज़ेके हाथ दिखाते-दिखाते किस जालमे फँस गया! जिसके तीर बेख़ता होते थे, वही बाज़ारू औरतोकी नज़रोसे घायल हो गया! जिसकी आवाज़में सिहोकी गरज होनी चाहिए थी, वही ज़नानी बोली बोलने लगा! जिसके जिस्मपर कभी जिरहबख़्तर ज़ेब देता था वही ज़नाने

---

[१]तारीख़े अदबे उर्दू, पृ० २३८

छुपके मिल मुझसे दुगाना,[1] तेरे वारी जाऊँ ।
मुफ्तमें ऐसा न हो मैं कहीं मारी जाऊँ ।।

यह मुनासिब नहीं 'रगीं' कि मैं अपने घरतक ।
शहरमें करती हुई नाला-ओ-जारी[2] जाऊँ ।।

तू आज न आवे तो लहू पीवे हमारा ।
तुझ बिन नहीं कुछ सैर शबेमाहकी, गुइयाँ[3]।।

जुदी उससे भला कबतक रहूँ मैं ।
बुरी उससे भला कबतक रहूँ मैं ।।

इलाही करे निकले तालूमें गिलटी ।
यह जैसी जवाँ तुमने खोली कहारो ।।

मुझको रोता देखकर बोली दद्रा[4] "जारी[5] न कर—
तेरे सदके होके मैं मर जाऊँ, जी भारी न कर ।।"

जोफ़ने 'रगीं' किया मेरा यह हाल ।
दिलमें आकर इश्कका जो घर हुआ ।।

फाँसकी मानिन्द दम खटके है आह !
साँस भी लेना मुझे दूभर हुआ ।।

१८ अगस्त, १९४९

---

[1]सहेली, [2]रोती, चिल्लाती,
[3]सहेली, [4]नौकरानी,
[5]रो नहीं ।

'रंगीन' और 'इंशा'का 'दीवानेरेख़्ती' अश्लीलताका भंडार है। उसमेंसे एक भी शेर देने योग्य नहीं है, परन्तु प्रसंगवश कुछ-न-कुछ उल्लेख करना आवश्यक है। इसीसे बाध्य होकर कुछ नमूने इस तरहके दिये जा रहे हैं, जिनमें कम-से-कम अश्लीलता है—

अब आठ पहर तुझसे माँगूँ हूँ दुआ यह मैं।
बन्दीको पड़े हूका 'रंगीं'की न चाहतका॥

सोच इसका न हो गर मुझको तो फिर किसको हो?
जानती तू नहीं क्या पाँव है भारी[1] अन्ना॥

आज लश्कर वोह सिधारा यह कहा क्यों अन्ना?
तूने गुल्ली-सी यह क्या छातीमें मारी अन्ना॥

होनी जो होवे सो हो बन्दी मिलेगी शर्ती[2]।
वस्लकी उससे जबाँ अब तो मैं हारी अन्ना॥

टके तिसपै मोती है बेरब्त दाने।
यह उस जूतेवालेके सर मार जूता॥

या रब! शबेजुदाई तो हरगिज़ न हो नसीब।
बन्दीको यूँ जो चाहे तो कोल्हूमें पेल डाल॥

बाजी! न कर नसीहतेबेजा जले है दिल।
है आग-सी जो सीनेमें उसको कुटेल डाल॥

ख़ुदा जाने कि हाथापाई कर किससे लड़ी कूका[3]।
कि उसने चूड़ियाँ की अपनी चकनाचूर मेलेमें॥

---

[1]गर्भवती है, [2]अवश्य, [3]दाईकी लड़की।

अर्वाचीन युग

[दौरे मुताख़ख़रीन]

आये भी लोग, बैठे भी, उठ भी खडे हुए।
मै जा ही ढूँढता तेरी महफिल मे रह गया ।।

—आतिश

कैदे हयात, बन्देगम, अस्ल मे दोनो एक है।
मौतसे पहले आदमी गमसे निजात पाये क्यो ?

—ग़ालिब

पूर्वार्द्ध

लखनवी शायर

नवाब गाज़ीउद्दीन हैदर और वाजिदअलीशाह
शासनकालीन ई० स० १८१५ से १८५७ तक

देहलवी शायर

बहादुरशाह 'ज़फर' शासनकालीन ई० स० १८३८ से १८५७ तक

उत्तरार्द्ध

ई० स० १८५७ से १९०० तक



६० अमजदअलीशाह
६१ वाजिदअलीशाह
६२-७४ लखनऊकी बेगमात

देहलवी शायर

७५ शाहनसीर
७६ ज़ौक
७७ मोमिन
७८ गालिब
७९ ममनूने
८० आज़ुर्दा

उत्तरार्द्ध

लखनवी शायर

८१ असीर
८२ अमानत
८३ कलक
८४ ज़की
८५ दरख्शा
८६ तसलीम
८७ अमीर मीनाई
८८ जलाल
८९ निज़ाम
९० जावेद

देहलवी शायर

९१ ज़फर
९२ आज़ाद
९३ दाग
९४ शेफ्ता
९५ तसकीन
९६ नसीम
९७ सालिक
९८ ज़हीर
९९ अनवर
१०० हाली
१०१ मज़हर
१०२ जकी
१०३ रख्शा

अर्वाचीन युगपर सिंहावलोकन

ग़ज़ल, शायरीपर वातावरण और व्यक्तित्वका प्रभाव,
देहलवी और लखनवी शायरीमें अन्तर,
नासिख़ और आतिश

पूर्वार्द्ध

लखनवी शायर

लखनऊके नवाब शायर

सिंहावलोकन

गज़ल—

जिस प्रेममे कामवासना निहित हो, उस प्रेमविषयक कविताको गज़ल कहते है। माँ-बाप, भाई-बहन, पत्नी-सन्तान और इष्ट-मित्रोसे भी प्रेम होता है, किन्तु ये सब व्यक्ति गज़लके उपयुक्त पात्र नही है। जिस व्यक्तिके देखने-सुनने और स्मरण करनेसे काम-वासना उदित हो, उसके सम्बन्धमे अपने मनोभावोको जिस कवितामें प्रकट किया जाय, केवल उसी कविताको गजल कहते है। ईश्वर-भक्ति, देश-प्रेम, कौटुम्बिक-स्नेह, आध्यात्मिक या दार्शनिक विचार, प्राकृतिक वर्णन, सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक-स्थिति आदिका वर्णन गज़लका विषय नही[1]।

गज़लका शाब्दिक अर्थ है इश्किया अशआर, औरतोसे बाते

---

[1]अल्लामा नियाज़ फतेहपुरीके शब्दोमे--"जिस मुहब्बतका ताल्लुक गज़लगोईसे है, वोह मखसूस है उस जज्बेसे, जो जिन्सी कशिश व ख्वाहिशसे पैदा होता है। मुहब्बत माँ, भाई, औलाद वगैरह अहबाबसे भी होती है, लेकिन इसमें से कोई गज़लका मौजू नही। इसका ताल्लुक सिर्फ ऐसे फर्दसे होता है, जिससे इन्सानमे जिन्सी हैजान पैदा हो सकता है। बाज़ अहबाबको मैने कहते हुए सुना है कि अलावा जिन्सी मुहब्बतके एक चीज़ ज़हनी व रूहानी मुहब्बत भी है जिसे Intellectual love कहते है। लेकिन मैं इसको महज़ शायरी समझता हूँ, और इसका गज़लगोईसे कोई वास्ता नही। गज़लका ताल्लुक मेरे नज़दीक सिर्फ उन जज़बाते मुहब्बतसे है, जो इस गोश्त-पोस्तकी दुनियामे गोश्त-पोश्तसे

बादशाह और नवाब शायर

दिल्ली दरबार
लखनऊ दरबार
हैदराबाद दरबार
रामपुर दरबार
टाँडा दरबार
फर्रुख़ाबाद दरबार
अज़ीमाबाद दरबार
मुर्शिदाबाद दरबार
टोंक दरबार
अलवर दरबार

अब हम ऐसे कामुक प्रेमीको 'आशिक', उसकी प्रेमासक्तिको 'इश्क' और उसकी प्रेयसीया प्रेम प्यारेको 'माशूक' या, हबीब कहेंगे।

इश्क तो मनुष्य क्या, पशु-पक्षी भी कर सकते है, और उसका इज़्हार भी अपनी योग्यतानुसार सभी कर सकते है, परन्तु जैसे हर कोई शिल्पकार, चित्रकार, कलाकार नही हो सकता, उसी प्रकार हर मनुष्य गजलगो नही हो सकता। यूँ तो अध्ययन और परिश्रमद्वारा प्रत्येक कलामें निपुणता प्राप्त की जा सकती है, किन्तु उसमे कमाल हासिल करनेके लिए व्यक्तिकी प्रकृति, झुकाव, विकास, स्वभाव, निजी रुचि और व्यक्तित्वकी भी आवश्यकता निहायत जरूरी है। महात्मा गाधी और रवीन्द्रनाथ ठाकुरके साथ पढे हुए हज़ारो छात्रोमे से कितने उनके समरूप बने? द्रोणाचार्यसे शस्त्रशिक्षा सीखनेवाले कौरवों-पाण्डवोमे से अर्जुनके अतिरिक्त एक भी द्वितीय अर्जुन न बन सका, और एकलव्यका निजी रुझान इस ओर था तो वह द्रोणाचार्यसे शिक्षा प्राप्त किये बिना ही अर्जुन-जैसा शब्दभेदी बाण चलानेमे प्रवीण हो गया।

उस्तादोकी अनुकम्पा, निजी परिश्रम और अभ्याससे अनेक शायर हुए है, और होते रहेगे। अपने मनोभावोको जो जितने हृदयस्पर्शी, आकर्षक और कलापूर्ण ढगसे व्यक्त करता है, वह उतना ही अधिक सफल, पूर्ण, और बडा शायर होता है। केवल मनके भाव व्यक्त करने और छन्दशास्त्रके नियमानुसार शेर कहनेको शायरी नही कहते। शेरके अन्दर शेरियत, मधुरता, कोमलता और सुन्दरता होना लाज़िमी है। गज़लके शेरोका अन्तरग यदि निष्प्राण और बहिरग असुन्दर है, तो वह गज़लका शेर नही, उसका जनाज़ा है।

एक ही बातको भिन्न-भिन्न शायर अपने निजी ढगसे बयान करते है। वे अपने भावोकी तूलिकासे कल्पना, उपमा, अलकार, उदाहरण, और शब्दोके रग भरकर विचित्र-विचित्र रूप देते है। कुछ केवल रेखाएँ खीचकर रह जाते है, कुछ आकार बना पाते है, और उनमे एक-दो विरले

बादशाह और नवाब शायर

दिल्ली दरबार	फ़र्रुख़ाबाद दरबार
लखनऊ दरबार	अज़ीमाबाद दरबार
हैदराबाद दरबार	मुर्शिदाबाद दरबार
रामपुर दरबार	टौंक दरबार
टाँडा दरबार	अलवर दरबार

अब हम ऐसे कामुक प्रेमीको 'आशिक', उसकी प्रेमासक्तिको 'इश्क' और उसकी प्रेयसीया प्रेम प्यारेको 'माशूक' या, हबीब कहेंगे।

इश्क तो मनुष्य क्या, पशु-पक्षी भी कर सकते हैं, और उसका इज़हार भी अपनी योग्यतानुसार सभी कर सकते हैं, परन्तु जैसे हर कोई शिल्पकार, चित्रकार, कलाकार नही हो सकता, उसी प्रकार हर मनुष्य गजलगो नही हो सकता। यूँ तो अध्ययन और परिश्रमद्वारा प्रत्येक कलामे निपुणता प्राप्त की जा सकती है, किन्तु उसमे कमाल हासिल करनेके लिए व्यक्तिकी प्रकृति, झुकाव, विकास, स्वभाव, निजी रुचि और व्यक्तित्वकी भी आवश्यकता निहायत ज़रूरी है। महात्मा गाधी और रवीन्द्रनाथ ठाकुरके साथ पढे हुए हज़ारो छात्रोमे से कितने उनके समरूप बने? द्रोणाचार्यसे शस्त्रशिक्षा सीखनेवाले कौरवो-पाण्डवोमे से अर्जुनके अतिरिक्त एक भी द्वितीय अर्जुन न बन सका, और एकलव्यका निजी रुझान इस ओर था तो वह द्रोणाचार्यसे शिक्षा प्राप्त किये बिना ही अर्जुन-जैसा शब्दभेदी बाण चलानेमे प्रवीण हो गया।

उस्तादोकी अनुकम्पा, निजी परिश्रम और अभ्याससे अनेक शायर हुए हैं, और होते रहेंगे। अपने मनोभावोको जो जितने हृदयस्पर्शी, आकर्षक और कलापूर्ण ढगसे व्यक्त करता है, वह उतना ही अधिक सफल, पूर्ण, और बडा शायर होता है। केवल मनके भाव व्यक्त करने और छन्दशास्त्रके नियमानुसार शेर कहनेको शायरी नही कहते। शेरके अन्दर शेरियत, मधुरता, कोमलता और सुन्दरता होना लाजिमी है। गज़लके शेरोका अन्तरग यदि निष्प्राण और बहिरग असुन्दर है, तो वह गजलका शेर नही, उसका जनाज़ा है।

एक ही बातको भिन्न-भिन्न शायर अपने निजी ढगसे बयान करते है। वे अपने भावोकी तूलिकासे कल्पना, उपमा, अलकार, उदाहरण, और शब्दोके रग भरकर विचित्र-विचित्र रूप देते हैं। कुछ केवल रेखाएँ खीचकर रह जाते हैं, कुछ आकार बना पाते है, और उनमे एक-दो विरले

करना, वह नज़्म[१] जिसमें—वस्ल,[२] फिराक,[३] इश्क,[४] इश्तयाक[५] हसरत[६] और यासका[७] वर्णन हो। तात्पर्य यह है कि गज़ल उस कविता-का नाम है जिसमे प्रेमी अपने वासना विषयक प्रेमका वर्णन करता है। गज़लकी १६ वहर (छन्द) नियत हैं। उसका अपना स्वतत्र छन्दशास्त्र है, जिसकी पावन्दी गज़ल-रचनाके लिए वहुत ज़रूरी है।

काम-वासनामे प्रेयसी या प्रेमप्यारेका मिलन और विरह दो मुख्य तत्त्व है। मिलनमे सफलता, मस्ती, ऐश, सुख, मिलन, धन्यवाद, विरहका उलाहना, प्रतिद्वन्द्वीकी बुराई, आत्म-प्रशसा और भविष्यमे विरह-व्यथासे बचनेके उपाय आदिका वर्णन और विरहके दिनोंमें मनकी उत्सुकता, हृदयकी बेकली, अभिलाषाओकी भीड, व्यथा-पीडाकी टीस, निराशा, दुख, शोक, असमर्थता, उन्माद, रुग्णावस्था, निर्वलता, मृत्यु-आलिंगन आदिका वर्णन रहता है। मिलनके क्षेत्रसे विरहका क्षेत्र व्यापक और विस्तृत है। सुखान्त कथानकसे दुखान्त कथानक अधिक समवेदनशील और हृदयस्पर्शी होता है। इसलिए गज़लगोईका सम्बन्ध अधिकतर विरह, व्यथा, पीडासे ज्यादा होता है। पेयमीके सौन्दर्यका वर्णन भी गजलमें होता है।

इस प्रकार गज़लका क्षेत्र सीमित भी है, और विस्तृत भी। सीमित इसलिए कि 'गजल' प्रेम-वासना क्षेत्रके वाहर नही जा सकती और विस्तृत इसलिए कि उस वासनाको प्रकट करनेके सावन-तरीके असीमित हैं।

पैदा होते हैं, और जिनके पूरा करनेकी तमन्ना हर मुहव्वत करनेवालेको होती है।"

—इन्तकादियात, भाग २, पृ० १६२

[१]कविता, [२]सम्भोग, मिलन, [३]विरह,
[४]कामुक प्रेम, [५]चाहत, अरमान, [६]अभिलाषा,
[७]निराशा।

मचानेवालेसे शोर बन्द कर देनेके लिए इससे अधिक नम्रनिवेदन और क्या हो सकता है ? जिसे सुनकर शोर मचानेवाला दमबखुद होकर दयादृष्टिसे बीमारेगमको देखने लगता है और उसके हृदयमे भी सहानुभूति उत्पन्न हो जाती है । शेर पढते-पढते ऐसा मालूम होता है कि शायरके हृदयमे मातृ-प्रेम उमड आया है और वह अपने नौजवान बेटेकी नीदको उचाट नही होने देना चाहती, क्योकि 'बीमारेगम' अभी-अभी टुक रोते-रोते बमुश्किल सोया है ।

मोमिन, मीर, दर्दने एक ही मज़मूनको अपने-अपने रगमे इस प्रकार चित्रित किया है—

मेरे तग़ईरे रगको मत देख ।
तुझको अपनी नज़र न हो जाये ।।

'मोमिन' अपने माशूकसे कहते है कि "मेरी यह दयनीय स्थिति तेरे सौन्दर्य्यके कारण हुई है । न मै तुझे देखता न बीमार पडता । अत मेरे इस तगईरे रग (अवस्था परिवर्त्तन)को न देख । अन्यथा स्वय तुझे अपनी नज़र लग जायगी । क्योकि अभीतक तो तू अपने सौन्दर्य्य-प्रभावसे अपरिचित है । मुझे देखनेसे तुझे अपनी करिश्मासाज़ियोका पता लग जायगा और तुझे स्वय अपनी नज़र लग जायगी ।" अपने रूपसे स्वय रीझने और अपनी ही नज़र लगनेका भाव बिलकुल अछूता और निराला है । माशूकके सौन्दर्यका बखान और अपनी आसक्तिका उल्लेख बडी कुशलताके साथ किया गया है । परन्तु 'मीर' इसी मज़मूनको कैसे सवेदन स्वरमे व्यक्त करते है—

मेरे तगईरे हालको मत देख ।
इनकलाबात है जमानेके[1] ।।

---

[1]समयका हेर-फेर है ।

शायर आँखोमें समा जानेवाले और हृदयमें घर करनेवाले मूर्त्तमान भाव चित्रित करते है। आँखोमें समाजानेवाली और हृदयमें घर करने वाली इसी इश्किया शायरीको तगज्जुल या गज़ल कहते है।

उदाहरणत'—आशिक विरह-वेदनामें छटपटा रहा है। उसकी शोचनीय अवस्थाका उल्लेख एक शायर इस प्रकार करता है—

"हाल बेचारेका बहुत ख़राब-है आज"

दूसरा शायर कहता है—

"सहर करना बहुत दुशवार है बीमारे हिजरांका"

तीसरा कहता है—

"हाल उस ग़मज़देका हमसे तो देखा न गया"

बात तो इस तीसरे शायरने भी वही कही है, परन्तु आशिककी विरह-वेदनाका इतना सवेदनशील व्यथासे ओत-प्रोत वर्णन है कि वज्र-हृदय माशूक भी इस मिसरेको सुननेके बाद आशिकके पास बिना जाये नही रह सकता।

बीमारेगमको दिन-रात हाय-हाय करते-करते किसी प्रकार नीद आ गई है। परिचर्य्या करनेवाले नही चाहते कि उसकी नीद शोरोगुलसे उचट जाये। इसी भावनाको 'सौदा' इस तरह व्यक्त करते है—

'सौदा'की जो बालींपै हुआ शोरे क़यामत।
ख़ुद्दामे अदब बोले—"अभी आँख लगी है॥"

इसी भावको 'मीर'ने इन दर्दीले शब्दोमें प्रकट किया है—

सिरहाने 'मीर'के आहिस्ता बोलो।
अभी टुक रोते-रोते सो गया है॥

'अभी', 'टुक', 'रोते-रोते', सभी शब्द व्यथामे ओत-प्रोत है। और

उपेक्षित अपने स्वामीपर रोष नही करता। वह उसे कंजूस भी नही समझता। वह स्वय अपनेको ही "झूठा उमीदवार" और "क़ुसूरवार" समझकर सन्तोष कर लेता है, और अपनी वफादारी और स्वामि-भक्तिमे बाल नही आने देता। अपने रगका यह बेमिसाल शेर है, किन्तु फानी बदायूनीका शेर मुलाहिज़ा फर्माइये। वे अपने शेरमें कितनी व्यथा बखेरते है!

यारब! तेरी रहमतसे मायूस नहीं 'फानी'।
लेकिन तेरी रहमतकी ताख़ीरको क्या कहिये?

आस्तिक कितनी ही शोचनीय स्थितिमे हो। उसका ईश्वरकी दयालुता (रबकी रहमत)मे आशका करना नास्तिकता और घोर अपराध है। फानी भी उसकी रहमतसे मायूस (निराश) नही है। उन्हें पूर्ण विश्वास है कि एक-न-एक दिन रबकी रहमत होगी और ज़रूर होगी। लेकिन उसकी रहमतमे जो ताख़ीर (विलम्ब) हो रही है, उसीसे घबराकर फानी अपने रब से इस ताखीरका सबब पूछते हैं। "इस विलम्बसे हमारा क्या हश्र होगा?" यह परिणाम शब्दो द्वारा घोषित किये बिना ही फानीके शेरसे ध्वनित हो रहा है—

का बरसो जब कृषि सुखानी

और यही एक अच्छे शायरका शायराना कमाल है कि उसके मौन रहनेपर भी मनोभाव स्पष्ट पढ लिये जाएँ। किन्तु उक्त दो शेरोमे भी वही इश्किया रगकी कमी महसूस होती है। माशूककी उपेक्षा ही आशिकके लिये चिन्तनीय है। उसे स्वामी या ईश्वरकी उपेक्षाकी चिन्ता नही। वह तो ईश्वरमें अपने माशूकका जलवा देखता है—

अल्लाह भी मजनूंको लैला नजर आता है।

माशूक ही उसका सर्वस्व है। गालिब अपने शेरमें स्पष्टतः माशूकसे

संसार परिवर्त्तनशील है। इस परिवर्त्तनमें अनेक अनहोनी घोटनाएँ होती रहती हैं। बादशाह दर-दरके भिखारी,[1] और चोर-डाकू बादशाह[2] बन जाते हैं। इसी भावको मीरने बड़े करुण शब्दोमें पेश किया है, किन्तु इस 'तगईरे हाल' का सम्बन्ध माशूकसे नही है। इसमें इश्किया भाव नही आ पाया है। इसीलिए यह शेर तगज़्ज़ुल (गज़लगोई)से हट गया है। 'दर्द' ने इस कमीको देखिये किस खूबीसे पूरा किया है—

मेरे तगईरे हालपर मत जा।
यूँ भी ऐ महरबान! होता है॥

'महरबान'के तनिकसे सम्बोधनने शेरको जो तगज़्ज़ुलका रग दिया है, वह शायराना कमालकी बहुत बड़ी सनद है।

उपेक्षापर तीन शायरोकी सीनाफिगारी देखिये। एक शायर फर्माते हैं—

तेरे करममें कमी कुछ नहीं, करीम है तू।
कुसूर मेरा है, झूठा उमीदवार हूँ मैं॥

स्वामि-सेवा और वफादारीमे प्राण होम दिये, परन्तु उसकी ओरसे जो अर्थ या उत्साह मिलना चाहिए था, वह नही मिला। वह अन्य निठल्ले और बेवफाओको तो मालामाल कर रहा है और जो सबसे अधिक उसकी कृपाका अधिकारी है, उसीको उपेक्षित बना रक्खा है; परन्तु

---

[1] जिनके हंगामोसे थे आबाद वीराने कभी।
शहर उनके मिट गये, आबादियाँ बन हो गईं॥
—इकबाल

[2] खुदाकी शान है नाचीज़ चीज़ बन बैठे।
जो बेशऊर थे यूँ बातमीज़ बन बैठे॥
—इकबाल

तियाँ और शायरके निजी स्वभावकी विशेषताएँ उसके कलाममें प्रति-विम्बित होती हैं, क्योंकि कविका हृदय तो एक दर्पण है जो भिन्न-भिन्न आकृतियोंको उनके असल रंगमे प्रतिबिम्बित करता रहता है। संसारमें शायरोंके अतिरिक्त और जितनी कलाएँ हैं, उनमे कलाकारका व्यक्तित्त्व छिपा रहता है। चरित्रहीन वैज्ञानिक लोककल्याणकारी और सदाचारी वैज्ञानिक विध्वंसकारी विज्ञानका आविष्कार कर सकते है, करते हैं। कुरूप चित्रकार अपने वनाये चित्रमे संसारका सौन्दर्य्य उँडेल देता है और रूपवान सजीले शिल्पकारसे घिनौनी मूर्त्ति वन जाती है। अर्थात अपने व्यक्तिगत जीवनमे जो वे नही है, वह सब उनकी कलाओसे प्रस्फुटित हो सकता है, किन्तु शायर ऐसा नही कर सकता। उसके लाख प्रयत्न करनेपर भी उसकी शायरीमे उसके हृदयका प्रतिबिम्ब बिना पडे नही रह सकता।

सांसारिक चिन्ताएँ और वासनाएँ अधिकांशको सताती है, परन्तु कविका हृदय-दर्पण जैसा स्वच्छ या मलीन होगा, वैसा ही अक्स दिखाई देगा। मानव-हृदयपर कुछ तो अपने चारो ओरके वातावरणका, कुछ घरेलू परिस्थितियोंका प्रभाव पडता है और कुछ उसकी निजी विशेष-ताओंका असर पडता है। यह सच है कि परिस्थितियोंके कारण श्रेष्ठ-से-श्रेष्ठ मानव दुराचारी एवं पतित हो जाते हैं और कुमार्गरत सुमार्गपर लग जाते हैं। जो मानव-समूह हमें पतित दिखाई दे रहा है, यदि हम भी उन जैसे वातावरणमें उत्पन्न हुए होते, उन जैसी स्थितियोंके वहावमें वहे होते तो वहुत सम्भव है हम भी उन्ही जैसे होते। मनुष्य वातावरण और परिस्थितियोंका गुलाम है, परन्तु कुछ ऐसे मानव भी होते है जो प्रतिकूल परिस्थितियोंमे भी विचलित नही होते, सीना तानकर खडे रहते हैं, और कुछ ऐसे भी होते है जिनकी वहावसे कितनी ही रक्षाकी जाय, वे किनारेपर खडे हुए भी डूब जाते हैं। कुछ वेश्याके यहाँ जन्म लेनेपर भी अपने शीलरत्नको बचा लेती हैं। कुछ महात्मा-पुत्र होनेपर

मुखातिब नही होते हैं; परन्तु उसीकी उपेक्षाका सकेत इस खूबीसे करते हैं कि तगज़्ज़ुलका बेमिसाल शेर बन जाता है—

हमने माना कि तग़ाफुल न करोगे, लेकिन—
ख़ाक हो जाएँगे हम तुमको ख़बर होनेतक ॥

मिर्ज़ा गालिब अपने माशूकसे मन ही मनमें कहते हैं कि—"हम यह जानते हैं कि हमारी दुरवस्थाको ख़बर पाकर, तुम तगाफुल (उपेक्षा, विलम्ब) नही करोगे, हमें देखने अवश्य आओगे, किन्तु तुम्हें खबर होनेतक तो यहाँ काम ही समाप्त हो जायगा।" माशूककी उपेक्षाके लिए इस शेरमें जो मिर्ज़ाने भाव भरे है, उनको दाद देनेको हमारे पास उपयुक्त शब्द नही।

इस तरहके हज़ारो शेर पुस्तकमें दिये गये है, जिनसे पाठक स्वय तगज़्ज़ुलका और शेरकी शेरियत और उसकी बुलन्दी-ओ-पस्तीका अनुमान लगा सकेगे। यहाँ तो चन्द शेर मज़मूनके सिलसिलेमें उदाहरण स्वरूप दिये गये हैं।

शायरी पर वातावरण और व्यक्तित्त्व का प्रभाव

जिस प्रकार हर शिल्पकार या चित्रकार मुँह बोलती मूर्त्ति या चित्र नही बना सकता, उसी प्रकार हर शायर हृदयस्पर्शी शेर नही कह सकता। शायरीमें तत्कालीन वातावरणके अतिरिक्त शायरके निजी रुझान और व्यक्तिगत प्रकृतिका भी बडा हाथ होता है। यदि केवल विद्वता और वातावरण ही शायरीमें मुख्य कारण होते तो समकालीन मीर-ओ-सौदा, मुसहफी-ओ-इशा, आतिश-ओ-नासिख, गालिब-ओ-ज़ौकके कलाममें एकरूपता पाई जाती; किन्तु एक ही वातावरणमें उत्पन्न हुए उक्त शायरोंके कलाममें पृथ्वी-आकाशका अन्तर है। अत मानना होगा कि देशकी राजनैतिक व आर्थिक स्थिति सामाजिक रीति-रिवाज और अन्य वातावरणके अतिरिक्त शायर जिन परिस्थितियोसे गुज़रता है, वे सब परिस्थि-

लिए और अनीस मर्सियाके लिए ही पैदा हुए थे। उनका कुदरती
ही इस ओर था। दोनो महान शायर थे, परन्तु एक दूसरेका रग कुबूल
करनेकी कोशिश करते तो मुँहकी खाते।

राणा प्रताप बहुत अच्छे योद्धा थे। वे भाले और तलवारका अचूक
वार कर सकते थे, किन्तु कालेखाँकी तरह गोलन्दाज नही हो सकते थे।
अर्जुन और भीम दोनो ही रण-विशारद थे, लेकिन अर्जुन गदा और
भीम गाण्डीव धनुषपर तबा आजमाई करते तो दोनो ही ढुँढ़के बल गिरते।
महात्मा गाधी अहिंसात्मक प्रयोगोसे भारतको मुक्त करानेमे सफल हुए,
वे लेनिनके हिंसात्मक पथपर चलनेका स्वभाव ही लेकर नही आये थे।
चलते तो किसी झाडीमें उलझकर गिर पडते। जो व्यक्तिका स्वभाव
और शौक होता है, उसीके अनुरूप कार्य करनेपर सफलता प्राप्त करता
है। मजबूरीकी बात दूसरी है। भीमको रसोइया, अर्जुनको नर्तक,
शास्त्रीको पुलिस मत्री और शस्त्रोके नाम न जानते हुए भी किसीको
रक्षामत्री बनना पडे तो चारा ही क्या है? परन्तु चौखूँटे सूराखमे गोल
पेच लगाने जैसी स्थिति ऐसे लोगोकी रहती है। वह अपने कार्यमे कमाल
पैदा नही कर सकते। कहनेका तात्पर्य्य यह है कि शायरोपर देश-काल
के वातावरणके साथ-साथ शायरके निजी स्वभाव और रुचिका भी प्रभाव
पडता है।

बाज़ दफा अपने मनोभाव छिपाकर शायरको वह कहना पडता है,
जो उससे लोग कहलवाना चाहते है, या वह स्वय अपने अस्ल रूपको
छिपाकर दुनियाकी आँखोमे धूल झोकनेको मनके विपरीत कहता है,
और किसी हदतक वह अपनी इन करिश्मा साज़ियोमें कामयाब भी होता
है। लेकिन उसके हृदयगतभाव बहुत दिनोतक दबे नही रह सकते।
वे तालाबकी काईके समान ऊपरी सतहपर आ ही जाते है। 'गालिब'
नही चाहते थे कि उनकी मनोगत पीडाओका किसीको आभास मिले,
क्योंकि उनका मोटो था—

भी कलंकित हो जाते हैं। कुछ स्वभावतः स्टील होते हैं कि न उनपर आग-पानीका प्रभाव होता है, न लुहारके प्रहारका। और कुछ छुईमुई होते हैं, जो हाथ लगाते ही मुर्झा जाते हैं। इन सबके संस्कार और स्वभाव ही ऐसे होते हैं। पपीहा प्यासा मर जायगा, परन्तु स्वातिबिन्दुके अतिरिक्त और पानी नहीं पियेगा। हारिल पक्षी उड़ता-फिरता मर जायगा, परन्तु पृथ्वीपर पाँव नहीं रक्खेगा। सिंहको भूखो मरना मंजूर परन्तु कुत्तोंके साथ खाना मंजूर नहीं।

वकील खलीलुलरहमान काज़मी—"मीर अगर चाहते भी कि अपने ग़मोंको भुलाकर मुसकराएँ, तो सौदाकी तरह न तो वह अपनी आँखोंपर पट्टी बाँध सकते थे और न अपने सीनेपर पत्थरकी सिल रख सकते थे।" मीर और सौदा समकालीन और ज़ाहिरा एक ही वातावरणमें उत्पन्न होते हुए भी अपनी निजी परेशानियों और व्यक्तिगत स्वभावके कारण एक दूसरेसे भिन्न थे। इसीलिए उनके कलाममें भी कोई समानता नहीं मिलती। अपने स्वभावके अनुरूप ही लोग अपनी-अपनी रुचि रखते हैं। एक ही वातावरणमें उत्पन्न हुए सगे भाइयोंमें कोई चित्रकार, कोई कवि, कोई डाक्टर, कोई वकील, कोई नेता और कोई कुमारबाज़ बन जाता है।

शायरीमें भी निजी रुचिका बहुत बड़ा हाथ होता है। कोई ग़ज़ल, कोई नज़्म, कोई रुबाई, कोई मर्सिया, कोई कसीदा, कोई मसनवी, कोई नात और कोई हिजो, रेख़्ती, हज़ल कहना पसन्द करता है, और इनमें भी भिन्न-भिन्न रुचियाँ। ग़ज़लगो होते हुए भी कुछ आशिकाना दर्दोग़म-को उभारते हैं, कुछ जमालियाती (प्रेयसीके सौन्दर्य-विषयक) रंग भरते हैं। एक दूसरेके रंगमें दख़ल नहीं रखते। 'ग़ालिब' और 'अनीस' अर्वाचीन युगके दो बहुत बड़े शायर हुए हैं, परन्तु दोनोंका रंग बिलकुल जुदा था। ग़ालिब ग़ज़लगोईमें अपना सानी नहीं रखते तो अनीस मर्सिया निगारीमें अपना हरीफ़ (प्रतिद्वन्द्वी) नहीं रखते। ग़ालिब ग़ज़लके

और अहमन्यपना था। उनके इस स्वाभिमान और अहमन्यपनेको बराबर ठेस लगती गई और वे दुनियासे बेज़ार होते गये; और हारकर यह कहनेपर मजबूर हुए—

"रहिये अब ऐसी जगह चलकर जहाँ कोई न हो।"

न गुले नग़मा हूँ, न परदयेसाज़।
मैं हूँ अपनी शिकस्तकी आवाज़॥

हाँ, तो यह कहना कि शायरी पर तत्कालीन वातावरणका ही प्रभाव पडता है, शत-प्रतिशत सही नही। हमारा कहना है कि शायरीपर शायरके निजी व्यक्तित्व और स्वभावका भी असर होता है। एक ही समय और एक ही वातावरणमे उत्पन्न शायरोकी भिन्न-भिन्न रुचि होती है। कुछ भरी बहारमे भी बहारको रोते है। कुछ पतझडमें भी गुलशन सजा लेते हैं। मीर-ओ-सौदाके युगमे ही नज़ीर अकबराबादी ख़ुद भी हँसता है और दूसरोको भी हँसाता है। गालिब-ओ-ज़ौकके शिष्य हाली-ओ-आज़ाद अपने उस्तादोसे भिन्न मार्ग खोज निकालते है।

आँधी-पानीके समय वही केवल घटना नही होती। उस वक्त भी उसके नीचे अनेक कार्य होते रहते हैं। युद्धकालमें सैनिकोको युद्ध मुख्य घटना प्रतीत हो सकती है, परन्तु तब भी प्रणय-विरह, त्याग-सयम आदि न जाने कितने कार्य होते रहते है। एक ही वस्तु चश्मोके भिन्न-भिन्न रगोसे बहुरगी दिखाई देती है। एक युवती मरती है तो साधु पुरुषोको ससारसे विराग हो उठता है, भोजनभट्ट उसकी तेरहवीके दिन गिनते है, महापात्र उसके कफ़नका मूल्य आँकते है, कुत्ते उसके शरीरको फाड खाना चाहते है, और कामुक सोचता है—"कमबख़्तने सोने जैसा शरीर मिट्टीमे तो मिला दिया, परन्तु मुझे नही दिया।"

उर्दू-शायरीमें ऐसे शायर बहुत कम हुए है, जो जनरुचिके तेज़ बहावमें पाँव जमाये खडे रह सके हैं। अधिकाश गगा गये तो गगादास और

"दिलमें हज़ार गम हो, जबींपर शिकन न हो"

इसीलिए हृदय चलनी होनेपर भी वे अपने मित्रोमें खूब हँसते-हँसाते थे। उनके एक-एक जुमलेपर हँसीके फव्वारे छूटते थे। उनके पत्रोको पढकर लोग अपने गमोको भूलकर हँसनेपर मजबूर होते थे, परन्तु यह हँसी गालिबके होठोपर हमेशा नही थिरक सकती थी। वे दूसरोके सामने हँस सकते थे, परन्तु अकेलेमें तो उन्हें अपने रिसते नासूरपर मरहम लगाना ही पडता था, जब सूर्यकी तापसे पत्थर पसीज उठता है, तब रजोअलमकी आगसे 'गालिब'का दिल कबतक न पिघलता? वही हृदयकी पिघलन आँखोमे छलकती है तो आँसू,[1] और कागज़पर उतरती है तो सोजोगुदाजकी[2] शायरी नाम पाती है।

उसी रजोगमकी हालतमें मिर्ज़ा गालिब जो टेढी-मेढी लकीरे खीच देते थे, वही आज हमारे लिए हदीसे कुरआन बनी हुई है, और वे उनके बेमनके कहे हुए लतीफे और जुमले इस शायरीके पासगमें भी नही ठहरते। जो पपीहाकी पियु-पियु और कोयलकी कूकमे व्यथा होती है, उसे सरोद और वायलिन नही बता सकते। यह कहना कि गालिबकी शायरीमे यह सोज़ोगुदाज़ मुगलिया सल्तनतके ज़वालसे आया, ठीक नही, क्योकि ग़ालिबके समकालीन जौकको यह सोज़ोगुदाज़ नसीब नही हुआ। बात दरअस्ल, ये है कि गालिबके स्वभावमें ही एक तरहका स्वाभिमान

---

[1] दिल ही तो है, न सगोख़िश्त, दर्दसे भर न आए क्यो?
रोएँगे हम हजार बार, कोई हमें रुलाए क्यो?
—गालिब

[2] हुस्नेफरोग़े शमए सुख़न दूर है 'असद'!
पहले दिलेगुदाख़्ता पैदा करे कोई॥
—ग़ालिब

शब्दोमें यूं कहिये कि शेरकी आत्मा दाखिली शायरी, और उसका वाह्य शरीर खारजी शायरी है।

दिल्लीवाले शेरकी आत्मा यानी उसके अन्तरंगको जागृत रखने और परिष्कृत करनेको कलाकी चरमसीमा समझते थे और अहले लखनऊ शेरके वाह्य शरीरको रंग-रूप देनेमें कमालेशायरी समझते थे, और इसी अन्तरके कारण दोनो स्कूलोकी शायरीमें पूरब-पच्छिम जैसा अवधान पड गया था। एक बहुत बडी खाई दोनो स्कूलोके बीचमें खुद गई थी जो दोनोको मिलने नही देती थी।

परन्तु आवश्यक दोनो ही रंग जरूरी है। शरीरमे यदि आत्मा न हो तो निर्जीव शरीर किस कामका ? प्राणरहित शरीर कितना ही सजाया-सँवारा जाय बदबू दे उठेगा। वह लमहेभरको भी प्यारके योग्य नही रहेगा। उसी तरह आत्मा कितनी ही शुद्ध, पवित्र और उन्नत क्यो न हो, उसका शरीर आगमें झुलसनेसे विकृत और भयावह हो जाता है, या कोढसे गलित अथवा अन्य रोगोसे घिनावना और कुरूप हो जाता है तो उसको प्राणोसे अधिक प्यार करनेवाली पत्नी भी देखकर चीख उठेगी। बच्चे पास आते हुए डरेंगे। अन्तरंग और वहिरंग दोनो ही स्वच्छ और मनोज्ञ हो तभी लोग आकर्षित होते है।

दिल्लीवाले कहते है—'जान है तो जहान है।' पहले शेरके अन्तरंग-को इतना परिष्कृत करो कि हृदयपर तीरका काम करे। अन्तरंगको परिष्कृत करते हुए शेरका बाह्य रूपरंग भी जितना मनोज्ञ बनाया जा सके बनाया जाय, परन्तु बाह्य रूप-रंग सँवारनेमे इतने लीन न हो जाओ कि शेरकी आत्मा ही छटपटाकर मर जाय और तुम्हें उसकी सुधि भी न आये।

आत्म-शुद्धिके साथ शरीर-शुद्धिकी भी आवश्यकता है। तन शुद्ध होगा तो मन भी शुद्ध रहेगा, और जब मन शुद्ध रहेगा तो मन-मन्दिरमें भावनाएँ भी शुद्ध आयेंगी। शरीर रोगी, विकारी, मलीन हुआ तो उसके

जमना गये तो जमनादास हुए हैं। हवाका रुख-देखकर तो सभी चलते हैं, हवाको अपनी इच्छानुसार चलाये, पुरुषार्थी वही कहलाता है।

अपना जमाना आप बनाते हैं अहले दिल।
हम वोह नहीं कि जिनको जमाना बना गया॥

मर्द वोह हैं जो जमानेको बदल देते हैं।

तो इस अर्वाचीन युगके पूर्वार्द्धमें लखनवी शायरोमें 'आतिश' ही एक ऐसा शायर हुआ है जो अगदकी तरह पाँव जमाये खडा रहा है। इशा और जुरअत दिल्लीसे जाते ही एक पलको सीधे खडे न रह सके, और लखनवी रगमें सराबोर हो गये। मुसहफी जैसा उस्ताद धारेपर अडा रहा, लेकिन उसकी हिम्मतने भी जवाब दे दिया और वह भी इस रौमें डुबकियाँ खाने लगा। कुछ इस धारेमें पडना नही चाहते थे, परन्तु उसे रोकनेकी क्षमता भी नही रखते थे। वे इस लखनवी खारिजी रगसे किनारा काटकर मर्सियागोईकी राहपर मुड गये। हम इस युगकी शायरीपर प्रकाश डालनेसे पूर्व लगते हाथ देहलवी और लखनवी शायरीमें क्या अन्तर है यह बतला देना आवश्यक समझते हैं।

देहलवी और लखनवी शायरीमे अन्तर

देहली स्कूलके शायर प्राय आशिकका और लखनऊ स्कूलके शायर माशूकका वर्णन करते हैं। दूसरे शब्दोंमें यूँ कहिये कि दिल्लीवाले दाखिली-[1] रगकी और लखनऊवाले खारजी[2] रंगकी शायरी करते हैं। दाखिली शायरी दिलकी शायरी और खारजी शायरी दिमागकी शायरी है।

शेरके अन्तरगको परिष्कृत करनेको दाखिली शायरी और उसके बाह्य रूपरगको निखारने, सँवारनेको खारजी शायरी कहते हैं। दूसरे

---

[1]दाखिली (Subjective) जी, या मन सम्बन्धी।
[2]खारजी (Objective) वस्तु, पदार्थ, बाह्य सम्बन्धी, बाहरी।

शायरीने आँखे ही तब खोली जब कि हुकूमते अवध दिन-दूने रात-चौगुने शबाबपर थी। मुगलिया सल्तनतके ज़वाल और दिल्ली उजडनेके निम्न-कारण थे—

औरंगज़ेबने अपनी धर्मान्धता, कूटनीतिज्ञता, असहिष्णुता और कठोर स्वभावके कारण हिन्दू-मुसलमानोको विद्रोही बना लिया था। उसने अकबरकी समधर्म-समभाव नीतिको ठुकराकर हिन्दुओके मन्दिरोको विध्वंस किया। उनके धार्मिक कार्य्योंमें हस्तक्षेप किया, उनपर जज़िया-कर लगाया और अनेक तरहसे सताया। अत हिन्दुओने मुगल सल्तनतके प्रति घृणाके भाव बढते चले गये। औरंगज़ेबने अपनी असहिष्णुता और कठोर स्वभावके कारण मुगल राज्यके स्तम्भ—सेनापतियो, सूबेदारो, और हुक्मरानोमे विद्रोहकी आग प्रज्वलित कर दी। वे सब सल्तनतका जुआ फेकनेकी ताकमे रहने लगे। औरंगज़ेबके शासनकालमे ही राजपूतो, मरहठो और सिक्खोके विद्रोह प्रारम्भ हो गये थे। उसकी आँखे मिचते ही चारो ओर आक्रमण और विद्रोह होने लगे। जो विद्वेष-की आग औरंगज़ेबने सुलगाई थी, वही हवाका रुख पाकर भडक उठी और उसके वंशजोको भस्मसात् करने लगी। उनमें इस बढते हुए आगके प्रकोपको रोकनेकी क्षमता न थी। सल्तनतके रक्षक ही भक्षक बन बैठे। दक्षिण, बंगाल और अवधके सूबेदार (प्रान्तपति, गवर्नर) मुगल सल्तनतका जुआ फेककर स्वतंत्र शासक बन बैठे। मुगल बादशाह कठ-पुतली बादशाह रह गये। कभी ये सैयद बन्धुओके इशारेपर नाचते, कभी राजपूती-मरहठोके रहमपर जीते और कभी अंग्रेजोकी कृपादृष्टि प्राप्त करनेमें अहोभाग्य समझते। उत्तरोत्तर मुगल बादशाह अत्यन्त निर्बल, असहाय, अकर्मण्य और विलासी होते गये। देशमे चारो ओर अव्यवस्था फैल गई। लूट-मार, डाकेज़नी धोखा-धडी बढती गई। अकाल और भुखमरीने डेरे डाल दिये। नादिरशाह १७३९ ई०में कत्ले-आम करके दिल्ली लूटकर चलता बना। अहमदशाह दुर्रानीने १७४८से

अन्दर आत्मा कबतक निर्मल रहेगी ? परन्तु शरीरको सजाने-सँवारनेमें इतनी तल्लीनता भी ठीक नहीं कि आत्माकी सुध-बुध ही न रहे। या यूँ कहिये कि वेश्याओंकी तरह महज़ शरीरको सजाने-सँवारनेकी ख़ातिर आत्मातक बेंच दी जाय तो वह शरीर किस कामका ? अपनी आत्मा और विचारोंको पवित्र और उन्नत रखते हुए जितना बाह्य शरीर स्वच्छ और कलापूर्ण रखा जाय वही श्रेयस्कर और उचित है।

आत्माको विकसित करनेकी धुनमें न तो शरीरकी उपेक्षा ही हितकर है और न शरीरको सजानेके मोहमें फँसकर आत्माको बिसारना ही ठीक है।

दिल्लीकी दाख़िली शायरी हृदयकी शायरी है और लखनऊकी शायरी मस्तिष्ककी शायरी है। यानी देहलवी शायरोंके जो हृदयमें होता है वही उनकी नोकेज़बाँसे निकलता है। उसमें बनावट और तकल्लुफ नहीं होती, इसलिए वह शेर दिलपर असर करता है।

लखनवी शायर अपने हृदयके भावोंको दाबकर मस्तिष्ककी सहायतासे सोचकर उसे तकल्लुफ और तसन्नोह (बनावट)का जामा-पहनाकर पेश करता है, जो आँखोंको भला मालूम देता है, और मस्तिष्क सुनकर घूम जाता है, परन्तु इसका हृदयपर कोई प्रभाव नहीं पड़ता।

दाख़िली शायरीमें इश्क़ प्रधान रहता है। यानी आशिकका ग़मेहिज्र, ख़्वाहिशेविसाल, काहीदगी, दीवानगी, नाचारगी, उफ्तादगी, नज़ाअ, जनाज़ा, क़ब्र, हश्र, कयामत, नाला, फुग़ाँ, वग़ैरहका वर्णन होता है। ख़ारजी शायरीमें हुस्न प्रधान होता है और माशूकके हुस्न, शोख़ी, हया, आदिका उल्लेख रहता है। दाख़िली शायरी व्यथा-पीड़ाकी शायरी है। उसे सुनकर हृदयसे 'आह' निकलती है। ख़ारजी शायरी भोग-विलासकी शायरी है, जिसे सुनकर मुँहसे 'वाह' निकलती है।

दिल्ली और लखनऊकी शायरोंमें इस अन्तरका कारण यही है कि देहलवी शायरीका विकास मुग़लिया सल्तनतके ज़वालके साथ हुआ। दिल्ली उजड़ रही थी और उर्दू-शायरी परवान चढ़ रही थी। लखनवी

शाहोकी तरह शायरोका आदर करते थे। उन्हें पुरस्कृत करके उत्साहित करते थे। मासिक वज़ीफ़े बाँधकर आजीविकाकी चिन्तासे मुक्त कर देते थे। अवधके नवाब जो अभीतक मुगल बादशाहोके नायब समझे जाते थे, स्वतन्त्र शासक बन गये थे। नवाब गाजीउद्दीन हैदरने १८१९ई०में खुदमुख्तारीका एलान कर दिया था। वे अब बादशाह कहलाते थे और अपना सिक्का चलाते थे। लक्ष्मी उनके आँगनमें छम-छम घूमती थी। ऐश्वर्य और विलासिता उनके महलोमें आँख-मिचौनी खेलते थे। दरबारोमे राजनैतिक गुत्थियाँ सुलझानेके बजाय शतरंजकी चाल सोची जाती थी। अंगरेजोके संरक्षणका अभिमान होनेके कारण सैनिक सत्ता नष्ट करके शतरंजके मुहरोको मारने-पीटनेमें ही कमालाते जवाँमर्दी समझा जाता था। योद्धाओ और राजनीतिज्ञोके बजाय शायरो, गवैयो, नर्तकियो, भाण्डो और कलाकारोको तरजीह दी जाती थी। दिल्लीके शायरोकी लखनऊमे खूब आवभगत हुई। लखनऊके नवाब उनके साथ बडी इज्जत और मुहब्बतसे पेश आये। उन्हे जागीरें, वज़ीफ़े और इनाम दिये गये। उनकी नाजुक मिज़ाजी और बदिमागी हँसते हुए बर्दाश्त की गई। बल्कि उनकी इन बातोको उनकी शायरीका कमाल और स्वाभिमान समझकर और भी अधिक सम्मान दिया गया। 'मीर' और 'सौदा' जैसे तुनक मिज़ाजोको बडी खूबीसे निभाया, परन्तु बादमे यही आदर-सत्कार उर्दू-शायरीके लिये अभिशाप बन गया। मीरोसौदा के बादके शायर, शायर न रहकर भाण्ड, नक्काल, मसखरे और जी हुजूर रह गये। इससे उर्दू-शायरी अपने असल रंग अर्थात् देहलवी दाखिली रंगसे हटकर लखनऊके खारजी रंगमें रँग गई।

लखनऊमें शायरीकी शमा दिल्लीवाले लेकर गये थे। उनके पहुँचनेसे पूर्व वहाँ एक भी अच्छा शायर नही हुआ था। उनके पहुँचनेसे वहाँ शायरीका शौक आवश्यकतासे अधिक बढ गया। मुशायरे मासिक, फिर साप्ताहिक और फिर दैनिक होने लगे। मुशायरोमे एक दूसरे पर फौकि-

१७६७ ई०तक ९-१० बार धावे किये। इसे कुछ ऐसा खून मुंह लगा कि बार-बार खूनकी नदियाँ बहानेपर भी इसकी प्यास नही बुझी। १७३७ई० से मरहठोके आक्रमण प्रारम्भ हो गये। दिल्लीवालोको हर वक्त लुट जानेका खटका और कत्ल होनेका धडका लगा रहता था। उन दिनो हिन्दू-मुसलमानोमे कोई जगजू कौम ऐसी न थी, जिसके घोडे दिल्लीमें न दौडा करते हो। दिल्ली शहर घुडदौडका मैदान बन गया था।

मुग़ल बादशाह इन आक्रमणोसे प्रजाकी रक्षा क्या करते, वे स्वय लुटते और पिटते थे। नादिरशाह इनकी बेगमातको नाचनेपर मजबूर कर गया था। आलमशाह बादशाहकी उसीके गुलाम रुहीलाने भरे दरबारमे आँखे निकाल ली थी। मिर्ज़ा शिकोह (शाह आलमके पुत्र) डरकर लखनऊ भाग गये थे। इन दिन-रातके आक्रमण, लूटमार, कत्ल ग़ारतगरी और भुकमरीमे पलकर जो शायरी परवान चढी, उसमें व्यथा-पीडाका होना स्वाभाविक था। वकील नियाज़ फतहपुरी—"देहलीका शायर एक ऐसा शायर था, जिसने सिवाय महजूरी (विरह-व्यथा)के और कुछ न देखा था, जिसको लज्ज़त, कामयाबी, बहुत कम हासिल हुई थी, जो ग़रीब था, बेबस था, मजबूरोनाचार था। इसलिए वह सिवाय इसके कि दिन-रात रोता और हाय-हाय करता रहे और कर ही क्या सकता था? बरखिलाफ इसके लखनऊका शायर वह आशिक था, जिसे वस्ल नसीब हुआ। वह शराब पीता था। जवानीके लुत्फ उठाता था और छेड-छाड उसका रात-दिनका मशगला था।"[1]

दिल्लीकी इस दर्दनाक हालतमे घबराकर और भूखकी ज्वालासे तग आकर जितने भी नामवर शायर थे सब लखनऊ चले गये। केवल 'दर्द' इस उजडे दयारमे शायरीकी शमा जलाये बैठे रहे। देहलवी शायरो-को लखनऊ पहुँचनेका आकर्षण यह था कि वहाँके नवाब भी मुग़ल बाद-

---

[1]रियाज़े रिज़वाँ-ऐनराफ़ात, पृ० ४८

भी आज़ाद होना चाहा। न सिर्फ आज़ाद होना चाहा बल्कि उसे खँगाल-कर पुराने तमाम असरात (प्रभाव) धो डाले। तसव्वुफको यकसर खारिज कर दिया गया। देहलीकी शायरीको तसव्वुफने जहाँ और बहुत-सी चीजे दी, वहाँ रूहानी (आध्यात्मिक) और वजदानी (समझने और जनानेकी शक्ति) मज़ामीनके साथ जज्बात (भावो, विचारो)की गर्मी और तेजीका सरमाया (धन) भी दिया। तसव्वुफ ही के असरसे ग़ज़लमे दाखलियत आई और उससे इश्किया शायरीमे खलूस और तासीर-का इज़ाफा हुआ।

"शुअराये देहली हुस्नके वयानमें खारजी मुतअल्लकात (माशूकके ज़ाहिरी सम्बन्ध)के बजाय हुस्नके असरको बयान करते थे। इसलिए उनकी शायरी रम्जयत[1] भी है और वह इश्किया शायरी दिलके वारदात (दिलपर गुज़री हुई बातो)के अलावा ह्याती कायनात (जीवन तथा ससार)के मसाइल (मामलो)पर भी मुन्तबक (अनुकूल) होती है। लखनऊने तसव्वुफको छोड़ा तो खारजीयतका धारा ज़ोरोसे बह निकला और शायरी नाम रह गया आज़ाए जिस्मानी (शरीरके अग-प्रत्यग) और उसके मुतअल्लकातके तजज़िए (इन्द्रिय भोग सम्बन्वी अनुभवोके वर्णन)का। जज़बा (भाव) जो शायरीके लिये ज़रूरी है, उसकी अब लखनऊवालोंने ज़रूरत न समझी, और शेर कहनेके लिए न किसी तजुरबेकी ज़रूरत या दिलके अहसासात (हृदयके भावनाओ) की। यही वजह थी कि शायरी दिलसे हटकर ज़बानकी तरफ आ गई। इस ज़बानवाली (केवल साहित्यिक) शायरीमे एक और इज़ाफा यह हुआ कि दिल्लीकी सादगी छोडकर अब तसन्नोह (बनावट, कृत्रिमता, तकल्लुफ) अख्तयार किया गया, और पेचीदगी ही फनकी बुलन्दीका मियार

---

[1]सकेत, भेद, राज़, नुक्ता, मुआमला, मुराद, पोशीदगी, पेचदार बात, नोक-झोक, ताने, निशान।

यत हासिल करनेकी धुनमे शायरीमें खूब परिश्रम करने लगे। इस होड और प्रतिद्वन्द्विताके कारण उर्दू जबानकी बडी तरक्की हुई, परन्तु इसी कसरते शौकके कारण लखनऊने खारजी शायरीकी बुनियाद पड गई। मौ० खलीलुलरहमान काज़मीके शब्दोमें--"खुदमुख्तारीके बाद लखनऊवालोकी ज़हनियत (विचारो)में बहुत बडा इनकलाब हुआ। उन्होंने तहज़ीबी हैसियतसे भी देहलीके असरसे आज़ाद होना चाहा और वहाँकी हर बुरी-भली चीज़को छोडकर एक नये तर्ज़की बुनियाद डाली। सादगीकी जगह तसन्नोह (बनावट, तकल्लुफ)ने ले ली। लिबास, बोलचाल, आदावेमजलिस, गुफ्तगूका तरीका, गरज़ हर चीज़में मरदानेपनकी जगह (जो दिल्लीकी खसूसियत थी), अब नुसवानियत (जनानेपन)ने ले ली। इस नुसवानियतने इसलिए और भी तरक्की की कि हुकूमत दिन-ब-दिन फारिगउलबाली (अकर्मण्यता)की तरफ कदम बढा रही थी। अगरेज़ोंकी हिफाज़तकी वजहसे फौजकी भी ज़रूरत नही रही थी। निशापुरी और सालारजगी खान्दानके लोग जो वसीका और पेन्शन पाते थे, बिलकुल खानानशीन (महलोमें रहनेको मजबूर) कर दिये गये। उनको औरतोकी सुहबतके सिवा और किसीकी सुहबत ही नसीब न रही। इसका लाज़िमी नतीजा यह हुआ कि उनके लिबास और वजह हीमें ज़नानापन नही आया बल्कि उनकी जबान और खयालात भी औरतोंके-से हो गये। चूँकि यही लोग लखनऊ शहरके बज़अदार और रईस तसव्वुर किये जाते थे, लिहाज़ा अक्सर अवाम (सर्वसाधारण)ने भी इन्हींकी पैरवी शुरू की। यही नुसवानियत लखनऊकी शायरीमें भी राह पा गई। इसलिये जज़बात (भावो, विचारो)में गर्मी और पाकीज़गीके बजाय बुज़दिली और सुस्तेपनने ले ली।

"न सिर्फ लखनऊकी तहज़ीबने बल्कि वहाँकी शायरीने भी देहलीके तमाम पुराने निशानात मुरब्बकर फेंक देनेका तहैया (निश्चय) कर लिया। अहले लखनऊने अब दबिस्ताने देहली (देहली स्कूल)की पाबन्दियोंसे

जहाँ दिल्लीके शायर हृदयगत भावोका चित्र सीधे-सादे शब्दोमें मर्मस्पर्शी खींचते थे, वहाँ 'नासिख' और उनके अनुयायी अपना समस्त ध्यान शेरके बाह्य सौन्दर्य्य और शब्दोकी मुनासबत (रियायत लफ्ज़ी), कारीगरी, हुनरमन्दी अनोखी उपमाओ, विचित्र-विचित्र कल्पनाओ, उदाहरणोमे लगाते थे। भावोको साकार रूप देनेके लिये शेर नही लिखते थे अपितु काफियेकी मुनासबतके लिये पहले मौजूं शब्द चुनते थे और उन्ही शब्दोका जाल-सा बुनकर शेर गढ देते थे।

उदाहरणत —गुलशनपर कहनेको उनका अन्तरग नही चाहता है। उसके प्रति उनके हृदयमे कोई आकर्षण नही है, किन्तु गज़लका काफिया गुलशन है, इसलिए उसका बाँधना आवश्यक हो गया है। अत गुलशन सम्बन्धी गुल, बुलबुल, गुलचीं, सैय्याद, बागबाँ, आशियाँ और क़फस वगैरह शब्द चुनकर और उनको एक दूसरेकी तुलना, उपमा और मुनासबतमे बैठाकर शेरका ढाँचा खडा कर देते थे। दूसरे शब्द कितने ही उपयुक्त और मुनासिब होते, उन्हें नज़रन्दाज़ कर दिया जाता। इस रियायते लफ्ज़ीकी बेइन्तहा पासदारीका नतीजा यह हुआ कि शायरीमेंसे सादगी और अकृत्रिमता जाती रही, और तकल्लुफ एव तसन्नोहकी भरमार हो गई। शेरके लिए ऐसे शब्द ढूंढे जाते जो मज़मूनसे किसी न किसी तरफसे ज़ाहिरा सम्बन्ध रखते हो। चाहे वे कितने ही नामुनासिब और बेमौके हो। केवल रियायते लफ्ज़ी शेरकी खूबी और शेरकी उम्दगीका दारोमदार रह गई, और इसकी बलिवेदीपर—"दर्द, असर जज़बात, सादगी, सलासत, (प्रवाह, कोमलता, मधुरता), फसाहत (खुशबयानी, साफ और शुस्ता कलाम कहनेकी योग्यता), बलागत (उच्च विचारधारा)–सब भेट चढा दिये गये, और इस कमीको अगराक (मुबालगा) और दो राज़कार तशबीहो (अप्रबहुत उपमाओ) ने पूरा किया। इस तर्ज़में कैफियत (वास्तविकता, सही मनोदशा) और सही जज़बात (मनोभाव)की नाज़ुक तहसील (कोमल सम्बन्ध, घुलावट,

(आदर्श, लक्ष्य) करार पाई। देहलीके मुहावरे, अन्दाजेबयान, सबको तर्क करके जबानकी बाकायदा इसलाह (शुद्धि) की गई और उन सबपर लखनऊकी छाप लगाई गई। शायरीके इस रुजहानने एक मुकम्मिल तहरीक (आन्दोलन) की सूरत अख्तयार करली और इस तहरीकके रहनुमा (नेता) 'नासिख' करार पाये। रियायते लफ्जी (शब्दोंकी मुनासबत), मुहावरोंका इस्तेमाल, काफियेकी तलाश, मजामीन-की पेचीदगी और तसन्नोह (कृत्रिमता, बनावट, तकल्लुफ) यही चीजे थी, जिनपर मुशायरोंमें शायरोंको दाद मिलती थी। लखनऊकी शायरी एक पहलवानी और करतब बन गई। यह मुशायरे अखाड़े होते थे, जहाँ शायर अपने तमाम दाव-पेंचसे मुसल्ला होकर जाता था। जिसने देहलीकी तकलीद (अनुकरण) मे कही सादगी या तसव्वुफकी हदमे कदम रक्खा कि उसपर फौरन कुफ्रका फतवा सादिर हो जाता था।"[1]

सबसे प्रथम 'हसरत' ने जो देहलीके रहनेवाले थे, नवाब आसफुद्दौला-के शासनकालमें लखनऊ पहुँचकर वहाँकी रुचिको शायरीका रूप देकर लखनऊका एक अलहदा जनाना रंग कायम किया। तबसे कंघी-चोटी, चोली-महरमका बयान भी शायरीमें होने लगा। इन्हींके शिष्य जुरअत थे, जो मुआमलेबन्दी (माशूकके जाहिरा सम्बन्ध या बातचीतका नग्न रूप खींचने)की शायरीके लिये मशहूर हुए[2] है। अभीतक लखनवी रंगके शायरोंकी बेसिरी फौज थी। उनका कोई सरदार नही था। यह कमी इस युगके शायर 'नासिख' ने पूरी कर दी, और ये सर्वसम्मतिसे खारजी शायरीके मुसल्लिमउलसबूत (प्रामाणिक और अधिकारी) उस्ताद मान लिये गये, और उनके मरनेके बाद भी उन-जैसा मर्तबा खारिजी रंगमें अन्य किसी शायरको नसीब नहीं हुआ।

---

[1] 'निगार' लखनऊ—सितम्बर, १६४८ पृ० १२-१३

[2] हसरत और जुरअतके परिचयके लिये देखिए पृ० १७८ और २११

— २ —

जो मीठी-मीठी नज़रोसे वोह देखे।
कहूँ आँखोको मैं बादामे शीरीं॥

इस शेरमे 'बादामेशीरी' बाँधना था। अत बादामकी उपमाके लिए आँख और शीरीकी मुनासबतके लिये मीठी नज़रोके तीर चलाये गये है।

— ३ —

क्या पड गया है अक्स तेरी चश्मेमस्तका ?
नरगिसकी शक्ल बनगई हर मौज आबमें॥

इस शेरमें 'आब' काफिया बाँधनेके लिये 'चश्मेमस्त'की तलाश की गई, फिर उस 'चश्मेमस्त'के पानीमे 'अक्स' डाला गया, और जब पहले मिसरेमे चश्म आ गई तो उसकी मुशाहबत भला नरगिससे क्यो न दी जाती ? और 'चश्मेमस्त'मे जब पानी मौजूद है तो वह दरियाकी 'मौज'से कैसे खाली रहता ?

— ४ —

दे दुपट्टा तू अपना मलमलका।
नातवाँ हूँ कफन भी हो हलका॥

इस शेरमें काफिया 'हलका' है। चिन्ता हुई क्या चीज़ हलकी होती है ? दिमागपर ज़ोर देनेसे कफन हलका मालूम दिया। फिर ख़याल हुआ कि कफन क्यो हलका हो ? हाज़िर मिज़ाजीने फौरन सहारा दिया। आशिक 'नातवाँ' (दुर्बल) है ? इसलिए लाज़मी है कि कफन हलका हो। फिर सोचा गया कफन कौनसे कपडेका हो ? लट्ठा और ख़द्दर तो भारी होता है, मलमल हलकी होती है। मगर मलमल मोल कैसे लाई जाय ?' उसके ख़रीदनेको तो दाम चाहिए, और आशिकके पास

एकरसता) नही होती, और वह रूहकी सही अहतजाज (आत्माकी प्रतिक्रिया)की पूरी-पूरी रहनुमाई (प्रतिनिधित्व) नही करती। इसमें रगीन शब्दोका महज़ एक खुशनुमा घरौंदा होता है, जो नज़रोको अच्छा मालूम देता है, मगर कभी दिलकश नही होता।"[1]

खारिजी रगके शायरोके पेशेनज़र फारसीके शायर 'साइब' और 'वेदिल'का कलाम था। जिसका अध्ययन इन्होने सूक्ष्म दृष्टिसे किया। साइवका ढग था कि शेरके पहले मिसरेमे दावा और दूसरेमें मिसाल होती थी। ये मिसालें कही-कही तो उम्दा और दिलचस्प होती थी, परन्तु अधिकाश विलकुल साधारण और वेमज़े। वेदिलकी शायरीमें नाज़ुक और वारीक उपमाओ, उदाहरणो तथा नाज़ुक खयालियोसे काम लिया गया था। मगर उर्दूमे महज वह नकल रह गई और एक अजीव गोरख-धन्धा वन गई। कौआ चला हसकी चाल, मगर वह अपनी भी भूल बैठा।

अव लखनऊकी वदनाम-ओ-रुसवा शायरीके चन्द नमूने मुलाहिज़ा कीजिये, जो रियायते लफ्ज़ी, दुमायनी, मुवालगा, उरियानी (नग्न, अश्लील), ईहाम (श्लेष) और रकीक (वारीक) वातोसे लवरेज़ (परिपूर्ण) है।

नासिख—

— १ —

आज होता है दिला! दर्द जो मीठा-मीठा।
ध्यान आया है तुझे किसके लवेशीरींका?

काफिया चूंकि 'शीरीं' है, केवल शीरीं शब्दकी मुनासवतके लिये पहिले मिसरेमें मीठा-मीठा शब्द ठूंसा गया है।

---

[1]तारीखे अदवे उर्दू, पृ० २६१

शायरकी घिनावनी रुचिका नमूना देखिये। फर्माते हैं–'बगलेयार'में जो बाल दिखाई दे रहे हैं, वे सचमुच बाल नही हैं। वह तो सियहफाम जुल्फोका कन्धेपर अक्स है। इसी ज़लील ख़यालको बाँधनेके लिये इन शब्दोकी मिट्टी पलीद की गई है।

– ८ –

मुझको सौदाई बनाया है दिखाकर आँखें।
तुम धतूरेका लिया करते हो बादामसे काम॥

माशूककी आँखोमें ऐसी खूबी है कि जो देखता है, सौदाई हो जाता है। नासिखको ख़याल हुआ कि सौदाईपन (पागलपन) तो धतूरा वगैरह खानेसे होता है। बादाम तो मस्तिष्कको ताकत देते हैं। न कि सौदाई बनाते हैं। चट बादामकी उपमा आँखोसे दी और सौदाईपनेके लिए धतूरेको रखकर शब्दोकी मुनासबतमें शेर गढ दिया।

– ९ –

तेरी ऐसी उँगलियाँ है इस्तख़्वाँ जिसमें नहीं।
पोर-पोर उनकी मगर ख़ुरमाएतरबेख़स्ता है॥

उँगलियाँ माशूककी इतनी कोमल हैं मानो उनमें इस्तख़्वाँ (हड्डी) तक नही है, और पोर-पोर छुआरा है। इसी कल्पनाकी खातिर इस व्यूहकी रचना की गई है।

– १० –

तू वह ख़ुरशीद है, उल्टे जो गुलिस्ताँमें नकाव।
चेहरये गुलमें तलव्वुन हो वहीं हरवाँका॥

गिरगिट (हरवाँ) रग वदलता (तलव्वन करता) है। इसी धारणाको लेकर इस शेरकी रचना की गई है। माशूकको सूर्यकी उपमा

दाम ढूंढना गोया चीलके घोसलेमे मास तलाश करना है। चट ख़याल आया कि क्यो न माशूकका दुपट्टा इस कामके लिये मँगा लिया जाय। दामोकी भी बचत हो जायगी और माशूककी निशानी भी हाथ लग जायगी, और शेर भी नाज़ुक ख़यालीका गहवारा बन जायगा।

– ५ –

आतिशे रुख़से आँख सेकते हैं।
क्या ज़मिस्ताँमें काम मनकलका॥

आँख सेकनेका मुहावरा बाँधना था, परन्तु सेकनेको तो आग चाहिए। चट 'आतिशेरुख़' (कपोलकी सुर्ख़ीरूपी अग्नि) तैयार की गई। परन्तु फौरन ही ख़याल आया कि जब सेकनेकी बात कहनी है तो सर्दी (ज़मिस्ताँ) और अगीठी (मनकल) ज़रूर आने चाहिएँ। वर्ना कोई बग़ैर अँगीठीके या गर्मी बरसातमें सेकनेकी बात समझ लेगा तो बडी हँसी होगी।

– ६ –

देखकर तुझको न हो नाराज़ क्योकर सब रक़ीब।
पेश्तर कुत्तोको भुकवाता है जलवा माहका॥

हाथीको देखकर तो कुत्ते भूँका ही करते थे। 'नासिख़'को नई कल्पना सूझी तो 'माहके जलवे' (चन्द्रप्रकाश)को देखकर कुत्ते भूँकने लगे, और जब कुत्ते भूँकने लगे तो उनकी उपमा रकीबसे देकर दिलकी जलन शान्त कर ली। रकीब (प्रतिद्वन्द्वी) माशूकके साथ हर वक्त कुत्तेकी तरह दुम हिलाता घूमता रहता है और आशिकसे जलता है। यह सब सूझ-बूझ निराली और अनोखी होनेसे चट शेर मौज़ूँ कर दिया।

– ७ –

बालोका कुछ असर बगले यारमें नहीं।
पडता है अक्से ज़ुल्फे सियह शाम दोशपर॥

इहामगोई,[1] मुआमलेबन्दी,[2] सौकयाना,[3] आमता,[4] बुलहविसी[5] और इब्तज़ाली[6] शेरोको परख सकते है।

आतिश—

– १३ –

बोसेबाज़ीसे[7] मेरी होती है ईज़ा[8] उनको।
मुँह छिपाते हैं जो होते हैं मुँहासे पैदा॥

– १४ –

लबेशीरींको[9] तिरी चाशनी मुमकिन न हुई।
रससे शक्कर हुई शक्करसे बतासे पैदा॥

– १५ –

न फूल बैठके बालाएसरव[10] ऐ क़ुमरी[11]।
चढ़े जो बाँसके ऊपर यह काम नटका है॥

---

[1]दुमायनी,
[2]आशिक-माशूकके परस्परके गुप्त सम्बन्धोका बयान,
[3]बाज़ारी स्त्रियो-सम्बन्धी,
[4]रस्मी, अदना, मामूली,
[5]विषयवासना-सम्बन्धी,
[6]ज़लील, हकीर, आम, कमीने,
[7]चुम्बन लेनेसे, [8]तकलीफ,
[9]मधुर ओठको,
[10]सरू पेडकी उँचाईपर;
[11]कुमरी एक प्रकारकी चिडिया है जो सरूके पेडपर ज़्यादा बैठती है।

दी है और जब सूर्य गुलिस्ताँमें अपना जलवा फेंकता है तो फूल खिलते हैं। उसी फूलके खिलनेको गिरगिटका रग बदलनेसे मुशाहबत दी गई है।

— ११ —

तेरे तलवे औरोके मुँहसे सिवा शफ़्फ़ाफ है।
आयना भी इनके आगे साफ झावाँ हो गया॥

'झावाँ' क़ाफिया बाँधनेके लिये तलवोकी सृष्टि की गई, क्योकि झावेंसे पाँव साफ किये जाते है, परन्तु माशूकके तलवोमें मैल कहाँ? वह तो औरोके मुँह (शायद नासिखके मुँह)से भी शफ्फाफ होते हैं। जब मुँह आया तो उसके लिये फिर आयना क्यो नही आता?

— १२ —

हूँ मै आशिक़ अनारे पिस्ताँ का।
हो न तुरबतपै जुज़ अनार दरख़्त॥

जीते-जी तो माशूकके अनारे पिस्ताँ (स्तनरूपी अनार) छूने नसीब नही हुए। जीते-जी तो हिज्रेयारमें जलते ही रहे। मरनेपर भी क्या जलन शान्त होगी? अन्दर दिल दहकता रहेगा, और ऊपरसे कब्र धूपमें जलती रहेगी। कब्रपर घरवाले शायद दरख़्त लगा दें, इसी खयालसे नासिख वसीयत करते हैं कि जुज़ अनार (अनारके सिवा) और कोई दरख़्त कब्रपर न लगाया जाय, ताकि यारके अनारे पिस्ताँका तसव्वुर बराबर बना रहे और कुछ जीका ताप कम हो सके।

इसी तरहके खारजी अशआर इस युगके ख्यातिप्राप्त चन्द शायरोंके हम और दे रहे हैं। उनकी तशरीहकी आवश्यकता नही। आशा है पाठक अब स्वय इन खारजी रगके अशआरमेंसे—रियायते लफ़्ज़ी,[1]

---

[1]शब्दोकी मुनासबत;

— २० —

सारी रगें हुई हैं तनेजारपै[1] नमूद[2]।
नाताकतीने जिस्मको मिसतर[3] बना दिया ॥

— २१ —

रोनेकी तुझे लहर जो ऐ चश्मेतर आई।
कोसो नजर आयेगा न टापू न तराई ॥

— २२ —

आता है नाम आवारियें[4] कोहकनपै रश्क।
इस मुडचिरेने फोड़के सर क्या नमूद की!

— २३ —

वोह साथ रखते हैं इस तरह मजमये उश्शाक[5]!
सहाबा[6] साथ लिये जिस तरह रसूल चले ॥

— २४ —

क्योंकर निभेगी हमसे मुलाकात आपकी?
वल्लाह क्या जलील है औकात आपकी ॥

---

[1]निर्बल शरीरपर, [2]प्रकट,

[3]वह कागज जिसपै सतरें खींचनेको डोरे लगा देते हैं।

[4]मुझे 'फरहाद'की प्रसिद्धि (नाम)पर ईर्ष्या (रश्क) होती है! इस मुडचिरेने सिर्फ सर फोड़कर ख्याति प्राप्त कर ली।

[5]आशिकोंका दल,

[6]हज़रत मुहम्मद रसूलकी महफिलमें हाज़िर होनेवाले लोग।

— १६ —

यह जानते तो तुम्हें हम न बाँधने देते।
कमरके साथ लपेटेगा नाफ़को पटका॥

— १७ —

बेताब दिलको तसकीं[1] होती है दीदेख़तसे[2]।
वोह बूटी है यह जिससे पारेको मारते हैं॥

— १८ —

किया उस्तादको शागिर्द उस तिफ़्लेपरीरूने[3]।
पढ़ाया रोज़ बिसमिल्लाह इल्मेइश्क मुल्लाको॥

रिन्द—

— १९ —

है अयाँ हालेसग[4] असहाबे कह्फ़[5]।
जानवरकी आदमीयत देखली॥

---

[1]तसल्ली, [2]पत्र देखनेसे,
[3]कमसिन परीने, [4]कुत्तेका हाल,
[5]वे सात शख़्स जो ज़ालिम बादशाह 'दक़ियानूस'के ख़ौफ़में जाकर एक ग़ार (खोह)में छिप गये। उनके साथ एक कुत्ता भी था, जिसका नाम 'क़तमीर' था। भावार्थ यह है कि आदमी, आदमीको सताता है, परन्तु कुत्ता-जैसा जानवर मुसीबतमें काम आता है, और यही उसकी आदमीयत है।

— ३१ —

सीनेपै नहीं घाव तेरी तेग़का कातिल !
यह दिलमें मेरे नींव मुहब्बतकी पडी है ॥

— ३२ —

सबा—

सुबहे शबेविसाल[1] है क्यो नाराजन[2] न हूँ ?
पडती है मोगरी मेरे दिलपर गजरके साथ ॥

— ३३ —

कौन पूछेगा उसे ज़ुल्फेबुताँके[3] सामने ?
जाहिदो ! बिलफर्ज दाढ़ीपर ख़ुदाका नूर है ॥

— ३४ —

सन्दल-सी[4] वोह कलाइयाँ अपने गलेमें हो ।
हथफेरियाँ नसीब हो चन्दन-सी रानपर[5] ॥

— ३५ —

रूपपर है यारका बाग़े जवानी देखिये ।
क्या शगूफा लाये सीनेका उभार अबकी बरस ॥

— ३६ —

पैग़ामेवस्लपर वोह मेरी बोटियाँ उडाएँ ।
दाँतोंसे दें जवाव जबाबे सवालका ॥

---

[1]मिलनयामिनीका प्रात काल, [2]आह करना,
[3]प्रेयसीके ज़ुल्फोके समक्ष, [4]चन्दन-जैसी,
[5]जाँघ पर ।

— २५ —

हरजाईपनकी आपके कुछ इन्तहा नहीं।
कटता है दिन कहीं तो कहीं रात आपकी ॥

— २६ —

मजनूँको किस क़दर सगेलैला[1] अज़ीज़ था।
दीवाने हैं जो हम तेरे कुत्तेको 'तू' कहें ॥

— २७ —

ख़लील—

बग़लमें बैठिये दिलकी तरहसे आप आकर।
मैं पाँव पड़ता हूँ उठिये न दर्देसरकी तरह ॥

— २८ —

वस्लकी शब पलगके ऊपर।
मिस्ल चीतेके वोह मचलते हैं ॥

— २९ —

क्या लिखूँ शोरिशेदिल[2] काग़ज़में।
ताव[3] काकुलकी[4] तरह खाइयेगा ॥

— ३० —

हम क्या कुमारेइश्क़में[5] घातें बताएँगे ?
वोह ख़ुद जुआरियोंसे भी ज्यादा हैं चालिये ॥

---

[1]लैलीका कुत्ता, [2]दिलकी वेताबी, [3]बल, [4]जुल्फोंकी, [5]इश्ककी बाज़ीमें।

इस्तेमाल किये जा सकते थे। इसकी खिलाफवरज़ी मायूब (दूषित) समझी जाती थी।"[1]

इस नवीन रंगने दिल्ली और लखनऊकी भाषामे भी अन्तर डाल दिया। यानी बहुतसे ऐसे शब्द दिल्लीमे पुलिंग बोले जाते है, वे लखनऊमे स्त्रीलिंग समझे जाते है, और जो लखनऊमे पुलिंग इस्तेमाल होते है, वे दिल्लीमे स्त्रीलिंगमे बोले जाते है। इस रिवाजका प्रचलन 'नासिख'के शिष्य अमीरअली 'ओस्त' 'इश्क'ने किया, और यह भेद तबसे अबतक बराबर बना हुआ है। दिल्लीवाले बुलबुलको स्त्रीलिंग और लखनवी पुलिंग लिखते है, परन्तु सौदाने देहलवी होते हुए भी बुलबुलको एक जगह पुलिंग लिखा है––

सुने है मुर्ग़े चमनका तू नाला ऐ बुलबुल।
बहार आनेकी बुलबुल ख़बर लगा कहने॥

लखनवी अक्सर अब भी पुलिंग बांधते है—

करेगा तू मेरे नालोकी हमसरी बुलबुल।
शऊर इतना तो कर जाके जानवर पैदा॥

—सरूर

सैरे चमनको चलिये बुलबुल पुकारते है

—आतिश

लखनऊका यह दौर शायद अर्सेतक क़ायम रहता अगर दिल्लीमें ग़ालिब और मोमिन न हुए होते। इस दौरकी शायरीकी आलोचना करते हुए अल्लामानियाज़ फतहपुरी फर्माते हैं––"ग़ालिबने रामपुर पहुँचकर लखनऊकी शायरीको काफी मुतास्सिर (प्रभावित) किया, और आखिरकार लखनऊमे 'जलाल'-जैसे कहनेवाले पैदा हुए, और

---

[1]तारीखे अदबेउर्दू, पृ० २६३

झूमके पहनो न साहब झूमके।
झूमके ले लेंगे बोसा झूमके॥

इस इहामगोईमें लोगोने बडी गन्द बखेरी है। तहज़ीब गवारा नही करती कि इस तरहके फोहश-अश्लील शेर दिये जाएँ। उक्त शेर देनेमें ही हम बड़े नादिम हो रहे हैं।

हर ज़बानकी शायरी उस ज़बानके बोलने-जाननेवालोका आयना होता है, जिसमें उस देशकी सभ्यता-सस्कृति और विचारधारा-का प्रतिबिम्ब स्पष्ट दिखाई देता है। खारजी शायरीमे इस युगकी लखनवी तहज़ीब-ओ-तमद्दुनका अक्स साफ दिखलाई पड रहा है। इस खारजी शायरीसे उस ज़मानेके लिबास, ज़ेवर और शृगारोपयोगी वस्तुओकी अच्छी खासी सूची बन सकती है। उस वक्तके लोगोकी अभिलाषाएँ कितनी कुरुचिपूर्ण थी, उनका इश्क कितना ज़लील और बाज़ारू था, यह सब उन्हीका कलाम गला फाड-फाडकर बतला रहा है।

इस युगमे शब्दोकी काँट-छाँट, नये-नये लफ्ज़ोकी तलाश, अलफाज़की तहकीक और शब्दोकी मुनासबतका बडा खयाल रखा जाता था। खारजी शायरीके आविष्कारक और प्रामाणिक शायर 'नासिख' और उनके शिष्यो, परशिष्योकी बदौलत यह खारजी रग लखनऊ और राम-पुरमें फैल गया। यही लोग उन दिनो भाषाविज्ञ समझे जाते थे। बहर, सहर, मुनीर, जलाल, बर्क, वाजिदअलीशाह, अख्तर, असीर, वग़ैरह उचित और शुद्ध शब्दोके निर्वाचनमें बडा परिश्रम करते थे। "इस छान-बीनका यह नतीजा हुआ कि बहुतसे अलफाज़ खारिज कर दिये गये और लुगाते शेर (कविताशब्दकोष) बहुत कम रह गये। इस वजहसे ज़बानमें एक करख्तगी (कडापन, सख्ती) पैदा हो गई, क्योकि जो अलफाज़ और मुहावरे मुन्तखिबशुदा थे वे सिर्फ मुकर्ररकरदा तरीकोपर

थे। मि० जिन्ना ईर्ष्यालु और विरोधी कहे जा सकते हैं, परन्तु हरीफ या प्रतिद्वन्द्वी नही। प्रतिद्वन्द्विता समान योग्यतावालोमें ही होती है। दुर्योधन अर्जुनका शत्रु तो था, परन्तु प्रतिद्वन्द्वी नही। प्रतिद्वन्द्वी वह भीमका था और अर्जुनका वास्तविक प्रतिद्वन्द्वी कर्ण था। आतिश और नासिख़ समकालीन हुए हैं, इस समानताके अतिरिक्त उनमें कोई समानता न थी।

नासिख़ अमीर थे और लखनवी अमीर उनके साथी और सहायक थे। वे अमीराना जीवन व्यतीत करते थे। उनके जीवनमे अमीराना वज़ह-कतअ् और तकल्लुफ था। वही तकल्लुफ-ओ-तसन्नोह उनकी शायरीमें घुलमिल गया है। नासिख़ लखनवी ख़ारजी रगके मुसल्लिम-उलसबूत उस्ताद हुए हैं, और आतिश एक ऐसे वशमे उत्पन्न हुए जो सैनिकवृत्तिको श्रेष्ठ समझता था, और जब सैनिकवृत्तिसे अवकाश ग्रहण करता तो दरवेशी अख़्तयार कर लेता था। यही दोनो खान्दानी सिफात आतिशको भी विरासतमें मिली। वे सिपाहियाना बाँकपनसे रहते थे। कमरमें तलवार बाँधते थे। मुशायरोमे भी इसी सजधजसे जाते थे, और मन दरवेशका रखते थे। पचास रुपया मासिक वृत्ति नवावके यहाँसे आती थी। १५ रु० घरखर्चको देकर बाकी सब महमाँ-नवाज़ी या गरीब-गुरबोमें खर्च कर डालते थे, और अक्सर औकात वृत्ति मिलनेसे पहले ही फकीर हो जाते थे। घर भी टूटा-फूटा-सा किरायेपर ले रखा था। वही बोरिया बिछाये बैठे रहते थे। गरीब-अमीर सब उसीपर आकर बैठते थे। न किसी नवाबकी नौकरी की न किसीकी खुशामदमें कभी एक कसीदा लिखा। न किसीके सामने दस्तेसवाल किया। अपने झोपड़ेमें बोरियेपर बैठकर फकीराना ज़िन्दगी व्यतीत की, और स्वभावमे जो खान्दानी सिपहगीरीकी तमकनत थी, वह तमकनत उम्रभर कायम रखी। यही तमकनत, बाँकपन, सूफियानापन और सादगी उनकी शायरीमे है।

नासिख़ पहलवान और अमीर थे। उनकी शायरीमें भी पहलवानी

वर्तमानयुगमें जितने भी शायर हैं, चाहे वे कहीके भी है, देहलवी रगमे गजल कहते है। अर्वाचीन युगके लखनवी शायरोमें 'आतिश'का मर्तवा बहुत बुलन्द है। आतिश जिस शायरीके क्षेत्रमें पाँव रखते हैं उसे पूर्ववर्त्ती और समकालीन शायरोने वीभत्स बना दिया था। बकौल मौ० खलीलुलरहमान काज़मी—"इशा, जुरअत, और रगीनने जो सरमाया छोडा था, उसपर दिन-ब-दिन लखनऊका वह रग चढता जा रहा था जो 'अमानत'की इन्द्रसभाके लिए ज़मीन तैयार कर रहा था। सौकयत और इब्तज़ालने रेख्ता और रेख्तीकी हदोको मिला दिया, और फहाश-ओ-उरयानी (अश्लीलता व नग्नता)का वोह सैलाव उमड पडा कि जिसको देखकर बकौल आज़ाद—शराफत आँख नीची कर लेती थी"।[1]

नासिख़ और आतिश—

आतिशकी प्रकृति और स्वभाव जिन तत्त्वोसे वने थे, उनको देखते हुए उनके लिए उपयुक्त क्षेत्र गजलगोईका था, और सौभाग्यसे यही उन्होने चुना भी। आतिशके अन्दर जो तेवर, वलवला, बाँकपन, मस्ती, उच्च कल्पना, मौलिक उपज और भावना थी, वही उनकी वाणीसे प्रस्फुटित हुई। आतिशकी शायरी भी आतिशी (आग्नेय) है। मौ० मुहम्मद हुसैन आज़ादने मीर-ओ-सौदा, मुसहफी-ओ-इशा, गालिव-ओ-ज़ौककी तरह आतिश-ओ-नासिखको भी एक दूसरेका प्रतिद्वन्द्वी लिखा है, परन्तु वास्तविकता यह है कि न वे सब एक दूसरेके प्रतिद्वन्द्वी थे और न आतिश-ओ-नासिख़ ही एक दूसरेके हरीफ थे। समकालीन होना और एक दूसरेका ईर्षालु होना और वात है और हरीफ या प्रतिद्वन्द्वी होना और वात है। महात्मा गाधीकी अच्छी-से-अच्छी वातसे मि० जिन्ना नफरत करते थे। वे पूरवकी ओर चलते तो ये पश्चिमकी ओर भागते

---

[1]निगार, लखनऊ, सितम्बर, १९४८, पृ० १२

चूंकि नासिख खुदावख्श खेमादोज़के दत्तके पुत्र थे, और खुदावख्शके भाइयोने अदालतमे यह सावित करनेका प्रयत्न किया था कि नासिख दत्तक पुत्र नही, खुदावख्शके गुलाम थे। उसी रवायतकी ओर उक्त मतलेमे इशारा किया गया है। चूंकि नासिखका नाम इमामवख्श था, इसलिए नासिखके मतलेमे 'इमाम' शब्दने दुमायनीका मज़ा दिया था। इसी तरह 'गुलाम' शब्द डालकर उसने भी कमाल कर दिया, लेकिन शिष्य आखिर शिष्य थे, और नासिख इस फनके माने हुए उस्ताद। अत उन्होने भी तुरन्त जवाव दिया और ऐसा जवाब दिया कि जिसका कोई जवाब नही।

जो ख़ास बन्दे हैं वोह् बन्दये अवाम नहीं।
हज़ार बार जो यूसुफ बिके ग़ुलाम नहीं॥

यूसुफ तो पैगम्बर थे। वे मिस्रके वाज़ारमें गुलामोके साथ बेचे गये और गुलामोकी तरह उन्हें खरीदा गया। फिर भी वे ग़ुलाम न कहलाकर पैगम्बर ही कहलाये।

इसी तरह जब आतिशने नासिखकी गज़लोपर मुतवातिर ग़ज़लें कहनी प्रारम्भ की तो नासिखने कुढकर लिखा––

एक जाहिल कह रहा है मेरे दीवाँका जवाब।
बू मुसीलमने लिखा था जैसे क़ुरआँका जवाब॥

आतिशने इस मतलेका जो लाजवाव, जवाव दिया है उसकी दाद नही दी जा सकती।

क्यो न दे हर मोमिन उस मलहदके दीवाँका जवाब।
जिसने दीवाँ अपना ठहराया है क़ुरआँका जवाब॥

नासिख और आतिश परस्पर शायराना चोटें तो करते थे, परन्तु इशा, मुसहफीकी तरह दरवारो और वाज़ारोमे नही लडते थे, वल्कि एक दूसरेकी ज़ाहिरा पोज़ीशनका खयाल रखते थे। नासिख़ने आतिशके

जैसे दाव-पेंच और अमीरो-जैसा तकल्लुफ, बनावट और बाहरी रख-रखाव मिलता है। आतिश सिपाही और दरवेश थे। इसलिए उनकी शायरीमें भी सिपाहियाना तमकनत और दरवेशी, सादगी पाई जाती है।

नासिख और आतिश चूंकि समकालीन थे और एक दूसरेका शायराना रंग बिलकुल भिन्न था, कही भी समानता नही थी, इसलिए परस्पर मत-भेद होना स्वाभाविक था। इसी मतभेद और विरोधी स्वभावके कारण कभी-कभी आपसमे नोक-झोक हो जाया करती थी। एक बार नासिख मुशायरेमे इतने विलम्बसे पहुँचे कि मुशायरा समाप्त हो चुका था। सभी लोग जा चुके थे। आतिश और उनके शिष्य चलनेको ही थे कि नासिख़को देखकर ठहर गये और उनसे सभ्यताके नाते गज़ल पढनेका अनुरोध किया।

नासिख़ने अपनी गज़लका मतला पढा—

जो ख़ास है वोह शरीके गिरोहे आम नहीं।
शुमार दानये तसबीहमें इमाम नहीं॥

मतला सुनते ही आतिशके शिष्योंके दिल बेचैन हो उठे, क्योकि नासिख़ने इन सबपर उक्त मतलेमें चोट की है। यानी जिस तरह मालाके ऊपरके तीन दाने मालामें शुमार नही, उनसे ऊँचा दर्जा रखते है और वे मालाके साधारण मनके न कहेलाकर इमाम कहलाते हैं। उसी तरह नासिख भी खास व्यक्तियोमें हैं। वे इतने आम नही कि मुशायरेमें पहलेसे आकर गिरोहमें बैठें। गज़ल पूरी होनेपर आतिशके एक शिष्यने वही तत्काल यह मतला बनाकर सुनाया—

यह बज़्म वोह है कि ताख़ीरका[1] मुकाम नहीं।
हमारे गंजफेमें बाज़िये गुलाम नहीं॥

---

[1]विलम्बका।

मगर गजब यह किया कि गरदोपेश जो वुसअ़ते बेइन्तहा (चारो ओर विशाल भूमि) पडी थी, उसमे किसी जानिबसे नही गये। बालाखानो-मेंसे बाला-बाला उड गये। बाज बुलन्द परवाज़ ऐसे ओजपर उड जायेंगे, जहाँ आफताब तारा हो जायेगा, और बाज़ ऐसे उडेंगे कि उड ही जायेगे। अबतक मज़मूनका फूल अपने हुस्नेखुदादादके जोबन (प्राकृतिक सौन्दर्य्य) से फसाहतके चमनमे लहलहाता था। यह उसकी पखडियाँ लेंगे, और उनमे पर व कलमसे ऐसी नक्काशी करेंगे कि बेऐनकके दिखाई न देगी। इस खयालबन्दीमें ये साहबेकमाल इस कुदरती लताफतकी भी परवा नही करेंगे, जिसे तुम हुस्ने खुदादाद समझते हो।"[1]

पहले हम लखनवी शायरोका परिचय और उनके श्रेष्ठ शेर देंगे, फिर देहलवी शायरोपर प्रकाश डाला जायगा।

२० सितम्बर १९४९

---

[1]आबेहयात, पृ० ३३९-४०

विद्रोही शिष्योको न वरगलाकर समझा-बुझाकर आतिशके ही शिष्य बने रहनेकी सीख दी और आतिशने नासिखकी मृत्युके बाद यह कहकर गज़ल ही कहना छोड दिया कि जब सुखनफहम ही उठ गया, तब किसको सुख़न सुनाएँ। गोया—

"लज्ज़ते इश्क़ गई ग़ैरके मर जानेसे"

इस अर्वाचीन युगमे शायरी देहली और लखनऊ स्कूलमे दाख़िली और ख़ारिजी नामसे विभक्त हो जाती है। देहलीके शायरोमे इस युगमें ग़ालिब और मोमिन उर्दूके अमर शायर हुए हैं। लखनवी शायरोमें आतिश का आसन भी बहुत ऊँचा है और उनका शुमार ग़ालिब और मोमिनके बाद बडे फख़्रसे किया जाता है। लखनवी शायरोमे मर्सियागोई मे अनीसो-दबीर ऐसे सिद्धहस्त शायर हुए हैं कि इन सपूतोपर इनका मादरेवतन जितना भी अभिमान करे थोडा है। बकौल नियाज़ फतहपुरी—"अगर लखनवी दौरे शायरी सिवाय अनीस-ओ-दबीरके किसी और शायर को न पैदा करती तो भी उसके लिए यह फख़्र कम न था कि उसने ऐसी दो हस्तियाँ पेश की। गो उनका ताल्लुक भी हकीकतन देहलीसे था।"[1]

देहलीके बादशाहोमें बहादुरशाह ज़फर और लखनऊके नवाबोमें आसफुद्दौलासे बहतर कोई शायर नही हुआ। इस युगके देहलवी और लखनवी शायरोके सम्बन्धमे आज़ाद लिखते है—"इस दौरमे दो किस्मके बाकमाल नज़र आएँगे। एक वे जिन्होने अपने बुज़ुर्गोकी पैरवीको दीनो-आईन (धर्म वा कानून) समझा। यह उनके बागोमे फिरेगे। पुरानी शाखें, ज़र्द पत्ते काटें-छाटेंगे और नये रग, नये ढगके गुलदस्ते बना-बनाकर गुलदानोसे ताक-ओ-ईवान सजायेंगे। दूसरे वोह आली दिमाग जो फिक्रके दखानसे ईजादकी हवाएँ उडायेगे और बुर्ज़ आतिशबाज़ीकी तरह उससे रुतबएआली पाएँगे। इन्होने इस हवासे बडे-बडे काम लिये।

---

[1]इतकादियात, भा० २, पृ० १६०

प्रयोग करनेमे नासिख तो बदनाम है ही, परन्तु ये भी कुछ कम न थे। इनका कलाम भी काफी दुरूह है। इनके कलाममे नित, जाए है, मियाँ, सो, प्यारे, बसे है, झमकी, मत, बुताँ, ज्यूँ, ऐसे बहुतसे शब्द मिलते है, जो नासिख-ओ-आतिशने बादमे शायरीसे खारिज कर दिये थे। हम इनके सरल-से-सरल और उक्त शब्दोसे रहित अशआर देनेका प्रयत्न कर रहे है —

थे। उनकी शायरीमें बनावट, तकल्लुफ और अश्लीलता भरी रहती थी, यह धारणा भ्रामक है। खारजी शायरीके लिए केवल अहले लखनऊ-पर बोहतान लगाना और उसका आविष्कारक नासिखको घोषित करना उचित नही। लखनऊमे भी आतिश-जैसा गज़लगो और अनीस-ओ-दबीर-जैसे मर्सियागो हुए हैं। वह तो लखनऊका वातावरण ही उन दिनो ऐसा था कि, जो वहाँ पहुँचता था, वहाँकी बोली बोलने लगता था। बकौल अकबर—

> मेरे सैय्यादकी तालीमकी है धूम गुलशनमें।
> यहाँ जो आज फँसता है, वह कल सैयाद होता है॥

सौदा देहलवी होते हुए भी खारजी रगके शैदा थे। इशा, जुरअत, मुसहफी देहलवी होते हुए भी लखनवी हमाममे नगे कूद पडे। शाह नसीर और ज़ौक दिल्लीमे रहते हुए भी लखनवी-खारजी रगका कलमा पढते रहे। फिर नासिख गरीबका ही क्या कुसूर?

नवाबोके भोग-विलास और उनकी स्वच्छन्द कामुक क्रीडाओके कारण शनै-शनै लखनऊका वातावरण दूषित होता गया। दाखिली रग धीरे-धीरे मिटता गया और खारजी रग उत्तरोत्तर गहरा होता गया। नासिखसे पहले ही अहले लखनऊ खारजी रगकी तरफ रागिब हो चुके थे। उनसे पूर्व अख्तर इसी रगमें शेर कह रहे थे, और वे मामूली शायर नही, मलिकउलशुअरा थे। इसी रगको नासिखने पक्का कर दिया, और उनके युगमें हर लखनवी शायर इसी रगमे सराबोर हो गया। यहाँतक कि इस रगके छीटे अहले देहलीपर भी जा पडे। नासिखके समकालीन और लखनवी होते हुए भी आतिशने इस रगसे अपना दामन बचाना चाहा, परन्तु बेदाग वे भी न रह सके।

नासिखसे काफी पहले अख्तर खारजी रगमें कह रहे थे। विद्वता-का प्रदर्शन करनेके लिए क्लिष्ट, कर्ण-कटु और अव्यवहृत नये-नये शब्दोका

मुन्तज़िर[1] यारके बैठे है लिये सब सामाँ।
साक़ी-ओ-मुतरिबा[2]-ओ-साग़िर-ओ मीना दरवेश ॥

गर्चे 'अख्तर' चुप है और ताकत नहीं फरियादकी।
है वले[3] उसकी ज़बाँ आतिश फिशाँ[4] मानिन्दे शमअ ॥

सुहबते अहले हविस हुस्नको खो देती है।
गर हवासे न मिले क्यो हो परेशानिये शमअ ॥

कल सैर देखी मारकये हुस्नोइश्कमें।
था इस तरफ पतग बिचारा उधर चिराग़ ॥
जो दिलजले है जानते है दिलजलोकी कद्र।
परवाने-साँ कोई नही जलता, मगर चिराग़ ॥

देखा न जिन्दगीमें तुझे हमने यार हैफ।
हसरतभरे जहाँसे चले हम, हजार हैफ!!

यही ग़म है दिलको 'अख्तर' कि वह माह महर परवर।
न हुआ कभी करारेदिल बेकरारे आशिक ॥

सौ टुकडे हो गया न सुनी हमने पर सदा।
क्योकर न जीको भाये अदाए शकिस्तेदिल ॥

ध्यान तेरा हमें दमभर भी न भूला हरगिज़।
पर तेरी यादसे अफसोस फरामोश है हम ॥

दो-चार होते है जिस वक्त उस निगाहसे हम।
तो जाते रहते है बस अपने अख्तियारसे हम ॥

---

[1]प्रतीक्षामें, [2]गायक, [3]लेकिन;
[4]आग झाडनेवाली, शोले भडकानेवाली।

ख़ानाआबाद ! इश्कने तेरे,
आह ! किस-किसको दरबदर न किया ॥
हुए जिसकी हवामें ख़ाक, उसने—
ख़ाकपर भी कभू गुज़र न किया ॥

गम नहीं, हमसे अगर सारा जमाना छूटा ।
पर ग़ज़ब है कि तेरे कूचेका आना छूटा ॥

समझके रखियो क़दम बहरेइश्क़में[1] 'अख़्तर' !
निहगेग़म हैं यहाँ बेहिसाब दर तहे आब[2] ॥

जान खोई, ख़राब की दौलत ।
दिलपुरइज़्तराब की दौलत ॥
अब्रेरहमतसे रूशनास हुए ।
गिरयए बेहिसाबकी दौलत ॥
वस्लमें भी रहा सकूते बहम ।
डरके बाइस, हिजाबकी दौलत ॥

गो उठ गये तुम पाससे पर ध्यान तुम्हारा ।
जाएगा कहाँ दीदये हैरांसे निकलकर ॥
याँ तक तू ही लाई, न सता अब मुझे वहशत !
मैं और कहाँ जाऊँ बयाबाँसे निकलकर ॥

---

[1] प्रेमरूपी नदीमें,
[2] संसाररूपी समुद्रमें गमरूपी मगर-मच्छ बेहिसाब हैं ।

किसीने कही—तुमपै मरता है 'अख़्तर'।
कही उसने—ऐसे दिवाने बहुत हैं॥

वादे ख़िलाफ जिससे हुए लाख, देखना।
बैठा हूँ उसके वादेपर फिर किस यक़ींसे मैं॥

यह जो कहते हो यारो कि "यारसे मिल, उसे हाल सुना कि वोह होवे ख़िजल"[1]।
करूँ किस तरह उससे बयाँ ग़मेदिल, मुझे बज़्मतक उसकी तो बार[2] नहीं॥

इश्क़में दीदओदिल ही नहीं तनहा दुश्मन।
जो उसे प्यार करे है वोह हमारा दुश्मन॥

तू जो चाहे सो कहे ऐ बुतेबदख़ूह! मुझको।
आजतक वर्ना किसीने न कही 'तू' मुझको॥
क़त्लका गम नहीं, ग़म है कि कहीं इसपर भी।
बेवफा समझे न वोह शोख़ जफाजू[3] मुझको॥

ख़ूंसे आलूदा कहीं दामने जल्लाद न हो।
मुज़तरब इस कदर ऐ बिस्मिले नाशाद न हो॥

आए थे जिस कामको याँ उससे ग़ाफिल हो गये।
ख़्वाबेग़फलतमें जो देखा सबको, हम भी सो गये॥

आस्ताने हक जब अपने वास्ते मौजूद है।
क्यो दरेनवाब ओ ख़ाँपर[4] जिबहसाई[5] कीजिये॥

गिरकर ज़मींसे फिर न उठे मिस्ले नक्शेपा[6]।
यारब! यह किसके कुश्तयेरफ़्तार हम हुए॥

---

[1]लज्जित, [2]पहुँच, [3]अत्याचारी,
[4]अमीरो की चौखट पर, [5]नतमस्तक होना, [6]पद चिह्नकी तरह,

लोग जब सुनते हैं किस्से तेरे दीवानेके।
कैस-ओ-फ़रहादके अफसाने उठा रखते हैं॥

जान दे बैठें तो देखे न कभी आँख उठा।
ऐसे बेदीदसे हम चश्मेवफा रखते हैं॥

'अख़्तर'! जहाँमें हरकोई रखता है आश्ना।
अपना बजुज़ख़ुदा[1] कोई यार आश्ना नहीं॥

शिद्दतेग़मसे, हुजूमेदर्दसे, अफसुर्दा हूँ।
मर्गसे कह दो कि मैं जीनेसे अब आज़ुर्दा हूँ॥

ढूँडें कहाँ कि आप ही में पाते हैं तुझे।
नादाँ नहीं कि और कहीं जुस्तजू करें॥

मिलना तू एक बार न मौक़ूफ हमसे कर।
ता रफ्ता-रफ्ता हम तेरे हिजराँसे ख़ू[2] करें॥

उश्शाक़की[3] कुबूल नहीं होती बन्दगी।
जबतक वोह ख़ूनेदिलसे न अपने वज़ू करें॥

फिराक़ेयारमें 'अख़्तर'! सुनाऊँ हाल क्या अपना।
न दिनभर चैन है दिलको, न शबको ख़्वाब आँखोंमें॥

ऐ जाँ! अदमकी[4] राहमें है डर तुझे अबस[5]।
तू साथ मेरे हो ले कि मैं राहदीदा[6] हूँ॥

जिगर, सीनओदिल ठिकाने बहुत हैं।
तेरे तीरके याँ निशाने बहुत हैं॥

---

[1]ख़ुदाके अतिरिक्त, [2]अभ्यास, [3]आशिकोंकी, [4]परलोककी, [5]व्यर्थ, [6]मार्गसे परिचित।

तरद्दुद[1] क्यो तुम्हें ऐ साकिनाने मुल्के हस्ती है ।
अदमकी राह सीधी है बुलन्दी है न पस्ती है ॥
जहांके बाग़में होगी बहार अगले ज़मानेमें ।
हमारे अहदमें इसपर तो वीरानी बरसती है ॥
समझ हरएकको हुश्यार हम आये थे याँ 'अख़्तर' !
बचश्मेग़ौर जो देखा तो मतवालोंकी बस्ती है ॥

क्या खबर सुनाता है यारके न आनेकी ।
बात है यह ए कासिद ! मेरे जीके जानेकी ॥
ख़ू[2] वहाँ नहीं जाती दमबदम सतानेकी ।
याँ रही नहीं ताकत अब जफा उठानेकी ॥
तन जले नहीं परवा, सर कटे नहीं कुछ ग़म ।
सीखे शमअ़ से कोई वजह जी खपानेकी ॥

बात वोह सच है जो दुश्मनकी जबाँसे हो अदा ।
वस्फे चश्मेयार पूछो नरगिसेग़म्माज़से ॥

जान दी लेकिन न उसके आस्ताँसे उठ सके ।
अश्क-साँ[3] जिस जा गिरे हम फिर न वाँसे उठ सके ॥

कलक है, दर्द है, काहिश है, ग़म है, नातवानी है ।
फिराके यार है ये या बलाये नागहानी है ॥
ख़ुदा जाने अभी क्या-क्या दिखायेगा ग़मेहिजराँ ।
रहे हैं अबतलक जीते यह अपनी सख़्त जानी है ॥
'अख़्तर'को देख नज़अ़में[4] हमने तो रो दिया ।
हसरतसे उसने जानिबेदर जो निगाह की ॥

---

[1]सोच विचार, [2]आदत; [3]आँसूकी तरह,
[4]मृत्युकी अन्तिम अवस्थामे ।

आती नहीं सदा भी आहेहज़ींकी अब तो।
ग़ाफ़िल ख़बर ले अपने बीमारे नातवाँकी॥
ऐ उम्रेरफ़्ता! अब तू आती है याद मुझको।
औक़ात तेरी मैंने क्या मुफ्त रायगाँ की॥

जो भूलकर भी याद न उसने किया कभी।
यादश बख़ैर शाद रहे, वोह जहाँ रहे॥

यह दिलबरी, यह नाज़, यह अन्दाज़, यह जमाल।
इन्साँ करे अगर न तेरी चाह, क्या करे?

क़द्र अपनी इस जहाँमें इन्साँ अगर न समझे।
इन्सान उसको हरगिज़ अहलेनज़र न समझे॥

तू तो सरमस्तेमये नाज़ है क्या इससे तुझे?
कोई दिलशाद रहे या कोई नाशाद रहे॥
छानते ख़ाक रहे इश्क़में बरसों 'अख़्तर'।
उसने पूछा भी न, "किसके लिये बरबाद रहे"॥

ख़फ़ा नामेसे होता है वोह, क़ासिद!
मेरा पैग़ाम तू कहियो ज़बानी॥

यूँ मिला तीरके पैकाँसे तेरे दिल अपना।
मेज़बाँ[1] दौड़के जिस तरहसे महमाँसे मिले॥

अजब ढगकी यह तामीरो ख़राब-आबादे हस्ती है।
कि पस्ती याँ बुलन्दी है, बुलन्दी याँकी पस्ती है॥

---

[1]महमानका स्वागत-सत्कार करनेवाला।

४०

नासिख

शेख इमामबख्श 'नासिख' फैज़ाबादके खुदाबख्श खेमादोज़के दत्तक पुत्र थे। अस्ल पिता लाहौरके रहनेवाले थे, और काबुलोकाश्मीरसे वनफ्शा और केसर लाकर फेरीमे बेचा करते थे। खुदावख्श फैज़ाबादीने इन्हे अपनी औलादकी तरह लाड-प्यारसे रखा और अरबी-फारसी पढने-लिखनेका उत्तमोत्तम प्रबन्ध किया। खुदाबख्शकी मृत्युके उपरान्त उसके भाइयोने नासिखको धता बतानेका इरादा किया, किन्तु नासिखने नम्रतापूर्वक निवेदन किया कि "मुझे धन-दौलतसे कोई सरोकार नही, जिस तरह उनको बाप समझता था, आपको समझता हूँ। उनकी तरह आप भी मेरी आवश्यकताओकी पूर्त्ति करते रहे, मुझे और कुछ नही चाहिए", परन्तु खुदावख्शके भाई-बन्द तो इन्हें अपने रास्तेका काँटा समझते थे और सम्पूर्ण धन-दौलत हथियाना चाहते थे। अत उन्होने नासिखके भोजनमें विष मिला दिया, किन्तु नासिखको किसी तरह विषका आभास हो गया, और उन्होने दस-पाँच मित्रोके सामने कुत्तेको भोजनका अश डाला तो वह तत्काल मर गया। विषसे बचनेपर नासिखपर इस उज्रके साथ दावा दायर कर दिया गया कि "यह खुदा-बख्शका दत्तक पुत्र नही गुलाम है।" अन्तमें न्यायालयका निर्णय भी नासिखके पक्षमें ही हुआ। तब नासिखने चन्द रुबाइयाँ लिखकर जो अपने मनोभाव व्यक्त किये थे, उनमेंसे दो यहाँ दी जा रही हैं—

मशहूर है गर्चे इफतराये अमाम।
पर, करते नहीं ग़ौर ख़वास और अवाम॥

ख़ाक किस-किस न गली-कूचेकी छानी ए वाए।
जबसे क़िस्मतने किया दूर तेरे दरसे मुझे॥

गो शमअ़का जलना भी है सब ख़ल्क़पै रोशन।
पर सोजे़ निहाँको[1] मेरे पाती नहीं वह भी॥
एक आह जो थी बेकसयेहिज्रमें[2] हमदम[3]!
सो ज़ोफसे[4] अब लबतलक आती नहीं वह भी॥

बातोंमें बना लेवे जो टूटे हुए दिलको।
यह सहर[5] है, एजाज़[6] है या शीशागरी है॥

जहाद[7] उसको नहीं कहते कि होवे ख़ून इन्साँका।
करे जो कत्ल अपने नफ़्सेकाफिरको,[8] वोह ग़ाजी है॥

दिलके दो टुकडे किये मिनकारे बुलबुलकी[9] तरह।
इश्कने बख़्शा है तब शौके ग़ज़लख़्वानी मुझे॥

रजो क़लक़ो आहो फुग़ाँ गिरयाओज़ारी।
इन सारी बलाओंका बस इक इश्क सबब है॥

अबस[10] है ज़िन्दगी ऐ ख़िज्र! जब हमदम न हो कोई।
हमें ऐसी हयाते जाविदानी[11] ख़ुश नहीं आती॥

२४ सितम्बर, १९५०

---

[1]अंतरंगकी जलन को; [2]विरहकी विवशतामे, [3]मित्र, साथी, [4]निर्बलताके कारण, [5],[6]जादू, [7]धर्म-युद्ध, [8]विषय-वासनाओं को, [9]बुलबुलकी चोंच की; [10]व्यर्थ, [11]अमर जीवन।

उलट चुका और मैदान साफ हो गया तो मैंने गज़ल पढनी शुरु की ।"[1]

धीरे-धीरे मुशायरोमे रग जमने लगा और नासिख़ अभ्यास करते-करते स्वय एक अच्छे उस्ताद वन गये और अपने शिष्योकी कविताओका सशोधन करने लगे। कुछ लोगोका कहना है कि प्रारम्भमे 'मुसहफी मे इसलाह लेते रहे, परन्तु किसी शेरके सशोधनपर ऐसा मनोमालिन्य वढा कि 'मुसहफी'ने इन्हें फिर अपने यहाँ नही आने दिया।

नासिख़को पहलवानीका भी अच्छा शौक था। १३०० डड रोज़ाना लगाते थे। डील-डौल भी अच्छा लम्बा-चौडा था। चकला सीना, घुटा हुआ सिर, कहरवेका तहमद बाँधते थे। जाडोमे भी तनज़ेबका कुरता पहनते थे। कभी-कभी लखनवी छीटका दुहरा कुरता भी पहन लिया करते थे।

४-५ आदमियोकी जितनी ख़ुराक थी। दो नौकर उनके जूठे वर्तन उठा पाते थे। पाँच सेर वज़्ने-शाहजहानीकी ख़ूराक थी। किसीके सामने भोजन न करके एकान्तमे करते थे। रग काला था। कवी हैकल जवान थे। इसलिए इनके प्रतिद्वन्द्वी इन्हे दुमकटा भैसा कहा करते थे। मौ० मुहम्मदहुसैन आज़ाद इनके भोजनभट्टपनेका एक वाकआ लिखते है—

"एक तहसीलदारके यहाँ नासिख़ मेहमान थे। उन्होने कई किस्मके खास-खास खाने इनके लिये पकवाये। इसलिये वक्ते मामूलीमे कुछ देर हो गई। नासिख़ने देखा कि हरम सराकी (ज़नानी) ड्योढीसे नौकर अपने-अपने खाने लेकर निकले। वुलाकर पूछा कि ये खाना किसके लिये है ? अर्ज़ की हमारा खाना है। फर्माया इधर लाओ। उनमेंसे ४-५का खाना सामने रखवा लिया। चाट-पूँछकर वासन हवाले किये।

---

[1]आवेहयात, पृ० ३४५-४६

वारिस होना दलीले फरजन्दी है।
मीरास न पा सका कहीं कोई ग़ुलाम ॥

कहते रहे असाम अदावतसे गुलाम।
मीरासेपिदर पाई मगर मैंने तमाम ॥

इस दावये बातिलसे सितमगारोको।
हासिल यह हुआ कर गये मुझको बदनाम ॥

अवधकी राजधानी लखनऊ बनाये जानेपर नासिख भी फैज़ाबादसे लखनऊ चले आये और वही जीवन पर्यन्त रहे। शायरीमें वे किसीके शिष्य नही थे। फर्माते हैं—"मीर तकी मरहूम (स्वर्गीय) अभी जिन्दा थे। मुझे ज़ौकेसुखनने बेअख्तयार किया। एक दिन अगयार (शत्रुओ)-की नज़रे बचाकर कई गज़ले खिदमतमे ले गया। मगर उन्होने इसलाह न दी। मै दिलशिकस्ता होकर चला आया, और कहा कि मीर साहब भी आखिर आदमी है, फरिश्ते तो नही। अपने कलामको आप ही इसलाह दूंगा। चुनाचें कुछ कहता था और कुछ छोड़ता था। चन्द रोज़के बाद फिर देखता। जो समझमे आता इसलाह करता और रख देता। कुछ अर्सेके बाद फिर फुरसतमें नज़ेरसानी करता और बनाता। ग़रज मश्कका सिलसिला बराबर जारी था, लेकिन किसीको सुनाता न था। जबतक खूब इत्मीनान न हुआ मुशायरोमे गज़ल न पढी, न किसीको सुनाई। मिर्ज़ा हाजी साहबके मकानपर मुशायरे होते थे। सैयद इशा, मिर्जा कतील, जुरअत, मुसहफी वगैरह सब शुअरा जमा होते थे। मै भी जाता था। सबको सुनता था, मगर वहाँ कुछ न कहता था। उन लोगोमें जो नमक-मिर्च सैयद इशा और जुरअतके कलाममे होता था, वह किसीकी ज़बानमे न था। गरज़ सैयद इशा और मुसहफीके मार्के भी हो चुके। 'जुरअत' और ज़हूर-अल्लाख़ॉ 'नवा'के हगामे भी तय हो गये। जब ज़माना सारे वरक

सबा— दिल है ग़िज़ायेरंज[1], जिगर है ग़िज़ाएरंज।
पैदा किया है हमको ख़ुदाने बरायेरंज॥

नसीम— या तंगियेकिनार[2] थी या अब फ़िशारेक़ब्र[3]।
वोह इब्तदाए ऐश थी, यह इन्तहाए रंज॥

सबा— आदमसे ख़ुल्देबाग़ छुटा हमसे कूए यार।
वोह इब्तदाए रंज है यह इन्तहाए रंज॥

नसीम— हम शीशयेशकिस्ताँ[4] हैं तुम कैफ़ेमौजेमय[5]।
बुनियादे ऐश तुमसे है हमसे बिनाये रंज॥

सबा— ऐ सानए अजल[6] मिरी मट्टी ख़राब की।
क्या चाहिए थी ख़ानये दिलमें बिनाये रंज॥

नसीम— क्यों ख़फ़ा रश्केहूर होता है।
आदमीसे क़ुसूर होता है॥
ख़ाकसारी वोह है कि जरोंपर॥
रोज बाराने नूर होता है॥

सबा— बन्दा अब नासबूर[7] होता है।
उफ़्[8] होवे क़ुसूर होता है॥
ऐ सबा! जब बहार आती है।
हमको सौदा जरूर होता है॥

---

[1]रंजकी ख़ुराक; [2]गोदकी तंगी;
[3]क़ब्रकी संकीर्णता; [4]टूटे प्याले;
[5]शराबकी लहर;
[6]मृत्यु रूपी कारीगर;
[7]असन्तुष्ट;
[8]क्षमा किये जाने पर।

और कहा कि हमारा खाना आयगा तो तुम खा लेना। मेजबानको ख़बर पहुँची। इतनेमे वोह आये, यहाँ काम ख़त्म हो चुका था।"[1]

नासिख़को ख़ुदाबख़्शकी दौलत मिल गई थी। वह ख़ुशहालीमे जीवन व्यतीत करनेको काफी थी। इसलिए नौकरी करनेकी आवश्यकता ही नही पडी और शायरीकी बदौलत उनकी सर्वत्र आवभगत होने लगी। राजनैतिक षड्यन्त्रोसे घबडाकर कुछ दिनो इलाहाबाद चले गये, तो राजा चन्दूलाल वज़ीरे आज़म हैदराबादने बारह हज़ार रुपये भेजकर इन्हे हैदराबाद आनेका निमन्त्रण दिया, परन्तु ये वहाँ नही गये। फ़िर उन्होने पन्द्रह हज़ार रुपये भेजे और आनेका आग्रह करते हुए लिखा कि "मलिकउल शुअरा (राष्ट्रकवि)का ख़िताब दिलवा दूँगा। दरबारकी हाज़िरीकी कैद न रहेगी, मुलाकात आपकी ख़ुशीपर रहेगी", परन्तु नासिख़ हैदराबाद नही गये और वहाँसे आये हुए सत्ताईस हज़ार रुपये आवश्यकतानुसार व्यय करते रहे। इसी तरह कई नवाब, रईस, अमीर शिष्य उनकी आवश्यकताओंकी पूर्ति करना अपना अहोभाग्य समझते थे। बहुत कम सफर करते थे। फैजाबादसे लखनऊ आ गये थे। यहाँसे केवल इलाहाबाद, बनारस और पटना तक आये गये थे।

स्वाभिमानी इतने थे कि लखनऊके तत्कालीन नवाब गाज़ीउद्दीन हैदरने अपने वज़ीरसे कहलवाया कि—"अगर शेख़ नासिख़ हमारे दरबारमे आएँ और कसीदा सुनाएँ तो हम उन्हे मलिकउलशुअरा ख़िताब दें।"

नासिख़ने सुना तो बिगडकर बोले—"मिर्ज़ा सुलेमान शिकोह[2], बादशाह हो जाएँ तो वे ख़िताब दें। या गवरमेण्ट इगलिशया ख़िताब दे। मै नवाबका ख़िताब लेकर क्या करूँगा?" नवाबके कुपित हो जानेसे

---

[1] आबेहयात, पृ० ३४९

[2] मिर्जा सुलेमान शिकोह, बादशाह शाहआलमके तृतीय पुत्र थे। रात-दिनके आक्रमणोंसे तग आकर लखनऊमे रहने लगे थे।

इश्क़के रुत्बेके आगे आस्माँ भी पस्त है।
सर झुकाया है फ़रिश्तोंने बशरके सामने॥

बल पड़ने लगा अबरूयेख़मदारके ऊपर।
आजाये न आफ़त कहीं दो चारके ऊपर॥

चला दुख़्तरे रिज़को लेकर जो साक़ी।
फ़रिश्ते हुए साथ घर देखनेको॥

मुहतसिबकी आँखपर जबसे चढ़ी।
दुख़्तेरिज़ शीशेके दिलसे गिर गई॥

आनमें फ़र्क़ न आने दीजिये।
जान अगर जाये तो जाने दीजिये॥

आँख नर्गिससे जो उसकी लड़ गई।
सुबहदम क्या ओस गुलपर पड़ गई॥

दुनियामें ऐशो ग़मसे हैं यकसर भरे हुए।
शीशोंके दिल हैं ख़ाली तो साग़र भरे हुए॥

दोज़ख़ोजन्नत हैं अब मेरी नज़रके सामने।
घर रक़ीबोंने बनाया उसके घरके सामने॥

२० नवम्बर १९५० ई०

रिन्द— दिनको तो तशरीफ़ तुम लाते हो रोज़।
शबको भी इक दिन करम फ़रमाइये॥

नसीम— लाये उस बुतको इल्तजा करके।
कुफ़्र टूटा ख़ुदा-ख़ुदा करके॥
रिन्द— क्या मिला अर्ज़े मुद्दआ करके।
बात भी खोई इल्तजा करके॥

नसीम— जब हो चुकी शराब तो मैं मस्त मर गया।
शीशेके ख़ाली होते ही पैमाना भर गया॥
सबा— वाइज़के मैं ज़रूर डरानेसे डर गया।
जामे शराब लाये भी साक़ी किधर गया॥

नसीम— रूहेरवाने जिस्मकी[1] हालत मैं क्या कहूँ?
झोंका हवाका था, इधर आया उधर गया॥
सबा— मिस्ले हुबाब[2] बहरेजहाँसे[3] न दम मिला।
इक मौज[4] था कि मैं इधर आया उधर गया॥

नसीम— गुज़रा जहाँसे मैं तो कहा हँसके यारने।
"क़िस्सा गया, फ़िसाद गया, दर्देसर गया"॥
सबा— अच्छा हुआ जो हो गये वहदतपरस्त[5] हम।
फ़ित्ना गया, फ़िसाद गया, शोरोशर गया॥

नसीम— है रंजे इश्क़ मेरे लिये, मैं बरायेरंज[6]।
खुद भी मिटे यक़ीं है जो मुझको मिटाये रंज॥

---

[1]शरीर के प्राण की; [2]बुलबुला;
[3]संसार रूपी नदीमें; [4]लहर;
[5]एक ईश्वर वादी; [6]रंजके लिए।

शाख़ेगुल झूमके गुलज़ारमें सीधी जो हुई।
फिर गया आँखमें नक़्शा तेरी अँगड़ाईका॥

रसाके धूनी जो बैठा हूँ माँगपर उसकी।
इसी लकीरका मुझको फ़क़ीर होना था॥

—तारीख़े अदबे उर्दू

जाँ निकल जायेगी जब तनसे 'नसीम'।
गुलको बूए गुल हवा बतलायगी॥

सब्र रुख़सत हो तो जाने दीजिये।
बेक़रारी आये तो ठहराइये॥
दिल ही में दिखलाइये तासीरेइश्क़।
ठंडी साँसोंसे उन्हें गरमाइये॥
अब्रेरहमत सुनते हैं नाम आपका।
ख़ाकसारोंपर करम फ़रमाइये॥
सर्द आहें भरते हैं हम जब 'नसीम'!
कहते हैं वोह ठण्डे-ठण्डे जाइये॥

क्या-क्या हसीं चुने हुए मिट्टीमें मिल गये।
अफ़्शाँ समझके ख़ाकसे जर्रा उठाइये॥

जिस क़दर वस्लेबुताँका तुम्हें रहता है ख़याल।
ऐ 'नसीम'! उतनी कभी यादेख़ुदा आती है?

आशिक़से गर्म होके न पूछो जलनका हाल।
अफ़रोख़्ता हो शमअ़ तो परवाना क्या करे॥

कानमें सबके अपनी बात न डाल।
आबरू मिस्ले आबे गोहर है॥

तुम्हें रक़ीबकी ख़ातिर है लो मैं जाता हूँ।
उठाइये न हयाको, बिठाइये न मुझे॥

जो दिनको निकलो तो ख़ुर्शीद गर्देसर घूमे।
चलो जो शबको तो क़दमोंपै माहताब गिरे॥

अहदे पीरीमें रवाना हुए यूँ होशोहवास।
सुबहको जैसे मुसाफ़िरसे हो मंज़िल ख़ाली॥

५३

सबा

मीर वज़ीरअली सबा लखनऊके रहनेवाले और बुन्देअलीके पुत्र थे।

दिलमें इक दर्द उठा आँखोंमें आँसू भर आये।
बैठे-बैठे हमें क्या जानिये क्या याद आया॥

कूचये इश्क़की राहें कोई हमसे पूछे।
ख़िज्र क्या जानें ग़रीब अगले ज़मानेवाले॥

—इन्तक़ादयात, भाग २

५१

शरफ़

मीर सआदतअलीहुसेनख़ाँ शरफ़ उर्फ़ आग़ा हिजो नवाब वाजिदअलीके समधी थे। वाजिदअलीशाह जब बन्दी बनाकर कलकत्ते भेजे गये, तब इन्होंने उस विपत्तिमें भी उनका साथ दिया। आतिशके शिष्योंमें इनका विशेष स्थान है।

ठहरा गया है लाके जो मंज़िलमें इश्क़की।
क्या जाने रहनुमा था कि रहज़न था, कौन था?

निकलके जाऊँ किधर तेरी अंजुमनके सिवा।
चमनकी बू हूँ बसूँ फिर कहाँ चमनके सिवा॥

दर्दे दिल भी उन्हें सैयादने कहने न दिया।
रह गये मुर्ग़ेक़फ़स खोलके मिनक़ारोंको॥

—इन्तक़ादयात, भाग २

जहाँमें हुस्न परस्तोंकी जान लेनेको।
निखर-निखरके निकलते हैं ख़ूबरू क्या-क्या॥
टपक-टपकके कहीं गुल बना कहीं लाला।
चमनमें रंग न लाया मेरा लहू क्या-क्या॥
ज़बाँ जो उनकी 'शरफ़' नशेमें बहकती है।
मज़े-मज़ेकी वोह करते हैं गुफ़्तगू क्या-क्या॥

फड़कके जान न देता तो और क्या करता।
क़फ़ससे और निकलनेकी राह क्या करता?

थे। इनका एक उर्दू दीवान ५७० पृष्ठका मिलता है। जिसमें मसनवी हजल हिजो तज़मीन और ग़ज़लें हैं। हिजोमें करवला भाण्डका खाका ऐसे अश्लील शब्दोंमें उड़ाया गया है कि उन्हें कोई संजीदा शख़्स पढ़ नहीं सकता। ग़ज़लोंके चन्द शेर दर्ज किये जाते हैं। अपने वंशमें सबसे प्रथम इन्हींको शायरीका शौक़ लगा। बादमें इनके उत्तराधिकारियोंने भी इसे क़ायम रक्खा।

जहाँ तेग़ उसकी अलम देखते हैं।
वहाँ अपना सर हम क़लम देखते हैं॥
जो जलवा सनम तुझमें हम देखते हैं।
ख़ुदाकी ख़ुदाईमें कम देखते हैं॥
गुज़रते हैं सौ-सौ ख़याल अपने दिलमें।
किसीका जो नक़्शेक़दम देखते हैं॥
बुतोंकी गलीमें शबोरोज़ आसफ़।
तमाशा ख़ुदाईका हम देखते हैं॥

—तारीख़े अदबे उर्दू

यह न आनेके बहाने हैं सभी वरना मियाँ!
इतना तो घरसे मेरे कुछ नहीं घर दूर तेरा॥

क़िस्सये फ़रहादोमजनूँ रातदिन पढ़ते थे हम।
सो तो वह माज़ी[1] पड़ा, अब अपना अफ़साना हुआ॥
रातदिन यह सोच रहता है मेरे दिलके तईं।
ऐ ख़ुदा! याँसे वह जाकर किसका हमख़ाना[2] हुआ?

क़ासिद! तू लिये जाता है पैग़ाम हमारा।
पर, डरते हुए लीजियो वां नाम हमारा॥

---

[1]पुरानी बात हुई;   [2]मेहमान।

५२

ख़लील

मीर दोस्तअली ख़लील सैयद जमालअलीके पुत्र और बड़ौलीके रहनेवाले थे। मामूली शायरी करते थे।

बज़्मसे यारने यह कहके निकाला हमको।
उठिये घर जाइये, दम ले चुके, सुस्ताए बहुत॥

मुसाफ़िरे रहे ना आश्नाए[1] मंजिल हैं।
मिसाले रेगेरवाँ जाएँगे कहाँ देखें॥

जूनूँमें भी यही धुन है कोई उधर ले जाये।
जिधर वोह दुश्मने होशोहवास रहता है॥

—इन्तक़ादयात, भाग २

---

[1]निर्दिष्ट स्थानसे अनभिज्ञ।

जाँ निकल जायगा ज़ालिम ! मिरा, अब जानेसे ।
याँ न आना ही भला था तेरा इस आनेसे ॥

मिलनेको तुझसे दिल तो मेरा बेक़रार है ।
तू आके मिल न मिल, यह तेरा अख़्तयार है ॥

सभूसे बोलता है, पर मुझीसे—
नहीं कुछ बोलता, क्या जाने क्या है ?

—इन्तक़ादयात, भाग १

२५ फ़रवरी १९५०

५४

नवाब आसफ़ुद्दौला 'आसफ़'

[शासन काल ई० स० १७७२-१७९७]

लखनऊके नवाब मुग़ल सल्तनतकी ओरसे अवधप्रान्तके शासक (गवर्नर, सूबेदार) थे और मुग़ल बादशाहोंके नायब कहलाते थे। अवधकी राजधानी फ़ैज़ाबाद थी और अवधके तत्कालीन शासक नवाब शुजाउद्दौलाके नवाब आसफ़ुद्दौला पुत्र थे। इन्होंने २७ वर्षकी आयुमें शासनकी बागडोर सम्भाली और फ़ैज़ाबादसे बदलकर लखनऊको अवधकी राजधानी बनाया। ये बड़े गुणज्ञ, कलापारखी और दानी थे। इनकी दानवीरताकी चारों ओर ख्याति फैल गई थी—

ज़िसे न दे मौला, उसे भी दे आसफ़ुद्दौला।

इनकी गुणज्ञता, कलाप्रियता और सहृदयताकी गन्ध फैली तो देशके कोने-कोनेसे गुणी एकत्र होने लगे। गुलशनेहिन्दके लेखकका कथन है कि इनके शासनकालमें "एक-एक कमालका हज़ारहा आदमी मौजूद था।" इमारतका शौक़ ऐसा था कि हर रोज़ एक नई इमारतकी बुनियाद रखी जाती थी। इनके शासनकालमें संगीतकी इतनी उन्नति हुई कि लखनऊ संगीत-विशेषज्ञोंका रंगस्थल बन गया था। आसफ़ुद्दौला स्वयं शायर थे और शायरोंका आदर-सत्कार, भरण-पोषण मुक्त हृदयसे करते थे। अतएव सौदा, मीर, सोज़ जैसे ख्यातिप्राप्त शायर भी खिंच आये। नवाबका उपनाम आसफ़ था और सोज़से अपनी कविता संशोधित कराते

५६

नवाब सआदतअलीख़ाँ

[शासन काल सन् १७९७-१८१४ ई०]

सआदतअली नवाब आसफ़ुद्दौलाके सौतेले भाई थे। नवाब वज़ीर-अलीके राज्यच्युत किये जानेपर अंग्रेज़ोंकी कृपासे ये सिंहासनारूढ़ हुए। इन्हें अंग्रेज़ोंकी यह कृपादृष्टि अत्यन्त मँहगी पड़ी। अवध प्रान्तका दो-तिहाई भाग अंग्रेज़ोंके क़ब्ज़ेमें चला गया। यूँ तो समस्त देशपर अंग्रेजोंकी ईस्ट इण्डिया कम्पनीका अधिकार था और वही शासनकार्य चलाती थी। भारतके बादशाह, नवाब, राजे तो उनकी शतरंजके मुहरे थे। उनके संकेतपर लड़ते और चलते थे। घरेलू कलह और षडयन्त्रोंके कारण बन्दरबाँटकी न्यायतुलाके समक्ष सभी नतमस्तक थे। कुछ सन्तानहीन राज्योंको ईस्ट इण्डिया कम्पनीने कृपापूर्वक अपने उदरगह्वरमें शरण दे दी थी। जो बचे थे वे भाई-भाईकी क्रोधाग्निमें भस्मीभूत हो रहे थे। उसी अग्निको बुझानेमें पारितोषिक स्वरूप या जले हुए घरको अनधिकारी भाईको सौंप देनेकी महान नैतिकताके उपहारस्वरूप राज्यका वह भाग अपने अधिकारमें कर लेना ईस्ट इण्डिया कम्पनीका महान कर्तव्य हो जाता था और इसी विध्वंस राज्यको प्राप्त करनेकी ख़ुशीमें ये अधिकारहीन लँगड़े राजा-नवाब जवाहरात लुटाते थे। प्रजा ऐसे शुभ अवसरोंपर घीके दिये जलानेको मजबूर थी।

यह बचा-खुचा राज्य भी धन-वैभवकी दृष्टिसे कुछ कम न था। नवाब सआदतअलीख़ाँ भी बड़े गुणज्ञ थे। इन्होंने भी अपने भाई आसफ़ुद्दौलाकी भांति कलाकारोंका आदर-सत्कार किया। मुसहफ़ी और इंशाकी नोक-झोंक इन्हींके शासनकालमें हुई थीं।

कूचेसे अपने तूने मुझको अबस[1] उठाया।
सब तो चले गये थे इक मैं ही रह गया था॥

इस अदासे मुझे सलाम किया।
एक ही आनमें ग़ुलाम किया॥

दर्दे दिल है तो यारके बाइस।
ग़म है तो इस निगारके[2] बाइस॥

कोई बात तो हमारी भी मान अब ख़ुदासे डर।
कबतक दिया करेगा हमें तू जवाब तल्ख़॥
फिरता हूँ कोहोदश्तमें[3] रोता मैं जार-जार।
तुझ बिन हुआ है घर मुझे ख़ाना ख़राब तल्ख़॥

बड़ा चरचा बढ़ेगा इसका 'आसफ़'।
हरइक बेदर्दको तू मत सुना दर्द॥

कल तलक होती थी कुछ नब्ज़में गरमी महसूस।
आज तो नब्ज़ ही होती नहीं अपनी महसूस॥
चश्मे आशिक़में यारो ख़्वाब कहाँ?
दिले आशिक़में सब्रोताब कहाँ?

यह सारी शोख़ियाँ हैं, सुनलो यारो सामने होकर।
करे गर बात कोई इस सितमगरसे तो हम जानें॥

फ़रहाद था या मजनूँ फिर अच्छा ज़माना था।
अब लुत्फ़ नहीं 'आसफ़' कुछ उल्फ़तेख़ूबाँमें॥

---

[1]व्यर्थ; [2]सुन्दरीके; [3]पर्वतों, वनोंमें।

५५

नवाब वज़ीरअलीख़ाँ 'वज़ीर'

[शासन काल १७९७ ई०]

वज़ीरअलीख़ाँ नवाब आसफ़ुद्दौलाके पुत्र थे। उनके बाद स
१७९७में अवधके राज्यासनपर अभिषिक्त हुए, किन्तु अत्यन्त उग्र
स्वभावी और अंग्रेज़-विरोधी होनेके कारण चार मासमें ही राज्यच्यु
करके बनारस भेज दिये गये। वहाँ इन्होंने रेज़ीडेण्टको मार डाला औ
विद्रोह प्रारम्भ कर दिया। अन्तमें जयपुरमें पकड़ लिये गये और-कलकत्ते
के फ़ोर्ट विलयममें बन्दी बनाकर रखे गये।

ज्यूँ सब्ज़ा रुँदे- उगते ही पैरोंके तले हम।
इस गर्दिशे अफ़लाकसे फूले न फले हम॥

अरमान बहुत रखते थे हम दिलके चमनमें।
बैठे न ख़ुशीसे कभी सायेके तले हम॥

हम वोह न क़लम थे किसी मालीके लगाये।
नरगिसके निहालोंमें थे आसफ़के पले हम॥

जिन्दाने मुसीबतमें भला किसको बुलाएँ।
रहते हैं वज़ीरी ही से दिन-रात मिले हम॥

—तारीख़े अदबे उर्दू

२५ फ़रवरी १९५०

६५

हूर बेगम

ये डोमिनीकी लड़की थी। गाना भी जानती थी।

लो आओ एक दम मेरे पहलूमें सो रहो।
गर अपना जानते हो तुम अब जान, आर क्या ?
लाखों हसीं हैं सूरतेजानाँके शेफ़्ता।
हम किस क़तारमें हैं, हमारा शुमार क्या ?

६६

शैदा बेगम

इनसे दो शहज़ादियाँ उत्पन्न हुईं।

क्यों हमसे छिपाते हो तुम राजकी बातें।
हम तुमसे किसी बातका पर्दा नहीं करते॥

५७

नवाब ग़ाज़ीउद्दीन हैदर

[शासन काल ई० १८१४-१८२७]

ग़ाज़ीउद्दीन हैदर अपने पिता सआदतअलीके बाद सन् १८१४में राज्यासीन हुए। अभीतक लखनऊके नवाब मुग़ल बादशाहोंके नायब कहलाते थे, परन्तु इन्होंने सन् १८१९में नाममात्रके मुग़ल बादशाहकी आधीनताको उतार फेंका और नवाबवज़ीरके बजाय बादशाह कहलाने लगे। इस स्वतन्त्रताके उपलक्षमें जवाहरात लुटाये गये और अहलेलखनऊ जो अभीतक देहलीकी वज़अ-क़तअ तहज़ीबोतमद्दुन, लिबास और ज़बानकी तक़लीद (अनुकरण) करना फ़ख्र समझते थे, धीरे-धीरे जुदागाना नीति बरतने लगे। यह अलगाव यहाँतक बढ़ा कि शायरी भी इससे अछूती न रह सकी और वह भी देहलवी और लखनवी दो हिस्सोंमें तक़सीम हो गई। दिल्लीके सैकड़ों मुहावरे अहले लखनऊने तर्क कर दिये। यहाँतक कि बहुतसे ऐसे शब्द जो शब्द दिल्लीमें पुल्लिंग बोले जाते थे, वे लखनऊमें स्त्रीलिंग और जो स्त्रीलिंग बोले जाते थे, वे लखनऊमें पुल्लिंग बोले जाने लगे।

ग़ाज़ीउद्दीन हैदर भी शायरी करते थे, परन्तु बड़ी नीरस और फुसफुसी। बक़ौल डाक्टर स्पिरिंग—"इनके अशआर इस दर्जा ख़राब हैं कि वाक़ई बादशाहका कलाम मालूम होते हैं।"

डाक्टर स्पिरिंग साहबने बात वाक़ई बड़े पतेकी कह दी है। सचमुच जितने बादशाह-नवाब शायर हुए हैं, उनमें एकका भी ऐसा कलाम नहीं,

६९

इशरतमहल बेगम

शोलये इश्क़ ! लगा आग न दिलमें मेरे।
यह तो अल्लाहका घर है, किसी दुश्मनका नहीं ॥

७०

फ़ातिमा बेगम

फिर वह चर्चे हों फिर वही बातें।
दिन हों इशरतके, ऐशकी रातें ॥

७१

हैदरी बेगम

शाहज़ादा मिर्ज़ा हुमायूँकी लड़की और मिर्ज़ा महबूबअली क़ौसकी बहन थीं।

न पूछ ए हमनशीं हमसे शबे फ़ुर्क़तकी देतावी।
अलम है, दर्दे हसरत है, फ़ना है, आहोज़ारी है ॥

५८

नवाब नसीरुद्दीन हैदर

[शासनकाल सन् १८२७–१८३७ ई०]

नसीरुद्दीन अपने पिता नवाव ग़ाज़ीउद्दीन हैदरके बाद सन् १८२७में राज्यारूढ़ हुए। यह भी मामूली, शायर थे।

यह किस मस्तके आनेकी आरज़ू है ?
कि साक़ी लिये साग़िरे मुश्कबू[1] है॥

समाया है जबसे तू नज़रोंमें मेरी।
जिधर देखता हूँ उधर तू ही तू है॥

जिताऊँ मैं क्या अपना हाले परीशाँ।
अयाँ[2] ज़ुल्फ़े दिलदारसे मू-ब-मू[3] है॥

चलो क़ब्रे फ़रहादपर फ़ातहाको।
मगर आबेशीरींसे लाज़िम वज़ू है॥

शफ़क़[4] बनके होता है गरदूँपै ज़ाहिर।
यह किस कुश्तये बेगुनहका लहू है ?

गुलिस्ताँमें जाकर हर इक गुलको देखा।
न तेरी-सी रंगत न तेरी-सी बू है॥

---

[1]सुगन्धित मद्यपात्र; [2]प्रकट;
[3]प्रत्येक बालसे; [4]सन्ध्याकालीन लालिमा।

हिजाब बेगम

बेगम हिजाब किसकी मलका थीं, यह तो ठीक नहीं कहा जा सकता, परन्तु उनका जन्म सन् १८४४में हुआ और दीवान १८७५में मुद्रित हुआ था। कुछ लोग इन्हें नवाब वाजिदअलीशाहकी मलका लिखते हैं, परन्तु अल्लामा नियाज़ फ़तहपुरी इसको सही नहीं मानते।

नमूना कलाम—

ख़फ़ा अभीसे न हो, मुद्दआ सुनो तो सही।
क़ुबूल करना न करना, भला सुनो तो सही॥
रक़ीबोंकी तो शबोरोज़ सुनते हो बातें।
हमारी भी तो कभी महलक़ा! सुनो तो सही॥
नहीं यह ख़ूब कि सुनते नहीं किसीकी तुम।
यह देखो तो कि मैं कहता हूँ क्या, सुनो तो सही॥
ख़ता मेरी तो बताओ कि रूठे जाते हो।
बिगड़ते किसलिए हो, क्या हुआ सुनो तो सही॥
जवाब दो कि न दो ऐ बुतो! नहीं परवा।
कहूँ जो कुछ वोह बराये ख़ुदा सुनो तो सही॥
न रहम आये जो तुमको तो मेरी क़िस्मत है।
तुम अपने दिलसे मेरी इल्तजा सुनो तो सही॥
मुआफ़ करनेको कहता नहीं मैं साहबसे।
यह चाहता हूँ कि उज्रे ख़ता सुनो तो सही॥

६३

बद्रआलम बेगम

ये वाजिदअलीशाहके साथ उनकी वन्दी अवस्थामें बेपर्दगीके भयसे कलकत्ते नहीं गई थीं। इनकी जुदाईकी चिट्ठियाँ, औरतके फ़र्ज, आदि मज़मून पुस्तक रूपमें प्रकाशित हो चुके हैं।

तुम्हारे ख़तको जब देखा तनेमुर्दामें जान आई।
हुआ साबित कि है तहरीरमें इजाज़ मसीहाई॥

बलाये हिज्रमें जबसे फँसी हूँ।
मैं अंगारोंके ऊपर लोटती हूँ॥

६४

रश्कमहल बेगम

ये वाजिदअलीके वन्दी जीवनमें उनके साथ बराबर रहीं, इनसे शाहजादा मिर्ज़ा अमानजाह उत्पन्न हुए। उसे भी छोड़कर ये नवाबके साथ रहीं।

हुआ बाल बाँका जो मिर्ज़ा हमारा।
तो फिर संग है और शाना तुम्हारा॥

महीनों हो गये साहब ! कहाँतक आज़माओगे ।
गले लग जाओ, क्या हररोज़के झगड़े निकाले हैं ॥

कुछ ख़ौफ़ेखुदा कीजिये इस तरह न चलिये ।
सौ बार तो इस चालपै तलवार चली हैं ॥

बनके तसवीर 'हिजाब' उसका सरापा देखो ।
मुँहसे बोलो न कुछ, आँखोंसे तमाशा देखो ॥

बेगम हिजाबका कलाम भी तत्कालीन लखनवी रंगमें सराबोर है । वही बाज़ारू इश्क़, वही रक़ीबोंसे परेशानी, वही बुतोंकी बेवफ़ाई । रक़ाबतकी बात तो समझमें आती हैं, क्योंकि सैकड़ों सौत होती थीं, उनके घात-प्रतिघात तो सचमुच असह्य होते होंगे, परन्तु समस्त भाव पुरुषोचित ग़ज़लमें समोने और वह भी एक सम्भ्रान्त महिला द्वारा शोभनीय नहीं । बेगमातका कलामके पहले परिचय न दिया जाय, तो वह किसी पुरुष या वेश्याका लिखा हुआ भी समझा जा सकता है । सम्भ्रान्त महिलाओंके उद्गार तो स्त्रियोचित शुद्ध प्रेमके द्योतक होने चाहिएँ । मातृ जातिके उच्छ्वासमें जब वासनाकी गन्ध आने लगी, तब उसकी सन्तानकी क्या शोचनीय स्थिति हुई, कि नसीसे छिपी बातहीं है । कलाममें क्रिया भी पुल्लिग इस्तेमाल की गई हैं । उर्दू-शायरीमें आशिक़ पुरुष होता है, इसी नियमके अनुसार स्त्रियोंको भी मजबूरन सभी भाव पुरुषोचित लाने पड़ते थे, जो अत्यन्त अस्वाभाविक और अरुचिकर प्रतीत होते हैं ।

ता० २७ फ़रवरी १६५०

६७

सदरमहल बेगम

आपने बादशाहनामा और गुलदस्ता नामक दो दीवान लिखे हैं।

मैंने बलाएँ लेनेको हाथ बढ़ाये जब उधर।
मुँहको फिराके यारने मुझसे कहा 'अलग-अलग' ॥

६८

महलआलम बेगम

इनसे वाजिदअलीकी बचपनमें ही शादी हो गई थी। यह खास मलका थीं। नवाब खास महलकी उपाधि और पंचहज़ारी मंसब था। आपके बतनसे चार शाहज़ादे हुए थे। एक मसनवी और एक दीवान लिखा है।

पिला तू बज़्ममें वह जामे ख़ुशगवार मुझे।
कि ता-ब-हश्र[1] न हो साक़िया! ख़ुमार मुझे॥

है शबेवस्ल मगर दिलमें है धड़का आलम।
बोल उठे न कहीं मुर्ग़सहर आजकी रात॥

---

[1] क़यामतके दिनतक।

तबियत शेरसे इस क़दर मुनासिब वाक़ेअ़ हुई थी कि बड़े-बड़े जी उस्ताद और मश्शाक़ शायर मुशायरोंमें मुँह देखते रह जाते थे।"[1]

इनकी शाह आलमके दरबारमें तूती बोलती थी। परन्तु देहली उजड़नेपर ये भी दूसरोंकी देखा-देखी लखनऊ पहुँचे। वहाँ मुसहफ़ी, इंशा और जुरअ़त जैसे अखाड़ियोंके आगे इनका रंग नहीं जम सका, और दिल्ली वापिस चले आये। दुबारा लखनऊ गये तो वहाँ बिसात ही दूसरी बिछ चुकी थी। पुरानी शायरी निस्तेज हो गई थी। नासिख़ और आतिश जैसे शायरोंका दबदबा और बोलबाला था। हर गली-कूचेमें नासिख़ो-आतिशका लोग कलमा पढ़ते थे। शाह नसीरकी पुरानी बोसीदा शायरीकी तरफ़ किसीने नज़र उठाकर भी नहीं देखा। लाचार ये लखनऊसे फिर वापिस चले आये। इनके भाग्यसे हैदराबाद (दक्खिन)-में महाराजा चन्दूलाल वज़ीरे आज़म थे। वे बड़े गुणज्ञ और सुख़नफ़हम थे। उन्हें कलाकारों—विशेषकर शायरोंको अपने यहाँ एकत्र करनेका बड़ा चाव था। उन्होंने शाह नसीरके पास सात हज़ार रुपये भेजकर हैदराबाद बुला लिया और ७५० रु० मासिक वेतन नियत कर दिया। वहाँ इनका ख़ूब आदर-सत्कार हुआ और इनके कितने ही शिष्य बन गये।

इन्होंने मध्यवर्ती युगके शायर—मुसहफ़ी, इंशा, जुरअ़त और अर्वाचीन युगके शायर—नासिख़, आतिश, ज़ौक़, ग़ालिब और मोमिनके ज़माने देखे थे। अतः इनकी मध्यवर्ती युगकी प्रारम्भिक ग़ज़लोंमें टुक, आइयाँ, भारियाँ जैसे मतरूक (त्याज्य) शब्द भी मिलते हैं।

उदाहरणार्थ—

कभी न उस रुख़ेरोशनपै झाइयाँ देखीं।
घटाएँ चाँदपै सौ बार आइयाँ देखीं॥

---

[1]आबेहयात, पृ० ४०३

७२

महबूबमहल बेगम

उठा सकी न मुसीबत फ़िराक़े यारमें रूह ।
निकल गई तने लाग़िरसे इन्तज़ारमें रूह ॥

७३

दीहम बेगम

क्या कहूँ कुछ कहा नहीं जाता ।
हाय चुप भी रहा नहीं जाता ॥

ख़यालेज़ुल्फ़ेबुताँमें[1] 'नसीर' पीटाकर।
गया है साँप, निकल अब लकीर पीटाकर॥

देख लेती जो उठाकर तो तेरे टूटते हाथ।
लैली! इतना तो न था पर्दये महमिल भारी॥

बुर्क़को उठा मुँहसे जो करता है तू बातें।
अब मैं हमातनगोश[2] बनूँ या हमातनचश्म[3]?

वजह मालूम तो हो चीं-ब-जबीं[4] होनेकी।
सच कहो जीमें है क्या, किससे लड़ा चाहते हो?

—इन्तख़ाबियात, भाग २

शीशये बादयेगुलरंग पटक दे साक़ी!
जामये सब्ज़में देखे जो तने सुर्ख़ तेरा॥

हो गया है यह तेरी चश्मका बीमार नहीफ़[5]।
न उड़ा सकता है मुँहकी न बग़लकी मक्खी॥
रीस परवानये जाँसोज़की करती तो है, पर।
निगहे शमअ़में हो जायगी हल्की मक्खी॥
दिलरुबा क़हरेफ़सूँसाज़[6] हैं बंगालेके।
आदमीको वोह बनाते हैं अमलकी मक्खी॥

---

[1] प्रेयसीके केशोंके ध्यानमें;
[2] सुननेमें तन्मय;
[3] देखनेमें लीन;
[4] भृकुटी चढ़ाये हुए;
[5] निर्बल;
[6] ग़ज़बका जादू-टोना करनेवाले।

'हिजाब'को तो ज़मानेमें जानते सब हैं।
मगर जो कहते हैं तुमको, जरा सुनो तो सही॥

आगसे भी है जियादा बेक़रारी इन दिनों।
शक्ल पहचानी नहीं जाती हमारी इन दिनों॥

जो उसने कहा गो वही करते गये हम तो।
इसपर भी निगाहोंसे उतरते गये हम तो॥

वह ख़ुलूससे पेश आये यह थी उनकी इनायत।
गरदनको झुकाये हुए, डरते गये, हम तो॥

ख़ुद कभी पूछें वोह अहवाल यह आदत ही नहीं।
हम जो कुछ आपसे कहते हैं गिला होता है॥

रहें बुतख़ानेमें बरसों न काबेमें ज़रा ठहरे।
ग़रज़ थी दिलके बहलानेसे, जिस जा दिल लगा, ठहरे॥

कहेंगे उसको न अच्छा बुरा 'हिजाब' कभी।
बयाँ करेंगे किसीसे न अपने यारका हाल॥

मैंने तो कोई बात नहीं ऐसी कही थी।
ग़ैरोंसे भरा था कि जो वोह बन्देपै बरसा॥

तुमसे बतलाऊँ क्या कि फ़ुरक़तमें।
सदमे दिलपर गुज़रते हैं क्या-क्या?
बुतको ख़ौफ़ेख़ुदा 'हिजाब' नहीं।
हम सनमसे भी डरते हैं क्या-क्या?

ऐ-हिजाब! आज तो सोता है यह ग़ाफ़िल कैसा?
बख़्त जागे है, जरा यारको देखा होता॥

दामने महबूब तक पहुँचा न जब दस्ते जुनूँ।
बढ़ गया नाचार अपने ही गिरेबाँकी तरफ़॥

बरगश्ताबख़्त[1] हम वोह इस दौरमें हैं साक़ी !
लबतक कभू हमारे जामोसबू न आया ॥
क्योंकर यह हाथ अपना पहुँचेगा ता गरीबाँ ?
दस्तेख़याल जिसके दामनको छू न आया ॥

है जुम्बिशेमिज़गाँका[2] किसीको जो तसव्वुर[3] ।
दिलसे ख़लिशे ख़ारेअलम[4] उठ नहीं सकता ॥

बाल परेशाँ हैं काकुलके पेच गलेमें हैं पगड़ीके ।
यूँ रखता है वह मतवाला सरपर तुर्रा हार गलेमें ॥
है यह तमन्ना मेरे जीमें यूँ तुझे देखूँ बादाकशीमें ।
हाथमें साग़र, बरमें मीना, सरपर तुर्रा, हार गलेमें ॥

बादाकशीके सिखलाते हैं क्या ही क़रीने सावन-भादों ।
कैफ़ियतके हमने जो देखे, दो हैं महीने सावन-भादों ॥
छूटते हैं फ़व्वारये मिज़गाँ रोज़ोशब उनकी आँखोंसे ।
यूँ न बरसते देखे होंगे मिलके किसीने सावन-भादों ॥
अब्रेसियहमें देखी थी बगुलोंकी क़तार इस शक्लसे हमने ।
याद दिलाये फिरके तिरे दन्दानेमिसीने[5] सावन-भादों ॥

क़िता—

यह मजनूं है, नहीं आहू[6] है, लैला ! पहनकर पोस्तीं[7] निकला हैं घरसे ।
जिसे तू सींग समझे है ये हैं ख़ार, लगे हैं पाँवमें, निकले हैं सरसे ॥

३ फ़रवरी १९५०

---

[1] अभागे; [2] पलकोंके कम्पनका; [3] ध्यान;
[4] कष्ट रूपी काँटोंका भार; [5] मिस्सी लगे हुए दाँतोंने;
[6] हिरन; [7] खाल ।

७५

शाह नसीर

शाह नसीरुद्दीन 'नसीर' दिल्लीके रहनेवाले थे। ये सौदा और दर्दकी शिष्य परम्परामें हुए हैं। क्योंकि इनके कविता-गुरु शाह मुहम्मदी 'माइल'के उस्ताद क़यामुद्दीन 'क़ायम' सौदा और दर्द दोनोंके शिष्य रह चुके थे।

शाह नसीर शाहआलम बादशाहके काव्य-गुरु थे। अतः इनकी दरबारी आवभगत खूब होती थी। इनका कलाम साधारण है। ये नवीन-नवीन उदाहरण, अलंकार और उपमाएँ अपने कलाममें ठूँसनेका बलात् प्रयत्न करते थे। संगलाख़ (दुरुह-कठिन) क़ाफ़िये-रदीफ़ोंमें ग़ज़ल कहना कमाले-शायरी समझते थे। बग़लकी मक्खी, फ़लकपै विजली, ज़मींपै बाराँ, सरपर तुर्रा हार गलेमें, सावन-भादों, जैसी अजीबो-गरीब क़ाफ़िया रदीफ़ोंमें इन्होंने कई-कई ग़ज़लें कही हैं।

एक-एक मिसरेतरहपर ७-८ ग़जलें लिखते थे। मीरो-दर्दकी देहलीमें शायरीका धरातल इतना गिर गया था कि नसीर जैसे घटियल शायर भी शायरेआज़म समझे जाने लगे थे और शाहआलम बादशाहके उस्ताद होनेका गौरव हासिल कर सकते थे। मौलाना मुहम्मदहुसेन आज़ाद फ़ख़्रिया लिखते है—

"जो वे (शाह नसीर) कहते थे, उसे आलिम (विद्वान) कान लगाकर सुनते थे। जो लिखते थे, उसपर फ़ाजिल सर धुनते थे। इनकी

बरगश्ताबख़्त[1] हम वोह इस दौरमें हैं साक़ी !
लबतक कभू हमारे जामोसबू न आया ॥
क्योंकर यह हाथ अपना पहुँचेगा ता गरीबाँ ?
दस्तेख़याल जिसके दामनको छू न आया ॥

है जुम्बिशेमिज़गाँका[2] किसीको जो तसव्वुर[3] ।
दिलसे ख़लिशे ख़ारेअलम[4] उठ नहीं सकता ॥

बाल परेशाँ है काकुलके पेच गलेमें हैं पगड़ीके ।
यूँ रखता है वह मतवाला सरपर तुर्रा हार गलेमें ॥
है यह तमन्ना मेरे जीमें यूँ तुझे देखूँ बादाकशीमें ।
हाथमें साग़र, बरमें मीना, सरपर तुर्रा, हार गलेमें ॥

बादाकशीके सिखलाते हैं क्या ही क़रीने सावन-भादों ।
कैफ़ियतके हमने जो देखे, दो हैं महीने सावन-भादों ॥
छूटते हैं फ़व्वारये मिज़गाँ रोज़ोशब उनकी आँखोंसे ।
यूँ न बरसते देखे होंगे मिलके किसीने सावन-भादों ॥
अब्रेसियहमें देखी थी बगुलोंकी क़तार इस शक्लसे हमने ।
याद दिलाये फिरके तिरे दन्दानेमिसीने[5] सावन-भादों ॥

क़िता—

यह मजनूं है, नहीं आहू[6] है, लैला ! पहनकर पोस्तीं[7] निकला है घरसे ।
जिसे तू सींग समझे है ये हैं ख़ार, लगे हैं पाँवमें, निकले हैं सरसे ॥

३ फ़रवरी १९५०

---

[1]अभागे; [2]पलकोंके कम्पनका; [3]ध्यान;
[4]कष्ट रूपी काँटोंका भार; [5]मिस्सी लगे हुए दाँतोंने;
[6]हिरन; [7]खाल ।

अह्दे तिफ़्ली में भी था, मैं बस कि सौदाई मिज़ाज।
बेड़ियाँ सिन्नतकी भी पहनी तो मैंने भारियाँ॥

शाह नसीर अपने हृदयगत भावोंको व्यक्त करनेके लिए शेर नहीं कहते थे, अपितु दुरुह और विचित्र-विचित्र क़ाफ़िये रदीफ़ोंको बाँधनेके लिए शेरसे रस्सीका काम लेते थे। इनके ज़मानेमें मुशायरोंमें ख़ूब रस्सा-कशी होती थी। दुनियाभरके शायरोंको ललकारकर मुशायरे करते थे। सालभरके लिए एक मिसरा दे देते थे। हर मुशायरेमें उसी मिसरे-पर तबअ्आज़माई होती थी। कल्पना, विचार, भाव इन मुशायरोंमें फटक भी नहीं पाते थे। संगलाख़ ज़मीनोंमें उलटा-सीधा जो सबसे अधिक लिखता, वही दाद पाता था। मुशायरोंमें शायर ग़ज़लें क्या पढ़ते थे, बटेरें लड़ाते थे।[1] इनकी ग़ज़लोंपर लोग फब्तियाँ कसनेसे भी नहीं चूकते थे। परन्तु ये भी बरमहल ऐसा जवाब देते थे कि नहलेपर दहला जड़ते थे। 'बग़लकी मक्खी' मिसरा-तरहपर ग़ज़ल पढ़ रहे थे कि एक साहबने चुटकी ली—"सुभान अल्लाह! क्या ख़ूब मक्खी बैठी है?" दूसरे साहबने ज़रा और शह दी—"क़िबला! ग़ज़ल तो ख़ूब है, मगर मक्खीसे जी मिचलाने लगा।" शाह नसीरने फ़ौरन तुरप मारी—"जिन्हें चाश्निये सुख़न (कवितारूपी चाश्नी)का मज़ाक़ है, वे तो लुत्फ़ ही उठाते हैं। हाँ, जिन्हें सफ़रायेहसद(ईर्ष्या)का जोर है, उनका भी मिचलायेगा।"

---

[1]इस तरहके मार्के जब शाह नसीरके साथ लखनऊमें हुए, तब वहाँके साहबेकमालोंने ग़ज़ल कहनेको मुश्किलसे मुश्किल मिसरे भिजवाये। मगर वे स्वयं न आकर हर मुशायरेमें अपने शागिर्दोंको भेजते रहे। तब नसीरसे न रहा गया। उन्होंने कहा—अपने उस्तादोंसे कहना कि चक्कसपर गुलदम लड़ानेकी सही नहीं है। पालीमें आइये कि देखने-वालोंको भी मजा आये। (आबेहयात, पृ० ४०५)

मगर अफ़सोस ! यही शुहरत इनके लिये राहु बन गई, और इसी शुहरतने इनकी कमालेशायरीपर तारीकी डाल दी। बक़ौल हफ़ीज—

मेरे डूब जानेका बाइस तो पूछो।
किनारेसे टकरा गया था सफ़ीना॥

अगर 'ज़ौक़' इस शुहरतसे बचे होते या यूँ कहिये कि आत्मविज्ञापनका उन्होंने तनिक लोभ संवरण किया होता तो आज भी ज़ौक़का लोग उसी शौक़से चर्चा करते, जैसी कि ग़ालिबोमोमिनकी करते हैं। हालाँकि जब दिल्लीके ये अमर शायर ग़ालिब-ओ-मोमिन जीवित थे, तब इनसे पहले लोग ज़ौक़का नाम लेते थे। ग़ालिबका कलाम अक्सर बेमायनी समझा जाता था और ज़ौक़के आमफ़हम कलामके सामने ग़ालिब और मोमिनकी वोह क़द्रोमंज़िलत नहीं थी जो आज है। ज़ौक़की इस आमफ़हमीसे रश्क खाकर खुद ग़ालिबके मुँहसे निकल गया था—

"न सही गर मेरे अशआरमें मायनी न सही"

और ज़ौक़की इसी मक़बूलियतसे प्रभावित होकर ग़ालिबको भी आख़िरमें अपना तर्ज़ेकलाम बदलना पड़ा। फ़ारसीयतकी जगह ज़्यादेसे ज़्यादा उर्दूका प्रयोग किया, और सच पूछो तो यही उर्दूकलाम आज ग़ालिबको अमरत्व प्रदान करनेमें कामयाब हुआ है। इतनी ख्याति पानेपर भी ज़ौक़का यश-चन्द्र आज क्यों निस्तेज है और ग़ालिब-ओ-मोमिन जो उनके जीवनमें मान्द थे, आज क्यों उनसे बढ़कर चमक रहे हैं ? और क्यों इनके समक्ष ज़ौक़की ज्योति आभाहीन है। यह एक प्रश्न है, जिसका समाधान पाये बिना हम आगे बढ़नेमें मजबूर हैं।

१. अधिकांश मनुष्य योग्य होते हुए भी न जीते जी मशहूर होते हैं, न मरनेके बाद।
२. कुछ लोग अपनी ज़िन्दगीमें तो प्रसिद्ध नहीं होते; यूँ ही गुमनाम मर जाते हैं, परन्तु मरनेके बाद उनकी कीर्ति फैलती है।

सदा है इस आहोचश्मेतरसे[1] फ़लकपै बिजली ज़मींपै बाराँ[2] ।
निकलके देखो टुक अपने घरसे फ़लकपै बिजली ज़मींपै बाराँ ॥
हँसे है कोठेपै यूसुफ़ अपना, मैं ज़ेरे दीवार रो रहा हूँ ।
अज़ीज़ ! देखो मेरी नज़रसे फ़लकपै बिजली ज़मींपै बाराँ ॥
पतंग क्योंकर न होवे हैराँ कि शमा सबको दिखा रही है ।
बचश्मेगिरियाँ[3] व ताजे ज़रसे फ़लकपै बिजली ज़मींपै बाराँ ॥
नहाके अफ़शाँ[4] चुनो जबींपर निचोड़ ज़ुल्फ़ोंको बाद उसके ।
दिखाओ आशिक़को इस हुनरसे फ़लकपै बिजली ज़मींपै बाराँ ॥
वोह तेग़ खींचे हुए हैं सरपर मैं सर झुकाये हूँ अश्करेज़ाँ[5] ।
दिखाऊँ ऐ दिल ! तुझे किधरसे फ़लकपै बिजली ज़मींपै बाराँ ॥
'नसीर' लिक्खी है क्या ग़ज़ल यह कि दिल तड़पता है सुनके जिसको ।
बँधे हैं यूँ कब किसी बशरसे फ़लकपै बिजली ज़मींपै बाराँ ॥

तू अपनी पगड़ीपै रखके तुर्रा जो खेले पिचकारियोंसे होली ।
अयाँ[6] हो नैरंगियेदिगरसे[7] फ़लकपै बिजली ज़मींपै बाराँ ॥
वोह शोख़ झरनेकी सैर करके फिसलने पत्थरपै जाके बैठा ।
पुकारी ख़लकत[8] इधर-उधरसे फ़लकपै बिजली ज़मींपै बाराँ ॥
'नसीर' सद आफ़रीं[9] है तुझको कि अहले मानी पुकारते हैं ।
अजब हैं मज़मून ताज़ा तेरे फ़लकपै बिजली ज़मींपै बाराँ ॥

दन्दाँ[10] दिखाके मत हँस ऐ बख़्यएगरीबाँ[11] ।
चाके जिगरका[12] हमको तौरेरफ़ू[13] न आया ॥

---

[1]ठण्डी साँस और रोती आँखोंसे; [2]वारिश; [3]रोती आँखोंसे; [4]बिन्दी; [5]आँसू बहाता हुआ; [6]प्रकट; [7]नये ढंगसे; [8]जनता; [9]धन्य; [10]दाँत; [11]कुरतेके गलेकी सीवन; [12]फटे जिगरका; [13]सीनेका ढंग ।

हैं। कभी धर्म मनुष्यका चरम लक्ष्य समझा जाता है, कभी वह अफ़ीमकी तरह मादक समझा जाता है। देशोन्नतिमें देशभक्ति मनुष्यका प्रधान कर्तव्य और अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति सम्मेलनमें सबसे प्रथम यही देशभक्ति त्याज्य समझी जाती है। कभी साम्प्रदायिकता आवश्यक, कभी अनावश्यक; कभी कन्याअपहरण शौर्य्य, कभी लांछन। पुण्य-पापकी परिभाषाएँ, सामाजिक रीति-रिवाज, मानवोचित आदर्श, साहित्यिक दृष्टिकोण, आदि, सभी कुछ परिवर्तनशील संसारमें परिवर्तित होते रहते हैं।

हाँ, तो हमें यह देखना है कि ज़ौक़ किस वातावरणमें उत्पन्न हुए? किन कारणोंसे उनकी शायरीको उरूज हासिल हुआ और अब उनकी शायरीका बाज़ार मन्दा क्यों है?

यदि ज़ौक़—१. शाह नसीरके शिष्य; २. बादशाह ज़फ़रके उस्ताद; ३. ग़ालिबके समकालीन न हुए होते और ४. उनके सम्बन्धमें मौ० मुहम्मदहुसैन आज़ादने अतिशयोक्तिपूर्ण उल्लेख न किया होता तो उनके कलामको तरक़्क़ी-ओ-तनज़्ज़ुलीके दिन देखने न बदे होते।

१. शाह नसीर बोसीदा ख़यालोंके पुराने ढर्रेके शायर थे। मुश्किलसे मुश्किल ज़मीनोंमें ग़ज़ल लिखना, एक-एक रदीफ़में ७-८ ग़ज़लें कहना, एक ही मिसरा सालभर तकके मुशायरोंके लिए नियत कर देना, उनकी ख़सलत थी। बार-बार उन्हीं दक़ियानूसी ख़यालोंका बाँधना, जिस हौज़ पर न जाने कितने वज़ू कर गये, उसी हौज़में डुबकियाँ लगाते रहना उनका शेवा था।[1]

जवानीकी चौखटपर पाँव रखते-रखते ज़ौक़, शाह नसीरके शिष्य हो गये, और बदक़िस्मतीसे उन्हें भी उसी हौज़में ग़ोता मारना

---

[1] शाह नसीरकी शायरी और उनका परिचय पीछे दे चुके हैं।

७६

ज़ौक़

अबसे सौ वर्ष पूर्व 'ज़ौक़' आस्मानेशायरीपर सितारेकी तरह नहीं, चाँदकी तरह चमके। उनकी यह चमक उनके समकालीन शायरोंके लिये ईर्ष्या-योग्य थी। दिल्लीसे हैदराबादतक इनकी शायरीकी धूम मची हुई थी। इनकी अनुपस्थितिसे मुशायरोंका रंग फीका हो जाता था। इनकी स्वीकृति मिलनेपर ही लोग मुशायरोंका आयोजन करते थे। जिस मुशायरेमें ये न हों, वह मुशायरा बिन दूल्हाकी बारात मालूम होता था। जिस बज़्मेअदबमें ये न जाएँ वह बज़्मेअदब सफ़े मातम मालूम होती थी। शेरोसुख़नके शौक़ीन, बड़े-से-बड़े रईस इनके परिचयमें आना क़ाबिलेफ़ख़्र समझते थे। देहलीकी टकसाली जबान और मुहावरोंके ये बादशाह थे। इनके मुँहसे कलाम निकलते-निकलते हवामें तैरकर गली-कूचोंमें पहुँच जाता था। शौक़ीन लोगोंको इनका कलाम विरदेज़बान (कंठस्थ) होता था। बड़े-बड़े अखाड़िये शायर पहलवानोंको ये चारों-शाने चित कर चुके थे। फ़िलबदी ग़ज़ल कहते थे। मिसरा देते ही गिरह लगाते थे। क़सीदे लिखनेमें अपना हरीफ़ (प्रतिद्वन्द्वी) नहीं रखते थे।

मामूली सिपाहीके लड़के होते हुए भी शायरीकी बदौलत बादशाहके उस्ताद और नवाबों-रईसों, ज़ीशऊरोंके नूरेनजर थे। शाही दरबारमें इनकी प्रतिष्ठा और सर्वत्र इनका आदर-सत्कार क़ाबिलेरश्क था। मलिकुश्शुअ़रा, 'ख़ाक़ानियेहिन्द'—जैसी सर्वोच्च पदवीसे विभूषित थे। अपने जीवनमें जो इन्हें शुहरत मिली, वह विरलोंको ही नसीब होती है।

शाह अकबर बादशाह (द्वितीय)का युग था। उसे तो शायरीसे रग़बत न थी। मगर युवराज बहादुरशाहको शायरीका बेहद शौक़ था। उनके पास तत्कालीन ख्यातिप्राप्त शायरोंका जमघटा रहता था। वे 'ज़फ़र' तख़ल्लुस (उपनाम) रखते थे। पहले शाह नसीरसे कविता-संशोधन कराया करते थे। उनके हैदराबाद चले जानेपर काज़िमअलीसे इसलाह लेते थे। उनके भी काबुलकी तरफ़ चले जानेपर संयोगकी बात कि ज़ौक़ सामने आ गये। ज़फ़रने इन्हें अपनी ग़ज़ल बनानेको दी और मनके अनुकूल बनानेपर फिर यही ग़ज़ल बनाते रहे, और बहादुर-शाहके बादशाह हो जानेपर भी जीवनभर उस्तादे शहंशाहकी ज़रींन मसनदपर रौनक़ अफ़रोज रहे।

ज़ौक़की इस प्रतिष्ठाको लोगोंने क्या, स्वयं ज़ौक़ने महान सन्मान और सौभाग्य समझा। परन्तु यह सौभाग्य नहीं, ज़ौक़का दुर्भाग्य था।

नालयेपुरदर्द छेड़ा हमने इस अन्दाज़से।
ख़ुदबख़ुद पड़ने लगी हमपर नज़र सैय्यादकी॥

—असग़र

और नज़र भी सैयादकी कैसी पड़ी? न पेटकी भूख मिटी और न गुलअफ़शानियाँ करनेकी आज़ादी। 'न ख़ुदा ही मिला न विसालेसनम' यह उक्ति ज़ौक़पर सोलहोंआने चरितार्थ होती है। शाही ख़ान्दान घरेलू झगड़ोंमें व्यस्त रहता था। अकबर बादशाह युवराज बहादुरशाह-को अपना पुत्र ही तस्लीम नहीं करता था, और बाप-बेटोंमें मुक़दमा चल रहा था। पाँच हज़ारके बजाय युवराजको ५०० रु० ख़र्चको मिलते थे। क्या नंगी नहाय और क्या निचोड़े? ज़ौक़को सिर्फ़ चार रुपये मासिक दिये जाते थे। जब युवराज बादशाह हुए तो यह वेतन ४से ५ और ५से ६ और एक मुद्दतके बाद ३० रु०पर समाप्त हो गया था। यूँ मलिकउश्शुअ़रा और ख़ाक़ानिये-हिन्द जैसी सर्वोच्च पदवीसे विभूषित

३. कुछ लोग अपनी ज़िन्दगीमें भी नाम पाते हैं और मरनेके बाद भी याद रहते हैं।

४. कुछ मनुष्य जबतक जीवित रहते हैं, ख़ूब चमकते हैं; मरनेपर धीरे-धीरे माँद पड़ते जाते हैं।

५. कुछ मनुष्य जीवित होते हुए तो ख्याति पाते ही हैं; परन्तु मरनेके बाद तो अमरत्व प्राप्त कर लेते हैं।

'ज़ौक़' चतुर्थ श्रेणीके और 'ग़ालिब' पंचम श्रेणीके ख्यातिप्राप्त शायर हैं। इस प्रकारकी ख्यातिके भी कई कारण होते हैं।

युगके अनुसार लोगोंकी रुचि बदलती रहती है, और उसी रुचिके अनुसार ख्याति मिलती और मिटती है। जब कांग्रेस आन्दोलन उग्र रूप धारण करते थे, तब अदना खद्दरपोश भी जनताकी दृष्टिमें महात्मा हो उठता था और जब हिन्दू-मुस्लिम फ़िसाद होते थे, तब शहरके छटे हुए शोहदे और गुण्डे भी रक्षक, और तपे हुए काँग्रेसी नेता भी भक्षक समझ लिये जाते थे। जब शहरमें 'ओलम्पिक' टीमके खेल होते हैं, तो लोग अन्तर्राष्ट्रीय खिलाड़ी होनेका स्वप्न देखते हैं और सिनेमाओंकी बाढ़से लालायित युवक, पृथ्वीराज-सहगल और युवतियाँ, सुरैया-रेहाना बननेका शौक़ रखती हैं।

कभी तोता-मैनाके क़िस्से मक़बूल आम थे; कभी ऐयारी, कभी जासूसी, कभी इश्क़िया उपन्यासोंकी रेल-पेल रही। इन उपन्यासोंके आगे न रवि बाबू और न शरत बाबूके उपन्यास ख़ातिरमें लाये गये और न राधेश्यामकी रामायण पढ़नेवालोंके सामने वाल्मीकि और तुलसी-रामायणपर प्रवचन करनेवालोंको किसीने पूछा। जब आर्यसमाजी शास्त्रार्थोंकी बाढ़ आई तो महामहोपाध्याय, विद्यासागर, व्याख्यान-वाचस्पति, न्यायदिवाकर सभी व्यर्थसे दिखाई देते थे। ज़बानदराज़ ही शास्त्रार्थकेसरी कहलाते और आदर पाते थे।

देश, काल और जनताकी रुचिके अनुसार अनेक परिवर्तन होते रहते

था ? गोया वादशाहके उस्ताद न थे, दरवारी नक़ीव थे। क़सीदे लिखने और वादशाहकी ग़ज़ल बनानेके अलावा ज़ौक़ अपनी रुचिके अनुसार कुछ लिख ही नहीं पाते थे।

इस मजबूरीका सबब वताते हुए मौलाना आज़ाद लिखते हैं—"वादशाहकी फ़रमाइश दम लेनेकी मुहलत न देती थी। और तमाशा यह कि वादशाह भी ईजादका वादशाह था। वातमें वात निकालता था। मगर उसे समेट न सकता था। उसका कहा हुआ सव इन्हें सँभालना पड़ता था। वोह अपनी ग़ज़ल वादशाहको सुनाते न थे। अगर किसी तरह उसतक पहुँच जाती तो वह उसी ग़ज़लपर ख़ुद ग़ज़ल कहता था। अव अगर नई ग़ज़ल कहकर दें और वोह अपनी ग़ज़लसे पस्त हो तो वादशाह भी वच्चा न था। ७० वर्षका सुख़नफ़हम था। अगर उससे चुस्त कहें तो अपने कहेको ख़ुद मिटाना भी आसान काम नहीं। नाचार अपनी ग़ज़लमें उनका तख़ल्लुस डालकर दे देते थे। वादशाहको बड़ा ख़याल रहता था कि वोह अपनी किसी चीज़पर तवअ़ ख़र्च न करें। जव उनके शौक़े-तवअ़को किसी तरफ़ मुतवज्जह देखता तो वरावर ग़ज़लोंका तार वाँध देता कि जो कुछ जोशेतवअ़ हो इधर ही आ जाये।"[1]

क़सीदे कहने और ग़ज़लें वनानेकी ही ड्यूटी हुई होती, तो भी ग़नीमत थी। इसके अलावा भी सैकड़ों फ़र्माइशें वादशाहकी रहती थीं। कभी फ़क़ीरकी सदापर रीझ गये, कभी फल वेचनेवालेके वोल मनको भा गये, कभी विसाती, कभी मनिहारीकी आवाज़पर लहालोट हो गये। कभी चूरनवाले, कभी चनाज़ोर गरमवाले नमकपाशी कर गये। इन सवकी सदाओंपर भी फ़िलवदी (तुरन्त) ग़ज़लें लिखनी पड़ती थीं। दरवारी गवैयोंके लिए भी ध्रुपद, भैरवी, ठुमरी, दादरा आदि रागोंको लिखना पड़ता था।

---

[1]आवेहयात, पृ० ४७३।

पड़ा। वे जल्दीसे उभरे भी मगर बेसूद; इतनी देरमें उनका रोम-रोम नसीरी-रंगमें सराबोर हो चुका था।[१]

शाह नसीरकी शिष्यतासे निजात पालेनेके बाद ज़ौक़को उभरनेका एक नादिर मौक़ा हाथ लगा। मगर हाय रे दुर्भाग्य! कूएँसे निकलते ही खाईमें गिर पड़े।

२. उस्तादको सलाम कर आनेके बाद ज़ौक़ अपनी ग़ज़लोंको बड़ी सावधानीसे बनाने लगे। और एक बुजुर्ग सुख़न-फ़हम (कवितामर्मज्ञ)के प्रोत्साहन दिलानेपर मुशायरोंमें उस्तादको बग़ैर दिखाये ही ग़ज़लें पढ़ने लगे। आवश्यकतासे अधिक दाद मिली तो दिल शेर हो गया। धीरे-धीरे मुशायरोंमें रंग जमने लगा। महत्वाकांक्षाने एड़ मारी तो एक हितैषीकी बदौलत क़िलेमें भी पहुँच हो गई। एक ग़रीब सिपाही-पुत्रका शायरोंमें शुमार होना और क़िलेमें रसाई होना बहुत बड़ी बात थी।

---

[१]उदीयमान ज़ौक़की प्रतिभाको देखकर उस्ताद नसीरको गर्वके बजाय ईर्ष्या होने लगी और वे ज़ौक़के साथ उपेक्षाका वर्ताव करने लगे। उनके कलामको इसलाह देनेमें तरह देने लगे, और अपने पुत्र 'मुनीर' की ग़ज़लें परिश्रमसे बनाने लगे। मुनीरको भी उस्तादका पुत्र होनेका घमंड था। वह हर वक़्त इनसे चश्मक रखने लगा। और कर्रोफ़रसे कहता—"जिस ग़ज़लपर हम क़लम उठाएँ, उस ज़मीनमें कौन क़दम रख सकता है?" मुश्किल-मुश्किल क़ाफ़ियोंमें लिखता और कहता—"कौन पहलवान है जो इस नालको उठा सके?" ग़रज़ यह कि ज़ौक़ और मुनीरकी ग़ज़लों द्वारा चोटें होने लगीं। शाह नसीर अपने लड़केका ही पक्ष समर्थन करते और ज़ौक़को इस्लाह न देते। यहाँतक कि बाज़ दफ़ा ग़ज़ल फाड़कर फेंक देते थे। उस्तादके इसी व्यवहारसे रुष्ट होकर ज़ौक़ने शाह नसीरके यहाँ आना-जाना छोड़ दिया था और ऐसे उस्तादको घर बैठे सलाम कर लिया था।

भी मज़हका-सा उड़ाते जाते थे। अकबर चुपचाप बैठे रहे। किसी तरह जब मित्रोंको मालूम हुआ कि ये डिप्टी साहबके वालिद हैं तो गुफ़्तगू-का ढंग ही बदल गया और मित्र लोग बाअदब गुफ़्तगू करने लगे। अकबर इस एकाकी शिष्टाचारका मतलब भाँप गये। अब उनसे न रहा गया, चट एक फब्ती कस दी। फ़र्माया—"एक बार लण्डनके किसी होटलमें अल्लाह मियाँ तशरीफ़ ले आये, मगर किसीने उनकी तरफ़ तवज्जह नहीं दी। जब उन्हें मालूम हुआ कि वे ईसाके बाप हैं तो लोग उनका अहतराम करने लगे।"

कहते हैं ईश्वर दीन दुखियोंमें छिपा रहता है। परन्तु कितने उसको देख पाते हैं। अधिकांश लोग तो ईश्वरके नामपर ढिंडोरा पीटकर प्रसिद्ध किये हुए पत्थरको ही पूजते हैं।

बादशाह जब ज़ौक़की ग़ज़लपर सर धुनें तो मुसाहब, दरबारी और ख़ुशामदी अपना सर पीटनेसे कैसे रह जाएँ? ज़ौक़ शायरेआज़म हैं, इसीसे तो बादशाहने उन्हें अपना गुरु बनाया। यही धारणा उनको सर्वश्रेष्ठ शायर समझ लेनेके लिए काफ़ी थी। ग़ालिब-ओ-मोमिनको वोह इज़्ज़त-ओ-अहतराम नसीब नहीं हुआ, जिसके वे हक़दार थे। क्योंकि वे बादशाहके उस्ताद न थे। जनताका विश्वास था कि ज़ौक़ इनसे बदरजहा बहतर हैं, तभी तो बादशाह-जैसे सुख़नफ़हम (कवितामर्मज्ञ)ने उन्हें अपना उस्ताद बनाया है।

वर्तमानमें भी इस बाह्य प्रतिष्ठा और कर्रोफ़रकी पूछ है। आज भी डाक्टरेटकी डिगरीके लिए विद्वान होना आवश्यक नहीं, नेता होना काफ़ी है। हमारे देशमें वर्तमान मंत्रिमंडलोंमें कितने ही ऐसे हैं कि लोग उन्हें जानते भी नहीं थे। अब वही नाख़ुदा बन गये तो जनता उन्हें सर्वगुणसम्पन्न समझती है।

ग़रज़ ज़ौक़ इस प्रतिष्ठाका मोह नहीं त्याग सके और इसे अक्षुण्ण

थे। उम्रभर पापड़[1] बेलनेके बाद एक गाँव जागीरमें मिला था।

उस्तादे शहंशाह होनेपर भी ज़ौक़की आर्थिक स्थिति तो इस प्रकार डाँवाडोल रही। अब उनके कमालेशायरीकी क्या मिट्टी ख़राब हुई, यह उन्हींके शिष्य मौलाना मुहम्मदहुसैन आज़ादकी ज़बानसे सुनिये--"नौजवान वलीग्रहद तबियतके बादशाह थे। इधर यह भी जवान और इनकी तबियत भी जवान थी। वह (वलीअहद) 'जुरअत'के अन्दाजको पसन्द करते थे, और जुरअत, इंशा-ओ-मुसहफ़ीके मतले और अशआर भी लखनऊसे अक्सर आते रहते थे। वलीअहदकी ग़ज़लें इन्हीं लोगोंके अन्दाज़में बनाते थे"।[2]....

लाल क़िलेमें कोई भी छोटा-बड़ा जशन हो, उन सबपर ज़ौक़को क़सीदे लिखने पड़ते थे। सात वार और आठ त्योहारके अनुसार जशन मनानेके मौक़े तलाश किये जाते थे और इन सब ज़रूरी और ग़ैरज़रूरी मौक़ोंपर ज़ौक़को जिगरसोज़ी करनी पड़ती थी। बादशाहके महलोंमें कोई खुशी हो और उनके उस्ताद मुबारिकबादी न दें यह कैसे हो सकता

---

[1]बादशाहके उस्ताद थे, दीवाने आम-ओ-ख़ासमें ग़ज़लें पढ़ते थे। मगर वे लिखी कहाँ जाती थीं? यह उनके शिष्यसे सुनिये--"एक तंगो-तारीक मकान था, जिसकी अँगनाई इस क़दर थी कि एक छोटी-सी चार-पाई एक तरफ़ बिछती थी, दो तरफ़ इतना रास्ता रहता था कि एक आदमी चल सके। ज़ौक़ ख़रेरी चारपाईपर बैठे रहते थे। लिखे जाते थे, या किताब देखे जाते थे। गर्मी, जाड़ा, बरसात तीनों मौसिमोंकी बहारें वहीं बैठे गुज़र जाती थीं। कोई मेला, कोई ईद और कोई मौसम बल्कि दुनियाके शादी-ओ-ग़मसे इन्हें कोई सरोकार न था। जहाँ अव्वल रोज़ बैठे, वहीं बैठते और जभी उठे कि दुनियासे उठे।" (आबेहयात, पृ० ४६६)

[2]आबेहयात, पृ० ४७०।

ज़ौक़का ऐसे हंगामी मुशायरोंमें लँगोट बाँधकर उतरना लाज़िमी था। इतने बड़े उस्ताद होकर किनाराकशी कर गये, यह वोह सुननेकी सामर्थ्य नहीं रखते थे। उन्हें तो अपनी शुहरतको बरक़रार रखना था। गधा लात मारे तो ये भी उसको लात मारना ज़रूरी समझते थे।¹

शाह नसीरकी शागिर्दी और बादशाहकी उस्तादी दोनों पाटोंके बीचमें पड़कर ज़ौक़की जो गत बनी, वह क़ाबिले रहम है।

चलती चक्की देखकर दिये कबीरा रोय।
दो पाटनके बीचमें बाक़ी बचा न कोय॥

ज़ौक़की शायरीके सम्बन्धमें उन्हींके श्रद्धालु शिष्य मौलाना आज़ाद-की राय यह है—"उस्तादकी ग़ज़लोंके दीवानको देखकर मालूम होता है कि आम जौहर उनके कलामका—ताज़गीयेमज़मून, सफ़ाइयेकलाम, चुस्तीयेतरकीब, खूबीऐमुहावरा और आमफ़हमी है। मगर हक़ीक़तमें रंग मुख्तलिफ़ वक़्तोंमें मुख्तलिफ़ रहा। इब्तदामें मिर्ज़ा रफ़ी (सौदा)का अन्दाज था। शाह नसीरसे इन दिनों मार्के हो रहे थे, उनका ढंग वही था। इसलिए इन्होंने भी वही अख्तियार किया। इसके अलावा मिर्ज़ा की तर्ज़को जलसेके गरमानेमें और लोगोंके लबोदहनसे वाह-वाहके निकाल

फिर इसीपर तीन क़सीदे भी लिखे। शाह नसीरने एक विद्यार्थीसे कई एतराज़ उठवाये और खुद भी बीच-बीचमें उसका पक्ष मजबूत करनेको हाशियाराई करते गये। मगर ज़ौक़ने फिर भी बाज़ी जीती।

¹मौलवी अमीमुद्दीनने मिर्ज़ा ग़ालिबके ख़िलाफ़ एक पुस्तक लिखी। मगर उन्होंने उसका कोई जवाब नहीं दिया। किसीने कहा—हज़रत! आपने उसका कोई जवाब नहीं लिखा। ग़ालिबने फर्माया—अगर कोई गधा तुम्हें लात मारे तो क्या तुम भी उसके लात मारोगे (शेरो-शायरी, पृ० २१२)

इन सब ख़ुराफ़ातोंसे घबराकर 'ज़ौक़'के मुँहसे निकल पड़ता है—

'ज़ौक़' मुरत्तिब क्योंकि हो दीवाँ शिकवये फ़ुर्सत किससे करें ?
बाँधे गलेमें हमने अपने आप ज़फ़रके झगड़े हैं ॥

अगर ज़ौक़ चाहते तो अपने गलेमें बँधे हुए इन झगड़ोंको आसानीसे तोड़कर फेंक सकते थे, परन्तु वे जीवनभर इन झगड़ोंको गलेमें बाँधे फिरे। भरण-पोषणके लिए बादशाहकी ओरसे कोई ऐसा प्रबन्ध नहीं था, जिसकी वजहसे यह तौक़ गलेमें डाले रहना लाज़िमी था। फिर भी ज़ौक़ तेलीके बैलकी तरह बादशाहकी तिक-तिकपर घूमते रहे। इसका कारण है प्रतिष्ठा और वाह-वाहीका लोभ, जिसे ज़ौक़ किसी भी क़ीमतपर त्यागनेको तैयार नहीं हो सकते थे।

ज़ौक़की शायरीको लोग उसकी योग्यताके बलसे न आँककर दरबारी-प्रतिष्ठाके गज़से नापते थे और ज़ौक़ इस नापमें बालभर भी कम नहीं होना चाहते थे। उनमें इतना साहस नहीं था कि वे केवल अपने कमालेशायरीके बलपर जनतामें प्रतिष्ठा पाएँ। क्योंकि वे जानते थे कि अधिकांश लोगोंकी दृष्टि मन्द होती है और वह चश्मेके सहारे देखते हैं।

देहलीमें एक बार विश्वकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुरने अपने अभिनन्दन समारोहके अवसरपर कुछ इस तरहके भाव व्यक्त किये थे—"मेरे देश-भाई मेरा इसलिए आदर नहीं करते कि मैं सचमुच कवि हूँ। वे तो केवल मुझे इसलिए कवि समझते हैं कि मुझे कवितापर नोबिल पुरस्कार मिल चुका है और विदेशोंमें मेरा आदर-सत्कार होता है।"

सचमुच अधिकांश जनता व्यक्तिके वास्तविक गुणोंका नहीं, उसकी बाह्य प्रतिष्ठा, आत्म-विज्ञापनको आदर देती है। एक बार अकबर इलाहाबादी अपने पुत्रके यहाँ गये, जो किसी ज़िलेमें डिप्टी कलेक्टर थे। डिप्टी साहबके मित्रवर्ग बैठे हुए ग़प-शप करते जाते थे और कभी-कभी इनका

और फ़िलहक़ीक़त सबके अन्दाजको अपने-अपने मौक़ेपर पूरा-पूरा काममें लाते थे। फिर भी जाननेवाले जानते हैं कि उनका असली मीलान सौदाके अन्दाज़पर ज़्यादा था।"[1]

आज़ाद साहबके वक्तव्यका सार यह हुआ कि ज़ौक़ अपने उस्ताद शाह नसीर और शागिर्द बहादुरशाहकी बदौलत कहींके न रहे। वे खारिजी रंगसे मिलती-जुलती सौदाकी शायरीके पैरो थे, लखनऊकी बदनाम मुआमलेबन्दीको भी कनखियोंसे घूर लेते थे। मुशायरोंमें लोहा लेनेकी ग़रज़से और मिली हुई ख्यातिको बनाये रखनेकी तमन्नामें ज़ौक़ आम दिलचस्पीके बहावमें हाथ-पाँव मारते थे, परन्तु बाहर न निकल सकते थे।

३. शाहनसीरकी शागिर्दी और बादशाहकी उस्तादीसे ज़ौक़का जो हश्र हुआ, वह हम देख चुके। ग़ालिबकी समकालीनताने क्या सितमज़रीफ़ी की, लगे हाथ यह भी परख लें।

ग़ालिबका समकालीन होनेके कारण ज़ौक़की ख्यातिको बड़ी ठेस पहुँची। वास्तवमें ग़ालिब और ज़ौक़ एक दूसरेके प्रतिद्वन्द्वी नहीं थे। दोनोंका रंग जुदागाना था। शैली भिन्न थी, विचारधारामें महान अन्तर था। अतएव इन दोनोंकी तुलनात्मक विवेचना करना उचित नहीं। दोनों समकालीन थे और दोनों ही उर्दूके कवि थे। इससे अधिक समानता इन दोनोंमें न थी। जिस प्रकार राजनीति-निपुण पं० जवाहरलाल नेहरूकी दर्शनशास्त्राचार्य्य डाक्टर राधाकृष्णनसे तुलना करना उपयुक्त नहीं। अथवा श्रृंगाररसके ख्यातिप्राप्त कवि विहारीका, भक्तिरसके सर्वप्रिय कवि सूरदाससे मुक़ाबिला नहीं किया जा सकता। उसी प्रकार 'ज़ौक़' और 'ग़ालिब'की तुलना भी भ्रमात्मक है। दोनोंका क्षेत्र पृथक-पृथक था। फिर भी समकालीन होनेके कारण आलोचक और पाठक

---

[1]आबेहयात, पृ० ४६९-७१।

बनाये रखनेके लिए उन्हें वह सब करना पड़ा, जिससे उनकी शायरीका बाज़ार आज मन्दा पड़ गया है।

बादशाहको लखनवी—जुरअत-ओ-इंशाका अन्दाज़ पसन्द था। उसी अन्दाज़में ग़ज़ल बनानेके लिए ज़ौक़को इस तरहका अभ्यास लाज़िमी हो गया। इसके अतिरिक्त घटिया, हल्की और निम्नकोटिकी फ़र्माइशें पूरी करनेकी आदत डालनी भी ज़रूरी थी। एक तरफ़ तो यह वातावरण था, दूसरी तरफ़ वे पहले ही शाह नसीरके दक़ियानूसी रंगमें रँगे जा चुके थे। शाह नसीरसे ज़ौक़का बिगाड़ शायराना मतभेदके कारण नहीं, उनके ईर्ष्यालु और पक्षपाती स्वभावके कारण हुआ था। बिगाड़ होनेके बाद भी ज़ौक़ शाह नसीरके रंगमें लिखते रहे। शायद यह रंग वे छोड़ भी देते, मगर उर्दू-शायरीकी बदक़िस्मती कि ऐसा न हो सका।

उस्तादसे बिगाड़ होनेपर ज़ौक़ स्वयं उस्ताद बन गये, और क़िलेके चमकीले जालमें फँसकर बादशाह-पसन्द बोल बोलने लगे। और बादशाहों-नवाबोंकी पसन्देशायरीका मियार कैसा होता है, यह इसीसे जाना जा सकता है कि आजतक एक भी बादशाह-नवाब क़ाबिलेज़िक्र शायर नहीं हुआ। हालाँकि इनको बड़े-से-बड़े शायरकी सुहबत नसीब हुई।

बिगाड़ होनेके बाद शाह नसीर हैदराबाद चले गये थे, परन्तु ३ वर्ष बाद फिर लौट आये और फिर अपने यहाँ मुशायरे मुनअ़क़िद कराने लगे। इन मुशायरोंमें लोहा लेनेके लिए ज़ौक़को भी नसीरके ही रंगमें लिखना पड़ा। गोया कीचड़ भरा पाँव कीचड़से ही धोया।[1]

---

[1]शाह नसीरने हैदराबादमें किसीकी फ़रमाइशपर ९ शेरकी एक ग़ज़ल लिखी थी। जिसकी रदीफ़ थी—'आतिश-ओ-आब-ओ-ख़ाकोबाद' यह ग़ज़ल उन्होंने मुशायरेमें सुनाई और कहा कि "इस तरहमें जो ग़ज़ल कहे, उसे मैं उस्ताद मानता हूँ।" यह चोट ज़ौक़पर की गई थी क्योंकि वे बादशाहके उस्ताद मशहूर थे। दूसरे मुशायरेमें ज़ौक़ने इस रदीफ़में ग़ज़ल पढ़ी,

चीज़का बयान करते हैं, हूबहू तसवीर खींचकर रख देते हैं। ये ज़ौक़के अत्यन्त श्रद्धालु और विनयी शिष्य थे। उस्तादके लिये जानतक क़ुर्बान कर देना मामूली बात समझते थे। ऐसे शिष्य विरले ही भाग्यवानोंको नसीब होते हैं। ग़दरमें भरा हुआ घर छोड़कर केवल उस्तादका वेतरतीब कलाम[1] लेकर घरसे निकल पड़े और उसमें अपनी जादूभरी लेखनीसे चार चाँद लगा दिये। ज़ौक़के कलामके सम्बन्धमें आज़ाद लिखते हैं—

"जब वोह साहबेकमाल आलमेअरवाहसे किश्वरे अजसामकी तरफ़ चला तो फ़साहतके फ़रिश्तोंने बाग़ेक़ुदसके फूलोंका ताज सजाया। जिनकी ख़ुशबू शुहरते आम बनकर जहाँमें फैली और रंगने बक़ाएदवामसे आँखोंको तरावत बख़्शी। वही ताज सरपर रखा गया तो आबेहयात

---

[1]स्वयं आज़ाद फ़र्माते हैं—

"मुतफ़र्रिक़ ग़ज़लोंके बस्ते, बड़ी-बड़ी पोटें थीं। बहुत-सी थैलियाँ और मटके थे। उस्ताद जो कुछ कहते थे, बड़ी अहतयातसे इनमें भरते जाते थे। उनकी ग़ज़लों और क़सीदोंका इन्तख़ाब कई महीनेमें ख़त्म हुआ कि दफ़अ़तन १८५७का ग़दर हो गया। सिपाही घरमें घुस आये और बन्दूक़ें दिखाकर जल्दीसे निकलनेको कहा। दुनिया आँखोंमें अन्धेरी थी, भरा हुआ घर सामने था, और मैं हैरान खड़ा था कि क्या-क्या कुछ उठाकर ले चलूँ? उनके (उस्ताद ज़ौक़के) ग़ज़लोंके जुंगपर नज़र पड़ी। यही ख़्याल आया कि मुहम्मदहुसैन! अगर ख़ुदाने करम किया और ज़िन्दगी बाक़ी है तो सब कुछ हो जायगा। मगर उस्ताद कहाँसे पैदा होंगे, जो ये ग़ज़लें फिर आकर कहेंगे। अब उनके नामकी ज़िन्दगी है, और है तो इनपर मुनहसिर है। ये हैं तो वे मरकर ज़िन्दा हैं। यह गई तो नाम भी न रहेगा। वही जुंग उठा बग़लमें मारा और सजे-सजाये घरको छोड़कर २२ नीमजानोंके साथ घरसे बल्कि शहरसे निकला।" (आबेहयात, पृ० ४६८)

लेनेमें एक अजीब जादूका असर है। चुनांचे वही मुश्किल तरहें, चुस्त बन्दिशें, बरजिस्ता तरकीबें, मआनीकी बुलन्दी, इनके यहाँ भी पाई जाती हैं। चन्द रोज़के बाद नवाब इलाहीबख़्शख़ाँ 'मारूफ़'की ख़िदमतमें और वलीअहदके दरबारमें पहुँचे। 'मारूफ़' एक देरीना साल मश्शाक़ और फ़क़ीर मिज़ाज शख़्स थे। उनकी पसन्देतबअ़के बमूजिब इन्हें भी तसव्वुफ़ (सूफ़ीवाद), इरफ़ान (आध्यात्मिक, ईश्वरीय), और दर्देदिलीकी तरफ़ ख़यालातको माइल करना पड़ा। वलीअहद जुरअत-ओ-इंशाका अन्दाज़पसन्द करते थे। उनकी ग़ज़लें उसी रंगमें बनानी पड़ती थीं। नतीजा इसका यह हुआ कि उनकी (ज़ौक़की) ग़ज़ल आख़िरको एक गुलदस्तए गुलहाए रंगारंग होती थी[1]। दो-तीन शेर बुलन्दख़यालीके, एक-दो तसव्वुफ़के, दो-तीन मुआमलेके[2], और पेच इसमें यह होता था कि हर क़ाफ़िया भी एक ख़ास अन्दाज़के साथ ख़सूसियत रखता है। इसीमें बँधे तो लुत्फ़ दे, नहीं तो फीका रहे। बस वोह मश्शाक़ेबाकमाल इस बातको पूरा-पूरा समझा हुआ था, और जिस क़ाफ़ियेको जिस पहलूके मुनासिब देखता था, उसीमें बाँध देता था, और इस तरह बाँधता था कि और पहलू नज़र न आता था। साथ इसके सफ़ाई और मुहावरे-को हाथसे नहीं जाने देता था, और इन्हीं उसूलके लिहाज़से—मीर, सौदा, दर्द, मुसहफ़ी, इंशा, जुरअत, बल्कि तमाम शुअरायेमुतक़द्दमीन (पुराने शायरों)को इस अदबसे याद करते थे, गोया उन्हींके शागिर्द हैं।

---

[1]आज़ाद जैसा श्रद्धालु और विनयी शिष्य अपने उस्तादकी शायरी-को चोंचोंका मुरब्बा या खिचड़ी कैसे लिख सकता था? मगर आशय उसका गुलदस्तेसे भी वही है। यानी एक रंग नहीं, सब तरहका रंग उनकी शायरीमें पाया जाता है।

[2]मुआमलेबन्दीकी शायरीका उल्लेख मध्यवर्ती युगमें जुरअतके परिचयमें हो चुका है।

की कुर्सीपर बिठाया है कि पहलेसे भी ऊँचे नज़र आते हैं। उन्हें क़ादरउलकलामीके दरबारसे मुल्के सुखनपर हुकूमत मिल गई है कि हर क़िस्मके खयालको जिस रंगमें चाहते हैं कह जाते हैं। कभी तश-बीह (उपमा)के रंगमें सजाकर इस्तआरा (उदाहरण)की बूसे बसाते हैं। कभी बिल्कुल सादे लिबासमें जलवा दिखाते हैं। मगर ऐसा कुछ कह जाते हैं कि दिलमें नश्तर-सा खटक जाता है, और मुँहसे कभी वाह और कभी आह निकलती है। मालूम होता है उनके होंटोंमें शुस्ता और बरजस्ता (ललित और भावोंके अनुरूप) अल्फ़ाज़के खज़ाने भरे हैं और तरकीबे अल्फ़ाज़के हज़ारों रंग हैं। मगर जिसे जहाँ सजता देखते हैं, वह गोया वहींके लिए होता है।....उन्हें इस बातका कमाल था कि बारीकसे बारीक मतलब और पेचीदासे पेचीदा मज़मूनको इस सफ़ाईसे अदा कर जाते थे कि गोया एक शरबतका घूँट था कि कानोंके रास्ते पिला दिया। ....खुदाने अजब तासीर दी थी कि जो लफ़्ज़ उनसे तरतीब पाकर निकलते हैं, खुदबखुद जबानोंपर ढलकते आते हैं, जैसे रेशमपर मोती। खुदा जाने ज़बानने किसी आईनेकी सफ़ाई उड़ाई है या उन्होंने अल्फ़ाज़के नगीनोंपर क्योंकर जिला की है जिससे कलाममें यह बात पैदा हो गई है। हक़ीक़तमें इसका सबब ये है कि क़ुदरतेकलाम उनके हर एक नाज़ुक और बारीक खयालको मुहावरों और ज़र्बउलमसल (कहावतों)में इस तरह तरकीब देती है, जैसे आईनागर शीशेको क़लईसे तरकीब देकर आईना बनाता है। इसी वास्ते साफ़ हरएक शख़्सकी समझमें आता है और दिलपर असर करता है। उनके कलाममें यह भी खसूसियत है कि शेरका कोई लफ़्ज़ भूल जाये तो जबतक वही लफ़्ज़ उस जगह न रखा जाय, शेर मज़ा नहीं देता।"[1]

मौलाना आज़ादने अपने गुरुका जिस श्रद्धा-भक्तिने परिचय दिया

---

[1]आबेहयात, पृ० ४७३-७४।

दोनों ही इनकी तुलना करनेसे बाज़ नहीं आते। ग़ालिबकी तारीफ़ करते समय ज़ौक़को घटिया करके दिखाना अपना कर्तव्य समझते हैं। यह ज़ौक़का बड़ा दुर्भाग्य है। ग़ालिबकी महानतामें किसीको सन्देह नहीं हो सकता। उनका अनूठा शब्दोंका चुनाव, मानवजीवनकी व्याख्या और कल्पनाकी उड़ान अद्वितीय हैं, और यह कैसे हो सकता है कि सब शायरोंमें यह विशेषण समान मात्रामें पाये जाएँ, परन्तु इसका यह अर्थ नहीं कि शायरीमें उनका अपना नियत स्थान नहीं है। ज़ौक़का ग़ालिबसे मुक़ाबिला न किया जाय तो ज़बानकी सफ़ाई, मुहावरोंका उपयोग, मधुर और ललित शैली और जीवनके तथ्योंको सीधी-सादी भाषामें प्रभावक रूपसे कह डालनेकी शक्तिके कारण वोह अपने युगके सर्वश्रेष्ठ शायरके पदपर आसीन होनेके अधिकारी थे, परन्तु ग़ालिबकी ज्वलन्त आभाके समीप उनकी प्रतिभा फीकी पड़ जाती है। काश वे ग़ालिबसे ५० वर्ष पहले या पीछे हुए होते।

जब मनुष्यकी पहुँचसे दूर होते हुए भी लोग प्रेयसीकी तुलनामें चन्द्रपर छींटे उड़ानेसे बाज़ नहीं आते। तब एक ही समय और एक ही शहरमें उत्पन्न हुए ज़ौक़पर लोग दोपारोपण किये बिना कैसे चूक सकते हैं? हालाँकि ज़ौक़ और ग़ालिबको एक दूसरेसे सरोकार नहीं। दोनोंमें छः और तीनका अन्तर है। वास्तवमें ग़ालिबकी तुलना 'मीर'से और ज़ौक़की तुलना 'सौदा' और 'नासिख़'से होनी चाहिए। यदि रवीन्द्रनाथकी स्टालिनसे, बर्नार्डशाकी चर्चिलसे और महात्मा गांधीकी गोलवेलकरसे तुलना की जाय तो इस रुचिको क्या कहा जायगा?

४. मौलाना मुहम्मदहुसैन आज़ादकी साहित्यिक सेवाएँ उर्दू-संसार कभी भुला नहीं सकता। उन्होंने नज़्मका आन्दोलन इस सफलतासे चलाया कि आज हज़ारों शायर नज़्म लिख रहे हैं, जिससे उर्दू-शायरीका कायाकल्प ही हो गया है। और उर्दू-गद्यको जिस ख़ूबीसे सँवारा और उसमें जो गुलकारियाँ की हैं, उनकी छटा देखते ही बनती है। जिस

शायर थे, और उन्होंने क़सीदे लिखनेमें अभूतपूर्व कौशलका परिचय दिया है। क़सीदे लिखनेका उन दिनों आम रिवाज था और अच्छे-से-अच्छा शायर क़सीदे लिखनेका प्रयास करता था। दरबारी शायर न होते हुए भी मीर-ओ-ग़ालिबने क़सीदे लिखे। यह जुदा बात है कि वे इस फ़नमें ग़ज़लकी तरह कमाल हासिल न कर सके। और सौदा तो क़सीदोंके लिए मशहूर हैं ही। उन दिनों क़सीदोंमें महारत हासिल न करना शायरीमें एक नुक़्स समझा जाता था। अगर क़सीदे लिखनेकी वजहसे ज़ौक़पर जी-हुज़ूरीका बहुतान लगाया जाता है तो मोमिन जैसे एक-दोको छोड़कर यह सभीपर आयद होता है। ग़ालिब भी बादशाहके उस्ताद होना चाहते थे, परन्तु ज़ौक़के जीते जी कामयाब न हो सके, और अपनी इस खलिशको निरन्तर दबाये रखनेके प्रयत्नमें भी उनके मुँहसे निकल पड़ा—

उस्तादेशहसे हो मुझे परख़ाशका ख़याल।
यह ताब, यह मजाल, यह ताक़त नहीं मुझे॥

२—ज़ौक़ चूँकि शाह नसीरके शिष्य थे, इसलिए उनके यहाँ पुरानी शायरीके अन्सर ज़रूर पाये जाते हैं। लेकिन प्राचीनतासे लगाव होना और पुरानी परम्पराका यथोचित निर्वाह करना दोष नहीं सद्‌गुण है। हाँ, लकीरके फ़क़ीर, रूढ़ीवादी होना गुनाह है। प्राचीन साहित्यिक रीति-रिवाजों और क़ायदे-क़ानूनोंका ठीक-ठीक पालन करना, उनमें यथोचित आवश्यकतानुसार सुधार और परिवर्तन करना लाज़िमी है। और ज़ौक़ने इस कर्तव्यका ठीक-ठीक पालन किया है। वे शायरीके नियम-उपनियम सभीका अक्षरशः पालन भी करते थे, और उसमें नवीनता लानेका प्रयत्न भी करते थे। उर्दू-शायरीमें माशूक़ हरजाई और बाज़ारी तस्लीम किया गया है। ज़ौक़ उसी बदनाम और बेवफ़ा माशूक़में सती-साध्वी प्रेयसीकी कैसी स्वाभाविक और गर्हित भावना भरते हैं—

हम ऐसे साहिबे अ़स्मत परीपैकरपै आशिक़ हैं।
नमाज़ें पढ़ती हैं हूरें हमेशा जिसके दामनपर॥

इसपर शबनम होकर बरसा कि शादाबीको कुम्हलाहटका असर न पहुँचे। मलिकउश्शुअ़राईका सिक्का उनके नामसे मौजूँ हुआ, और उसके तजगाए शाहीमें यह नक़्श हुआ कि 'इसपर नज़्में उर्दूका ख़ात्मा किया गया।'[१] चुनांचे अब हर्गिज़ उम्मीद नहीं कि ऐसा क़ादरउलकलाम फिर हिन्दोस्तान-में पैदा हो।[२]....इसमें किसीको कलाम नहीं कि उन्होंने फ़िक्रेसुख़न और कसरते मश्क़में फ़नानीउश्शुअ़रा (अमर कवि)का मर्तबा हासिल किया और इंशापरदाजिये हिन्दकी रूह को (भारतीय लेखनकला)को शगुफ्ता....किया।[३] सौदाके बाद ज़ौक़के सिवा किसीने इस (क़सीदे) पर क़लम नहीं उठाया, और उन्होंने मुर.क़्अ़को ऐसी ऊँची महरावपर-सजाया कि जहाँ किसीका हाथ नहीं पहुँचा। अनवरी, ज़हीर. ज़हूरी, नज़ीरी, उरफ़ी, फ़ारसीके आसमानपर बिजली होकर चमकते हैं। लेकिन उनके (ज़ौक़के) क़सीदोंने अपनी कड़क-दमकसे हिन्दकी जमीनको आस-मान कर दिखाया।[४]....कलामको देखकर मालूम होता है कि मज़ामीनके सितारे उतारे हैं मगर अपने लफ़्ज़ोंकी तरकीबसे उन्हें ऐसी शानोगिकोह-

---

[१]तात्पर्य्य यह है कि—"जब उस्ताद ज़ौक़ने संसारमें अवतीर्ण होनेके लिए प्रस्थान किया तो लालित्य और सौष्ठवरूपी साहित्यिक देवताओंने जन्नतके उद्यानसे फूल चुनकर ताज बनाया, जिसकी सुगन्ध उस्ताद जौक़की ख्याति बनकर सर्वत्र फैली और उसके रंगने अमरत्व रूपी तरावट दी, और वोह ताज जब उस्तादके सरपर रखा गया तो अमृतकी वारिश हुई ताकि ताज कुम्हला न जाय। राष्ट्रकविके नामसे प्रसिद्ध हुए, और उनके लिए बादशाही प्रमाणपत्रमें यह अंकित कर दिया गया कि अब जौक़से श्रेष्ठ कोई कवि नहीं होगा।

[२]आबेहयात, पृ० ४३५-३६

[३]आबेहयात, पृ० ४६७

[४]आबेहयात, पृ० ४७१

'मीर' क्या सादा हैं बीमार हुए जिसके सबब ।
उसी अत्तारके लौंडेसे दवा लेते हैं ॥

यह तो खुदाएमुख़न मीर साहबके कलामका नमूना है । अब ज़ौक़के समकालीन ग़ालिबकी रुचिकी भी बानगी देखये—

हमसे खुल जाओ बवक़्ते मयपरस्ती एक दिन ।
वर्ना हम छेड़ेंगे रखकर उज़्रेमस्ती एक दिन ॥

ले तो लूँ सोतेमें उसके पाँवका बोसा, मगर—
ऐसी बातोंसे वह काफ़िर बदगुमाँ हो जायगा ॥

क्या खूब तुमने ग़ैरको बोसा नहीं दिया ।
बस चुप रहो हमारे भी मुँहमें ज़बान है[1] ॥

पीनसमें गुज़रते हैं जो कूचेसे वोह मेरे ।
कन्धा भी कहारोंको बदलने नहीं देते ॥

सुहबतमें ग़ैरकी न पड़ी हो कहीं ये खू ।
देने लगा है बोसा बग़ैर इल्तजा किये ॥

बोसा नहीं न दीजिये दुश्नाम ही सही ।
आख़िर ज़बाँ तो रखते हो तुम गर दहाँ नहीं ॥

दरपै पड़नेको कहा और कहके कैसा फिर गया ।
जितने अर्सेमें मेरा लिपटा हुआ बिस्तर खुला ॥

---

[1]मौलाना हालीने इस शेरकी व्याख्यामें लिखा है—'मुँहमें ज़बान है'का एक मतलब तो यह है कि हम भी ताक़तेगुफ़्तार रखते हैं और जवाब दे सकते हैं । दूसरा मतलब यह भी है कि हम चखकर बता सकते हैं कि आया बोसा दिया है या नहीं ।

है, उसका क्या कहना ? उनकी जादूभरी लेखनीने ज़ौक़के कलामको चार चाँद लगा दिये हैं। मगर यही रंगीन इबारत ज़ौक़के लिये मुज़िर साबित हुई। आज़ादकी इसी कसौटीपर आलोचक ज़ौक़के कलामको परखते हैं, और जब वह उस कसौटीपर खरा नहीं उतरता तब ज़ौक़की वही दयनीय स्थिति हो जाती है, जो तनिक-सा भी खोट निकलनेपर जौहरीकी दृष्टिमें सौटंचका बताये जानेवाले सोनेकी होती है, और तब खरे-खोटे-को अलग-अलग करनेकी परेशानीको मद्देनज़र रखकर वाजिबी क़ीमतसे भी कम क़ीमत आँकी जाती है।

आज़ादके उक्त कथनको लोग पक्षपात और अतिशयोक्तिपूर्ण तथा भ्रम उत्पन्न करनेवाला समझते हैं, और ज़ौक़पर निम्न बहुतान लगाते हैं—

१—ज़ौक़ जी-हुज़ूर शायर था।

२—ज़ौक़ दक़ियानूसी ख़याल रखता था।

३—ज़ौक़की शायरीमें ज़लील, हक़ीर, आम विचार पाये जाते हैं।

४—ज़ौक़की शायरी निम्न श्रेणीकी है।

५—ज़ौक़का अपना रंग कुछ नहीं, दूसरोंका अन्ध अनुकरण है।

साहित्यपर शायरकी निजी प्रकृतिके अतिरिक्त तत्कालीन वातावरणका भी प्रभाव पड़ता है। शायर जिस माहोलमें उठता-बैठता और साँस लेता है, उसका असर भी लेता है। ज़ौक़ जिस स्थितिमें रहे, उसको देखते हुए आश्चर्य होता है कि वे क्योंकर अपना निजी कलाम इतना लिख सके और कैसे वे अनमोल मोती चुन सके। दोष तलाश करनेवाले तो हर एकमें दोष खोजते हैं। मीर, ग़ालिब और मोमिन भी ग़लतियोंसे अछूते नहीं रह सके।

अगर चाहो निकालो ऐब तुम अच्छेसे अच्छेमें।
जो ढूँढ़ोगे तो अकबरमें भी पाओगे हुनर कोई॥

१—ज़ौक़को जी-हुज़ूर शायर इसीलिए कहा जाता है कि वह दरबारी

अर्थ) और दाख़लीयत (Inwardness) न सही। लेकिन नासिख़के कलामकी तरह ज़ौक़के अशआर रेगेरवाँ (उड़ती हुई रेत) भी नहीं है।"[1]

····हमारी शायरीकी ज़बानके लिये वोह कुछ कर गया जो सबसे नहीं हो सकता था। जोश मलीहाबादी आज़ाद अंसारीके बारेमें लिखते हैं—'आपके कलामकी सबसे बड़ी ख़ूबी यह है कि अलफ़ाज़की तरतीब और नशिस्त ऐसी होती है कि अक्सर-ओ-बेश्तर उसकी नसर (गद्य) नहीं की जा सकती। कहने और सुननेमें तो यह बात शायद ज़्यादा मुश्किल मालूम न हो, मगर इसके बरतनेमें जो हफ़्तख़्वाँ (अत्यन्त कठिन मार्ग) तय करना होते हैं उनका अन्दाज़ा करना भी दुश्वार है।' लेकिन इस बेलको पहले-पहल ज़ौक़ ही ने परवान चढ़ाया था। इस कामको पहले ज़ौक़ ही ने सँवारा था। ज़ौक़ ही की बदौलत उनके ज़मानेमें और बादमें बहुतसे कहनेवालोंने अलफ़ाज़की तरतीब और नशिस्त यूँ रखना सीखा कि मिसरेकी नसर न हो सके और ग़ज़लमें नसरेमौज़ूका (पद्यमें गद्यका) लुत्फ़ पैदा हो जाए। जैसा कुछ ज़ौक़ने कहा है वोह बेऐब है, मुकम्मिल है, उस्तादाना है, कई अदबी ख़ूबियोंका हामिल है। लेकिन शायरीमें ख़ासकर ग़ज़लकी शायरीमें हम कुछ और चीज़ें भी पानेकी उम्मीद रखते हैं, और वही चीज़ें हम ज़ौक़की ग़ज़लमें बहुत कम पाते हैं। लेकिन फ़नके लिहाज़से ज़ौक़का कारनामा भुलाया जा ही नहीं सकता। इस कारनामेकी ख़ुद अपनी एक हैसियत है और उसकी तारीख़ी अहमीयत (ऐतिहासिक महत्व) भी ग़ैरमामूली (असाधारण) है।"[2]

---

[1] अन्दाज़े, पृ० १००

[2] अन्दाज़े, पृ० १०५-६

उस बुतपै गर ख़ुदा भी हो आशिक़ तो आये रश्क।
हर चन्द जानता हूँ कि वह पाकबाज़ है॥

ऐसे पवित्र माशूक़की कल्पना ज़ौक़से पहले कहाँ मिलती है? और भी अनेक नये और अछूते भाव ज़ौक़ने अपनी शायरीमें समोये हैं, जो कि उनके कलाममें यत्र-तत्र देखनेको मिलेंगे।

३, ४ नम्बरके बहुतान प्रायः एक ही कोटिके हैं। ये सब बातें उन दिनों आम थीं, और अच्छे-से-अच्छे शायरके कलाममें पाई जाती हैं। किसीके यहाँ कम और किसीके यहाँ ज़्यादा। मीर और सौदाके युगका वर्णन करता हुआ विद्वान लेखक लिखता है—"इस अहदके शायरोंकी एक ख़सूसियत ये है कि उनके कलाममें पस्तख़यालातके साथ-साथ बुलन्द ख़याल और सख़ीफ़ (बेहूदे, छिछोरे, तंग) अलफ़ाज़के साथ शानदार और फ़सीह (ललित, सुरुचिपूर्ण) अलफ़ाज़ मिले-जुले हैं। ग़ज़लोंमें शुतुरगुर्बगी-ओ-नाहमवारी (शुतुर्मुर्गकी एक टाँग नीची एक ऊँची के समान, ऊबड़-खाबड़) पाई जाती है। मीर तक़ी मीरकी निस्बत एक क़दीम तज़करेनवीसका क़ौल है कि उनके मामूली अशआर निहायत मामूली और आला अशआर निहायत आला होते हैं। नवाब मुस्तफ़ाख़ाँ शेफ़्ता अपने तज़करेमें यही ऐतराज़ मिर्ज़ा सौदापर भी वारिद करते हैं।"[1]

जब नाख़ुदाएसुख़न मीरके यहाँ भी ये अयूब पाए जाते हैं, तब ज़ौक़पर ही यह बहुतान लगाने व्यर्थ हैं। मीर भी ऐसे जलील और हक़ीर शेर लिखनेसे बाज नहीं आये—

जब कुछ अपने कने रखते थे, तब भी ख़र्च था लड़कोंका।
अब जो फ़क़ीर हुए फिरते हैं 'मीर' उन्हींकी बदौलत है॥

× × ×

---

[1]तारीख़े अदबे उर्दू, पृ० ११६

आप आइनयेहस्तीमें[1] है तू अपना हरीफ़[2]।
वर्ना याँ कौन था, जो तेरे मुक़ाबिल होता ॥

मैं हिज्रमें मरनेके क़रीं[3] हो ही चुका था।
तुम वक़्तपर आ पहुँचे, नहीं हो ही चुका था ॥

यह हयाते चन्दरोज़ा[4] जो न सद्देराह[5] होती।
तो फिर एक असगाहेअदमोवजूद[6] होता ॥

उसे ऐय्यार पाया यार समझे 'ज़ौक़' हम जिसको।
जिसे याँ दोस्त अपना हमने जाना वोह 'उदू' निकला ॥

नाला इस शोरसे क्यों मेरा दुहाई देता।
ऐ फ़लक! गर तुझे ऊँचा न सुनाई देता ॥

झूठ ही जानो कलाम उस रहज़ने ईमानका।
पहनकर जामा भी वोह आये अगर क़ुरआनका ॥

मैं वोह शहीद हूँ लबेख़न्दानेयारका[7]।
हँसता रहे चिराग़ भी मेरे मज़ारका ॥
ऐ ज़ौक़! होश गर है तो दुनियासे दूर भाग।
इस मयकदेमें काम नहीं होशयारका ॥

इस तरफ़को देखता भी है तो शरमाया हुआ।
वस्लकी शबका समाँ आँखोंमें है छाया हुआ ॥

---

[1] संसार रूपी दर्पणमें; [2] प्रतिद्वन्द्वी; [3] निकट;
[4] चार दिनकी ज़िन्दगी; [5] मार्गकी बाधक;
[6] अर्थात् अस्तित्व तथा अस्तित्वहीन दशामें कोई अन्तर न रहता;
[7] प्रेयसीके मुस्कराते ओठोंका।

ग़ैरको यारब ! वे क्योंकर मनअ़ गुस्ताख़ी करें ।
गर हया भी उसको आती है तो शरमा जाये है ॥

धौलधप्पा उस सरापा नाज़का शेवा नहीं ।
हम ही कर बैठे थे 'ग़ालिब' पेशदस्ती एक दिन ॥

इस तरहके अनेक शेर ज़ौक़के पूर्ववर्ती और समकालीन शायरोंके उद्धृत किये जा सकते हैं । जब सर्वसाधारणकी रुचि ही इस ढंगकी थी तब कोई करे भी क्या ? युगके अनुसार साहित्यक आदर्शका स्तर ऊँचा-नीचा होता रहता है । दूर क्यों देखा जाय ? इस सभ्यता और प्रगतिके युगमें भी भारतीय फ़िल्म क्षेत्रकी कुरुचि किसीसे पोशीदा नहीं । निरन्तर आग उगलनेवाले 'जोश' जैसे शायरे इन्क़लाबसे भी फ़िल्मव्यवसाइयोंने—'हमको नज़र लग जायगी, भोली दुल्हन शर्माएगी' तथा 'गोरी मेरे जुवनाका देखो उभार'—जैसे कामुक गीत लिखवा ही लिये । फिर उस युगकी तो बात ही निराली थी ।

५—यह बहुतान भी व्यर्थ-सा है । हर शायर अपने पूर्ववर्ती और समकालीन शायरोंसे कुछ न कुछ अक्स लेता है और उसे पचाकर अपनी प्रतिभा और बुद्धिबलसे अलौकिक रूप देता है । ज़ौक़ने भी यही किया है । हाँ, यह ठीक है कि उनका अपना ख़ास रंग कोई न था । वे कई शायरोंके रंगमें लिखते नज़र आते हैं । परन्तु इसे नक़ल या अन्ध-अनुकरण कहना ठीक नहीं ।

ज़ौक़की ख़ूबियाँ—

फ़िराक़ गोरखपुरीके शब्दोंमें—"ज़ौक़के कलामका ज़्यादा हिस्सा ग़ज़ारजी एवं मसनूई क़िस्मकी शायरीका नमूना है । लेकिन इस रंगको भी ज़ौक़ने अपनी मश्शाक़ी, क़ादरकलामी और उस्तादाना अन्दाज़से मजा दिया है बयानमें एक पुख़्तगी, एक चुस्तगी और उस्तादाना शान मिलती है । ग़ालिब और मोमिनके कलामकी-सी मानवीयत (गम्भीर

वोह कौन है जो मुझपै तास्सुफ़[1] नहीं करता ।
पर मेरा जिगर देख, कि मैं उफ़ नहीं करता ॥

चाहे आलममें फ़रोग़[2] अपना, तो हो घरसे जुदा ।
देख चमके है शरर पत्थरसे होते ही जुदा ॥

कोहके चश्मोंसे अश्कोंको निकलते देखा ।
ऐ सनम ! पर तेरा पत्थर न पिघलते देखा ॥
था मैं इस बाग़में नख़्लेगुलेआतिशबाज़ी[3] ।
फूलते देखा मगर आह न फलते देखा ॥

वोह दौलत कर तलब जिससे कि दिल हो जाय मुस्तग़नी[4]।
अगर हाथ आयेगा गंजीनयेक़ारूँ[5] न ठहरेगा ॥

आदम दुबारा सूयेबहिश्तेबरीं[6] गया ।
देखो, जहाँ ख़राब हुआ फिर वहीं गया ॥

क्या-क्या मज़ा न तेरे सितमका उठा लिया ।
हमने भी लुत्फ़े ज़िन्दगी अच्छा उठा लिया ॥

आख़िर गिल[7] अपनी ख़ाकेदरेमयकदा[8] हुई ।
पहुँची वहीं यह ख़ाक जहाँका ख़मीर था ॥

---

[1]अफ़सोस; [2]उन्नति;
[3]अर्थात् आतिशबाज़ी, फुलझड़ी;
[4]निस्पृह;
[5]क़ारूँका खजाना अर्थात् कुवेर-धन;
[6]स्वर्गकी ओर;
[7]मिट्टी;
[8]मधुशालाके द्वारकी रज ।

उसे हमने बहुत ढूँडा, न पाया।
अगर पाया तो खोज अपना न पाया॥
जिस इन्साँको सगेदुनिया[1] न पाया।
फ़रिश्ता उसका हमपाया[2] न पाया॥
मुक़द्दरस ही से गर सूदोज़ियाँ[3] हैं।
तो हमने याँ न कुछ खोया न पाया॥
अहातेसे फ़लकके हम तो कबके।
निकल जाते, मगर रस्ता न पाया॥
जहाँ देखा किसीके साथ देखा।
कहीं हमने तुझे तनहा न पाया॥
किया हमने सलाम ऐ इश्क़! तुझको।
कि अपना हौसला इतना न पाया॥
न मारा तूने पूरा हाथ क़ातिल!
सितममें भी तुझे पूरा न पाया॥
लहदमें[6] भी तेरे मुज़तरने[5] आराम।
ख़ुदा जाने कि पाया या न पाया॥
कहे क्या हाय, ज़ख्मे दिल हमारा।
जहनपाया लबेगोया[6] न पाया॥

उसने जब माल बहुत रद्दोबदलमें मारा।
हमने दिल अपना उठा, अपनी बग़लमें मारा॥

---

[1]सांसारिक कुत्ता अर्थात् व्यसन-लिप्त; [2]बराबर;
[3]लाभ-हानि; [4]कब्रमें;
[5]प्रेमरोगीने; [6]वाक्यशक्ति।

महजबीं ! याद हैं कि भूल गये ?
वोह शबे माहताबकी बातें ॥
सुनते हैं उसको छेड़-छेड़के हम !
किस मज़ेसे अताबकी[1] बातें ॥

वे सीधे घरको सिधारे और उनकी खोजमें हम ।
फिरे भटकते हुए कूए बदगुमानीमें ॥

गुहरको जौहरी सर्राफ़ ज़रको देखते हैं ।
बशरके देखनेवाले बशरको देखते हैं ॥
बनाके आइना हैं देखते जो आइनागर ।
हुनरवर अपने भी ऐबोहुनरको देखते हैं ॥

फिरता है सैले हवादससे[2] कोई मर्दोंका मुँह !
शेर सीधा तैरता है वक़्तेरफ़्तन[3] आबमें ॥

वह दिन है कौन-सा कि सितमपर सितम नहीं !
गर ये सितम हैं रोज़ तो इक रोज़ हम नहीं ॥
मुश्किल है मेरे अहदे मुहब्बतका टूटना ।
ऐ बेवफ़ा ! यह तेरी 'ख़ुदाकी क़सम' नहीं ॥
हाथ आये किस तरहसे दिले गुमशुदाका खोज ।
हैं चोर वह कि जिसपै किसीका भरम नहीं ॥

हज़रते दिलका देखना आलम, हाथ उठाये दुनियासे ।
पाँव पसारे बैठे हैं और सरपै सफ़रके झगड़े हैं ॥

आज उनसे मुद्दई कुछ मुद्दआ कहनेको हैं ।
पर नहीं मालूम क्या कहवेंगे, क्या कहनेको हैं ॥

---

[1] क्रोधकी; [2] दुर्घटना रूपी बाढ़से; [3] तैरते हुए ।

कहते थे आफ़ताबेक़यामत जिसे सो वोह।
निकला चिराग़े दाग़े दिल अपना बुझा हुआ॥
हम आप जलबुझे मगर इस दिलकी आगको।
सीनेमें हमने 'ज़ौक़' न पाया बुझा हुआ॥

जुदा हों यारसे हम और न हों रक़ीब जुदा।
है अपना-अपना मुक़द्दर जुदा, नसीब जुदा॥

शुक्र ! परदे हीमें उस बुतको हयाने रक्खा।
वर्ना ईमान गया ही था, ख़ुदाने रक्खा॥

इश्क़के ढबपै न कोई बजुज़इन्सान[1] चढ़ा।
इसके क़ाबूपै चढ़ा तो यही नादान चढ़ा॥

बरंगेग़ुंचा[2] ख़ूनी दिल हँसे क्या इस गुलिस्ताँमें।
भर आया मुँहमें ख़ूँ गर इक तबस्सुम[3] ज़ेरे लब आया॥

वोह सुबहको आयें तो करूं बातोंमें दोपहर।
और चाहूँ कि दिन थोड़ा-सा ढल जाय तो अच्छा॥
ढल जाये जो दिन भी, तो करूँ उसी तरह शाम।
और फिर कहूँ गर आजसे कल जाए तो अच्छा॥
अलक़िस्सा नहीं चाहता वोह जाये यहाँसे।
दिल मेरी ही बातोंमें बहल जाये तो अच्छा॥

कहे है ख़ंजरे क़ातिलसे यह गलू मेरा।
कमी जो मुझसे करे तो पिये लहू मेरा॥
मुझे वह परदानशीं सामने कब आने दे।
जो ज़िक्र आने न दे अपने रूबरू मेरा॥

---

[1]मनुष्यके अतिरिक्त; [2]कलीकी तरह; [3]मुस्कान।

उम्रे रवाँका तौसनेचालाक[1] इसलिए।
तुझको दिया कि जल्द करे याँसे एड़ तू॥

मौत ही से कुछ इलाजे दर्दे फ़ुरक़त हो तो हो।
ग़ुस्लेमैय्यत[2] ही हमारा ग़ुस्लेसेहत[3] हो, तो, हो॥

समझ है और तुम्हारी कहूँ मैं तुमसे क्या?
तुम अपने दिलमें ख़ुदा जाने सुनके क्या समझो?

हाथ सीनेपै मेरे रखके किधर देखते हो।
इक नज़र दिलसे इधर देखलो गर देखते हो॥

अबस[4] तुम अपनी रुकावटसे मुँह बनाते हो।
वोह आई लबपै हँसी, देखो, मुसकराते हो॥

ज़ियादा होता है पीरीमें फ़रबा[5] नफ़्सेअम्मारह[6]।
यह बालोंकी सुफ़ेदी शीर[7] है इस मारे रहज़नको[8]॥

वोह दिलको चुराकर लगे जो आँख चुराने।
यारोंका गया उनपै भरम और ज़ियादा॥

रुक़्क़ा है चोरीका और भेजा है अनजानके हाथ।
या इलाही कहीं पड़जाय न दरबानके हाथ॥

तेरे कूचेको वोह बीमारेग़म दारुश्शफ़ा[9] समझे।
अजलको[10] जो तबीब[11] और मर्गको[12] अपनी दवा समझे॥

---

[1]तेज़ घोड़ा; [2]मृत्युस्नान; [3]आरोग्यस्नान; [4]व्यर्थ;
[5]प्रचण्ड; [6]विषयवासना; [7]दूध; [8]मूज़ी साँपको;
[9]आरोग्य मन्दिर; [10]यमराजको; [11]चिकित्सक;
[12]मृत्युको।

दिल इबादतसे चुराना और जन्नतकी तलब।
कामचोर! इस कामपर किस मुँहसे उजरतकी तलब॥

दिलको रफ़ीक़[1] इश्क़में अपना समझ न 'ज़ौक़'।
टल जायगा यह अपनी बला तुझपै टालके॥

मुझमें क्या बाक़ी है जो देखे है तू आनके पास।
बदगुमाँ बहमकी दारू नहीं लुक़मानके पास॥

फिरतो आये ख़ैरसे हम जाके उस मग़रूरतक।
पर उछलता ही रहा अपना कलेजा दूरतक॥

बे यार रोज़ेईद शबेग़मसे कम नहीं।
जामेशराब दीदयेपुरनमसे[2] कम नहीं॥
उस हूरवशका[3] घर मुझे जन्नतसे है सिवा[4]।
लेकिन रक़ीब हो तो जहन्नुमसे कम नहीं।

हमारे हाथसे ऐ 'ज़ौक़' वक़्ते मयनोशी।
हजार नाज़से वोह एक जाम लेते हैं॥

बर्क़े ख़िरमनसोज़[5] है आलममें नाफ़हमी[6] तेरी।
वर्ना क्या-क्या लहलहाते खेत हैं हर दानेमें॥

इल्म जिसका इश्क़ और जिसका अमल वहशत नहीं।
वोह फ़लांतू है तो अपने क़ाबिले सुहबत नहीं॥

वक़्ते पीरी शबाबकी बातें।
ऐसी हैं जैसे ख़्वाबकी बातें॥

---

[1]मित्र; [2]अश्रुपूर्ण नेत्र; [3]दिव्यरूपाका; [4]अधिक;
[5]खेतको जलानेवाली बिजली; [6]अनभिज्ञता।

मज़े जो मौतके आशिक़ बयाँ कभू करते।
मसीहो ख़िज़्र भी मरनेकी आरज़ू करते॥
अगर ये जानते चुन-चुनके हमको तोड़ेंगे।
तो गुल कभी न तमन्नाये रंगो बू करते॥

उस संगेआस्तांपै[1] जबीनेनियाज़[2] है।
वोह अपनी जा-नमाज़[3] है और यह नमाज़[4] है॥
नासाज़[5] हमसे जो है उसीसे यह साज़[6] है।
क्या ख़ूब दिल है वाह, हमें जिसपै नाज़ है॥

ग़ुंचे[7] तिरी गुंचादहनीको[8] नहीं पाते।
हँसते तो हैं पर तेरी हँसीको नहीं पाते॥

बाद रंजिशके गले मिलते हुए रुकता है दिल।
अब मुनासिब है यही कुछ मैं बढ़ूँ कुछ तू बढ़े॥

दुकाने हुस्नमें रखते नहीं मताएवफ़ा।
वगर्ना लेते हम इक अपने महर्बांके लिए॥

याद आया याँके आनेका वादा भी ख़ूब उन्हें।
जब रातको वह पाँवमें महदी लगा चुके॥
तुम भूलकर भी याद नहीं करते हो कभी।
हम तो तुम्हारी यादमें सब कुछ भुला चुके॥
मस्जिदमें बैठे क्या हो? चलो, मयकदेको 'ज़ौक़'!
उट्ठो कहीं, वज़ीफ़ा[9] बहुत बढ़-बढ़ा चुके॥

---

[1]प्रेयसीकी चौखटपर; [2]नतमस्तक; [3]उपासना स्थल; [4]उपासना; [5]क्षुब्ध; [6]मिला हुआ; [7]कलियाँ [8]मुस्कराहटको; [9]ईश्वरस्तुति।

ख़ानक़हमें भी वही है जो ख़राबातमें है।
फ़र्क़ पर यह है, यहाँ मुँहपै है वाँ दिलमें है॥

तेरे आफ़तज़दा जिन दश्तोंमें अड़ जाते हैं।
सओताक़तके वहाँ पाँव उखड़ जाते हैं॥

मेरे नालोंसे चुप हैं मुर्गेख़ुशइलहाँ[1] जमानेमें।
सदा तूतीकी सुनता कौन है नक़्क़ारख़ानेमें॥

मर गये पर भी तग़ाफ़ुल[2] ही रहा आनेमें।
बेवफ़ा पूछे है, क्या देर है ले जानेमें?

जिस जगह बैठे हैं बादीदयेनम[3] उट्ठे हैं।
आज किस शख़्सका मुँह देखके हम उट्ठे हैं॥

रुख़सत जो हमसे होके जाते वोह अपने घर हैं।
घबराके पहुँचते वाँ हम उनसे पेश्तर हैं॥

दिलमें थे क़तरये ख़ूँ चन्द सो मानिन्दे अनार।
न रहे वोह भी जब उल्फ़तने निचोड़ा हमको॥

आस्माँ और वोह इन्सान बनाता हमको?
ख़ाकमें था मगर इस ढबसे मिलाना हमको॥
देखा आख़िर न कि फोड़ेकी तरह फूट बहे।
हम भरे बैठे थे क्यों आपने छेड़ा हमको॥
हम मुब्बर्रक[4] हैं बस अब करले जियारत मजनूँ।
सरपै फिरता है लिये आवलयेपा[5] हमको॥

---

[1]मधुर बोलनेवाले पक्षी; [2]उपेक्षा; [3]रोते हुए;
[4]पवित्र; [5]पाँवका छाला।

ज़िबह करनेको मेरे पूछते क्या हो तदबीर।
तुम छुरी फेर भी दो, नाम ख़ुदाका लेकर॥

मौत उसको याद करती है ख़ुदा जाने कि गोर।
यूँ तेरा बीमारेग़म जो हिचकियाँ लेने लगा॥
मुझको हर शब हिज्रकी होने लगी जूँ रोज़ेहश्र।
मुझसे यह किस दिनके बदले आस्माँ लेने लगा॥

उतारा तूने तो सर तनसे इस शामतके मारेका।
अरे अहसान मानूँ सरसे मैं तिनका उतारेका॥
न पकड़ें दामनेइलयास[1] गरदाबेबलामें[2] हम।
कि बदतर डूबकर मरनेसे है जीना सहारे का॥

तासीरेमुहब्बत अजब इक हुबका[3] अमल है।
लेकिन यह अमल यारपै चल जाय तो अच्छा॥
जो चश्म कि बेनम हो वोह हो कोर[4] तो बहतर।
जो दिल कि हो बेदाग़ वह जल जाय तो अच्छा॥
फ़ुरक़तसे तेरी तारेनफ़स[5] सीनेमें मेरे।
काँटा-सा खटकता है निकल जाय तो अच्छा॥

बयाने दर्दे मुहब्बत जो हो तो क्योंकर हो?
ज़बान दिलके लिये है न दिल 'ज़बाँ'के लिये॥

२० मार्च १९५०

---

[1]अर्थात् किसीका सहारा; [2]संकटके भँवरमें;
[3]प्यार, चाहका; [4]अन्धी;
[5]साँस।

सितमको हम करम समझे जफ़ाको हम वफ़ा समझे ।
और इसपर भी न समझे वोह, तो उस बुतसे ख़ुदा समझे ॥
समझ ही में नहीं आती है कोई बात 'ज़ौक़' उसकी ।
कोई जाने तो क्या जाने, कोई समझे तो क्या समझे ?

लेते ही दिल जो आशिक़े दिलसोजका[1] चले ।
तुम आग लेने आये थे, क्या आये ! क्या चले ॥

ऐ 'ज़ौक़' ! किसी हमदमे दैरीनाका[2] मिलना ।
बेहतर है मुलाक़ाते मसीहा-ओ-ख़िज़रसे ॥

समझे है वाजबुलरियायत[3] दोस्त ।
दुश्मनोंकी रियायतोंसे[4] मुझे ॥

ऐ 'ज़ौक़' ! इतना दुख़्तरेरज़को[5] न मुँह लगा ।
छुटती नहीं है मुँहसे ये काफ़िर लगी हुई ॥

क्या ग़रज़ लाख ख़ुदाईमें हों दौलतवाले ।
उनका बन्दा हूँ, जो बन्दे हैं मुहब्बतवाले ॥
गये जन्नतमें अगर सोज़े मुहब्बतवाले ।
तो यह जानो रहे दोज़ख़ ही में जन्नतवाले ॥
न सितमका कभी शिकवा न करमकी ख़्वाहिश ।
देख तो, हम भी हैं क्या सब्रोक़नाअ़तवाले ?
नाज है गुलको नज़ाकतपै चमनमें ऐ ज़ौक़ ।
इसने देखे ही नहीं नाज़ोनज़ाकतवाले ॥

---

[1]दग्धहृदय प्रेमीका;
[2]बिछड़े साथीका;
[3]कृपापात्र;
[4]सिफ़ारिशोंसे;
[5]शराबको ।

जिबह करनेको मेरे पूछते क्या हो तदबीर।
तुम छुरी फेर भी दो, नाम ख़ुदाका लेकर॥

मौत उसको याद करती है ख़ुदा जाने कि गोर।
यूँ तेरा बीमारेग़म जो हिचकियाँ लेने लगा॥
मुझको हर शब हिज्रकी होने लगी जूँ रोज़ेहश्र।
मुझसे यह किस दिनके बदले आस्माँ लेने लगा॥

उतारा तूने तो सर तनसे इस शामतके मारेका।
अरे अहसान मानूँ सरसे मैं तिनका उतारेका॥
न पकड़ें दामनेइलयास[1] गरदाबेबलामें[2] हम।
कि बदतर डूबकर मरनेसे है जीना सहारे का॥

तासीरेमुहब्बत अजब इक हुबका[3] अमल है।
लेकिन यह अमल यारपै चल जाय तो अच्छा॥
जो चश्म कि बेनम हो वोह हो कोर[4] तो बहतर।
जो दिल कि हो बेदाग़ वह जल जाय तो अच्छा॥
फ़ुरक़तसे तेरी तारेनफ़स[5] सीनेमें मेरे।
काँटा-सा खटकता है निकल जाय तो अच्छा॥

बयाने दर्दे मुहब्बत जो हो तो क्योंकर हो?
ज़बान दिलके लिये है न दिल 'ज़बाँ'के लिये॥

२० मार्च १९५०

[1]अर्थात् किसीका सहारा; [2]संकटके भँवरमें;
[3]प्यार, चाहका; [4]अन्धी;
[5]साँस।

चुपके-चुपके ग़मका खाना कोई हमसे सीख जाय।
जी हीं जीमें तिलमिलाना कोई हमसे सीख जाय॥
जब कहा मरता हूँ वोह बोले मेरा सर काटकर।
"झूठको सचकर दिखाना कोई हमसे सीख जाय"॥

बिन जले शम्मअके परवाना नहीं जल सकता।
क्या करे इश्क़ अगर हुस्न ही सबक़त[1] न करे॥

मरज़े इश्क़ जिसे हो उसे क्या याद रहे।
न दवा याद रहे और न दुआ याद रहे॥
तुम जिसे याद करो फिर उसे क्या याद रहे।
न ख़ुदाईकी हो परवाह, न ख़ुदा याद रहे॥

पिला मय आश्कारा[2] हमको किसकी साक़िया! चोरी।
ख़ुदाकी जब नहीं चोरी तो फिर बन्देकी क्या चोरी॥

बेक़रारी थी सब उम्मीदे मुलाक़ातके साथ।
अब वोह अगली-सी दराज़ी[3] शबेहिज्राँमें[4] नहीं॥

कितने मुफ़लिस हो गये कितने तवंगर हो गये?
ख़ाकमें जब मिल गये दोनों बराबर हो गये॥

रात जूँ शमअ कटी हमको जो रोते-रोते।
बह गये अश्कोंमें हम सुबहके होते-होते॥

जिस तरह माह सारे सितारोंमें एक है।
यूँ मेरा महजबीं भी हज़ारोंमें एक है॥

---

[1]पहल; [2]प्रकट रूपसे;
[3]लम्बाई; [4]विरहरात्रिमें।

ये दोनों उसी रंगमें सराबोर हो गये होते तो आज ये आबदार मोती देखने कैसे नसीब होते और फिर उर्दू-शायरी 'मीर'के अलावा और किसपर नाज़ करती ? चन्द शेर नासिख़के रंगमें 'नसीर', 'मोमिन', और 'ग़ालिब'-के दिये जाते हैं :—

नासिख़ —

मुँहको दामनसे छुपाकर जो वह रक़्साँ[1] होता।
शोलये हुस्न[2] चराग़ेतहेदामाँ[3] होता॥

निकहते काकुले पेचाँसे[4] जो देते तशबीह[5]॥
इतरेमजमूअ़एअ़ज्ज़ा[6] हर जुज़्व[7] परीशाँ होता॥

ख़ूँ रुलाता वहीं नासूर बनाकर गरदूँ[8]।
ज़ख़्म भी गर मेरे तनपर कभी ख़न्दाँ[9] होता॥

कौन है जो नहीं मरता है तेरे क़ामत[10] पर ?
क्यों न हर सर वे चमन क़ालिबे बेजाँ[11] होता॥

नसीर—

लौ लग रही है जिससे वह शमअ़रू न आया।
बल बे तेरी शरारत याँ तक कभू न आया॥

हो इस दहनसे[12] रूकश[13] सैलेसबाकी[14] खाई[15]।
ग़ुंचेके आह मुँहसे किस दिन लहू न आया॥

---

[1]नाचता; [2]सौन्दर्य्य-ज्वाला; [3]घूँघटके अन्दर दीपक।
[4]ज़ुल्फ़ोंकी सुगन्धसे; [5]उपमा; [6]इत्रोंका;
[7]प्रत्येक अणु; [8]आकाश; [9]मुस्कराता;
[10]क़द; [11]निर्जीव शरीर; [12]प्रेयसीके मुखने;
[13]मुक़ाला करके; [14]हवाके थपेड़ेकी; [15]मुँहकी खाई, हारना पड़ा।

चुपके-चुपके ग़मका खाना कोई हमसे सीख जाय।
जी ही जीमें तिलमिलाना कोई हमसे सीख जाय॥
जब कहा मरता हूँ वोह बोले मेरा सर काटकर।
"झूठको सचकर दिखाना कोई हमसे सीख जाय"॥

बिन जले शम्अके परवाना नहीं जल सकता।
क्या करे इश्क़ अगर हुस्न ही सबक़त[1] न करे॥

मरज़े इश्क़ जिसे हो उसे क्या याद रहे।
न दवा याद रहे और न दुआ याद रहे॥
तुम जिसे याद करो फिर उसे क्या याद रहे।
न ख़ुदाईकी हो परवाह, न ख़ुदा याद रहे॥

पिला मय आश्कारा[2] हमको किसकी साक़िया! चोरी।
ख़ुदाकी जब नहीं चोरी तो फिर बन्देकी क्या चोरी॥

बेक़रारी थी सब उम्मीदे मुलाक़ातके साथ।
अब वोह अगली-सी दराज़ी[3] शबेहिज्राँमें[4] नहीं॥

कितने मुफ़लिस हो गये कितने तवंगर हो गये?
ख़ाकमें जब मिल गये दोनों बराबर हो गये॥

रात जूँ शमअ कटी हमको जो रोते-रोते।
बह गये अश्कोंमें हम सुबहके होते-होते॥

जिस तरह माह सारे सितारोंमें एक है।
यूँ मेरा महजबीं भी हज़ारोंमें एक है॥

---

[1]पहल; [2]प्रकट रूपसे;
[3]लम्बाई; [4]विरहरात्रिमें।

हाँ, तो इस तरहकी अस्वाभाविक और बनावटी शायरीके जालसे बहुत शीघ्र 'ग़ालिब' और 'मोमिन' बाहर निकल आये। 'मोमिन' ग़ज़लके बहुत बड़े उस्ताद हुए हैं। इनके शिष्योंमें—नवाब शेफ़्ता, नवाब अकबर, नवाब नसीम, मीर तसकीन, आही, आशुफ़्ता, सालिक, शहज़ादा क़ैसर वहशत, फ़ातमा बेगम साहबा, और यासने काफ़ी ख्याति प्राप्त की।

मोमिन जिस जिगरसोज़ीसे ग़ज़ल बनाते थे, उसे पढ़ते भी वैसे ही दर्दीले स्वरोंमें थे कि कलेजा मुँहको आने लगता था। फ़ारसीके गद्य पद्यपर भी उर्दूकी तरह ही क़ुदरत रखते थे।

मोमिनकी वेश-भूषाका क़लमी चित्र मिर्ज़ा फ़रहतअल्ला बेग इस प्रकार खींचते हैं—"हकीम आगाजानके छत्तेके सामने 'मोमिन'का बड़ा मकान है। अन्दर बहुत वसीअ़ सहन और उसके चारों तरफ़ इमारत है। दालानोंमें चाँदनीका फ़र्श है। अन्दरके दालानमें बीचों-बीच क़ालीन बिछा हुआ है, उसपर गाव तकियेसे लगे हकीम (मोमिन) साहब बैठे हैं, सामने हकीम सुखानन्द 'रक़म', मिर्ज़ा रहीमुद्दीन 'हया' बाअदब दुज़ानू बैठे हुए हैं। मालूम होता है कोई दरबार हो रहा है। किसीको आँख उठाकर देखने और बिला ज़रूरत बोलनेका यारा नहीं। हकीम साहबकी उम्र तक़रीबन चालीस सालकी है। कशीदा क़ामत, सुर्ख़ी सफ़ेद रंग था, जिसमें सब्ज़ी झलकती थी। बड़ी-बड़ी रोशन आँखें, लम्बी-लम्बी पलकें, खिंची हुई भवें, लम्बी सुतवाँ नाक, पतले-पतले होंट, उनपर पानका लाखा जमा हुआ, मिस्सी आलूदा दाँत, हलकी-हलकी मूँछें, खशख़शी दाढ़ी, भरे-भरे डण्ड, पतली कमर, चौड़ा सीना, लम्बी उँगलियाँ, सरपर घुँघराले लम्बे-लम्बे बाल काकुलोंकी शक्लमें कुछ तो पुश्तपर और कुछ कन्धोंपर पड़े हुए। कानके क़रीब थोड़ेसे बालोंको मोड़कर ज़ुल्फ़ें बना लिया था। बदनपर शरबती रंगका नीची चोलीका अँगरखा, लेकिन उसके नीचे कुरता न था और जिस्मका कुछ हिस्सा अँगरखेके पर्देमें दिखाई देता था। गलेमें स्याह रंगका फ़ीता, उसमें छोटा-सा सुनहरी तावीज़,

७७

मोमिन

हकीम मुहम्मद मोमिन ख़ाँ 'मोमिन'के पिता हकीम 'ग़ुलामनवीख़ाँ' दिल्लीके सम्भ्रान्त व्यक्तियोंमेंसे थे। मोमिन्का जन्म दिल्लीके कूचये-चेलानमें ई० स० १८०० (हि० स० १२१५) में हुआ। अरबी-फ़ारसी-की उच्च शिक्षा प्राप्त करनेके अतिरिक्त हिकमत, नजूम और रमल (ज्योतिष)में भी पूर्ण योग्यता प्राप्त की थी। संगीतमें वोह नाम पैदा किया कि इनकी मृत्युके पश्चात् तत्कालीन वीणा-विशेषज्ञ नज़ीरने यह कहकर वीन उठाकर रख दी कि "अब दिल्लीमें इसका कोई क़द्रदाँ नहीं रहा।" शतरंजके नामी खिलाड़ियोंमें थे।

तबियत रंगीन और स्वभाव आशिक़ाना था। शायरीके लिए भी दिल मचलने लगा। शाह 'नसीर' जो उन दिनों देहलवी शायरोंमें 'नासिख़' समझे जाते थे—उन्हें चन्द रोज 'मोमिन'ने अपना कलाम दिखाया, परन्तु 'नसीर' और 'मोमिन'की तबियतें जुदागाना थीं। इसीलिए बहुत जल्द इसलाह लेना छोड़ दिया, और स्वयं ही अपनी ग़ज़लें बनाने लगे।

जब 'नासिख़'का दीवान छपकर दिल्ली आया तो 'ग़ालिब' और 'मोमिन'ने भी उनके ख़ारजीरंगमें लिखनेका प्रयत्न किया। क्योंकि नासिख़का यह ख़ारजीरंग उन दिनों मक़बूले आम था। उर्दू-शायरीका यह सौभाग्य ही समझना चाहिए कि उसके यह दोनों अमर कलाकार नासिख़के रंगमें सफलता प्राप्त न कर सके और बहुत शीघ्र इस तर्ज़को तिलांजलि देकर अपना मख़सूस रंग अख़्तियार कर लिया। काश!

कभी अवसर न आया। जिस युगमें 'मोमिन' पैदा हुए, उस युगमें शायर ख़ुशामद और भांडपनेसे किनाराकशी कर ही नहीं सकता था। चाहे वह घरमें कितना ही सम्पन्न क्यों न हो। इसलिए 'मोमिन'का इस कलंकसे बेदाग़ निकल जाना सराहनीय ही है। फिर भी भूखे पेट और फटे हाल रहकर जो 'मीर'की तरह अपनी गर्दनको सीधी रख सके उस स्वाभिमानकी कुछ बात ही और है। भाग्यसे मोमिनको इस दुष्कर परीक्षामें-से गुज़रना न पड़ा। यह वह फिसलती ज़मीन थी कि 'ग़ालिब' जैसे सिद्धहस्त और आनके पक्के शायर भी अपने क़दम जमाकर न रख सके। ज़ौक़की तो ख़ैर बात छोड़ो, वह तो दासताकी बेड़ीमें जकड़े हुए होनेके कारण और स्वभावसे भी चापलूस और ख़ुशामदी थे, परन्तु 'ग़ालिब' जिनकी स्वाभिमानताके अनेक क़िस्से मशहूर हैं, और जो कहते थे—

बन्दगी में भी वह आज़ाद[1]-ओ-ख़ुदबीं[2] हैं कि हम।
उल्टे फिर आये दरे काबा[3] अगर वा[4] न हुआ॥

किन्तु उनकी फ़िज़ूलख़र्ची, मयनोशी और मुफ़लिसी उनके स्वाभि-मान और आनको स्थिर नहीं रहने देती थीं। उन्होंने हरचन्द अपनी इस निर्बलताको छुपाकर ज़ाहिरामें ग़यूर और ख़ुद्दार बननेकी कोशिश की, मगर उनकी यह कमज़ोरियाँ कहीं न कहींसे अपनी झलक दिखाती ही रहीं। बक़ौल अल्लामा नियाज़ फ़तहपुरी—"ज़ौक़ तो मुफ़लिसो बेदस्तोपा बादशाहको लूटना चाहता था, ग़ालिब यही हसरत अपने साथ ले गये कि वह क्यों न ज़ौक़की जगह हुए, और हरचन्द उन्होंने अपनी ख़लिश छुपानेकी बहुत कोशिश की, लेकिन वे इसमें कामयाब न हो सके। ग़ालिबका यह कहना :—

---

[1]स्वतंत्र; [2]स्वाभिमानी;
[3]काबेका द्वार; [4]खुला हुआ।

दन्दाँ दिखाके मत हँस ऐ बख़यये गरीबाँ !
चाके जिगरका हमको तौरे रफ़ू न आया ॥

अपनी भी बादेमजनूं यारो हवा बँधी है ।
ले गर्दोबाद ख़ेमा कब कूबकू न आया ॥

ग़ालिब—

न लेवे गर ख़से जौहर तरावत सब्ज़ये ख़तसे ।
लगादें ख़ानये आईनामें रूए निगार 'आतिश' ॥

फ़रोग़े हुस्नसे होती है हल मुश्किले आशिक़ ।
न निकले शमअ़के पा से निकाले गर न ख़ार आतिश ॥

सताइश गर है जाहिद इस क़दर जिस बाग़े रिज़वाँका ।
वोह इक गुलदस्ता है हम बे ख़ुदोंके ताके निसयाँ का ॥

बयाँ क्या कीजिये बेदादे काविश हाय मिज़गाँका ।
कि हर एक क़तरये ख़ूँ दाना है तसबीहे मरजाँका ॥

मोमिन—

ले उड़ी लाशा हवा लाग़िर जबस तन हो गया ।
ज़र्रहे रीगे बयाबाँ अपना मदफ़न हो गया ॥

बिन तेरे ऐ शोलारू ! आतिशक़दा तन हो गया ।
शमअ़ क़दपर मेरे परवाना बिरहमन हो गया ॥

याद आया सूये दुश्मन उसका जाना गर्म-गर्म ।
पानी-पानी हो गया मैं मौजे दरिया देखकर ॥

इस प्रकारकी खारजी शायरीके सम्बन्धमें इसी अध्यायके प्रारम्भमें काफ़ी लिखा जा चुका है । यहाँ इतना ही लिखना पर्याप्त होगा कि भावोंके लिए नहीं, अपितु शब्दोंकी मुनासबतके लिए शेर मौज़ूं किये गये हैं ।

मुहब्बत है, उसीमें तबा आज़माई करते हैं। उनके कलाममें न तो हक़ीक़ी-इश्क़[1] (ईश्वरीयप्रेम) हिलोरें मारता है और न नासहाना वाज़ (पण्डिताऊ उपदेश) सुनाई पड़ता है। उन्होंने सिर्फ़ इन्सानी जज़्बयेइश्क़के हर पहलूको इस ख़ूबीसे नज़्म किया है कि जिसकी मिसाल नहीं। उन्होंने सिर्फ़ इश्क़िया शायरीको अपना मौज़ू बनाया, इससे उनकी शायरीका क्षेत्र काफ़ी सीमित हो गया है। फिर भी उनकी कलाकी चरमसीमा यही है कि जिस सीमित क्षेत्रमें ग़ालिब जैसोंका दम घुटता[2] था, उसी सँकरी गलीमें मोमिनने तबियतकी बे-बे जौलानियाँ दिखाई और कल्पनाकी ऐसी कुलाचें भरी हैं कि उनका समकालीन कोई भी शायर हमसरी न कर सका।

"मोमिनने इसी दुनियाका इश्क़ कहा, और इसमें जितने तजरुबाते तल्ख़ोशीरीं (कड़वे-मीठे) हो सकते हैं, वे सब उन्होंने हासिल किये। वही हिजरोविसालकी मादी कैफ़ियात, वही शिकवे-शिकायत, वही रक़ीबका खटका, वही इल्तजाएँ, वही तदबीरें। अलग़रज़ वे तमाम जज़्बात जो अनासरे मुहब्बत (प्रेमतत्वों)से ताल्लुक़ रखते हैं, सब मोमिनके यहाँ पाये जाते हैं। यहाँतक कि हम मोमिनके माशूक़का कैरेक्टर (चारित्र) उनके कलामसे मुतईन करें तो कह सकते हैं कि बाजारी जिन्स (वैश्या, छिनाल)से ज़्यादा हैसियत नहीं रखता। लेकिन मोमिनका कमाले

---

[1]"मोमिन'! बहिश्तो इश्क़े हक़ीक़ी तुम्हें नसीब।
हमको तो रंज हो, जो ग़मे जाविदाँ न हो॥

[2]बक़दरे शौक़ नहीं ज़र्फ़े तंगनाए ग़ज़ल।
कुछ और चाहिए वुसअ़त मेरे बयाँके लिये॥

यानी जिन भावोंको मैं लाना चाहता हूँ, वे इन संकुचित क्षेत्रमें नहीं आ पाते। उसके लिए विशाल क्षेत्रकी आवश्यकता है।

काकरेजी दुपट्टेको वल देकर कमरमें लपेट लिया था, और उसके दोनों कोने सामने पड़े हुए थे। हाथमें पतला-सा ख़ारपश्त, पाँवमें सुर्ख़ गुलवदन-का पायजामा, मुहरियोंपर तंग ऊपर जाकर किसी क़दर ढीला। कभी-कभी एक वरका पायजामा भी पहनते थे। पायजामा हमेशा रेशमी और क़ीमती होता था। चौड़ा सुर्ख़ नेफ़ा, अँगरखेकी आस्तीन आगेसे कटी हुई, कभी लटकती रहती थी कभी पलटकर चढ़ा लेते थे। सरपर गुलशनकी दो पलड़ी टोपी उसके किनारेपर वारीक लैस, टोपी इतनी बड़ी थी कि सरपर अच्छी तरह मढ़कर आ गई थी। अन्दरसे माँग, माथेका कुछ हिस्सा और वाल साफ़ झलकते थे। ग़रज़ कि निहायत ख़ुश पोशाक और जामाज़ेब आदमी थे।"[1]

मोमिन दरवारी शायर न थे ख़ालिस कलाकार थे। स्वतंत्र स्वभाव और स्वाभिमान इनके विशेष गुण थे। किसी रईसकी प्रशंसामें क़सीदे वग़ैरह लिखना तो दरकिनार वे किसीको हिजोके उपयुक्त भी नहीं समझते थे। किसीसे सहायता लेना या याचना करना ख़िलाफ़ेशान समझते थे। स्वयं कहते हैं—

इन्साफ़के ख़्वाहाँ हैं, नहीं तालिबे ज़र हम।
तहसीने सुख़न फ़हम है 'मोमिन' सिला अपना॥

यही वजह थी कि रामपुर, टौंक, भोपाल; जहाँगीराबाद, कपूरथला, आदि रियासतोंके निमंत्रण उन्होंने स्वीकृत नहीं किये, और नौकरीके फन्देसे हमेशा मुक्त रहे। मुग़लिया सल्तनतकी तरफ़से इनके ख़ानदानको एक हज़ार रुपया पेन्शन मिलती थी, यह भी उसमेंसे कुछ हिस्सा पाते थे। आर्थिक परिस्थिति सन्तोषजनक थी। अतएव 'मीर'की तरह इनके स्वाभिमान और आत्मसम्मानको निर्धनताकी कसौटीपर परखे जानेका

---

[1]दीवाने मोमिन, पृ० २८-२९

जब अनहोनीको होनी और होनीको अनहोनी साबित कर जाता है तो अजीब समा पैदा हो जाता है।"[1]

'मोमिन' फ़ार्सी तरकीबें इस्तेमाल करनेमें निपुण थे, और एक तरहसे 'ग़ालिब'से भी बढ़-चढ़कर थे। उन्होंने फ़ार्सी शब्दोंका अपने शेरोंमें इस कुशलतासे संमिश्रण किया है कि फ़ारसीकी मिठास तो पैदा हो ही गई है; साथ ही कलाम भी क्लिष्ट नहीं होने पाया है।

अन्तमें नियाज़ फ़तहपुरीके शब्दोंमें—"मोमिनने अपनी सारी रचनाओंमें सिवाय हिकायते हुस्नोइश्क़के और किसी चीज़से सरोकार नहीं रखा; और इस सिलसिलेमें जितने पहलू गुफ़्तगूके निकल सकते हैं, या जिस क़दर तल्ख़ोशीरीं तजरबात हासिल हो सकते हैं वह सबके सब किसी न किसी सूरतमें इनके कलाममें पाये जाते हैं।"[2] इनका प्रेम-पात्र भी जुरअत-ओ-इंशाके माशूक़की तरह बाज़ारी है। लेकिन इनका प्रेम बहुत बुलन्द है, और उसी ऊँचाईतक माशूक़को भी ले जाना चाहते हैं। इनकी मोहब्बत अगर ज़रा बलन्द और हो जाती तो फिर आज यह जुस्तजू न होती कि उर्दू-शायरीमें दूसरा 'मीर' कौन हो सकता है।

मोमिनके कलामको समझने और उसका उचित मूल्य आँकनेके लिए पाठकोंके लिए यह आवश्यक है कि वह तग़ज़्ज़ुल और मामलाबन्दीका अन्तर अच्छी तरह ध्यानमें रखें। मामलाबन्दीकी परिभाषा है—आशिक़ और माशूक़के प्रेम-व्यवहारका कवितामें नग्न, किन्तु अश्लीलताके दोषसे मुक्त दिग्दर्शन। इसका प्रारंभ फ़ारसी शायरोंसे हुआ। भारतमें इसका श्रीगणेश उर्फ़ी और नज़ीरीने किया। जहाँगीरका रंगीन शासनकाल था, तबियतें आशिक़ाना थीं, देशमें चैनकी बंसी बजती थी। इसलिए यह रंग क्यों न क़बूल होता। यूँ भी मामलाबन्दीकी बातें सर्वप्रिय होती हैं। जैसे आजकल फ़िल्मी गीतोंके आगे कलापूर्ण गानोंका कोई स्थान

---

[1]इन्तक़ादियात, भाग १, पृ० ३२

उस्तादे शहसे हो मुझे परख़ाशका ख़याल ।
यह ताब, यह मजाल, यह ताक़त नहीं मुझे ॥

यह ऐसी तारीज़ (ऐतराज़, छेड़) अपने अन्दर पिन्हाँ (छुपाये) रखता है कि इससे ज़्यादा इज़हारे रश्क (ईर्ष्या-मनोभाव) की शदीद मिसाल शायद ही कोई और मिल सके ।"[1] ग़ालिबको जब तनख़्वाह मिलनेमें देर हुई तो अपने फ़ाक़ोंतकका ज़िक्र करनेमें संकोच नहीं हुआ । बक़ौल किसीके—"ग़ालिब उम्रभर न सिर्फ़ उमराये इसलाम बल्कि अंगरेज़ हुक्कामकी चापलूसीको तुर्रये इम्तयाज़ (सन्मानकी कलग़ी) समझते रहे ।"[2]

मोमिन न किसीके दरबारमें जाते थे, न किसीकी ख़ुशामद या प्रशंसामें कुछ लिखते थे । चापलूसी, ख़ुशामद और भिक्षुक मनोवृत्तिको पाप[3] समझते थे । वे जन्मतः स्वाभिमानी, स्वतंत्र और स्वच्छन्द प्रकृति के मनुष्य थे । अतः न उन्होंने दरबारी प्रतिष्ठाको कभी आदर दिया और न शायरीमें किसीका अनुकरण करना उचित समझा ।[4] स्वयं उन्होंने अपना जुदागाना रंग अख़्तियार किया ।

मोमिनके दीवानमें २१९ ग़ज़लें हैं । ग़ज़ल ही उनकी शायरीकी विशेषता है । ये न तसव्वुफ़को जगह देते हैं, न फ़लसफ़ेके फेरमें पड़ते हैं । अपितु जो ग़ज़लका असली मौज़ू (वास्तविक ध्येय या अर्थ) इन्सानी

---

[1] इन्तक़ादियात, भाग १, पृ० २४ ।

[2] दीवाने मोमिन, भूमिका, पृ० ३४ ।

[3] तुलसी कर पै कर करो, कर-तर कर न करो ।
जा दिन कर-तर कर करो, ता दिन मरन करो ॥

[4] लीक-लीक गाड़ी चले, लीकहि चले कपूत ।
लीक छोड़ तीनों चलें—शायर, सिंह, सपूत ॥

आग अश्के गरमको लगे जी क्या ही जल गया।
आंसू जो उसने पूँछे शब और हाथ जल गया॥

मेरी प्रेयसीके हाथ इतने कोमल हैं कि उसने रातको मेरे गरम आँसू पूँछे तो उसके हाथमें छाले पड़ गये। इस घटनासे मेरा हृदय दग्ध हो गया है। काश उसके हाथमें छाले पड़नेकी अपेक्षा मेरे आँसुओंको ही आग लग जाती।

फोड़ा था दिल न था, यह मुए पर ख़लल गया।
जब ठेस साँसकी लगी, दम ही निकल गया॥

जिसे हम जीवनभर दिल समझते रहे, मरनेपर मालूम हुआ कि वह दिल नहीं, फोड़ा था। दिल होता तो बड़ी-से-बड़ी आपत्तिमें भी स्थिर और दृढ़ रहता। यह तो सचमुच फोड़ा था जो साँसकी एक ठेस भी बर्दाश्त न कर सका। उसकी एक चोटमें ही दम निकल गया।

क्या रोऊँ? ख़ैरा चश्मिये बख़्ते सियाहको।
वाँ शग़्ले सुरमा है अभी, याँ नील ढल गया॥

अब प्रेयसीके चंचल नेत्रोंके कारण मैं अपने काले दिनों (दुर्दिनों) का रोना क्या रोऊँ? मेरी आँखें निस्तेज हो चली हैं, मृत्युके समीप पहुँच रहा हूँ और वह अभी आँखोंमें सुर्मा लगा रही है। किसीकी आँखें बन्द हो रही हैं और किसीकी आँखोंपर सान चढ़ाई जा रही है।

उस कूचेकी हवा थी कि मेरी ही आह थी।
कोई तो दिलकी आग पै पंखा-सा झल गया॥

न जाऊँगा कभी जन्नतको मैं न जाऊँगा।
अगर न होवेगा नक़्शा तुम्हारे घरका-सा॥

शायरी देखिये कि अगर एक तरफ़ पस्तीसे इस क़दर क़रीब है कि अदना-सी लग़जिश भी उसे बाज़ारी शुअ़राकी सफ़में मिला सकती है तो दूसरी तरफ़ बुलन्दीका यह आलम है कि ग़ालिबकी इन्तहाई परवाज़ भी उसकी फ़िज़ातक नहीं पहुँचती। लेकिन यह सब उसी हद्दूदके अन्दर जिनको हद्दूदेतग़ज़्जुल कहा जाता है।"[1]

सदाचार और कला एक नहीं हैं। दोनों भिन्न-भिन्न अस्तित्व रखते हैं। सुघड़ चित्रकारका बनाया हुआ किसी युवतीका नग्न चित्र भी कला-पूर्ण होता है, और फूहड़ चित्रकार राम-सीताका चित्र भी बिगाड़ देता है। कलापारखीके लिए न नग्न चित्र फेंक देने योग्य है, न राम-सीताका भौंड़ा चित्र सदाचरणका प्रतीक होनेके कारण संग्रहणीय। उसे तो दोनों चित्रोंको कलाकी कसौटीपर परखना है। सद् या असद् आचरणके झमेले-को नैतिक शास्त्रके पण्डित जानें। यही बात शेरकी है। आलोचकका काम केवल यह देखना है कि जो भाव शेरमें व्यक्त किया गया है, वह कला-पूर्ण तरीक़ेसे और सलीक़ेसे मौज़ूँ हुआ है कि नहीं। जनतापर उस शेरका क्या प्रभाव पड़ता है, इससे आलोचकको कोई प्रयोजन नहीं। यदि शेरमें कला है और चमत्कार है तो वह प्रशंसनीय है। 'मोमिन'की शायरी-का मूल्य इसी दृष्टिकोणसे आँकना चाहिए। कला-कलाके लिए है यह उनकी शायरीका लक्ष्य था। उन्होंने अपने हृदयगत भावोंको बेमलाल और बेहिचक कहा है। तसव्वुफ़ या फ़लसफ़ेकी आड़ नहीं ली। सौन्दर्य और प्रेमका नग्न चित्र खींचा है। परन्तु इस चातुर्यके साथ कि न कहीं कलापर आँच आई न कहीं ओछी और कमीनी हरकतें ही पैदा हुई। जहाँतक कलाका सम्बन्ध है, "मोमिन असलूबेअदा और क़ुदरतेबयानका बादशाह है। वह मामूलीसे मामूली बातका इज़हार करता है, तो भी इस लुत्फ़के साथ कि उसमें जिद्दत (नवीनता) पैदा हो जाती है। और

---

[1] इन्तक़ादयात, भाग १, पृ० २७

मोमिन नामाबरके क़त्लका इलज़ाम भी माशूक़पर थोपना चाहते हैं, परन्तु किस ख़ूबीसे !

महव मुझ-सा दमेनज़्ज़ारए जानाँ होगा ।
आयना, आयना देखेगा तो हैराँ होगा ॥

जिस प्रकार मैं उसके रूपको देखकर सुध-बुध भूल बैठा हूँ, महव हो गया हूँ, उसी प्रकार यदि आयना (दर्पण) भी उस प्रेयसीके प्रतिबिम्ब (आय़ने)को देखेगा तो हैरान हो जायगा ।

ख़्वाहिशेमर्ग हो, इतना न सताना वर्ना,
दिलमें फिर तेरे सिवा और भी अरमाँ होगा ॥

मोमिन प्रेयसीसे कहते हैं कि हमें इतना अधिक न सता कि हम जीनेसे मरना अच्छा समझें । अभी तो हम केवल तुझीको चाहते हैं, फिर मृत्युको भी चाहने लगेंगे, और तेरे सिवा हम किसी औरको चाहें, यह तेरे लिए उपयुक्त नहीं ।

दीदयेमुन्तज़िर ! आता नहीं शायद तुझतक ।
कि मेरे ख़्वाबका भी कोई निगहबाँ होगा ॥

प्रतीक्षित नेत्रो ! तुम्हारे पास जो स्वप्न नहीं आता है, शायद इसका कारण ये है कि प्रेयसीके समान उसके स्वप्न भी दरबानकी चौकसीमें हैं ।

क्योंकि उम्मीदे वफ़ासे हो तसल्ली दिलको ।
फ़िक्र है यह कि वह वादेसे पशेमाँ होगा ॥

प्रेयसीकी स्वीकृतिसे तसल्ली होनेके बजाय मेरी परेशानियाँ और भी बढ़ गई हैं; क्योंकि मैं जानता हूँ कि इस स्वीकृतिसे उसे पछतावा होगा। अतः मैं नहीं चाहता कि मेरे कारण उसे किसी प्रकारकी चिन्ता या आकुलता हो ।

नहीं। मामलाबन्दीके शायर जब जल्द ख्याति प्राप्त करने लगे, तो औरोंको भी इस तरफ़ अग्रसर होनेका प्रोत्साहन मिला। शाही दरबारके वातावरणसे इस प्रकारकी शायरीने और ज़ोर पकड़ा। अवधमें शाही-रंगरलियाँ बेहद बढ़ी-चढ़ी थीं। इसलिए वहाँकी शायरीमें यह रंग और भी गहरा था। वहाँ मुसहफ़ी जैसे शायरोंकी क़दर न थी। वहाँ हर चीज़ हँसती और थिरकती दरकार थी। रोने-बिसूरनेवालोंका काम न था। वहाँ 'जुरअत' जैसे मामलाबन्द शायरोंकी तूती बोलती थी।

'मोमिन' रिन्द और आशिक़ मिज़ाज थे, फिर भी उनका वातावरण मामलाबन्दीका न था। 'मीर' और 'दर्द'की कवितामें दिल्लीवाले रँगे हुए थे। इल्म और तसव्वुफ़का चर्चा रहता था। इसलिए पढ़े-लिखे हल्क़ोंमें ख़ालिस मामलाबन्दीके लिए विशेष आदर न था। मामलाबन्द शायर दुशालेमें लपेटकर चोट कर सकता था। ताकि अपनी ज़बानका रंग और मनोभाव भी व्यक्त हो जाय और वातावरणकी गम्भीरता और परिपाटी भी बनी रहे। यही सावधानी कविताको मामलाबन्दीसे उठाकर तग़ज़्ज़ुल बना देती है। या यूँ कहिये कि अश्लीलता और तग़ज़्ज़ुलकी सीमापर मामलाबन्द शायर अपनी कलाबाज़ियाँ दिखाता है। मोमिन भी सीमापर खड़े हैं, परन्तु उनकी रचनाओंका झुकाव अश्लीलताकी ओर नहीं है, तग़ज़्ज़ुलकी ओर है। इसलिए वह आलोचकोंके दोषारोपणसे बच गये हैं। सीमासे थोड़ा इधर रहते तो वह 'मीर'से टक्कर लेते। और तनिक आगे बढ़ जाते तो जुरअतके रंगमें डूब जाते।

करेगा, मगर उसने बातें की। इधर उसका अहद टूटा, उधर हमारा दिल भी टूट गया! मालूम होता है हमारा दिल भी माशूक़के अहदकी तरह बोदा और कमज़ोर था।

आँख न लगनेसे सब अहबाबने।
आँखके लग जानेका चर्चा किया॥

मर गये उसके लबेजाँ बख़्शपर।
हमने इलाज आप ही अपना किया॥

बुझ गई इक आहमें शमयेहयात।
मुझको दमेसर्दने ठण्डा किया॥

उन-से परीवशको न देखे कोई?
मुझको मिरी शर्मने रुसवा किया॥

आशिक़ने शर्मकी वजहसे माशूक़की ओर नजर नहीं की। मगर इसी शर्मने सब भेद खोल दिया। लोग समझ गये कि कुछ न कुछ बात ज़रूर है। वर्ना ऐसा कौन है जो ऐसे परीवश (अप्संरा)को न देखे।

जौरका शिकवा न करूँ ज़ुल्म है।
राज़ मेरा सब्रने अफ़शाँ किया॥

मैंने माशूक़के जौरों (अत्याचारों)को इसलिए चुपचाप सहन कर लिया कि किसीको इस चाहतका पता न लगे। परन्तु उल्टा और भेद खुल गया, और लोग कहने लगे कि ताज्जुब है कि यह इतने ज़ुल्मोसितमपर उफ़ भी नहीं करता, कुछ ज़रूर दालमें काला है।

रहमेफ़लक और मेरे हालपर?
तूने करम ऐ सितमआरा! किया॥

मेरी दयनीय स्थितिपर अब फ़लक (आसमान) जैसे बेरहमको भी रहम आता है। अगर तैंने मेरी यह स्थिति न की होती तो आसमानको

करे न ख़ाना ख़राबी तिरी नदामते जौर।
कि आवेशर्ममें है जोश चश्मेतर का-सा॥

अत्याचारोंके प्रायश्चितस्वरूप प्रेयसीको रोता देखकर मोमिन भयभीत हो उठते हैं कि उसके आँसुओंमें कहीं मेरा घर ही नष्ट न हो जाय। क्योंकि प्रेयसीके शर्मीले आँसुओंमें वही शक्ति है जो आशिक़के व्यथापीड़ित आँसुओंमें होती है।

यह जोशेयास तो देखो कि अपने क़त्लके वक़्त।
दुआए वस्ल न की, वक़्त था असर का-सा॥

नियम है कि जब मनुष्य वध किया जाता है या फाँसीपर लटकाया जाता है, तब जीवनके अतिरिक्त उसे अभिलषित वस्तु माँगनेको कहा जाता है, और सम्भवतः उसकी अभिलाषा पूरी भी की जाती है। अतः मोमिन चाहते तो क़त्लके वक्त विसालकी दुआ करते, और जो साध कभी पूरी न हुई, वह मरते-मरते पूरी कर लेते; परन्तु उनपर तो जोशेयास (निराशाओंका प्रभाव) इतना अधिक था कि कुछ भी माँगना उचित नहीं समझा।

यह नातवाँ हूँ कि हूँ और नज़र नहीं आता।
मेरा भी हाल हुआ, तेरी ही कमरका-सा॥

अल्लाहोअकबर ! नातवानी (निर्बलता) इतनी बढ़ गई है कि मैं भी प्रेयसीकी कमरकी तरह नजर नहीं आता।

ख़बर नहीं कि उसे क्या हुआ ? पर इस दरपर—
निशानेपा नज़र आता है नामाबरका-सा॥

मेरे पत्र-वाहकका क्या हुआ, यह तो मालूम नहीं, परन्तु उसके पाँवके-से निशान प्रेयसीके दरपर अंकित हैं। अतः वह वहाँतक गया तो ज़रूर, मगर लौटने दिया या मार डाला, यह नहीं कहा जा सकता।

प्रथाको दियत या खूँवहा कहते हैं। मोमिन अपने क़ातिलको ही खूँवहामें माँगकर अपना वना लेना चाहते हैं। काश अत्याचारियोंको अपना वनानेकी लालसा सबकी जागृत हो उठे।

दमेहिसाब रहा रोजेहश्र यह ही ज़िक्र।
हमारे इश्क़का चर्चा कहाँ-कहाँ न हुआ॥
उमीदे वादए दीदारे हश्रपर 'मोमिन'।
तू बेमजा था कि हसरतकशे बुताँ न हुआ॥

मोमिन इस क़दर बद मज़ाक़ था कि उम्मीदे वादये दीदारे हश्र (हश्रमें सूरत दिखानेके वायदेके भरोसे) पर सब्र किये वैठा रहा और सांसारिक प्रेयसीकी अभिलाषा न की। नक़दको छोड़कर उधारकी ओर ताकता रहा।

कुछ अपने ही नसीबकी ख़ूबी थी, बादेमर्ग
हंगामये मुहब्बतेअग़ियार कम हुआ॥

मेरे जीवनमें माशूक़ अग़ियार (प्रतिद्वन्द्वी) को वहुत चाहता था। मैंने ईर्ष्यावश जान दे दी तो अब हंगामयेमुहब्वते अग़ियार (प्रतिद्वन्द्वीके प्रति प्रेमका अत्याधिक आवेग) कम हो गया है। यह अपना ही नसीव खोटा था। यदि जीतेजी यह प्रेम कम हुआ होता तो मैं क्यों व्यर्थ जान देता।

माशूक़से भी हमने निभाई बराबरी।
वाँ लुत्फ़ कम हुआ तो यहाँ प्यार कम हुआ॥

यह बराबरका दावा मोमिनका अछूता खयाल है। वर्ना उर्दू शायरीमें मोमिनके समयतक आशिक़की क्या मजाल थी कि माशूक़के साथ वरावरी करे। वर्तमान युगमें जिगरने इस मजमूनको कई तरहसे बान्धा है। हफ़ीज़ने विल्कुल टक्करका शेर लिख दिया है, और जोश तथा इक़बालने तो माशूक़ क्या ख़ुदासे भी वरावरीकी टक्कर ली है।

दर्द है जाँके एवज़ हर रगोपैमें सारी।
चारागर! हम नहीं होनेके जो दरमाँ होगा ॥

चारागर (इलाज करनेवाले), तेरे इलाजसे दर्द तो जाता रहेगा, मगर हम नहीं रहेंगे (यानी मर जाएँगे)। क्योंकि यह दर्द तो जानकी एवज़ीमें हर रग व रेशेमें सारी (मौजूद) है। जान तो पहले ही निकल चुकी है। उसके एवज़ जो रहा-सहा दर्द बाक़ी है, तैंने उसे भी मिटानेका उपाय किया तो हम भी मिट जाएँगे। न मर्ज़ रहेगा न मरीज़।

शूमिये बख़्त तो है चैन ले ऐ वहशतेदिल!
देख ज़िन्दाँ ही कोई दिनमें बयाबाँ होगा ॥

दिलकी वहशत (हृदय-उन्माद) ज़िन्दाँ (कारावास)से घबराकर बयाबानोंमें चलनेको उभारती है। मोमिन उसे उतावली करनेसे रोकते हुए कहते हैं "अगर मेरी सब्ज़क़दमी सलामत है तो यह कारावास ही उजड़कर बयावान हो जायगा।" बेशक, जहाँ-जहाँ पाँव पड़ें सन्तोंके तहाँ-तहाँ चौड़ चपट हो जाय।

निसबते ऐशसे हूँ नज़अ़में गिरयाँ, यानी—
है यह रोना कि दहन गोरका ख़न्दाँ होगा ॥

मोमिन कष्टोंके इतने आदी हो गये हैं कि उन्हें तनिक भी ख़ुशी पसन्द नहीं। मरनेके बाद जो गोर (समाधि) बनेगी, उसका प्रारम्भमें मुँह चौड़ा होगा। मोमिन उस खुले मुँहको हँसनेसे उपमा देते हैं और कहते हैं कि मैं नज़अ़में (मृत्युके वक़्त) इसलिए गिरयाँ (रोता) हूँ कि मैं नहीं चाहता कि मेरी गोर भी हँसे। जब जीवन रोते-बिलखते गुज़रा तो मरनेपर मेरी क़ब्र भी क्यों हँसे?

बात करनेमें रक़ीबोंसे अभी टूट गया।
दिल भी शायद उसी बद अहदका पैमाँ होगा ॥

माशूक़ने अह्द (वायदा) किया था कि वह रक़ीबोंसे बात नहीं

है ? किसीने ठीक ही कहा है वहमकी दवा लुक़मानके पास भी नहीं।

जब जानते तासीर कि दुश्मन भी वहाँसे।
अपनी तरह ऐ गर्दिशे ऐय्याम ! निकलता॥

हरएकसे उस बज़्ममें शब पूछते थे नाम !
था लुत्फ़ जो कोई मिरा हमनाम निकलता॥

थी नौहाज़नी दिलके जनाज़ेपै ज़रूरी।
शायद कि वोह घबराके सरेबाम निकलता॥
काँटा-सा खटकता है कलेजेमें ग़मेहिज्र।
यह ख़ार नहीं दिलसे गुलअन्दाम ! निकलता॥
हूरें नहीं मोमिनके नसीबोंमें, जो होतीं।
बुतख़ाने ही से क्यों यह बदनाम निकलता॥

वस्लकी शब शामसे मैं सो गया।
जागना हिजराँका बला हो गया॥
आइना जल्दीसे पटक दो कहीं।
दिल ही नहीं, हाथसे देखो गया॥
साथ न चलनेका बहाना तो देख।
आके मिरी नाशपै वोह रो गया॥

नासह ! यह गिला क्या है कि मैं कुछ नहीं कहता।
तू कब मेरी सुनता है ? कि मैं कुछ नहीं कहता॥
ऐ चारागरो क़ाबिले दरमाँ नहीं यह दर्द !
वरना मुझे सौदा है ? कि मैं कुछ नहीं कहता॥

रात किस-किस तरह कहा, न रहा।
न रहा, पर वोह महलक़ा न रहा॥

सहृदयता मुझे प्राप्त न होती। इसलिए ऐ सितमआरा (अत्याचारी माशूक़) तेरा यह सितम भी तेरी महर्बानी ही है।

दावये तकलीफ़से जल्लादने।
रोज़े जज़ा क़त्ल फिर अपना किया॥

आशिक़ने क़यामतमें माशूक़पर दावा किया कि इसने हमको क़त्ल करके तकलीफ़ पहुँचाई। यह दावा सुनते ही माशूक़ने फिर उसे क़त्ल कर दिया ताकि उसे पिछले कष्टोंका अहसास (संज्ञा) न रहे।

मुए न इश्क़में जबतक वोह महर्बां न हुआ।
बलाएजाँ है वोह दिल जो बलाएजाँ न हुआ॥

इश्क़में जबतक हम न मरे, दोस्त महर्बान नहीं हुआ। वह दिल बलाएजान (जानके लिये मुसीबत) है जो बलाएजान (बलि-न्योछावर) नहीं होता। यानी वह जीवन किस कामका जो किसीपर निछावर नहीं होता! ऐसे जीवनको ढोते फिरना बला है।

दियतमें रोज़े जज़ा ले रहेंगे क़ातिलको।
हमारा जानके जानेमें भी ज़ियाँ न हुआ॥

हमें माशूक़ने क़त्ल कर दिया, इससे हमें कुछ नुक़सान (ज़ियाँ) नहीं हुआ! रोज़ेजज़ा (क़यामतके दिन) दियत (ख़ूंबहा) में हम माशूक़-को ही माँग लेंगे। यानी जो जीतेजी अपना न हुआ, उसे मरनेके बाद प्राप्त कर लेंगे। मुसलमानी मुल्कोंमें पहले यह रिवाज था कि क़त्ल किये गये इन्सानके वारिसोंको क़ातिलसे धन-सम्पत्ति आदि उनकी इच्छानुसार दिलवा दी जाती थी। क्योंकि क़ातिलको प्राणदण्ड देनेसे मक़तूल (मारा गया प्राणी) तो जीवित हो नहीं सकता, न उसके वारिसोंको ही कुछ लाभ पहुँचता है, और क़ातिलकी जान और जाती है। इसीलिए न्याया-धीश क़ातिलसे अधिक-से-अधिक क्षतिकी पूर्तिस्वरूप दिलवाते थे। इसी

या तो दम देता था वोह या नामाबर बहकाय था।
थे ग़लत पैग़ाम सारे कौन यांतक आय था॥
सुनके मेरी मर्ग बोले "मर गया अच्छा हुआ।
क्या बुरा लगता था जिस दम सामने आजाय था"॥

न काँटोंपर कोई यूँ लोटे जूँ मैं बिस्तरे गुलपर।
तेरे बिन करवटें शब ऐ सनमअन्दाम! लेता था॥
मैं उसकी बज़्मेमयमें जहर पी क्योंकर न मर जाता।
कि मेरे सामने उस लबके बोसे जाम लेता था॥
उस लबेनाज़ुकको बर्गेगुलसे देते हैं मिसाल।
होंट बर्गेलाल थे और नील दाग़े लाला था॥

अपने लबेनाज़ुक (कोमल ओठ) की मिसाल लालाफूलसे देते सुनकर इस क़दर माशूक़को बुरा मालूम हुआ कि मारे ग़ुस्सेके उसके ओठ लाला फूलकी तरह लाल हो गये और, ग़ुस्सेमें ओठ चबानेसे दाग़ेलालाकी तरह नील पड़ गया। इस प्रकार उक्त उपमा सही चरितार्थ हो गई। माशूक़का सौन्दर्य्य क्रोधमें बिगड़ता नहीं, और बढ़ता है।

मैंने तुमको दिल दिया, तुमने मुझे रुसवा किया।
मैंने तुमसे क्या किया और तुमने मुझसे क्या किया॥
सरसे शोले उठते हैं आँखोंसे दरिया जारी है।
शमअ़से यह किसने ज़िक्र उस महफ़िलआराका किया॥
रोइये क्या बख़्तेख़ुफ़्ताको कि आधीरातसे।
मैं यहाँ रोया किया और वह वहाँ सोया किया॥
आँख आशिक़की कोई फिरती है ऐ वादाखिलाफ़!
देखले मैं मरते-मरते सूएदर देखा किया॥
चारागर काबेमें, उसके आस्ताँसे ले गये।
एक भी मेरी न मानी लाख सर पटका किया॥

आये ग़ज़ालचश्म सदा मेरे दाममें।
सैयाद ही रहा मैं, गिरफ़्तार कम हुआ॥

मोमिनका माशूक़ ही सिर्फ़ हरजाई न था, वरन् वे ख़ुद भी हरजाई थे। वे भौरोंकी तरह लोलुप थे। किसी एकके हो जाना उनके स्वभावमें न था। फ़र्माते हैं—मेरे दाम (जाल) में सदा ग़ज़ाले चश्म (मृगनयनी) फँसे। मैं स्वयं सैयाद रहा, यानी हसीनोंको फाँसता रहा, स्वयं गिरफ़्तार बहुत कम हुआ। मोमिनका माशूक़ भी बाज़ारी है और उनका इश्क़ भी बाज़ारी! गोया कि जैसी गन्दी देवी वैसे ऊत पुजारी

नाकामियोंकी काहिशे बेहदका क्या इलाज।
बोसा दिया तो ज़ौक़े लबेयार कम हुआ॥

जिनका रोना-झींकना स्वभाव है, उनकी कितनी ही अभिलाषाएँ पूरी हो जाएँ; सदैव रोते-बिसूरते रहेंगे। मोमिन भी अपनी हदसे ज़्यादा नाकामयाबियोंकी वजहसे नीरस हो गये हैं। उन्हें अब किसी बातमें लुत्फ़ नहीं आता। यहाँ तक कि ज़िन्दगीभरकी साध पूरी करनेको माशूक़ने बोसा भी दिया तो भी उन्हें कुछ आनन्द न हुआ! उल्टा उनका ज़ौक़े लबेयार (माशूक़के चुम्बनका चाव) कम हो गया। इस दुर्भाग्यका क्या इलाज?

सब ताबः फ़ित्ना चौंक पड़े तेरे अहदमें।
इक मेरा बख़्त था कि वोह बेदार कम हुआ॥

मैं वहमसे मरता हूँ, वहाँ रौबसे उसके
क़ासिदकी ज़बाँसे नहीं पैग़ाम निकलता॥

क़ासिद माशूक़के रौबसे मेरा सन्देश कहनेमें असमर्थ है, और मैं अपने वहमी स्वभावकी वजहसे शंकित हूँ कि कहीं वह स्वयं तो आशिक़ नहीं हो गया है। वर्ना दमबख़ुद खड़े रहनेकी वजह और क्या हो सकती

यह उज़्रे इम्तहाने जज़्बे दिल कैसा निकल आया ?
मैं इलज़ाम उसको देता था क़ुसूर अपना निकल आया ॥
किया ज़ंजीर मुझको चारागरने किन दिनोंमें जब ।
उदूकी क़ैदसे वोह शोख़े बेपरवा निकल आया ॥
हमारे ख़ूँबहाका ग़ैरसे दावा है क़ातिलको ।
यह बादे इनफ़साल अब और ही झगड़ा निकल आया ॥

माशूक़ने आशिक़को क़त्ल किया, यहाँ तक तो उचित था किन्तु उसका ग़ैरसे यह कहना कि तेरे उभारनेसे ही इसका क़त्ल किया गया, इसलिए इसका ख़ूँबहा (मृत्युदण्डके एवज़में मनमाँगी वस्तु) दे, ठीक नहीं; क्योंकि आशिक़ नहीं चाहता कि माशूक़ ग़ैरसे किसी तरहका भी व्यवहार रखे।

आशिक़ हुए हैं आप कहीं, गो उसीपै हों।
शब हालेग़ैर मुझसे ज्यादा ख़राब था ॥
बेपरदा ग़ैरसे न हुआ होगा शब, कि सुबह
आँखोंमें शर्म थी न नज़रमें हिजाब था ॥
क्या जी लगा है तज़करए यारमें, अबस
नासेहसे मुझको आजतलक इज्तनाब था ॥

किसपै मरते हो ? आप पूछते हैं।
मुझे फ़िक्रे जवाबने मारा ॥
यूँ कभी नौजवाँ न मरता मैं ।
तेरे अहदे शबाबने मारा ॥

देखलो शौक़े नातमाम मिरा ।
ग़ैर ले जाय है पयाम मिरा ॥

ग़ैर आकर क़रीबे ख़ाना रहा।
शौक़ अब तेरे आनेका न रहा॥

ग़ैर (प्रतिद्वन्द्वी) मेरे मकानके नज़दीक मकान लेकर रहने लगा है। अब तेरे आनेका चाव मुझे नहीं है क्योंकि मेरे यहाँ आयगा तो उसके यहाँ जानेका भी तुझे बहाना या अवसर मिल जायगा।

तेरे परदेने की यह परदादरी।
तेरे छुपते ही कुछ छुपा न रहा॥

तूने मुझसे परदा किया तो लोग ताड़ गये कि कुछ न कुछ बात ज़रूर है। वरना इससे इस क़दर हिजाब क्यों?

मुद्दआ ग़ैरसे कहा तो वोह।
समझे अब कुछ भी मुद्दआ न रहा॥

आदमीको जब खयाल होता है कि अब अभिलाषा पूरी न होगी, तब वह मनकी बात दुश्मनसे भी कह देता है। आशिक़ने मकरसे दिलका मुद्दआ रक़ीबसे कह दिया, ताकि वह या माशूक यह समझ ले कि अब इसका कोई स्वार्थ या मतलब नहीं है और फ़रेबमें आजायें।

जज्बये दिलको न छातीसे लगाऊँ क्योंकर।
आप वोह मेरे गले दौड़के इकबार लगा॥

इसी जज़बये दिलकी बदौलत माशूक़ मेरे गले लगा था, अतः मैं इसे सीनेसे लगाये हुए हूँ।

तू किसीका भी ख़रीदार नहीं, पर ज़ालिम!
सरफ़रोशोंका तेरे कूचेमें बाज़ार लगा॥

शबेग़म फ़ुरक़त हमें क्या-क्या मज़े दिखलाय था।
दम रुके था सीनेमें कम्बख़्त जी घबराय था॥

सख़्त कम्बख़्ती हुई यह भी नसीबोंका लिखा।
ग़ैरको ख़त नामाबरने बेख़बर दिखला दिया॥

दुश्नामेयार तबए हज़ींपर गिराँ नहीं।
ऐ हमनफ़स! नज़ाकते आवाज़ देखना॥

माशूक़की गालियाँ (दुश्मनामेयार) हमारे दिल (तबएहज़ीं) पर कुछ भी असर नहीं करती। हम तो उसकी आवाज़की नज़ाकतको देख रहे हैं। पारखी अवगुणोंमें भी गुण परख लेते हैं।

जूँ निकहतेगुल जुम्बिश है जीका निकल जाना।
ऐ बादेसबा मेरी करवट तो बदल जाना॥

निर्बलता इतनी बढ़ गई है कि तनिक भी हिलने (जुम्बिश) से प्राण निकलने जैसा कष्ट होता है। जैसे हवाकी हरकतसे बूएगुल (निकहते गुल) निकल जाती है, उसी तरह आशिक़के प्राण निकल जाते हैं। इसलिए मुझमें तो करवट बदलनेका साहस नहीं, ऐ बादेसबा! (प्रातः कालीन पवन) तूही मेरी करवट बदलनेका प्रयत्न कर।

किस दिन थी उसके दिलमें मुहब्बत जो अब नहीं।
सच है कि तू उदूसे ख़फ़ा बेसबब हुआ॥

आशिक़ने माशूक़से कहा कि तुम बेसबब उदूपर ख़फ़ा हुए। तुम इस वजहसे ख़फ़ा हुए कि उसके दिलमें तुम्हारे लिए मुहब्बत नहीं है, यह तो कोई नई बात नहीं। मुहब्बत तो उसे कभी थी ही नहीं, फिर आज ऐसी नई बात क्या हुई?

सीनेपै हाथ धरते ही कुछ दम पै बन गई।
लो जानका अज़ाब हुआ दिलको थामना॥

ले उड़ी लाशा हवा लाग़िर जबस तन हो गया।
ज़र्रए रेगेबयाबाँ अपना मदफ़न हो गया॥

नाकामियोंमें तुमने जो तशबीह मुझसे दी।
शीरींको दर्देतलख़िये फ़रहाद आगया॥
हम चारागरको यूँही पिन्हाएँगे बेड़ियाँ।
क़ाबूमें अपने गर वोह परीज़ाद आ गया॥

हम चारागरको इसलिए बेड़ियाँ पहनाएँगे कि वह ख़ुद दीवाना है, वरना वह हम आशिकोंका इलाज क्यों करता? दूसरा मतलब यह है कि जो चारागर हमें दीवाना समझता है, हम उसे अपने परीज़ाद माशूक़ (अप्सरा सी प्रेयसी) को दिखा देंगे तो वह ख़ुद-ब-ख़ुद दीवाना हो जायगा।

जब हो चुका यक़ीं कि नहीं ताक़ते विसाल।
दममें हमारे वह सितमईजाद आ गया॥
ज़िक्रे शराबोहूर कलामेख़ुदामें देख।
मोमिन मैं क्या कहूँ, मुझे क्या याद आ गया॥

वादये वसलतसे हो दिल शाद क्या?
तुमसे दुश्मनकी मुबारिकबाद क्या?
मैं असीर उसका जो है अपना असीर।
हम न समझे सैद क्या सैयाद क्या?

जो मेरी मुहब्बतमें क़ैद है मैं उसी क़ैदीका क़ैदी हूँ। इसके अतिरिक्त मैं कुछ नहीं जानता कि कौन सैयाद है और कौन सैद!

नशये उल्फ़तमें भूले यारको।
सच है, ऐसी बेख़ुदीमें याद क्या॥
जब मुझे रंजेदिलेआज़ारी न हो।
बेवफ़ा! फिर हासिले बेदाद क्या?

मैं तो दीवाना था, उसकी अक़्लको क्या हो गया ?
क़ैस कहता है मुझे, नासेहको सौदा हो गया ॥

होता है आहे सुबहसे दाग़ और शोलाज़न ।
कैसा चराग़ था यह कभी गुल न हो सका ॥

मय न उतरी गलेसे जो उस बिन ।
मुझको यारोंने पारसा जाना ॥
शिकवा करता है बेनियाज़ीका
तूने 'मोमिन' बुतोंको क्या जाना ॥

इस वुसअ़ते कलामसे जी तंग आ गया ।
नासेह ! तू मेरी जान न ले, दिल गया, गया ॥

कुछ आँख बन्द होते ही आँखें-सी खुल गईं ।
जी इक बलाएजान था, अच्छा हुआ गया ॥
आहेसहर हमारी फ़लकसे फिरी न हो ।
कैसी हवा चली यह कि जी सनसना गया ॥
आती नहीं बलाए शबेग़म निगाहमें ।
किस महरवशका जलवा नज़रमें समा गया ॥
मुझ ख़ानमाँ ख़राबका लिक्खा कि जानकर ।
वोह नामा ग़ैरका मेरे घरमें गिरा गया ॥

वोह हँसे सुनके नाला बुलबुलका ।
मुझे रोना है ख़न्दये गुलका ॥

माशूक़ इस क़दर बेदर्द है कि नालये बुलबुल सुनकर भी हँसता है । किसीको रोते देखकर भी मुस्कराता है, और मैं इस क़दर सहृदय हूँ कि फूलोंके मुसकरानेपर भी रो उठता हूँ; क्योंकि मैं उनके मुस्करानेका परिणाम जानता हूँ कि वे किसी बेरहम हाथोंसे तोड़ लिये जाएँगे, या मुर्झा-

तूने रुसवा किया मुझे, अबतक
कोई भी जानता था नाम मिरा ?

जवाबे ख़ूने नाहक़ मेरा ऐसा क्या दिया तूने।
कि ज़ालिम! रह गये मुँह लेके सब अहबाब अपना-सा ॥

बेख़ुद थे, ग़श थे, महव थे, दुनियाका ग़म न था।
जीना विसालमें भी तो मरनेसे कम न था ॥

दरबाँको आने देनेपै मेरे, न कीजे क़त्ल।
वरना कहेंगे सब कि यह कूचा हरम न था ॥

माशूक़के कूचेको हरम (कावे) की उपमा दी है, और कावेम हर कोई जा सकता है, और वहाँ किसीको क़त्ल नहीं किया जा सकता।

सुबहसे तारीफ़ है सब्रोसकूने ग़ैरकी।
किसने शब मुझको तड़पते पेशेदर दिखला दिया ?
मौतके सदक़े कि वोह बेपरदा आये लाशपर।
जो न देखा था तमाशा उम्रभर, दिखला दिया ॥
गो हसदसे हो पर अब भी है वही नासेहकी बात।
नाहक़ उस जानेजहाँ को इक नज़र दिखला दिया ॥

मोमिनने नासेहको क़ायल करनेकी ग़रज़से अपने माशूक़की सूरत दिखा दी। मगर यह ग़ज़ब हुआ कि वह उसको दिल दे बैठा, और मोमिन-को तर्केइश्क़की नसीहत करने लगा। पहले हमदर्दीकी नीयत से नसीहत करता था, अब स्वार्थ और ईर्ष्यावश नसीहत करता है।

नामउल्फ़तका न लूँगा जबतलक है दममें दम।
तूने चाहतका मज़ा ऐ फ़ित्नागर! दिखला दिया ॥

असर उसको ज़रा नहीं होता।
रंज राहत फ़िज़ा नहीं होता॥

यदि माशूक़ आशिक़के रंजसे प्रभावित होकर उसपर कृपा करने लगे तो उसके सारे रंजोग़म राहत (सुख-चैन) में बदल जाएँ, परन्तु ऐसे भाग्य कहाँ ?

तुम हमारे किसी तरह न हुए।
वर्ना दुनियामें क्या नहीं होता॥
हालेदिल यारको लिखूँ क्योंकर ?
हाथ दिलसे जुदा नहीं होता॥

इस हुस्नपै ख़िलवतमें जो हाल किया कम था।
क्या जानिये क्या करता गर तू मेरी जा होता॥
एक-एक अदा सौ-सौ देती है जवाब उसके।
क्योंकर लबे क़ासिदसे पैग़ाम अदा होता॥

पड़ा ही मरना बस अब तो हमको जो उसने ख़त पढ़के नामावरसे—
कहा कि "गर सच यह हाल होता तो दफ़्तर इतना रक़म न होता"॥

जो आप दरसे उठा न देते कहीं न करता मैं जिबहसाई।
अगर्चे यह सरनविश्तमें था, तुम्हारे सरकी क़सम न होता॥
विसालको हम तरस रहे थे, जो अब हुआ तो मज़ा न पाया।
उदूके मरनेकी जब ख़ुशी थी, कि उसको रंजोअलम न होता॥

ग़ैर निकला तेरे घरसे गई इस वहममें जान।
ग़ुल हुए चोरके उस कूचेमें गर आख़िरे शब॥
दी तसल्ली भी तो ऐसी कि तसल्ली न हुई।
ख़्वाबमें तो मेरे आये वोह मगर आख़िरे शब॥

हम इतने निर्बल हो गये कि हवाके झोंकेसे उड़ गये। हमारे शरीरका अणु-अणु बयाबानमें बिखर गया। जिसे रेगे बयाबान (चमकती रेत) समझा जाता है, वे सब हमारी क़ब्रें हैं क्योंकि वे हमारे ही अणु हैं।

बिन तेरे ऐ शोलारू! आतिशक़दा तन हो गया।
शमअ़क़दपर मेरे परवाना बिरहमन हो गया॥

तेरे वियोगमें मेरा बदन आतिश क़दा (आगकी भट्टी) हो गया। उसको जलता देख बिरहमन भी परवानेकी तरह मेरे प्रज्वलित शरीर (शमअ़क़द) पर न्यौछावर हो गया। मोमिनका ख़याल था कि ब्राह्मण अग्निकी पूजा करते हैं। इसी भावको बान्धनेके लिये यह सब बखेड़ा किया गया! यह ग़ज़ल लखनवी रंगमें है, जो मोमिनने शुरू-शुरूमें अख़्तियार किया था।

औरकी चाहतका तूने जब किया मुझपर ख़याल।
तब मुझे भी तुझसे वहमे रश्के दुश्मन हो गया॥

राज़ेनिहाँ ज़बाने अग़यार तक न पहुँचा।
क्या एक भी हमारा ख़त यारतक न पहुँचा॥

आशिक़का पत्र अगर माशूक़के पास पहुँचता तो वह ज़रूर प्रतिद्वन्द्वी (अग़ियार) से जिक्र करता। मेरा प्रेम (राज़ेनिहां) उसपर प्रकट नहीं है, इसीसे मालूम होता है कि मेरे पत्र माशूक़ तक न पहुँचकर कहीं बीचमें ही रह गये।

जज़्बेदिल उसे खींचके लाये तो कहाँ लाये?
जो ग़ैरका घर है वही मसकन है हमारा॥

रो दिया जो उसने मेरी लाग़रीको देखकर।
क़तरयेअश्केनदामत मुझको दरिया हो गया॥

दुश्मनी देखो कि ताउलफ़त न आजाये कहीं।
लेलिया मुँहपर दुपट्टा हाल मेरा देखकर॥

मोमिन! ख़ुदाके वास्ते ऐसा मकाँ न छोड़।
दोज़ख़में डाल ख़ुल्दको, ऐसा मकाँ न छोड़॥

याँ अपना उनकी चाहमें मरना यक़ीं हुआ।
वाँ और ही के चाहनेका है गुमाँ हनूज॥

ऐ जज़्बेदिल वोह शोख़ सितमगर तो इक तरफ़।
पैग़ाम लेके भी कोई आया नहीं हनूज़॥

नासेह रक़ीबसे है बदआमोज़तर कहीं।
पर मैंने तेरा हाल सुनाया नहीं हनूज़॥

नासेह कहीं ज्यादा रकीबसे बदआमोज (बुरी सलाह देनेवाला) है। ख़ैर गुज़री कि मैंने उसको तेरा हाल नहीं सुनाया, वर्ना शायद वह भी तुझे चाहने लगता। नासेहको यारका हाल सुनानेकी वजह यह हो सकती थी कि वोह मेरी आसक्तिका कारण समझकर नसीहत करनेसे बाज आये। मगर भूखी कुतियाको जलेबियोंकी पहरेदार बनाना उचित नहीं समझा।

डूबा जो कोई आह, क़िनारेपै आ गया।
तुग़याने बहरे इश्क़ है साहिलके आस-पास॥

जो दरियाए इश्क़को तैरकर किनारे पै आगया, समझ लो कि वहीं डूब गया। यानी इस दरियामें किनारेपर आना ही मृत्यु है। इसलिए कि और दरियाओंके बरख़िलाफ़ यहाँ तूफ़ानका तमाम जोर किनारे (साहिल) के आस-पास रहता है।

कर गिर पड़ेंगे। दूसरा भाव यह भी है कि वोह (फूल) बुलबुलका नाला सुनकर हँसे तो मुझे उनकी इस ढीट हँसीपर रोना आ गया।

लाश किसकी है, यह उदूसे न पूछ।
मैं हूँ कुश्ता[1] तेरे तजाहुल[2] का॥

चिलमनके बदले मुझको ज़मींपर गिरा दिया।
उस शोख़ बेहिजाबने परदा उठा दिया॥

उस शोख़ने परदा क्या उठाया, मुझे बेहोश कर दिया! चिलमन गिरानेके बदले मुझे गिरा दिया।

फ़र्माते हैं "विसाल है अंजामकारे इश्क़"।
क्या नासहें शफ़ीक़ने मुज़दा सुना दिया॥

नासेहके कथनका तो तात्पर्य यह था कि इश्क़का अंजाम विसालेक़ज़ा (मृत्यु-आलिंगन) है, परन्तु क़ज़ा कहाँ नहीं है, विसालमें ही उसका भाव निहित है। मोमिन उसके विसाल शब्दको यारका विसाल समझ कर खुश होते हैं, और कहते हैं—नासेह जैसे मनहूसने आज यह कैसा हर्ष समाचार (मुजदा) सुनाया। उससे तो ऐसी खुशखबरीकी कभी आशा न थी।

मिट्टी न दी मज़ारतलक आके उसपै भी।
कहते हैं लोग ख़ाकमें उसने मिला दिया॥

हमदम दिखा अब उसको किसी ढब कि रहम आये।
नासेहको मेरे हालेज़बूँने रुला दिया॥

वेसैरे दश्तोबादया लगने लगा है जी।
और उस ख़राब घरमें कि वीराँ नहीं रहा॥

---

[1] मिटा हुआ; [2] अनजाने अत्याचार

आता है बेकसों पै तो जल्लादको भी रहम ।
रोती है शमअ़ आप सरे कुश्तगाने शमअ़[1] ॥

वोह सोख़्ता जिगर हूँ कि पैमानओ सबू ।
बनते नहीं हैं ख़ाकसे मेरी, मगर चिराग़ ॥
उस महरवशके जलवेके क़ुर्बान क्यों न हूँ ।
परवानेको भी रात न आया नज़र चिराग़ ॥

क्या दुख न देखे इश्क़में क्या-क्या न पाये दाग़ ।
ज़ख़्मों पै ज़ख्म झेले हैं दाग़ों पै खाये दाग़ ॥

मजलिसमें ता न देख सकूँ यारकी तरफ़ ।
देखे है मुझको देखके अग़यारकी तरफ़ ॥

नहीं चाह मेरी अगर उसे, नहीं राह दिलमें तो किस लिए
मुझे रोते देख वोह रो दिया, मेरा हाल सुनके हुआ क़लक़ ॥

क़हर है, मौत है, क़ज़ा है, इश्क़ ।
सच तो यह है, बुरी बला है इश्क़ ॥
आफ़ते जाँ है कोई परदा नशीं ।
कि मेरे दिलमें आ छुपा है इश्क़ ॥
बुलहवस[2] और लाफ़ेजाँ बाज़ी[3] ।
खेल कैसा समझ लिया है इश्क़ ॥
वस्लमें अहतमालेशादीये मर्ग
चारागर ! दर्दे बे दवा है इश्क़ ॥

विरहके कष्ट सहते-सहते भी जान चली जाती है और विसाल

---

[1]शमापर न्योछावर होनेवाले परवानोंपर;
[2]विषयासक्त; [3]प्राण देनेकी शेख़ी ।

वहशतसे मेरी सारे अहब्बा[1] चले गये।
आना है गर तो आओ कि ख़ाली मकाँ है अब॥
कह दीं रक़ीबने तेरी बेइल्तफ़ातियाँ।
नासेह हमारे हालपै कुछ महर्बां है अब॥

तारे आँखें झपक रहे थे।
था बासपै कौन जलवागर रात॥

किस वास्ते ऐ शमा! ज़बाँ काटते हैं लोग।
क्या तूने भी की थी शबेहिजराँकी शिकायत॥

रोया करेंगे आप भी पहरों इसी तरह।
अटका कहीं जो आपका दिल भी मिरी तरह॥
ना ताब हिज्रमें है न आराम वस्लमें।
कम्बख़्त दिलको चैन नहीं है किसी तरह॥
लगती हैं गालियाँ भी तेरे मुँहसे क्या भली।
क़ुरबान तेरे, फिर मुझे कहले इसी तरह॥

ऐ सोज़िशेसीना मुझे वह सीना दिखा दे।
खोले तेरी गरमीसे वोह घबराके मगर बन्द॥

उसके कूचेसे चला आये है उड़ता काग़ज।
फाड़कर फेंक दिया क्या मेरे ख़तका काग़ज़॥

न क्योंकर बस मुआ जाऊँ कि याद आता है रह-रहकर।
वोह तेरा मुसकराना कुछ मुझे होंटोंमें कह-कहकर॥

---

[1]अहबाब, मित्र।

शब वोह जो सो रहे मेरे पास आके ख़्वाबमें।
जागे थे बख़्तेख़ुफ़्ता तमन्नाके ख़्वाबमें॥

क्या कीजिये कि ताक़ते नज़्ज़ारा ही नहीं।
जितने वे बेहिजाब हैं हम शर्मसार हैं॥

मैं अपनी चश्मेशौक़को इलज़ाम ख़ाक दूँ।
तेरी निगाहेशर्मसे क्या कुछ अयाँ नहीं॥
लगजाये शायद आँख कोई दम शबेफ़िराक़।
नासेह ही को ले आओ, गर अफ़साना ख़्वाँ नहीं॥

कहते हैं तुमको होश नहीं इज़्तराबमें।
सारे गिले तमाम हुए इक जवाबमें॥
हम कुछ तो बद थे जब न किया यारने पसन्द।
ऐ हसरत! इस क़दर ग़लती इन्तख़्वाबमें॥

ख़ार बिस्तरपै शबेहिज्र बिछाऊँ क्योंकर।
दिलमें तो है वह गुलअन्दाम अगर बरमें नहीं॥

कौन-से सोख़्ता अख़्तरका ख़याल आता है।
सुरमा जब देते हो तुम अश्क बहाते क्यों हो?
जिनसे मंज़ूरेवफ़ा है हो जफ़ा भी उनपर।
मुझसे कुछ काम नहीं है तो सताते क्यों हो॥
दम क़दमसे है लगा, जान निकल जायेगी।
देखो सीनेसे मेरे पाँव उठाते क्यों हो?
किसीके अबरूयेख़ुशख़मका कुश्ता हूँ ताज्जुब क्या।
जो मेरी ख़ाकसे तामीरे महराबे इबादत हो॥

कूदकर घरमें तो पहुँचा मैं तेरे, पर क्या करूँ?
दम निकल जाता था, खटकेसे बराबर रातको॥

ऐ क़ैस ! तेरे नालेकी ग़ैरतको क्या हुआ ?
लैलीने ज़ंग बाँधे हैं महमिलके आस-पास ॥

क़ैस (मजनूँ) के नालोंमें शक्ति होती तो लैलीको ज़ंग (घंटियाँ) वान्धनेकी क्यों आवश्यकता पड़ती ?

खा गया जी, ग़मेनिहाँ अफ़सोस ।
घुल गई ग़मके मारे जाँ अफ़सोस ॥
गुलेदाग़ेजुनूं खिले भी न थे ।
आ गई बाग़में ख़िज़ाँ अफ़सोस ॥

मुझसे मिल, वर्ना रक़ीबोंसे मैं सब कह दूँगा ।
दुश्मनी अबकी तेरी और वह पहला इख़लास ॥

मोमिनने भी क्या कमीना धमकी दी है ! तौबा !!

इफ़लास[1]से खाया किये ग़म सब्ज़[2]ख़तोंका ।
अफ़सोस कहीं जहर भी हमको न मिला क़र्ज ॥

मोमिनके यहां बाज़ारू औरतों और छोकरों दोनोंका इश्क़ पाया जाता है । जो उन दिनों एक रिवाज था ।

करते हो मुझसे राज़की बातें तुम इस तरह ।
गोया कि क़ौले महरमे[3] इसरार है ग़लत ॥

हाँ तू क्योंकर न करे तर्के बुताँ ऐ वाइज !
ऐसी हूरें तेरी क़िस्मतमें कहाँ ऐ वाइज !

---

[1]निर्धनतासे;
[2]कमसिन छोकरों का;
[3]भेदियेकी बात ।

हम समझते हैं आजमानेको।
उज्र कुछ चाहिए सतानेको॥
संगेदरसे तेरे निकाली आग।
हमने दुश्मनका घर जलानेको॥
रोजे महशर भी होश गर आया,
जाएँगे हम शराबख़ानेको॥

एजाजसे ज्यादा है सहर उसके नाज़का।
आँखें वोह कह रही हैं जो लबसे अदा न हो॥

फिर गई आँख मिस्ले क़िब्लानुमा।
जिस तरफ़ उस सनमने फेरा मुँह॥

समझ तो 'मोमिन' अगर नारवा है ख़ुद बीनी।
तो देखें काहेको परहेजगार आईना॥

दस्तेजुनूँने मेरा गिरेबाँ समझ लिया।
उलझा है उन-से शोख़के बन्देक़बाके साथ॥
कूचेसे अपने ग़ैरका मुँह है? मिटा सके,
आशिक़का सर लगा है तेरे नक़्शेपाके साथ॥
अल्लाहरी गुमरही बुतोबुतख़ाना छोड़कर।
'मोमिन' चला है काबेको एक पारसाके साथ॥

तौबा गुनाहे इश्क़से फ़रमाये है वाइज़।
यह भी कहीं दिल देके गुनहगार हुआ है॥

मैं अगर आपसे जाऊँ[1] तो क़रार आ जाये।
पर यह डरता हूँ कि ऐसा न हो यार आ जाये॥

---

[1]मर जाऊँ।

गर नहीं मिलते, मिलूँगा औरसे।
क्यों? मुझे क्या पासे रुसवाई नहीं?

देखते ही गुल, नज़रमें तेरा हँसना फिर गया।
आतिशेगुलने लगाई आग ऐ गुलरू! हमें॥
क्या असर था अश्के दुश्मनमें जो कूएयारसे।
मारे ग़ैरतके बहाकर ले चले आँसू हमें॥

हो गई घरमें ख़बर, है मनअ़ वाँ जाना हमें।
वोह भी रुसवा हो ख़ुदा, जिसने किया रुसवा हमें॥
हर सितम सैयादका क्या इल्तफ़ात आमेज़ था।
बन्द करनेको क़फ़समें दामसे छोड़ा हमें॥

मुझपै बादे इम्तहाँ भी जौर कम क्योंकर करें?
वोह सताएँ ग़ैरको ऐसा सितम क्योंकर करें?

क्या रहम खाके ग़ैरने दी थी दुआएवस्ल।
ज़ालिम! कहाँ वगर्ना असर मेरी आहमें॥
जाने दे चारागर! शबेहिजराँमें मत बुला।
वोह क्यों शरीक हो मेरे हालेतबाहमें॥
है दोस्ती तो जानिबेदुश्मन न देखना।
जादू भरा हुआ है तुम्हारी निगाहमें॥
मोमिनको सच है दौलते दुनिया ओ दीं नसीब।
शब बुतकदेमें गुज़रे है दिन ख़ानक़ाहमें॥

ता न पड़े ख़लल कहीं आपके ख़्वाबेनाज़में।
हम नहीं चाहते कभी अपनी शबेदराज़में॥

सूरत दिखाइये जो कभी जाके ख़्वाबमें।
बेदीद आँख खोल दे झुँझलाके ख़्वाबमें॥

यानी ख़ंजर आज़माईके मुस्तहक़ तो हम जाँनिसार थे न कि दुश्मन।

तावेनज्ज़ारा नहीं आयना क्या देखने दूँ।
और बन जाएँगे तसवीर जो हैराँ होंगे॥

जी ही मानिन्द निशाने कफ़ेपा बैठ गया।
पाँव क्या कूचेसे उस होशरुबाके उट्ठे॥

यह कौन कहे उससे की तर्केवफ़ा मैंने।
कर तू ही ज़रा नासेह पैग़ाम्बरी इतनी॥
सजदा न कहीं करना 'मोमिन' क़दमे बुतपर।
काबे ही में होती है बेहूदासरी इतनी॥

मुन्तज़िर किसके यह रहते हैं कि हम हर शबको।
ता-सहर शामसे उठ-उठके हैं घरमें फिरते॥
सुर्मगीं चश्मकी गर्दिश जो न भा जाती तो।
ख़ाक यों काहेको हम डालते सरमें फिरते॥

मुए हैं हसरतेदीदारमें ख़ूँ रोते-रोते हम।
अजब क्या है जो निकले सुर्ख़ नरगिस अपनी तुरवतकी॥

पाँव तुरबतपै मेरी देख, सम्भलकर रखना।
चूर है शीशयेदिल संगे सितमसे पिसकर॥

ऐशमें भी तो न जागे कभी तुम क्या जानो?
कि शबेग़म कोई किस तौर बसर करता है?
ज़िक्र कर बैठे बुराई ही से शायद मेरा।
अब वोह अग़ियारकी सुहबतसे हज़र करता है॥
क्या रुलाती है मुझे फ़िक्रे ख़याले दुश्मन।
वस्लमें जब वोह इधर हँसके नज़र करता है॥

याद दिलवाई तपिशने तेरी शोख़ी वस्लकी।
मर गये हम देखकर चीं हाये बिस्तर रातको ।।

वोह जो हममें तुममें क़रार था, तुम्हें याद हो कि न याद हो।
वही वादा यानी निबाहका, तुम्हें याद हो कि न याद हो ।।
वोह जो लुत्फ़ मुझपै थे पेश्तर वोह करम कि था मेरे हालपर।
मुझे सब है याद ज़रा-ज़रा, तुम्हें याद हो कि न याद हो ।।
वोह नये गिले, वोह शिकायतें, वोह मज़े-मज़ेकी हिकायतें।
वोह हरेक बातपै रूठना, तुम्हें याद हो कि न याद हो ।।
कभी बैठे सबमें जो रूबरू तो इशारतों ही से गुफ़्तगू।
वोह बयान शौक़का बरमला, तुम्हें याद हो कि न याद हो ।।
कोई बात ऐसी अगर हुई कि तुम्हारे जीको बुरी लगी।
तो बयाँसे पहले ही भूलना, तुम्हें याद हो कि न याद हो ।।
कभी हममें तुममें भी चाह थी, कभी हमसे तुमसे भी राह थी।
कभी हम भी तुम भी थे आश्ना, तुम्हें याद हो कि न याद हो ।।
सुनो ज़िक्र है कई साल का कि किया एक आपने वादा था।
सो निबाहनेका तो ज़िक्र क्या, तुम्हें याद हो कि न याद हो ।।
वोह बिगड़ना वस्लकी रातका वोह न मानना किसी बातका।
वोह नहीं-नहीं की हर आँ अदा, तुम्हें याद हो कि न याद हो ।।

है कुछ तो बात 'मोमिन' जो छा गई ख़मोशी।
किस बुतको दे दिया दिल क्यों बुत-से बन गये हो ?

ऐ नासहो ! आ ही गया, वोह फ़ित्नयेऐय्याम लो।
हमको तो कहते थे भला, अब तुम तो दिलको थाम लो ।।

गो आपने जवाब बुरा ही दिया, वले —
मुझसे बयाँ न कीजे उदूके पयामको ।।

नई कुछ नहीं अपनी जाँबाज़ियाँ।
यही खेल हमको लड़कपनसे है॥

थीं बदगुमानी अब उन्हें क्या इश्क़े हूरकी।
जो आके मरतेदम मुझे सूरत दिखा गये॥

ख़ुदरफ़्तगीमें चैन वोह पाया कि क्या कहूँ।
ग़ुरबत जो मुझसे पूछो तो बहतर वतनसे है॥

जाँ गई पर न गई जौरकशी।
बादे मुरदन भी दबाते हैं मुझे॥
अब यह सूरत है कि ऐ परदानशीं!
तुझ से अहबाब छुपाते हैं मुझे॥

मुझे चुप लगी मुद्दआ कहते-कहते।
रुके हैं वोह क्या जानें क्या कहते-कहते॥

हम हाल कहे जाएँगे सुनिये कि न सुनिये।
इतना ही तो याँ सुहबते नासेहका असर है॥
अब भी नहीं जाती तेरे आजानेकी उम्मीद।
गो फिर गई आँखें, पै निगह जानिबे दर है॥

है ऐतमाद मेरे बख़्तेख़ुफ़्तापर क्या-क्या?
वगर्ना ख़्वाब कहाँ चश्मे पासबाँके लिए॥

यह हालत है तो क्या हासिल बयाँसे।
कहूँ कुछ और कुछ निकले ज़बाँसे॥
मेरे घर आप यूँ जाते थे किस दिन।
उठाना मुद्दआ है आस्ताँसे॥

बाँधो अब चारागरो ! चिल्ले कि वह भी शायद ।
वस्ले दुश्मनके लिए सूए मजार आ जाये ॥
नाम बदबख़्तिये उश्शाक़ ख़िज़ाँ है बुलबुल !
तू अगर निकले चमनसे तो बहार आ जाये ॥

देते हो तसकीं मेरे आज़ारसे ।
दोस्ती तुमको नहीं अग़ियारसे ?
जाबजा नहरें हैं जारी, मैंने अश्क—
पूँछे होंगे दामने कोहसारसे ॥
इश्क़में नासेह भी हैं क्या मुद्दई ।
जुर्म साबित हो गया इंकारसे ॥
ज़िक्रे अश्क़े ग़ैरमें रंगीनियाँ ।
बूएख़ूँ आई तेरी गुफ़्तारसे ॥

तू ग़ैरके प्रेम-अश्रुओंका वर्णन ऐसी रंगीन भाषामें कर रहा है कि मेरा हृदय ईर्ष्यासे ख़ून हुआ जा रहा है । मुझे तेरी बातोंमें ख़ूनकी गन्ध आती है ।

है निगाहेलुत्फ़ दुश्मनपर तो बन्दा जाय है ।
यह सितम ऐ बेमुरव्वत ! किससे देखा जाय है ॥
हुस्नेरोज़ अफ़ज़ूँपै ग़ुर्रा किसलिए ऐ माहरू !
यूँ ही घटता जायगा जितना कि बढ़ता जाय है ॥
अब तो मर जाना भी मुश्किल है तेरे बीमारको ।
ज़ोफ़के बाइस कहाँ दुनियासे उट्ठा जाय है ॥
ग़ैरके हमराह वोह आता है मैं हैरान हूँ ।
किसके इस्तक़बालको जी मेरा तनसे जाय है ॥

क़त्ले दुश्मनका है इरादा उसे ।
यह सज़ा ? अपनी जाँनिसारीकी ॥

७८

ग़ालिब

[ई० स० १७९७ से १८६९ ई० तक]

मिर्ज़ा असदुल्लाख़ाँ 'ग़ालिब' उर्दूके अमर शायर हुए हैं। यूँ तो मीर तक़ी 'मीर'को उर्दूशायरीमें सर्वोच्च आसन प्राप्त है, वे 'ख़ुदाएसुख़न' जैसे महान् सम्बोधन द्वारा स्मरण किये जाते हैं। उन जैसी ज़वान और सोज़ोगुदाज़ आजतक किसीको मयस्सर न हुआ। वड़े-से-वड़े शायरकी प्रशंसामें इतना कह देना कि "तुम्हारे कलाममें मीर-जैसा रंग झलकता है" वहुत वड़ा प्रमाणपत्र है। अर्वाचीन युगके श्रेष्ठ शायरों—नासिख़, आतिश, ग़ालिव, ज़ौक़ आदिने भी मीरको सर्वश्रेष्ठ शायर तस्लीम किया है, परन्तु वर्तमान युगमें जो ख्याति ग़ालिवको मिलती जा रही है, वह मीरको भी नसीव नहीं है। कुछ आलोचक और सुख़नफ़हम वर्तमानमें भी ग़ालिवपर मीर और मोमिनको तरजीह देते हैं और अपने कथनकी पुष्टिमें तुलनात्मक शेर पेश करते हैं, परन्तु ईमानकी वात यही है कि 'ग़ालिव'के प्रशंसकोंकी संख्या वहुत अधिक है और उत्तरोत्तर तेज़ीसे वढ़ती जा रही है। आस्मानेशायरीपै ग़ालिव ही ग़ालिव चमक रहे हैं और मीर, दर्द, आतिश और मोमिन भी उनके समक्ष मान्द दिखाई देते हैं।

यूँ तो ग़ालिव अपने जीवनकालमें ही यथेष्ठ ख्याति प्राप्त कर चुके थे, परन्तु जो ख्याति-प्रतिष्ठा उन्हें वर्तमानयुगमें मिलती जा रही है, वोह उन्हें अपने जीवनमें प्राप्त न हो सकी। इसके मुख्य कारण दो थे—

(१) वह सामन्तवादी युग था। वादशाहों-नवावों द्वारा जो प्रशंसित होता था, वही जनताकी दृष्टिमें वड़ा आदमी समझा जाता था, और

यानी कहीं प्रतिद्वन्द्वीके तसव्वुरमें न हँस रहा हो, यही खटका आशिक़को लगा हुआ है।

सब्ज़ेवहशत असर न हो जाये।
कहीं सहरा भी घर न हो जाये॥

जंगलमें रहते-रहते कहीं उसे भी मैं घर समझ बैठा, तो मजबूरन मुझे कहीं और जाना होगा।

रश्के पैग़ाम है अनाकशे दिल।
नामाबर राहबर न हो जाये॥

मैंने नामाबरको दोस्तके पास भेज तो दिया है, मगर यह रश्क कि 'वह माशूक़को देखेगा, बात करेगा' मुझे मजबूर कर रहा है कि मैं भी स्वयं वहाँ जाऊँ, परन्तु परेशानी यह है कि मैं अब उसके पीछे जाता हूँ तो वह मेरा राहबर (मार्ग प्रदर्शक) हो जायगा।

कसरतेसजदासे वोह नक़्शेक़दम।
कहीं पामाले सर न हो जाये॥

गलीमें उसकी न फिर आते हम तो क्या करते?
तबीयत अपनी न जन्नतके दरमियान लगी॥

जीना उम्मीदे वस्लपै हिजरोंमें सहल था।
मरता हूँ ज़िन्दगानिये दुश्वारके लिए॥

दरबदर नासियह फ़रसाईसे क्या होता है।
वही होता है जो क़िस्मतमें लिखा होता है॥

मेरा ख़ून क्या बारे गरदन हुआ?
कि बेताब वोह दर्दे गरदनसे है॥

परन्तु मिर्ज़ापर इन बौछारोंका कोई असर न होता था। वे हँसकर टाल दिया करते थे, अथवा जवाबमें वे भी फ़र्मा दिया करते थे—

गर ख़ामुशीसे फ़ायदा अख़फ़ाए हाल है।
ख़ुश हूँ कि मेरी बात समझनी मुहाल है॥

न सताइशकी तमन्ना न सिलेकी परवा।
न सही गर मेरे अशआरमें मानी न सही॥

आसान कहनेकी करते हैं फ़र्माइश।
गोयम मुश्किल व गर नगोयम मुश्किल॥

ग़ालिबकी प्रारम्भिक क्लिष्ट और चक्करदार शायरीको देखकर ख़ुदाए सुख़न मीरने भविष्यवाणी की थी—"अगर इस लड़केको कोई कामिल उस्ताद मिल गया और उसने इसे सीधे रास्तेपर डाल दिया तो लाजवाब शायर बन जायगा; वर्ना मोहमिल (व्यर्थ, निरर्थक) बकने लगेगा।" मिर्ज़ाको उनके हितैषी मित्रोंने काफ़ी समझाया, परन्तु वे न माने और फ़ारसीमय क्लिष्ट कलाम लिखते ही रहे। आख़िर उनको समझ आई और उन्होंने आसान शेर कहनेका भी प्रयत्न किया। अपने दीवानको मुद्रण योग्य बनाते समय, दो तिहाई क्लिष्ट और गूढ़ शेर निकाल दिये। फिर भी उनके दीवानका एक तिहाई हिस्सा अब भी ऐसा है, जिसे उर्दू नहीं कहा जा सकता और उसका भाष्य भी खींचतानकर ही किया जाता है। मिर्ज़ाने बहुत कम अशआर उर्दूमें कहे और जो कहे उसमेंसे भी दो तिहाई शेर निकाल दिये। इसलिए उनका उर्दू कलाम बहुत संक्षिप्त है। लेकिन बुलन्द अशआरकी संख्या अन्य उस्तादोंसे कम नहीं, चाहे उनके दीवानोंकी संख्या कितनी ही क्यों न हो।

वह युग दरअस्ल मिर्ज़ाकी शायरीके अनुकूल न था। उस युगमें लखनऊ नासिख़के ख़ारिजी रंगमें सराबोर था। दिल्लीमें शाह नसीरका दम ग़नीमत समझा जाता था। यूँ सुख़नफ़हमोंकी कमी न थी। देहली

वोह आये हैं पशेमाँ लाशपर अब।
तुझे ऐ जिन्दगी लाऊँ कहाँसे॥
जहाँसे तंगतर जन्नत न हो जाय।
बहुत हसरत भरा जाता हूँ याँसे॥

१८ अप्रेल १९५०

६. उनपर न जानें कितनी नज़्में और वार्ताएँ लिखी जा चुकी हैं।
७. उनकी स्मृतिमें साहित्यक संस्थाएँ, पुस्तकालय, प्रकाशनगृह स्थापित हुए हैं।
८. भारतके रेडियो स्टेशनोंसे उनकी ग़ज़लें दैनिक प्रसारित की गई और आगे भी होती रहेंगी। भारतविभाजनके वाद यहाँ उतना नहीं, किन्तु पाकिस्तानमें वही सिल्सिला चालू है।
९. 'ग़ालिब-दिवस' प्रतिवर्ष बड़ी धूमधामसे मनाया जाता है[१]।

बज़्मे ख़वास बन्द हैं, बज़्मे अवाम बन्द हैं?
किसके सलाम बन्द हैं, किसके पयाम बन्द हैं?
मैकदे बन्द हैं न कुछ साग़िरो जाम बन्द हैं।
ग़ालिबे ख़स्ताके बग़ैर कौनसे काम बन्द हैं?
रोइये ज़ार-ज़ार क्या, कीजिए हाय-हाय क्यों?

इसमें अन्तिम दो मिसरे ग़ालिबके हैं और पहले तीन सबाके। अच्छी तज़मीन बड़ा मुश्किल फ़न है। इसमें असली शेर और लगाए हुए मिसरे एक जान हो जाते हैं, जोड़ कहीं मालूम नहीं होता।

सबाका ज़िक्र करते समय उन अनेक मुसलमान साहित्यिक मित्रोंकी स्मृति मनमें हलचल मचा देती है, जिन्हें भारत-विभाजनने अपना निवास-स्थान छोड़कर पाकस्तान जानेपर विवश किया। सबा आगरेके ख्याति-प्राप्त शायर थे और अब कराची चले गये हैं। बहुत अच्छे शेर कहते हैं। ग़ालिबका तक़रीबन सारा दीवान तज़मीन किया हुआ है। अच्छे शायर तो हैं ही, ज़राफ़त और दोस्तदारीमें भी अपना सानी नहीं रखते। आधी-आधी रात बीततक उनके मुँहसे उनका कलाम सुना है। अब उन महफ़िलों-को आँखें तरस गई हैं।

[१]'ग़ालिब-दिवसकी देखादेख अब—चकबस्त, हाली, इक़बाल, दर्द आदिके भी दिवस मनाये जाने लगे हैं।

यह सन्मान ज़ौक़को प्राप्त था। क्योंकि वे बादशाहके उस्ताद थे और बादशाहने उनको उस्ताद इसलिए चुना कि उसकी तबियतका रुझान ज़ौक़ जैसा था। उस सामन्तयुगकी बात जाने दीजिये, वर्तमानमें भी जिसको पत्रों और नेताओं द्वारा पब्लिसिटी मिलती है, वही बड़ा आदमी समझा जाता है और उस पब्लिसिटी पाये हुए बड़े आदमीके समक्ष 'वास्तवमें बड़े आदमी' गुमनाम पड़े रहते हैं।

(२) ग़ालिब फ़ारसीके उच्चकोटिके शायर थे और उर्दूमें शेर कहना अपने गौरवके अनुकूल नहीं समझते थे। मुँहका ज़ायक़ा बदलनेको कभी-कभी कहते भी थे तो वे इतने क्लिष्ट और फ़ारसीमय होते थे कि आम जनता तो दरकिनार अच्छे-अच्छे सुख़नफ़हम भी बग़लें झाँकने लगते थे। उनकी इस फ़ारसियत और चक्करदार शायरीसे तंग आकर लोग मज़हका तक उड़ाने लगे थे। एक बार मौ० क़ादिरअली रामपुरीने इस मनगढ़न्त शेरका आशय समझानेके लिए मिर्ज़ासे कहा—

> पहले तो रोग़नेगुल भैंसके अण्डेसे निकाल।
> फिर दवा जितनी है कुल भैंसके अण्डेसे निकाल॥

मिर्ज़ा समझ गये कि मेरे कलामका मज़ाक़ उड़ाया गया है। बाज़ शायर तो मुशायरोंमें भी चोट करनेसे बाज़ नहीं आते थे, और मिसरातरहपर ग़ज़ल पढ़ते हुए एक-दो शेर मिर्ज़ाकी मुश्किल पसन्दीपर भी कह दिया करते थे—

> कलामे मीर समझे और ज़बाने मीरज़ा समझे।
> मगर इनका कहा यह आप समझें या ख़ुदा समझे[1]॥

---

[1] यानी हम 'मीर' और मिर्ज़ा 'सौदा'का तो कलाम समझ लेते हैं लेकिन मिर्ज़ा ग़ालिबका कलाम नहीं समझ पाते। उनका कलाम किसीकी समझमें नहीं आ सकता। उसे वह ख़ुद समझें या ख़ुदा शायद समझे तो समझे।

वज़अ़में[१] इसको अगर समझिये क़ाफ़ेतिरयाक़[२] ।
रंगमें सब्ज़ये नौख़ेज़े मसीहा[३] कहिये ॥
सोमयेमें[४] उसे ठहराइये गर महरेनमाज़[५] ।
मयकदेमें उसे ख़िश्तेख़ुमेसुहबा[६] कहिये ॥
क्यों उसे क़ुफ़्लेदरेगंजे मुहब्बत[७] लिखिये ।
क्यों उसे नुक्तये परकारे तमन्ना[८] कहिये ॥
क्यों उसे गोहरेनायाब[९] तसव्वुर कीजे ।
क्यों उसे मरदमके दीदयेउनक़ा[१०] कहिये ॥
क्यों उसे तुकमये पैराहनेलैला[११] लिखिये ।
क्यों उसे नक़्शेपये नाक़येसलमा[१२] कहिये ॥
बन्दापरवरके कफ़ेदस्तको दिल कीजिये फ़र्ज़ ।
और इस चिकनी सुपारीको सवेदा[१३] कहिये ॥[१४]

---

[१]शकल, बनावटमें; [२]तिरयाक़ शब्दमें जैसे उर्दूमें क़ाफ़ लिखा जाता है;
[३]मसीहाकी भीगी मसोंका रंग; [४]मस्जिदमें;
[५]उपासना स्थान; [६]शराबके घड़ेकी ईंट;
[७]प्यारके ख़ज़ानेका ताला; [८]अभिलाषाका केन्द्र;
[९]अमूल्य मोती;
[१०]उनक़ा नामक परिन्देकी आँखकी पुतली। यह परिन्दा किसीने नहीं देखा, इसलिए चिकनी डलीके अप्राप्य और बहु-मूल्य होनेकी ओर संकेत है।
[११]लैलाकी क़मीज़की घुण्डी; [१२]सलमाकी साँडनीका पदचिह्न;
[१३]दिलके केन्द्रमें रहनेवाला काला बिन्दु;
[१४]अन्तमें पिछली सब उपमाओंको रद करके सवेदाकी उपमाको सर्वश्रेष्ठ मानते हैं।

लखनऊ, रामपुर, हैदराबाद आदि सभी स्थानोंमें मिर्ज़ाके क़द्रदाँ थे और उनका अत्यन्त आदर-सत्कार होता था। सुख़नशनास उनके कलामकी मुक्त हृदयसे दाद देते थे, परन्तु मिर्ज़ाको जो ख्याति आज प्राप्त है, वोह उनको जीवनकालमें मयस्सर नहीं हुई। बीसवीं सदीके प्रारम्भसे अंग्रेज़ी शिक्षाका जैसे-जैसे प्रचार बढ़ता गया, वैसे-वैसे कलामेग़ालिबकी ओर भी आकर्षण बढ़ता गया, क्योंकि कलामेग़ालिबमें जो दार्शनिकता और सूक्तियोंकी पुट मिलती है, वह उर्दूके अन्य शायरोंमें बहुत कम पाई जाती है।

उन्होंने हुस्नोइश्क़के परदेमें जीवनके अनेक पहलुओंपर प्रकाश डाला है, इसीसे उनके कलामका उत्तरोत्तर पठन-पाठन बढ़ता जा रहा है। यह रुचि यहाँतक बढ़ी है कि—

१. उनके कलामपर रंगीन चित्र बनाये गये हैं।
२. उनके दीवान सुन्दर-से-सुन्दर छापनेकी होड़ लगी हुई है। सौ रुपये तकके मूल्यका दीवान प्रकाशित हो चुका है। जर्मनीसे भी उनके दीवानका संस्करण प्रकाशित हुआ है।
३. कितने ही साहित्यकोंने उनके दीवानके भाष्य किये हैं और ऐसी-ऐसी कल्पनाएँ प्रसूत की हैं, जो शायद उनके मस्तिष्कमें भी शेर कहते समय न आई होंगी।
४. उनके कलामपर कितनी ही तज़मीनें[1] लिखी जा चुकी हैं।
५. उनके व्यक्तित्व और शायरीपर हज़ारों लेख छप चुके हैं और प्रयत्न चालू है।

---

[1]शेरके पहले मिसरेके हमवज़न तीन और मिसरे कहकर, और उनको शेरमें जोड़कर जो ख़मसा बनता है, उसे तज़मीन कहते हैं। यहाँ ग़ालिबके एक शेरपर 'सबा' अकबराबादीकी तज़मीन दी जाती है :—

रौ) हूँ और मेरा सिद्धान्त (मसलक) है कि सबके साथ शान्तिसे (सुलह कुल) रहूँ, इस लिए मैं तो किसीसे दुश्मनी (अदावत) रख ही नहीं सकता। (आशय यह है कि सेहरेका मक़ता मैंने दुश्मनीके कारण लिखा है या ज़ौक़ पर चोट की है, यह भ्रम मात्र है) मेरी यह ताव कहाँ कि बादशाहके उस्तादसे मैं मुक़ाबला करूँ। (इस शेरमें फिर चोट है। आशय यह है कि ज़ौक़से व्यक्तिगत रूपसे तो मैं मुक़ाबला कर सकता हूँ, लेकिन बादशाहके उस्तादसे कौन मुठभेड़ करे?) मेरे मक़तेमें इत्तफ़ाक़से आत्मश्लाघाके शब्द लिखे गये हैं जो कवि प्रायः लिख दिया करते हैं, इन शब्दोंके प्रयोगसे किसीसे लड़ाई (क़तए मोहब्बत) करना अभीष्ट नहीं था। अगर किसीकी तरफ़ इशारा करके (रूए सुख़न) मक़ता लिखा हो तो मैं गुनहगार (रूसियाह)। मैं कोई पागल था जो ऐसी बात करता। (ज़ौक़ काले रंग के (रूसियाह) थे, इस तरह इस शेर में भी चोट की है) मेरी क़िसमत बुरी सही, पर तबियत अच्छी है, और अपनी बदक़िस्मतीकी किसीसे शिकायत भी नहीं करता हूँ। भगवान् साक्षी है, मैं हमेशा सच्ची बात कहता हूँ, कभी झूठ नहीं बोलता। ऊपर लिखी बातोंमेंसे कोई भी झूठ नहीं है।]

इस एक ही वाक़येसे ग़ालिब की तत्कालीन स्थितिका आभास मिल जाता है। मिर्ज़ा उच्चकोटिके शायर थे, किन्तु निर्धनताके अभिशापसे बुरी तरह ग्रसित थे। जो पेंशन पाते थे, वह उनके लिए यथेष्ट न थी। इसलिए शाही कृपाके भी अभिलाषी बने रहते थे, ताकि कुछ आर्थिक संबंध बना रहे। लेकिन बादशाही कोषमें रहा ही क्या था, जो ग़ालिबकी अभिलाषाएँ पूर्ण होतीं। इसी तंगदस्तीकी वजहसे ग़ालिब जैसा खुद्दार और शायरे आज़म इस तरहकी क्षमा याचना करने पर मजबूर होना था। क़सीदे भी लिखता था और जो थोड़ा बहुत सीगा बन्धा हुआ था, वह भी वक़्तपर न मिलता था तो अपनी हालतेज़ार भी बादशाहके गोश गुज़ार करनी पड़ती थी—

ख़ामा[1] अंगुश्तबदन्दां[2] कि इसे क्या लिखिये।
नातक़ा[3] सर-ब-गरेबाँ[4] कि इसे क्या कहिये॥

मुहरे मकतूबे अज़ीज़ाने गिरामी[5] लिखिये।
हिर्ज़े बाज़ूए शिगरफ़ाने ख़ुदआरा[6] कहिये॥

मिस्सीआलूदा[7] सरअंगुश्ते हसीनाँ[8] लिखिये।
दाग़ेतर्फ़े जिगरे आशिक़े शैदा[9] कहिये॥

ख़ातमेदस्तेसुलेमाँके[10] मुशाबा[11] लिखिये।
सरेपिस्ताने परीज़ादसे[12] माना[13] कहिये॥

अख़्तरे सोख़्तए क़ैससे[14] निसबत दीजे।
ख़ाले मुश्कीने रुख़े दिलकशे लैला[15] कहिये॥

हजरुल असवदे दीवारेहरम[16] कीजिये फ़र्ज़।
नाफ़ाआहूए[17] बयाबानेख़ुतनका[18] कहिये॥

---

[1]क़लम; [2]दाँतोंमें उँगली दबाए, हैरान;
[3]ज़बान; [4]मुँह लटकाये, चिन्तामें;
[5]प्रियजनोंके पत्रपर लगी हुई मोहर;
[6]शृंगारमयी सुन्दरियोंके बाज़ूपर बँधा हुआ तावीज़;
[7]मिस्सी लगी हुई; [8]सुन्दरियोंकी उँगली;
[9]आशिक़के दिलका दाग़; [10]सुलेमान बादशाहके हाथकी अँगूठीके;
[11]सदृश्य; [12]अप्सराके कुचका अग्रभाग;
[13]मानिन्द; [14]मजनूँका जला हुआ नसीबा;
[15]लैलाके आकर्षक चेहरेका सुगंधित तिल;
[16]काबेकी दीवारका पवित्र काला पत्थर;
[17]हिरनके पेटसे निकलनेवाली मुश्क;
[18]ख़ुतनके जंगलका हिरन।

ढाँपा कफ़नने दाग़े अयूबे बरहनगी।
मैं वर्ना हर लिबासमें नंगे वजूद था॥

इस्लामधर्मके कथानकके अनुसार जब ख़ुदाने मनुष्य बनाया तो उसे इतना गौरव प्रदान किया कि फरिश्तों (देवताओं) से उसे सजदा (साष्टांग प्रणाम्) कराया, और जिस एक फरिश्तेने सजदा करनेसे इनकार किया, उसे जन्नतसे निकाल दिया। स्वर्गके देवता मनुष्यकी उपासना करें, इससे अधिक उसका सम्मान क्या हो सकता है। उससे आशा थी कि वह अपने गौरवके अनुकूल मनष्यताके कार्य करेगा और अपने इस सन्मान-को अक्षुण्ण बनाये रखेगा, किन्तु मनुष्य संसारमें आकर मनुष्य न रहा। उसने ऐसे-ऐसे कार्य्य किये कि उसे स्वयं शर्म आने लगी। वह पृथ्वीके लिए भार हो उठा[१]। इसी तथ्यको ग़ालिब स्वयंपर घटाते हुए फ़र्माते हैं—मेरे अवगुणोंकी नग्नता (दाग़े अयूबे बिरहनगी) मृत्युने ढक ली, वर्ना मैं तो हर प्रकारसे नंग (बदनाम) हो चुका था।

इश्क़से तबियतने जीस्तका मज़ा पाया।
दर्दकी दवा पाई, दर्द बेदवा पाया॥

प्रेमरहित जीवन निरर्थक है[२]। प्रेम ही मनुष्यमें जीवन डालता है। ग़ालिब फ़र्माते हैं—इश्क़की वजहसे ही हमको जीस्त (ज़िन्दगी) का मज़ा आया। बग़ैर इश्क़ तो यह ज़िन्दगी, दर्द (दूभर) थी। इश्क़ इस

---

[१] इसी मज़मूनका यह शेर 'मानूस' सहसरामीका क्या ख़ूब है—

वोह ज़िन्दगी कि जिसपै फ़रिश्तोंको नाज़ था।
आलूदये गुनाह किये जा रहा हूँ मैं॥

[२] जा घट प्रेम न संचरे सो घट जान मसान।
जैसे खाल लुहारकी, सांस लेत बिन प्रान॥

—कबीर

मँढ गई। इसलिए उन्होंने एक क़िता क्षमायाचना करते हुए लिखा, जिसके चन्द शेर ये हैं—

मंज़ूर है गुज़ारिशे अहवाले वाक़ई।
अपना बयानेहुस्ने तबीयत नहीं मुझे॥
सौ पुश्तसे है पेशयेआबा सिपहगरी।
कुछ शायरी ज़रियए इज्ज़त नहीं मुझे॥
आज़ादरौ हूँ और मेरा मसलक है सुलहकुल।
हरगिज़ कभी किसीसे अदावत नहीं मुझे॥
उस्तादेशहसे हो मुझे पुरख़ाशका ख़याल।
यह ताब, यह मजाल, यह ताक़त नहीं मुझे॥
मक़्तेमें आ पड़ी है सुख़नगुस्तराना बात।
मक़सूद इससे क़तए मुहब्बत नहीं मुझे॥
रूए सुख़न किसीकी तरफ़ हो तो रूस्याह।
सौदा नहीं, जुनूँ नहीं, वहशत नहीं मुझे॥
क़िस्मत बुरी सही पै तबियत नहीं बुरी।
है शुक्रकी जगह कि शिकायत नहीं मुझे॥
सादिक़ हूँ अपने क़ौलमें 'ग़ालिब' ख़ुदा गवाह।
कहता हूँ सच कि झूठकी आदत नहीं मुझे॥

[इस समय वास्तविक स्थिति (गुज़ारिशे अहवाले वाक़ई) को बताना मेरा उद्देश है, अपना कलाकौशल (बयाने हुस्ने तबियत) दर्शाना ध्येय नहीं है। सौ पुश्तोंसे मेरे बाप-दादोंका पेशा (पेशए आबा) सैनिकका रहा है, शायरी मेरे लिए कुछ सम्मानका साधन (ज़रियएइज़्ज़त) नहीं है। (इस शेरमें ज़ौक़पर चोट की है, कि वह कविताके कारण बादशाहका उस्ताद बना बैठा है, और उसके पास प्रतिष्ठाका इसके अलावा और कोई सर्टीफ़िकेट नहीं है) मैं स्वतंत्र और उदार प्रकृतिका आदमी (आज़ाद-

प्रेम-रोगका इलाज किसीसे न हुआ है न होगा। इष्ट मित्रों (अहवाब) ने प्रेमोन्मादका इलाज करने (चारासाज़ीए वहशत) के लिए मुझे क़ैद (ज़िन्दाँ) में डाल दिया, मगर वहाँ भी मुझे जंगलोंकी ख़ाक छाननेका ख़याल बना रहा। पैरोंमें बेड़ी रही, लेकिन ख़याल पहलेकी तरह आवारा (बयाबाँ नवर्द) ही रहा।

> यह लाशे बेकफ़न 'असदे' ख़स्ताजाँकी है।
> हक़ मग़फ़रत करे अजब आजाद मर्द था॥*

दीन-हीन फटेहाल (ख़स्ताजां) असद (कवि के 'ग़ालिब' और 'असद' दो उपनाम थे) को ख़ुदा बख़्शे। बड़ा निर्भीक (आज़ाद) आदमी था। यह बेकफ़न लाश उसीकी मालूम होती है। जीवनमें संचय करना उसे न आया। यहाँ तक कि कफ़नतकको घरमें कुछ न निकला।

> दहरमें नक़्शेवफ़ा वजहे तसल्ली न हुआ।
> है यह वोह लफ़्ज़ कि शर्मिन्दये मानी न हुआ॥

संसार (दहर) में कोई वफ़ादार नहीं। वफ़ा सिर्फ़ शब्दकोषमें लिखा हुआ है। यह ऐसा बेशर्म शब्द है कि यह कभी सार्थक होकर न दिया। निरर्थक ही रहा।

> हूँ तेरे वादा न करने में भी राज़ी कि कभी।
> गोश[1] मिन्नत कशे गुलबांगे तसल्ली[2] न हुआ॥

तूने वादा न किया, इससे भी मुझे ख़ुशी है। मेरे कानोंको कमसे कम

---

*मृत्युसे चन्द मिनिट पहले ज़ौक़ने यह कहा था—

> कहते हैं आज 'ज़ौक़' जहाँसे गुज़र गया।
> हक़ मग़फ़रत करे अजब आजाद मर्द था॥

[1]कान; [2]सन्तोष जनक शब्दोंका अनुगृहीत।

. . . .
क्यों न दरकार हो मुझे पोशिश
जिस्म रखता हूँ, है अगरचे नजार ॥
कुछ ख़रीदा नहीं है अबके साल।
कुछ बनाया नहीं है अबकी बार ॥
रातको आग और दिनको धूप।
भाड़में जाएँ ऐसे लैलोनिहार ॥
आग तापे कहाँ तलक इन्सान।
धूप खाये कहाँ तलक जाँदार ॥

. . . .
आपका बन्दा और फिरूँ नंगा।
आपका नौकर और खाऊँ उधार ॥

. . . .
तुम सलामत रहो हजार बरस।
हर बरसके हों दिन पचास हजार ॥

मिर्ज़ाके यूँ तो वहुत-से शिष्य थे, किन्तु उन में ख़ास-ख़ास मौलाना अल्ताफ़ हुसैन हाली, मुंशी हरगोपाल तुफ़्ता, मीर म[illegible] मजरूह, मीर क़ुर्बानअली सालिक, मिर्ज़ा हातिमअली महर, ज़ियाउद्दीन खां अहमद, नैयर, नवाव अलाउद्दीन खां अलाई, शेफ़्ता, मयकश, जौहर, उमरावसिंह वेसब्र।

मिर्ज़ाका विस्तृत परिचय और उनके ७० के लगभग शेर 'शेरो[illegible] में दिये जा चुके हैं। अतः यहाँ उनका विशेष परिचय देनेकी [illegible] उनके उत्तमोत्तम शेर देनेका प्रयत्न किया गया है। जो अशआर[illegible] शायरी' में आ चुके हैं, उन्हें यहाँ यथा सम्भव दोहराया नहीं ग[illegible] विज्ञ पाठक इस संकलनमें किसी ग़ज़लका कोई अच्छा शेर मौजूद [illegible] तो हमारी नज़रे इन्तख़ावको इलज़ाम देनेसे पहले 'शेरोशायरी' [illegible]

मुहब्बत थी चमनसे लेकिन अब ये बेदिमाग़ी है।
कि मौजेबूएगुलसे[1] नाकमें आता है दम मेरा॥

× × ×

सरापा रहने इश्क़ो ना गुज़ीरे उल्फ़ते हस्ती।
इबादत बर्क़की करता हूँ और अफ़सोस हासिलका॥

मैं भी कैसा विचित्र हूँ। एक तरफ़ तो इश्क़को अपना सर्वस्व दिया हुआ (सरापा रहने इश्क़े) है, जिसके कारण मर जाना अवश्यम्भावी है, दूसरी तरफ़ जीवनका मोह भी मुझसे नहीं छूटता है (ना गुज़ीरे उल्फ़ते हस्ती)। भला बताओ, यह दोनों बातें कैसे निभेंगी। यह तो वैसा ही है, जैसे एक तरफ़ विजली (बर्क़)को पूजूँ और जब विजली खेत (हासिल) को जला दे तो उस हानि पर अफ़सोस करूँ।

आज क्यों परवा नहीं अपने असीरोंकी[2] तुझे।
कल तलक तेरा ही दिल महरोवफ़ाका बाब था॥

प्रेम-बन्दियों की अब तुझे परवाह क्यों नहीं है। पहले तो तेरा दिल कृपा और स्नेहसे परिपूर्ण था।

बस कि दुश्वार है हर कामका आसाँ होना।
आदमीको भी मयस्सर नहीं इन्साँ होना॥

दुनियामें आसान-से-आसान काम भी दुश्वार है। यूँ तो हर आदमी इन्सान है। मगर जब तक वह इन्सानी फ़राइज़ (मनुष्य कर्तव्य) अदा नहीं करता, उसे इन्सानियत मयस्सर नहीं हो सकती।†

---

[1] फूलोंकी सुगन्ध से; [2] क़ैदियों की; प्रेम-पाश में बँधे हुओं को।

† हालीने इसी भाव को यूँ व्यक्त किया है—

फ़रिश्तेसे बहतर है इनसान बनना।
मगर इसमें पड़ती है महनत ज़ियादा॥

दर्द की दवा बन गया। लेकिन मलाल इतना ही है कि इश्क़की कोई दवा नहीं। यह ख़ुद एक असाध्य रोग है।

सादगी ओ पुरकारी बेख़ुदी ओ हुशयारी।
हुस्नको तग़ाफ़ुलमें जुरअत आज़मा पाया॥

हुस्न (सौन्दर्य्य) अपनी बेरुख़ी और तग़ाफ़ुल (बेपरवाही, उपेक्षा) से हमारे हौसले और जुरअत (धैर्य और साहस) की आज़माइश कर रहा है। वह ज़ाहिरामें सादा और भोला दिखाई देता है। मगर उसकी यही सादगी हमारे लिए पुरकारी (ऐयारी) और बेख़ुदी (भोलापन) हुश्यारी है। यानी उसकी इस सादगी और भोलेपनने ही तो हमारा सर्वस्व छीन लिया है।

दिल मेरा सोज़ेनिहाँसे बेमुहाबा[1] जल गया।
आतिशे ख़ामोशकी मानिन्द गोया जल गया॥

सोज़े निहाँ (मुहब्बतकी छुपी हुई आग) से मेरा दिल जलकर ख़ाक हो गया। यह आग अन्दर ही अन्दर ऐसी सुलगती रही कि आतिशे ख़ामोश (ऊपलेकी आग) की तरह उसने सब कुछ जला दिया।

मैं हूँ और अफ़सुर्दगीकी आरज़ू 'ग़ालिब' कि दिल।
देखकर तर्ज़ेतपाके अहले दुनिया जल गया॥

...दुनियाकी बेवफ़ाई और वर्तावसे मैं इतना तंग आ गया हूँ कि अब अपने दिलको अफ़सुर्दा (बुझा हुआ, कुम्हलाया हुआ) ही रखना चाहता हूँ।

अहवाब चारासाज़ीए वहशत न कर सके।
ज़िन्दाँमें भी ख़याल बयावाँ नवर्द था॥

---

[1] बेरहमीसे

बन्दापरवर ! आपकी बेनियाज़ी (बेपरवाही) हदसे गुज़र चुकी है। हम अपना बार-बार हाल बयान करते हैं और आप अनसुनी करते हुए यही फ़र्माते हैं कि "क्या कहा, क्या कहा ?" यूँ कबतक हालेदिल बयान किया जा सकेगा ?

हज़रतेनासेह गर आएँ दीदओ दिल फ़र्शेराह।
कोई मुझको यह तो समझा दो कि समझाएँगे क्या ॥

हमारे प्रेमोन्मादका समाचार सुनकर उपदेशक महाराज (नासेह) आना चाहते हैं। आएँ और बड़ी प्रसन्नतासे हमारे सर आँखों पर (दीद ओ दिल फ़र्शे राह) आएँ, परन्तु कोई मुझे यह तो बताये कि वे मुझे क्या समझाएँगे। इस रोगका रोगी किसीके समझाएसे अच्छा हुआ है क्या ?

गर किया नासेहने हमको क़ैद, अच्छा यूँ सही।
यह जुनूनेइश्क़के[1] अन्दाज़[2] छुट जाएँगे क्या ?

यह न थी हमारी क़िस्मत जो विसालेयार होता।
अगर और जीते रहते, यही इन्तज़ार होता ॥

तेरे वादेपै जिए हम तो यह जान झूट, जानाँ।
कि ख़ुशीसे मर न जाते अगर एतबार होता ॥

यह कहाँकी दोस्ती है कि बने हैं दोस्त नासेह।
कोई चारासाज़ होता, कोई ग़मगुसार होता ॥

उपदेश देनेवाले तो संसारमें सभी होते हैं। मित्रोंसे मनुष्य सहानुभूतिकी आशा रखता है। मित्र भी उपदेशक बन जाएँ तो काहेके मित्र हुए ? मित्र को तो चाहिए कि दुखका इलाज करनेवाला (चारा साज़) हो, ग़मको दूर (ग़मगुसार) करे।

---

[1]प्रेमोन्माद के; [2]ढंग।

सन्तोषजनक शब्दों का अनुगृहीत तो न होना पड़ा, और इस एहसान-के बोझसे तो बच गये।

किससे महरूमिएक़िसमतकी[1] शिकायत कीजे।
हमने चाहा था कि मर जाएँ सो वह भी न हुआ॥

मैंने चाहा था कि अन्दोहेवफ़ासे[2] छूटूँ।
वोह सितमगर मेरे मरनेपै भी राज़ी न हुआ॥

× × ×

सताइश गर है ज़ाहिद! इस क़दर जिस बाग़ेरिज़वाँका।
वोह इकगुलदस्ता है हम बेख़ुदोंके ताके निसयाँका॥

ऐ ज़ाहिद! जिस बाग़ेरिज़वाँ (स्वर्गउद्यान) की तू इतनी सताइश (प्रशंसा) करता है, वह तो हम बेख़ुदों (भुलक्कड़ों) के ताकेनिसियाँ (वोह आला जिसमें कोई चीज़ रखकर भूल जाएँ) का एक गुलदस्ता है। इससे अधिक कुछ नहीं। यानी हमें तो वह कभी याद भी नहीं आता।

मेरी तामीरमें मुज़मिर है इक सूरत ख़राबीकी।
हयूला बर्क़े ख़िरमनका है ख़ूनेगर्म दहक़ाँका॥

मेरे निर्माण (तामीर) में ही मेरे विनाशके तत्व निहित (ख़राबी की सूरत मुज़मिर) हैं। किसान (दहक़ाँ) के घोर परिश्रम (ख़ूने गर्म) में ही बिजलीके वे तत्व (हयूला) समाये हुए हैं जो उसके अनाजके ढेर (ख़िरमन) को जला देते हैं। तात्पर्य्य यह है कि हमारी समृद्धि और सुखके सामानोंमें ही हमारे विनाशके तत्व छिपे हुए हैं।*

---

[1]भाग्यहीनताकी; [2]वफ़ा निभानेके संकटसे;

*असग़र गोण्डवीने इसी मज़मून को इस प्रकार अदा किया है—

नग़मये पुरदर्द छेड़ा मैंने इस अन्दाज़से।
ख़ुद-ब-ख़ुद पड़ने लगी मुझपर नज़र सैयादकी॥

हर क़तरा अपने आपको समन्दरका अंग समझता है और "मैं समन्दर हूँ" इस बात की रट लगाता है, फिर हमारी महत्ताका तो क्या कहना, हम तो ईश्वरके ख़ासुलख़ास हुए। तसव्वुफ़का शेर हैं।

सीनेका दाग़ है, वोह नाला कि लबतक न गया।
ख़ाकका रिज़्क़ है वोह क़तरा कि दरिया न हुआ॥

जो नाला दिल ही में घुटकर रह गया, उसका अंजाम यह हुआ कि वह सीनेका दाग़ बन गया। जो क़तरा दरियामें आकर नहीं मिला, वह मिट्टी में मिलकर मिट गया। अर्थात् जो प्रयत्न पूरा न हो, वह बिल्कुल ही व्यर्थ है।

क़तरेमें दजला[1] दिखाई न दे और जुज़्में[2] कुल।
खेल बच्चोंका हुआ, दीदएबीना[3] न हुआ॥

अभिप्राय यह है कि प्रत्येक अंगमें ईश्वरका रूप दिखाई न दे तो यह आँखका क़ुसूर है।

थी ख़बर गर्म कि ग़ालिबके उड़ेंगे पुर्ज़े।
देखने हम भी गये थे, पै तमाशा न हुआ॥

× × ×

दिलको हम सर्फ़ेवफ़ा समझे थे, क्या मालूम था?
यानी यह पहले ही नज़रेइम्तहाँ हो जायगा॥

हम तो समझते थे कि दिल हमेशा हमारा साथ देगा। वफ़ा निभानेमें हमारे काम आयेगा। यह मालूम न था कि इम्तहानके मौक़े पर उसका पहले ही ख़ात्मा हो जायगा।

बाग़में मुझको न ले जा वर्ना मेरे हालपर।
हर गुलेतर एक चश्मेख़ूँफ़िशाँ[4] हो जायगा॥

---

[1]एक बड़े दरिया का नाम; [2]भागमें, अंशमें; [3]देखनेवाली आँख
[4]ख़ून बरसानेवाली आँख।

वह यथार्थ में इंसान नहीं कहला सकता, और यह कितनी मुश्किल बात है। यथार्थवादमें यह शेर ग़ालिबके श्रेष्ठतम शेरोंमें से है।

वाये दीवानगियेशौक़[१] कि हरदम मुझको।
आप जाना उधर[२] और आप ही परेशाँ होना ॥*

हैफ़[३] उस चार गिरह कपड़ेकी क़िस्मत 'ग़ालिब'!
जिसकी क़िस्मतमें हो आशिक़का गिरेबाँ होना ॥

× × ×

दोस्त ग़मख़्वारीमें मेरी सई फ़रमाएँगे क्या?
ज़ख़्मके भरने तलक नाख़ुन न बढ़ जाएँगे क्या ॥

मित्र मेरा क्या दुःख बँटा सकते है। वह चाहे जितना इलाज कर लें, और मेरे ज़ख़्मों पर मरहम पट्टी कर लें, पर जब तक जख़्म भरेंगे, मेरे नाख़ून भी फिर से बढ़ जाएँगे, और मैं नाख़ूनोंसे जख़्मोको फिर नोच लूँगा।

बेनियाज़ी हदसे गुज़री, बन्दापरवर! कबतलक
हम कहेंगे हालेदिल, और आप फ़रमाएँगे "क्या"? ॥

---

[१]प्रेम का पागलपन; [२]अर्थात् प्रेयसीकी गलीमें; [३]अफ़सोस।

*इसी आशयका एक और शेर है:—

रोज कहता हूँ न जाऊँगा कभी घर उनके।
रोज उस कूचेमें एक काम निकल आता है ॥

जिगरने प्रेमरोगीकी इस अवस्था को अपने ढंग से व्यक्त किया है—

कूए जानाँकी हवा तकसे भी थर्राता हूँ मैं।
क्या करूँ, बेअख़्तियाराना चला जाता हूँ मैं ॥

निजाम रामपुरी इसी बेबसी को यूँ जाहिर करते हैं—

अहद किया था अभी कैसा 'निजाम'!
फिर वहीं जानेका इरादा किया!!

हम कहाँ क़िस्मत आज़माने[1] जाएँ।
तू ही जब ख़ंजरआज़मा[2] न हुआ ॥

तेरे ही हाथों हमारी मुक्ति नहीं हो सकती तो फिर और कहाँ हो सकती है।

है ख़बर गर्म उनके आनेकी।
आज ही घरमें बोरिया न हुआ ॥

किसी सम्भ्रान्त अतिथिके आनेका समाचार पाकर एक स्वाभिमानी दरिद्रकी कैसी दयनीय मनोदशा होती है, यही भाव इस शेरमें दर्शाया है।

जान दी, दी हुई उसीकी थी।
हक़ तो यह है कि हक़ अदा न हुआ ॥

हमने संसारमें आकर ईश्वरके प्रति अपना कर्त्तव्य कहाँ निभाया? ईश्वर के नाम पर मर जानेमें भी तो वह कर्त्तव्य पूरा नहीं हो सकता। क्योंकि जान तो हमें ईश्वरने प्रदान की थी, मर कर उसे ही वापिस सौंप दी, इस में अपनी तरफ़ से क्या किया। सच्ची (हक़) बात तो यह है कि हम कर्तव्य (हक़) पूरा न कर सके।

एतबारे इश्क़की ख़ानाख़राबी[3] देखना।
ग़ैरने की आह, लेकिन वोह ख़फ़ा मुझपर हुआ ॥

मेरे इश्क़का उसे इस क़दर यक़ीन और एतबार है कि ग़ैर भी आहो फ़रियाद करे तो वह मुझी पर ख़फ़ा होता है।

न था कुछ तो ख़ुदा था, कुछ न होता तो ख़ुदा होता।
डुबोया मुझको होनेने, न होता मैं तो क्या होता ॥

---

[1]भाग्य-परखने; [2]ख़ंजर चलानेको उद्यत; [3]अर्थात् मुसीबत।

ग़म अगर्चे जाँ गुसल है, पै कहाँ बचें कि दिल है।
ग़मेइश्क़ गर न होता ग़मेरोज़गार होता॥

यह दिल तो ग़म उठानेके लिए ही बना है। यह माना कि ग़मे इश्क़ जान लेनेवाला (जांगुसल) है। परन्तु ग़मेइश्क़ न होता तो सान्सारिक झगड़ोंका ग़म होता। यह शेर ग़ालिबके नश्तरों में से है।

हविसको है निशातेकार क्या-क्या ?
न हो मरना तो जीनेका मज़ा क्या॥

संसार में तृष्णाओं (हविस)को काम करनेकी उमंग (निशातेकार) कितनी ज़्यादा है, और यह इसलिए है कि जल्दी ही मर जाना है, जो तृष्णा पूरी हो सके कर लो। मरने का भय न होता तो मनुष्य सचेष्ट न होता और जीवनका आनन्द ही जाता रहता।

निगाहे बेमुहाबा चाहता हूँ।
तग़ाफ़ुल हाय तमकीं आज़मा क्या ?

मैं आपकी बेतकल्लुफ़ और मुहब्बत भरी निगाह (निगाहे बेमुहावा) चाहता हूँ। आपने मेरे सब्र और इस्तक़लाल आज़माने (तमकीं आज़मा) के लिए यह बेरुख़ी (तग़ाफ़ुल) क्यों अख़्तयार की हुई है ?

फ़रोग़े शोलये ख़स यक नफ़स है।
हविसको पासे नामूसे वफ़ा क्या॥

हविसकार (कामुक) को मुहब्बतकी इज़्ज़तका पास नहीं हो सकता। फ़रोग़े शोलये ख़स (घास की आगका भड़काव) यक नफ़स (एक पल) के लिए होता है। इसी तरह कामुकका प्रेम टिकाऊ नहीं होता।

दिले हर क़तरा है साज़े अनल बहर[1]।
हम उसके हैं, हमारा पूछना क्या॥

---

[1] "मैं समन्दर हूँ" की धुन।

प्रेम की कठिनाइयों से घबराकर कहते हैं कि क्यों हमें प्रेम रोग लगा। न तेरा (राहगुज़र) रास्ता याद आता, न इस प्रेममें फँसते, न यह मुसीबतें सर पर आतीं और जीवन किसी न किसी तरह व्यतीत हो ही जाता।

अब मेरी महरूमियोंपर फ़स्लेगुल है तानाज़न।
मुसकराकर छेड़ती है हर कली तेरे बग़ैर॥

कायनाते हुस्नपर तारीकियाँ छाने लगीं।
हो रहा है गुलचिराग़े आशिक़ी तेरे बग़ैर॥

तुझसे छुटकर कितना फीका पड़ गया है रंगेगुल।
हो गई बेलेकी कलियाँ साँवली तेरे बग़ैर॥

कल जहाँका ज़र्रा-ज़र्रा तूर दर आग़ोश था।
आज इस घरमें नहीं है रोशनी तेरे बग़ैर॥

दिल नहीं झुकता है पहलेकी तरह सजदोंके साथ।
नामुकम्मिल है मज़ाक़ेबन्दगी तेरे बग़ैर॥

आफ़ताबे रोज़ेमहशर बन गया फ़ुरक़तमें चाँद।
हो गई नारेजहन्नुम चाँदनी तेरे बग़ैर॥

हर उजालेपै अँधेरेका गुमाँ होने लगा।
शामेग़म है मेरी सुबहेज़िन्दगी तेरे बग़ैर॥

हो गया तारी ख़यालोंपर जहन्नुम होशका।
छिन गई है मुझसे ख़ुल्दे बेख़ुदी तेरे बग़ैर॥

ऐ मेरी उम्मीदके चाँद इतना बतला दे मुझे।
मेरे घरमें क्यों न निकली चाँदनी तेरे बग़ैर॥

हर तमन्नाको शबेफ़ुरक़त कुचलकर रख दिया।
हमको अपने दिलसे ज़िद-सी हो गई तेरे बग़ैर॥

मेरी हालत इतनी दर्दीली और खस्ता है कि मुझे देखकर फूल भी खून के आँसू रोते हैं। इसलिए मुझे बाग़ में ले जानेकी जिद न करो।

वाये[1] गर तेरा-मेरा इन्साफ़ महशरमें न हो।
अबतलक तो यह तवक़्क़ोह[2] थी कि वाँ हो जायगा॥

फ़ायदा क्या? सोच आख़िर, तू भी है दाना[3] 'असद'!
दोस्ती नादाँकी है, जीका ज़ियाँ[4] हो जायगा॥

× × ×

दर्द मिन्नतकशेदवा[5] न हुआ।
मैं न अच्छा हुआ, बुरा न हुआ॥

किसीका अहसान सर पर लादना बहुत तकलीफदेह होता है। मेरा दर्द ला इलाज था। दवाने असर न किया तो इससे यह फ़ायदा हुआ कि रोग दवाके अहसान उठानेसे बच गया। मैं अच्छा (तन्दुरुस्त) न हुआ तो न सही, मगर अहसानके बोझसे बच गया यही क्या कम है।*

जमा करते हो क्यों रक़ीबोंको।
इक तमाशा हुआ, गिला न हुआ॥

मैं जब अपना दुखड़ा रोता हूँ तो रकीबोंको क्यों बुलाते हो कि आओ तुम भी सुन लो। यानी मैं गिला (शिकायत) कर रहा हूँ और आपने इसे मनोरंजन समझ लिया है।

---

[1]अफ़सोस; [2]आशा; [3]बुद्धिमान, [4]नुकसान; [5]दवाका आभारी;

*जिसने कुछ अहसाँ किया इक बोझ सरपर रख दिया।
सरसे तिनका क्या उतारा सरपै छप्पर रख दिया॥
—अज्ञात

दरियाए मुआसी[1] तुनक आबीसे[2] हुआ ख़ुश्क।
मेरा सरे दामन भी अभी तर न हुआ था॥

गुनाह करनेमें मेरी हिम्मत और हौसलेको देखो कि गुनाहोंका दरिया अपने थोड़ेसे ज़ख़ीरेकी वजहसे ख़ुश्क भी हो गया और मेरे दामनका एक कोना भी नहीं भीग पाया।

क़ासिदको अपने हाथसे गरदन न मारिये।
उसकी ख़ता नहीं है यह मेरा क़ुसूर था॥

जब माशूक़ क़ासिदसे नाराज हो गया और उसकी जान लेने पर उतारू हो गया तो इन्हें ईर्ष्या हुई कि क़ासिद तो हमसे भी बढ़ गया। माशूक़के हाथोंसे मरनेका सौभाग्य प्राप्त करनेके लिए झट बोल उठे कि क़ुसूर मेरा था, इसलिए दण्ड मुझे मिलना चाहिए। "अपने हाथसे" का टुकड़ा रश्कके पहलूको उजागर करता है।

आईना देख अपना-सा मुँह लेके रह गये।
साहबको दिल न देनेपै कितना ग़रूर था॥

प्रेयसीको इस बातपर अभिमान था कि उसने किसीको भी अपना हृदय नहीं दिया है, लेकिन आइना देखा तो सब गर्व नष्ट हो गया। अपनी छविको आयनेमें देखकर उस पर इतनी मुग्ध हुई कि बर्बस हृदय न्यौछावर हो गया। भाव यह है कि प्रेयसीका सौन्दर्य इतना

नज़र लगे न कहीं उसके दस्तोबाज़ूको।
यह लोग क्यों मेरे ज़ख़्मेजिगरको देखते हैं॥

दाग़ कहते हैं :—

अजलको दोष दें, तक़दीरको रोएँ, मुझे कोसें,
मेरे क़ातिलका चर्चा क्यों है मेरे सोगवारोंमें॥

[1]गुनाहोंका दरिया; [2]थोड़ा पानी होनेकी वजहसे।

संसारमें आनेसे पहले मैं ईश्वरका अंग था। संसारमें न आता, तो ईश्वरका अंग ही बना रहता। मनुष्य बननेसे मेरी मिट्टी ख़राब हुई। मनुष्य न बना होता तो क्या से क्या, अर्थात् साक्षात् ईश्वर होता। इस शेरमें वेदान्तका सारा फ़लसफ़ा समाया हुआ है।

हुई मुद्दत कि 'ग़ालिब' मर गया पर याद आता है।
वह हर इक बातपर कहना कि 'यूँ होता तो क्या होता'॥

× × ×

ज़िन्दगी यूँ भी गुज़र ही जाती।
क्यों तेरा राहगुज़र याद आया॥*

---

* **इक राहे मुस्तक़ीम पै थी गामज़न हयात।**
मुड़ने लगे तो उनसे मुलाक़ात हो गई॥

यह शेर ख़ुर्शीद फ़रीदाबादीका है जो हमारे अनन्य मित्रोंमें से थे। अफ़सोस कि वह भी देश विभाजनकी आहुति पर बलिदान हो गये और रावलपिंडी चले गये। यहाँ उनकी एक ग़ज़ल देनेके लोभको हम संवरण नहीं कर पा रहे हैं और इस तरह हम उन सुखद दिनोंकी याद ताज़ा कर रहे हैं, जब सुमत साहबकी कोठी पर उनके अशआर झूम-झूमके सुना करते थे।

इस क़दर मायूस फ़ितरत हो गई तेरे बग़ैर।
रंजसे बदली हुई है हर ख़ुशी तेरे बग़ैर॥

बादयेरंगींकी लज़्ज़त ज़हर थी तेरे बग़ैर।
तेरी आँखोंकी क़सम हमने न पी तेरे बग़ैर॥

सुबहेगुलशन है शबेअफ़सुर्दगी तेरे बग़ैर।
लौट जाती है बहार आई हुई तेरे बग़ैर॥

एक तो वह परी सूरत (परीवश) माशूक़ सौन्दर्य्यताकी खान, दूसरे अपने प्रेमके कारण हम उसका वर्णन और भी बढ़ा चढ़ा कर करते हैं। इसका परिणाम यह हुआ कि हमारा परम मित्र (राज़दाँ) हमारा हाल सुनते-सुनते इतना प्रभावित हुआ कि स्वयम् उस पर मोहित हो गया और हमारा प्रतिद्वन्द्वी बन गया।

घिसते-घिसते मिट जाता आपने अबस[1] बदला।
नंगेसिजदासे[2] मेरे संगे आस्ताँ अपना[3]॥

महबूबने मुझे इतना हक़ीर समझा कि उसके दर्वाज़े पर जो मैंने सजदे किये थे, उन सिजदोंके चिह्न भी रहने देना मुनासिब न समझ कर उसने दर्वाज़ेका पत्थर बदलवा दिया! मगर यह फ़िज़ूल ही उसने ज़हमत उठाई। मेरे लगातार सिजदा करते रहनेसे उसके दर्वाजेका पत्थर ख़ुद ही किसी रोज़ मिट जाता। तब न सिजदेके दाग़ बाक़ी रहते, न पत्थर बदलवानेकी आवश्यकता रहती।

ता करे न ग़म्माज़ी कर लिया है दुश्मनको।
दोस्तकी शिकायतमें हमने हमज़बाँ अपना॥

हमने दुश्मन (प्रतिद्वन्द्वी) को भी माशूक़की शिकायत करना सिखा दिया है। इससे हमारा मक़सद यह है कि वह हमारा हम-ज़बान और हम-ख़याल बन कर हमारी चुग़ली न खायेगा और जब उससे बातचीतका अवसर मिलेगा तो हमारी तरह उसकी शिकायत ही करेगा। चुग़लख़ोरी-से वह हमें हानि न पहुँचा सकेगा।

दे वह जिस क़दर ज़िल्लत हम हँसीमें टालेंगे।
बारे आश्ना निकला, उनका पासबाँ अपना॥

माशूक़का दरबान जो बेइज़्ज़ती करता है, उसकी शर्म मिटानेको

---

[1] व्यर्थ; [2] सिजदेके कलंकसे; [3] दर्वाज़ेका पत्थर।

कोई वीरानी-सी वीरानी है।
दश्तको देखके घर याद आया ॥

जंगल (दश्त) भी हमारे घरकी वीरानीके सामने कुछ नहीं।

हुई ताख़ीर तो कुछ बाइसे ताख़ीर भी था।
आप आते थे मगर कोई अनाँगीर भी था ॥

महबूब मुलाक़ातको तो आया मगर देर करके आया। इस देरीकी वजह कुछ न कुछ ज़रूर है। यह माना कि आप सीधे मेरी तरफ़ ही चले आ रहे थे, मगर रास्तेमें किसीने आपको रोका ज़रूर होगा। वर्ना इतनी देर क्यों होती? संदेह प्रकट किया है कि अवश्य आपको प्रतिद्वन्द्वीने देर करा दी है।

तुझसे बेजा है मुझे अपनी तबाहीका गिला।
इसमें कुछ शाइबए ख़ूबिये तक़दीर भी था ॥

आशिक़ जानता है कि उसकी बरबादी माशूक़ ही के हाथों हुई है, लेकिन फिर भी इतना कठोर हृदय नहीं हो सकता कि माशूक़को दोषी ठहराए। कहता है कि तुझसे अपनी बरबादीकी शिकायत (गिला) करना अनुचित है। मैं तो इसका कारण (शाइबए ख़ूबिए तक़दीर) भाग्यचक्र-का प्रकोप समझता हूँ। मेरी तक़दीर ही में यह बरबादी लिखी हुई थी।*

नजअ़के आलममें गुज़रा है मेरा दौरेफ़िराक़।
मौतके दामनमें खेली जिन्दगी तेरे बग़ैर ॥

ज़ाहिरा दुनिया जिसे महसूस कर सकती नहीं।
हो गई है मुझमें इक ऐसी कमी तेरे बग़ैर ॥

ख़ूनेदिल टपका किया 'ख़ुर्शीद'के हर लफ़्ज़से।
हो गया रंगीं मज़ाक़े शायरी तेरे बग़ैर ॥

*ग़ालिब ही का एक और शेर है:—

ज़ाहिरा तो जुल्मोसितम करनेसे माशूक़ने गुरेज़ किया। मगर कहता है कि अब तक जो जौरो जफ़ा किये, उसकी वजहसे मुझे मुँह दिखानेकी हिम्मत नहीं होती ! यह मुँह न दिखाना तो सब जुल्मोंसे बढ़कर सितम है। इसलिए क्या ख़ाक जुल्मोंसे गुरेज़ किया है !

हो लिये क्यों नामाबरके साथ-साथ।
या रब, अपने ख़तको हम ले जाएँ क्या॥

रातदिन गर्दिशमें हैं सात आसमाँ।
हो रहेगा कुछ न कुछ, घबराएँ क्या॥

× × ×

लाग हो तो हम उसे समझें लगाव।
जब न हो कुछ भी तो धोखा खाएँ क्या॥

वह हमसे नाराज़ हों तो भी हम अपने मनको यह कहकर बहला लें कि वास्तवमें तो वह प्रसन्न हैं, उनकी नाराज़गीकी बातें असलमें प्यार की हैं। पर वह तो हमसे बात ही नहीं करते, फिर किस तरह मनको झूठी-सच्ची तसल्ली दें।

पूछते हैं वोह कि ग़ालिब कौन है ?
कोई बतला दो कि हम बतलाएँ क्या॥

× × ×

इशरतेक़तरा है दरियामें फ़ना हो जाना।
दर्दका हदसे गुज़रना है दवा हो जाना॥

बून्द (क़तरे) की सफलता इसीमें है कि वह दरियामें मिल कर दरिया बन जाये। इसी तरह दर्देइश्क़की दवा यही है कि वह हदसे गुज़र जाय। यानी सीमित क्षेत्रको लाँघकर वह विश्वव्यापी हो जाय।

अब जफ़ासे भी हैं महरूम, हम अल्लाह ! अल्लाह !!
इस क़दर दुश्मने अरबाबे वफ़ा हो जाना !!!

मोहक है कि वह प्रेमीको ही नहीं, उसे स्वयं भी न्यौछावर होनेको मजबूर करता है।

गो मैं रहा रहीनेसितमहाय रोज़गार।
लेकिन तेरे ख़यालसे ग़ाफ़िल नहीं रहा॥

मैं ज़माने भरके सितम उठाता रहा, लेकिन उस हालतमें भी तेरी यादको नहीं भूला।*

बेदादे इश्क़से नहीं डरता मगर 'असद'!
जिस दिलपै नाज़ था मुझे वह दिल नहीं रहा॥

इश्क़ की मुसीबतों से तो नहीं घबराता लेकिन अब पहले जैसी सहन-शक्ति दिल में नहीं रही।

रश्क कहता है कि उसका ग़ैरसे इख़लास, हैफ़!
अक़्ल कहती है कि वोह बेमहर किसका आश्ना॥

अपने मन को समझाते हैं। ग़ैरसे माशूक़का (इख़लास) मेल-जोल देखकर रश्कके कारण अफ़सोस होता है। मगर फिर मनको तसल्ली दते हैं कि वह तो प्रकृतिसे ही बेवफ़ा है, वह किसीका मित्र नहीं हो सकता।

ज़िक्र उस परीवशका, और फिर बयाँ अपना।
बन गया रक़ीब आख़िर, था जो राज़दाँ अपना॥

---

*सबा अकबराबादीका ज़िक्र हम आरम्भमें कर चुके हैं। इसी मज़मूनका उनका शेर है, और पाठक इसे मित्रके प्रति पक्षपात न समझें तो हम यह कहनेकी धृष्टता करते हैं कि सबाका शेर ग़ालिबके शेरसे भी ऊँचा है:—

यह हमीं हैं कि तेरा दर्द छुपाकर दिलमें।
काम दुनियाके बदस्तूर किये जाते हैं॥

जल्वये दीदारसे मूसा भी बेहोश हो गये थे, तूर भी जलकर सुर्मा हो गया था। ऐ अंजाम न सोचनेवाले दिल ! उसे देखनेके शौक़को मनमें ही दबा कर रख। दोस्तका जलवा देख सके इतनी ताब तुझमें कहाँ है ?

ग़ैर यूँ करता है मेरी पुरसिश[1] उसके हिज्रमें।
बेतकल्लुफ़ दोस्त हो जैसे कोई ग़मख़्वारे दोस्त ॥

उसके हिज्रमें ग़ैर (प्रतिद्वन्द्वी) हमारा हाल इस तरह पूछता है—जैसे कोई वोह हमारा बेतकल्लुफ़ और ग़मख़्वार दोस्त हो। मगर हम उसके दिलकी बात अच्छी तरह समझते हैं।

ताकि मैं जानूँ कि है उसकी रसाई वाँ तलक।
मुझको देता है पयामे वादयेदीदारे दोस्त ॥
चुपके-चुपके मुझको रोते देख पाता है अगर।
हँसके करता है बयाने शोख़िये गुफ़्तारे दोस्त ॥
मेहरबानी हाय दुश्मनकी शिकायत कीजिये।
या बयाँ कीजे सपासे लज़्ज़ते आज़ारे दोस्त ॥

यह तीनों शेर क़ितआ बन्द हैं। दुश्मन मुझे माशूक़के दर्शन होनेके वायदेका समाचार (पयामे वादए दीदारे दोस्त) देता है। मेरे प्रेमातुर मनको शान्ति देना उसका उद्देश्य नहीं है, अभीष्ट यह है कि इस समाचार देनेसे मैं यह जानूँ कि उसकी माशूक़ तक (रसाई) पहुँच है, और इससे मुझे ईर्ष्या और दुख हो। और इसी अभिप्रायसे, जब मुझे रोते देखता है तो माशूक़की चंचल वार्तालाप (शोख़िए गुफ़्तार) का ज़िक्र करने लगता है। ताकि मेरा दिल और जले। समझ में नहीं आता कि हम इस दुश्मनकी जाहिरा मेहरबानीका रोना रोएँ या माशूक़के सितम करनेसे जो हमें आनन्द प्राप्त होता है, उसका वर्णन करें।

---

[1] पूछ ताछ।

क्या ख़ूब तरकीब निकाली है। कहते हैं कि वह दरबान तो हमारा पुराना दोस्त निकल आया। इसलिए उसकी गाली-गलौज तो हम हँसी-मजाक़ समझते है।

हम कहाँके दाना थे, किस हुनरमें यकता थे।
बेवजह हुआ 'ग़ालिब' दुश्मन आसमाँ अपना॥

प्रायः यह विश्वास है कि बुद्धिमानों और कलाकारों पर भाग्यका प्रकोप रहता है। कहते हैं कि *हम न तो बुद्धिमान हैं, न किसी कलामें* कुशल, फिर न जाने हमसे भाग्य विमुख क्यों है। किस ढंगसे अपना कला-चातुर्य प्रकट कर गये हैं।

गिरनी थी हमपै, बर्क़े तजल्ली, न तूरपर।
देते हैं बादा ज़रफ़ेक़दहख़्वार[1] देखकर॥

यह क्या हुआ कि तजल्ली तूर पर गिर पड़ी, जिससे तूरका पहाड़ जल कर भस्म हो गया। तूरमें सहन शक्ति कहाँ थी। वह सहन-शक्ति तो हम में है। पात्रको देख कर दान दिया जाता है। तूर पर तजल्ली-का प्रकाशमान होना कुपात्र को दान देना था।

रहमत[2] अगर क़ुबूल करे, क्या बईद[3] है।
शरमिन्दगीसे उज्र न करना गुनाहका॥

ईश्वरीय न्यायालयमें यदि मैं लज्जाके कारण अपने अपराधोंकी सफ़ाई न दे सकूँ, तो सम्भव है इसी लज्जाको पापोंका प्रायश्चित समझ-कर मुझे और दण्ड न दिया जाय।

जौरसे[4] बाज आये, पर बाज आएँ क्या?
कहते हैं हम तुझको मुँह दिखलायें क्या॥

---

[1]शराब पीनेवालेका बर्तन; [2]ईश्वरीय कृपा;
[3]मुश्किल; [4]सितमसे, अत्याचारसे।

न लड़ नासहसे 'ग़ालिब' ! क्या हुआ गर उसने शिद्दत[1] की ।
हमारा भी तो आख़िर ज़ोर चलता है गिरेबाँपर ॥

उपदेशकको ज़्यादती करनेसे नहीं रोक सकते तो कमसे कम अपने कपड़े तो फाड़ सकते हैं । इसीसे हमारे दिलकी भड़ास निकल जायगी ।

फ़लकसे हमको एशेरफ़ताका[2] क्या-क्या तक़ाज़ा है ।
मताएबुर्दा[3]को समझे हुए हैं क़र्ज़ रहज़न[4]पर ॥

हमारी सादगी भी कमाल की है । आसमान जिसने हमारे सुख चैनको लूटा है, उसीसे हम यह आशा कर रहे हैं कि वह फिर हमें सुख चैनके दिन दिखाएगा । जैसे कोई डाकूसे यह उम्मीद करे कि वह चोरी किए हुए मालको क़र्ज़की तरह लौटा देगा । कितनी निर्मूल आशा है ।

है बस कि हरइक उनके इशारेमें निशाँ और ।
करते हैं मुहब्बत तो गुज़रता है गुमाँ और ॥

चूँकि उनके हर नाज़में जिद्दत होती है और हर इशारेमें नया मतलब होता है । इसलिए वे हमसे मुहब्बत भी करते हैं तो कुछ और ही खयाल गुज़रता है और वदगुमानी-सी पैदा हो जाती है । अन्तरंगमें यह संकेत भी है कि अपना ऐसा भाग्य कहाँ कि वह हमसे प्रेम करें ।

यारब ! वोह न समझे हैं न समझेंगे मेरी वात ।
दे और दिल उनको, जो न दे मुझको ज़बाँ और ॥

हे ईश्वर, देखती आँखों तो उन पर मेरी वातका कुछ प्रभाव नहीं हो रहा है । अब यही उपाय हो सकता है कि या तो हमें भी इस ढंगसे कहना सिखा दे कि उनका दिल पसीजे, या उनका ही दिल वदल दे कि वह मेरी वात सुन और समझ सकें ।

---

[1]ज़्यादती; [2]सुखके वीते हुए दिनोंका; [3]चोरी किया हुआ माल; [4]डाकूपर ।

हाय रे भाग्य ! उपेक्षाकी भी हद हो गई। वे हम पर कभी कृपा करेंगे, इसकी तो आशा ही नहीं थी। जो वे ज़ुल्मोसितम करते थे, उन्हीं-को हम अपने लिए रियायते ख़ास समझते थे। अब वे हम पर जफ़ा करना भी अपनी हतक समझते हैं† ।

एक जगह और कहते हैं—

वा हसरता कि यारने खींचा सितमसे हाथ।
हमको हरीसे लज़्ज़ते आज़ार देखकर॥

अर्थात् हमें अत्याचारमें आनन्द प्राप्त करते देखकर यारने हम पर अत्याचार करना भी छोड़ दिया।

मुँद गईं खोलते ही खोलते आँखें 'ग़ालिब'!
यार लाये मेरी बालींपै[1] उसे, पर किस वक़्त ?*

× × ×

ऐ दिले ना आक़बतअन्देश[2] ! जब्तेशौक़ कर।
कौन ला सकता है ताबेजलवये दीदारे दोस्त॥

---

†तेरी सर्दमेहरी से अल्लाह तौबा।
सितम फिर सितम है, यह आफ़त नहीं है॥
नवाब अच्छन मियाँ—'अश्क' रामपुरी

मेहरबानीको मोहब्बत नहीं कहते ऐ दोस्त !
आह अब मुझसे तुझे रंजिशे बेजा भी नहीं॥
—फ़िराक़

[1]मेरे सिरहाने;

*आख़िरी शब दीदके क़ाबिल थी बिस्मिलकी तड़प।
सुबहदम कोई अगर बालाए बाम आया तो क्या ?
—इक़बाल

[2]अदूरदर्शी।

या तो दम देता था वोह या नामाबर बहकाय था।
थे ग़लत पैग़ाम सारे कौन याँतक आय था॥
सुनके मेरी मर्ग बोले "मर गया अच्छा हुआ।
क्या बुरा लगता था जिस दम सामने आजाय था"॥

न काँटोंपर कोई यूँ लोटे जूँ मैं बिस्तरे गुलपर।
तेरे बिन करवटें शब ऐ सनमअन्दाम! लेता था॥
मैं उसकी बज़्मेमयमें जहर पी क्योंकर न मर जाता।
कि मेरे सामने उस लबके बोसे जाम लेता था॥
उस लबेनाज़ुकको बर्गेगुलसे देते हैं मिसाल।
होंट बर्गेलाल थे और नील दाग़े लाला था॥

अपने लबेनाज़ुक (कोमल ओठ) की मिसाल लालाफूलसे देते सुनकर इस क़दर माशूक़को बुरा मालूम हुआ कि मारे ग़ुस्सेके उसके ओठ लाला फूलकी तरह लाल हो गये और, ग़ुस्सेमें ओठ चवानेसे दाग़ेलालाकी तरह नील पड़ गया। इस प्रकार उक्त उपमा सही चरितार्थ हो गई। माशू-क़का सौन्दर्य्य क्रोधमें बिगड़ता नहीं, और बढ़ता है।

मैंने तुमको दिल दिया, तुमने मुझे रुसवा किया।
मैंने तुमसे क्या किया और तुमने मुझसे क्या किया॥
सरसे शोले उठते हैं आँखोंसे दरिया जारी है।
शमअ़से यह किसने जिक्र उस महफ़िलआराका किया॥
रोइये क्या बख़्तेख़ुफ़्ताको कि आधीरातसे।
मैं यहाँ रोया किया और वह वहाँ सोया किया॥
आँख आशिक़की कोई फिरती है ऐ वादाख़िलाफ़!
देखले मैं मरते-मरते सूएदर देखा किया॥
चारागर कावेमें, उसके आस्ताँसे ले गये।
एक भी मेरी न मानी लाख सर पटका किया॥

ग़मसे मरता हूँ कि इतना नहीं दुनियामें कोई ।
कि करे ताज़ियते मेहरोवफ़ा मेरे बाद ॥

मरनेसे पहले इस ग़ममें मरा-जाता हूँ कि मेरे बाद दुनियामें कोई ऐसा नज़र नहीं आता जो मुहब्बत और वफ़ाका मातम (ताज़ियत) करे । मतलब यह कि मेहरोवफ़ा भी मेरे साथ ही मर जाएँगी ।

आये है बेकसियेइश्क़पै रोना 'ग़ालिब' !
किसके घर जायेगा सैलाबेबला मेरे बाद ॥

मेरे मरनेके बाद यह मुसीबतोंका तूफ़ान, जिसे इश्क़ कहते हैं, कहाँ जायगा ? अर्थात् कोई इसे निभा न सकेगा, अतः इश्क़की इस दयनीय अवस्थापर मुझे रोना आता है । अपनी चिन्ता नहीं है, जिस मुसीबतको गलेका हार बनाया हुआ है, उसीका सोच करके घुल रहे हैं ।

जीमें ही कुछ नहीं है हमारे वगर्ना हम ।
सर जाय या रहे, न रहें, पर कहे बग़ैर ॥

× × ×

मक़सद[1] है नाज़ोग़मज़ा वले[2] गुफ़्तगूमें काम ।
चलता नहीं है दश्नओख़ंजर[3] कहे बग़ैर ॥
हरचन्द हो मुशाहदए हक़की गुफ़्तगू ।
बनती नहीं है बादओसाग़र कहे बग़ैर ॥

भाषामें उपमाओंसे काम लेना ही पड़ता है । कभी माशूक़की अदा और नख़रे (नाज़ो ग़मज़ा) का दिग्दर्शन कराना हो तो उनकी उपमा छुरी और तलवारसे देनी पड़ती है । और ईश्वरीय चर्चा (मुशाहदए हक़) भी हो तब भी उपमाके लिए शराब और सुराही (बादओ साग़िर) जैसे शब्दों का प्रयोग अनिवार्य है ।

---

[1]अभिप्राय; [2]परन्तु; [3]छुरी और तलवार ।

पानीसे सगगज़ीदा डरे जिस तरह 'असद' !
डरता हूँ आईनेसे कि मर्दुमग़ज़ीदा हूँ ॥

जिस तरह पागल कुत्ते (सगगज़ीदा) का काटा हुआ पानीसे डरता है, उसी तरह मैं आईनेसे डरता हूँ; क्योंकि मैं (मर्दुम गज़ीदा) आदमी-का काटा हुआ हूँ। औरोंसे तो क्या, अपने प्रतिबिम्ब तकसे घब-राता हूँ।

क़र्ज़की पीते थे मय, लेकिन समझते थे कि हाँ।
रंग लायेगी हमारी फ़ाक़ामस्ती एक दिन ॥

कहते हैं कि यूँ कहते, यूँ कहते, जो आ जाता।
सब कहनेकी बातें हैं, कुछ भी न कहा जाता ॥
—मीर

जब पुरसिशे हाल वह करते हैं, क्या जानिये क्या हो जाता है।
कुछ यूँ ही जबान नहीं खुलती, कुछ दर्द सिवा हो जाता है ॥
—फ़ानी

कुछ इस अदासे आपने पूछा मेरा मिज़ाज।
कहना ही पड़ा' 'शुक्र है परवरदिगारका' ॥
—अज्ञात्

पुरसिशेग़मका शुक्रिया, क्या तुझे आगही नहीं।
तेरे बग़ैर जिन्दगी, दर्द है जिन्दगी नहीं ॥
—एहसान दानिश

शुक्रिया पुरसिशे अहवालका, इसरार न कर।
पूछनेवाले, कहीं तेरा ही यह राज न हो ॥
—अज्ञात्

जाते हुए कहते हो "क़यामतको मिलेंगे"।
क्या ख़ूब, क़यामतका है गोया कोई दिन और ॥

तुम जो जा रहे हो तो मेरे लिए तो अभी क़यामत आ गई। इस लिए क़यामतके दिन जो मिलना है, तो अभी मिल लो, और न जाओ। माशूक़को ठहरानेके लिए क्या तर्क निकाला है।

न गुलेनग़मा[1] हूँ न परदयेसाज़[2]।
मैं हूँ अपनी शकिस्तकी[3] आवाज़ ॥

न मेरा अस्तित्व गीत सदृश्य है, न ही मेरे अन्दर कोई राग छुपा हुआ है, मैं तो एक टूटा हुआ दिल लिये बैठा हूँ। तार टूटनेकी आवाज तो है, पर गीत न मेरे अन्दर है न बाहर।

हूँ गिरफ़्तारे उलफ़ते सैयाद !
वर्ना बाक़ी है ताक़ते परवाज़§ ॥

क़ैद करने वालेसे इतना प्यार है कि क़ैदसे आज़ाद नहीं होना चाहते; यह बात नहीं है कि हममें उड़ कर भाग जानेकी शक्ति (ताक़ते परवाज) नहीं है।

मुझको पूछा तो कुछ ग़ज़ब न हुआ।
मैं ग़रीब और तू ग़रीबनवाज़ ॥

मर गया फोड़के सर 'ग़ालिब' वहशी है-है[4]।
बैठना उसका वोह आकर तेरी दीवारके पास ॥

---

[1]गीतोंका फूल; [2]वाद्यका परदा (जिसमें वाद्य निहित होता है); [3]टूटे हुए दिलकी; [4]हाय, हाय;

§ पास था नाकामिए सय्यादका ऐ हम सफ़ीर !
वरना मैं, और उड़के जाऊँ एक दानेके लिए ?
—इक़बाल

एक ऐसा अपराध है जिसे तू भी क्षमा न करेगा, क्योंकि इससे तेरी क्षमाशक्तिके प्रति अविश्वास झलकता है* ।

जहाँ तेरा नक़्शेक़दम देखते हैं ।
ख़याबाँ-ख़याबाँ[1] अरम[2] देखते हैं ।।

जिस जगह तेरे क़दमोंके निशान होते हैं वहाँ बहिश्तके बाग़का दृश्य दिखाई देता है ।

बनाकर फ़क़ीरोंका हम भेस 'ग़ालिब' !
तमाशाए अहले करम[3] देखते हैं ।।

× × ×

ता फिर न इन्तज़ारमें नींद आये उम्रभर ।
आनेका वादा कर गये आये जो ख़्वाबमें ।।

माशूक़ स्वप्नमें आ कर कह गया कि तू निराश मत हो, मैं अवश्य आ कर तुझे मिलूंगा । अब उसकी इन्तजार करनी पड़ गई और इन्तजारमें सो भी नहीं सकते । यानी घड़ी दो घड़ीको आँख लगनेसे जो शान्ति मिलती थी वह भी लोप हो गई ।

मुझतक कब उनकी बज़्ममें आता था दौरेजाम[4] ।।
साक़ीने कुछ मिला न दिया हो शराबमें ।।

और लोग शराब पीते रहते थे, हम उनको पीते देखते थे और अपने भाग्यको कोसते थे । आज हमारे पीनेके लिए जो प्याला आया तो सन्देह होता है कि कहीं शराबमें जहर तो नहीं मिला दिया । वरना साक़ीसे

---

*फ़रिश्ते हश्रमें पूछेंगे पाकबाज़ोंसे ।
गुनाह क्यों न किये, क्या ख़ुदा ग़फ़ूर न था ।।
—अज्ञात

[1]बाग़; [2]बहिश्त; [3]दानियोंका तमाशा; [4]शराबका दौर ।

देखते रहें और उनके समक्ष अपमान होता रहे, यह अत्यन्त कष्टदायक और ग्लानिकारक होता है। अतः परमात्माका धन्यवाद है कि उसने परदेशमें प्राण लेकर बेकसी और मजबूरियोंकी शर्म रख ली।

इसी मज़मूनको ग़ालिबने कई तरहसे बाँधा है:—

हुए हम जो मरके रुसवा हुए क्यों न ग़र्क़ेदरिया।
न कभी जनाज़ा उठता, न कहीं मज़ार होता॥

अथवा

करते किस मुँहसे हो ग़ुरबतकी शिकायत 'ग़ालिब'!
तुमको बेमहरिए याराने वतन याद नहीं?

× × ×

थी वोह इक शख़्सके तसव्वुरसे।
अब वोह रानाइयेख़याल कहाँ?

जब प्रेम करते थे तो प्रेयसीके चिन्तनमें तल्लीन रहते थे और अनेक रंगीन विचार मस्तिष्कमें आते थे। अब न प्रेम, न प्रेयसी, तो विचारोंमें रंगीनी (रानाइए ख़याल) कहाँसे आवे। जीवनका सोता ही सूख गया है।

फ़िक्रेदुनियामें सर खपाता हूँ।
मैं कहाँ, और यह बवाल कहाँ?

सचमुच, एक साहित्यिक अथवा कविके लिए आटे-दालकी चिन्ता हृदयविदारक आडम्बर है।

आज हम अपनी परेशानियेख़ातिर[1] उनसे।
कहने जाते तो हैं, पर देखिये क्या कहते हैं*॥

---

[1]मनोवेदना;

*इस विषयके चन्द अशआर दिये जाते हैं:—

फिर बेख़ुदीमें[1] भूल गया राहे कूए यार[2]।
जाता वगर्ना एक दिन अपनी ख़बरको मैं ॥

× × ×

छोड़ा न रश्कने कि तेरे घरका नाम लूँ।
हर-इकसे पूछता हूँ कि जाऊँ किधरको मैं ॥

रश्क़की वजहसे किसीसे तेरा घर नहीं पूछ सकता कि कहीं मुझसे पता सुन कर कोई और न वहाँ पहुँच जाय। इस लिए रास्ता मालूम करनेके लिए बस इतना पूछता हूँ कि क्यों भाई मैं किधरको जाऊँ। ऐसा पथिक निर्दिष्ट स्थान पर कब और कैसे पहुँचेगा, इसका अनुमान भी नहीं किया जा सकता। रश्कने किस दयनीय स्थितिको पहुँचा दिया है।

ज़िक्र मेरा ब-बदी भी उसे मंज़ूर नहीं।
ग़ैरकी बात बिगड़ जाय तो कुछ दूर नहीं ॥

आज कल तो ग़ैरकी माशूक़के साथ बनी हुई है। लेकिन जल्दी चटक जायगी। कारण, वह मेरी बुराई करनेसे बाज़ नहीं आयगा, और माशूक़ मेरा नाम (ब-बदी) बुराईके शब्दोंमें भी सुननेको तय्यार नहीं। ग़ैर अपनी हरकत नहीं छोड़ेगा और इसलिए माशूक़ उससे भी बिगड़ जायगा।

क़तरा अपना भी हक़ीक़तमें है दरिया लेकिन।
हमको तक़लीदे तुनक ज़र्फ़िए मनसूर नहीं ॥

हम भी वह बून्द (क़तरा) हैं जो दरिया बनजानेकी शक्ति रखते हैं; परन्तु अपनी शक्ति और महत्ताका वर्णन अपने मुँहसे नहीं करना चाहते। क्योंकि हम मन्सूरकी तरह ओछे (तुनकज़र्फ़) नहीं हैं, जिसने अपने मुँहसे अनलहक़ (मैं ईश्वर हूँ) कह दिया था। हम उसका अनुकरण (तक़लीद) नहीं करेंगे।

---

[1]तन्मयतामें; [2]प्रेयसीकी: गलीका रास्ता।

नग़माहायेग़मको[1] भी ऐ दिल ! ग़नीमत जानिये ।
बेसदा[2] हो जायगा यह साज़ेहस्ती[3] एक दिन ॥

कैसा कठोर सत्य इस शेरमें भर दिया है । एक दिन प्राणका पंछी उड़ जायगा, और न दुख शेष रहेगा, न सुख । जब सुख भाग्यमें नही है तो दुख का अंत होने का अर्थ है जीवनका समाप्त हो जाना । इसलिए दुखको ही ग़नीमत जानो कि वह जीवनका द्योतक तो है ।

किस मुँहसे शुक्र कीजिये उस लुत्फ़ेख़ासका[4] ।
पुरसिश[5] है और पाएसुख़न[6] दरमियाँ नहीं ॥

आँखों ही आँखोंमें विना किसी प्रकारका वार्तालाप किये मेरे मनकी वात और मेरा हाल पूछ रहे हैं । उनके इस अनुग्रहका किस प्रकार धन्यवाद करूँ ?

जब करम रुख़सते बेबाकी-ओ-गुस्ताख़ी दे ।
कोई तक़सीर बजुज़ ख़िजलते तक़सीर नहीं ॥

जब तू स्वयम् इतना रहमदिल और दयालु है कि हमारे सारे गुनाह माफ़ कर देगा, और तू स्वयम् अनुमति देता है कि हम निडर और गुस्ताख़ बन बैठें तो अपने गुनाहोंपर शर्मिन्दा (ख़िजल) हों, इस अपराध (तक़सीर) से बड़ा अपराध और क्या हो सकता है ? अर्थात् और सारे अपराध तो तू क्षमा कर देगा, लेकिन अपराधोंसे लज्जित होना

---

[1]रुदनरूपी संगीतको;
[2]बेआवाज;
[3]जीवन रूपी वाद्य;
[4]विशेप अनुग्रहका;
[5]पूछ ताछ;
[6]वार्तालाप ।

दिल लगाकर लग गया उनको भी तनहा बैठना।
हाय अपनी बेकसीकी हमने पाई दाद याँ ॥

हम तो बेकस थे ही वह भी किसीको दिल दे बैठे और अब उन्हें भी पता लग गया कि प्रेममें क्या पापड़ बेलने पड़ते हैं।

यह हम जो हिज्रमें दीवारोदरको देखते हैं।
कभी सबाको कभी नामाबरको देखते हैं॥

दीवारको इसलिए देखते हैं कि शायद उसके कूचेकी हवा ही इस तरफ़ आजाँय और हमारे विरह-पीड़ित मनको शान्ति दे और दरवाज़ेको इसलिए कि क़ासिद अब भी आये, अब भी आये।

वोह आएँ घरमें हमारे ख़ुदाकी क़ुदरत है।
कभी हम उनको कभी अपने घरको देखते हैं॥*

इतना बड़ा सौभाग्य हमारा हो सकता है, सुदामाके घर कृष्ण आ सकते हैं, यह विश्वास ही नहीं होता।

जहाँमें हों ग़मोशादी बाहम[1] हमें क्या काम।
दिया है हमको ख़ुदाने वह दिल कि शाद नहीं॥

---

*इस शेर पर एक साहबने मज़ाहिया तज़मीन करके शेरको दो कौड़ी-का करके रख दिया है—लेकिन नई बात निकाली है जो दिलचस्पीसे ख़ाली नहीं।

सुना है जबसे कि चोरीकी उनको आदत है।
हमें हिफ़ाज़ते सामाँकी सख़्त दिक़्क़त है॥
निगाहदाश्तकी हर वक़्त किसको फ़ुर्सत है।
वह आएँ घरपै हमारे ख़ुदाकी क़ुदरत है॥
कभी हम उनको कभी अपने घरको देखते हैं।

[1]परस्पर।

यह आशा कहाँ कि हमें शराब पिलाए। ज़हरकी जगह "कुछ" लिखनेमे शेर चमक उठा है।

मैं और हज़्ज़ेवस्ल[1] ख़ुदासाज़[2] बात है।
जाँ नज़्र देनी भूल गया इज़्तराबमें[3]॥

मैं इस हैरतमें रहा कि कहाँ मैं और कहाँ वस्लकी लज़्ज़त। मारे खुशीके मुझे मर जाना चाहिए था। परन्तु घबराहटमें जान देनी ही भूल गया।

लाखों लगाव एक चुराना निगाहका।
लाखों बनाव एक बिगड़ना अताबमें॥

माशूक़का आँखें चुराना लगावटकी लाखों बातोंसे भी अधिक आकर्षक है, और गुस्सेमें एक बार बिगड़ना लाखों शृंगारोंसे भी अधिक मोहक।

हैराँ हूँ दिलको रोऊँ कि पीटूँ जिगरको मैं।
मक़दूर[4] हो तो साथ रखूँ नौहागरको[5] मैं॥

ईरानमें शोक करनेवाले किराये पर आते थे। जो जितना वैभवशाली होता था, अपने निकटजनकी मृत्युके समय उतने ही अधिक शोक करनेवालोंको बुलाता था। उसी प्रथाकी ओर इशारा है। चूंकि दिलकी और जिगरकी दो मौतें एक साथ हो गई हैं और यह खुद अकेले है, इसलिए नौहागरकी जरूरत महसूस हुई है।

जाना पड़ा रक़ीबके दरपर हज़ार बार।
ऐ काश जानता न तेरी रहगुज़रको मैं॥

---

[1] मिलनका आनन्द; [2] ईश्वरीय देन; [3] घबराहटमें; [4] सामर्थ्य; [5] शोक करनेवालेको।

याद थीं हमको भी रंगारंग बज़्मआराइयाँ।
लेकिन अब नक़्शोनिगारे ताक़ेनिसयाँ हो गईं ॥

ऐ बज़्म आराई पर नाज़ करने वालो! हम भी बज़्मकी रंगा-रंगी (सुखके दिन) देख चुके हैं। मगर अब तो वे दिन ताक़ेनिसियां (वह आला जिसमें कोई वस्तु रखकर भूल जाएँ) की सजावट (नक़्शो-निगार) के रूपमें रह गये हैं अर्थात् स्मृतिपटसे भी लोप हो गये हैं।

नींद उसकी है, दिमाग़ उसका है, रातें उसकी हैं।
तेरी ज़ुल्फ़ें जिसके बाज़ूपर परेशाँ हो गईं ॥*

रंजसे ख़ूगर हुआ इन्साँ तो मिट जाता है रंज।
मुश्किलें इतनी पड़ीं मुझपर कि आसाँ हो गईं ॥

× × ×

वाँ जो पहुँचा भी तो उनकी गालियोंका क्या जवाब?
याद थीं जितनी दुआएँ सर्फ़ दरबाँ हो गईं ॥

माशूक़के घर घुसते ही पहिले तो दरबानने गालियोंसे सत्कार किया। उसको गालियोंके बदले असीस दी। नहीं तो वह अन्दर कब घुसने देता? अन्दर पहुँचे तो माशूक़ने गालियोंसे खबर ली। उसको भी बदलेमें दुआ देना ज़रूरी। लेकिन जो दुआएँ याद थीं, वह दर्बानको दे आये। दरबानवाली दुआएँ माशूक़को कैसे दें, इसमें उसकी हतक है। नई और याद नहीं। इसी असमंजसमें हैं।

दिलको नियाज़े हसरते दीदार कर चुके।
देखा तो हममें ताक़ते दीदार भी नहीं ॥

---

*दिन वही दिन हैं शब वही शब है।
जो तेरी यादमें गुज़र जाएँ ॥
—हसरत मोहानी

मैं जो कहता हूँ कि हम लेंगे क़यामतमें तुम्हें।
किस रऊनतसे[1] वोह कहते हैं कि "हम हूर नहीं" ॥

× × ×

कम नहीं वोह भी ख़राबीमें पै वुसअ़त मालूम।
दश्तमें है मुझे वह ऐश कि घर याद नहीं॥

यूँ तो हमारा घर भी उजाड़पने और वीरानीमें किसी जंगलसे कम नहीं। मगर उसका क्षेत्र सीमित है। उसमें इतनी विशालता नहीं जो हमारे उन्मादके लिए चाहिए। इसी कारण घर छोड़ कर हम जंगलोंमें रहते हैं, और वह जगह हमें इतनी आरामदेह है कि हमें भूलकर भी घर याद नहीं आता।

कम नहीं जलवागरीमें तेरे कूचेसे बहिश्त।
यही नक़्शा है वले[2] इसक़दर आबाद नहीं॥

सजावट तो बहिश्तमें भी माशूक़की गलीसे कम नहीं है, परन्तु भीड़-भाड़ और रौनक़ इतनी नहीं है। किस ढंगसे माशूक़की गलीको बहिश्तसे बढ़ा कर दिखाया है।

थक-थकके हर मुक़ामपै दो-चार रह गये।
तेरा पता न पाएँ तो नाचार क्या करें॥

शेर तसव्वुफ़में है। ईश्वरको खोजनेवाले रास्तेमें ही थककर रह जाते हैं।

हो गई है ग़ैरकी शीरींबयानी कारगर[3]।
इश्क़का उसको गुमाँ[4] हम बेज़बानोंपर नहीं।

ग़ैर चरब-चरब बोलकर और चिकनी-चुपड़ी बातें करके माशूक़को फुसला लेता है। हमें ऐसी बातें नहीं आतीं और चुप रहते हैं तो वह इसका यह अर्थ निकाल बैठा है कि हम उसके प्रेमी नहीं हैं।

---

[1]गर्वसे; [2]लेकिन; [3]सफल; [4]सन्देह।

गुंजाइशे अदावते अग़ियार इक तरफ़।
याँ दिलमें ज़ोफ़से हविसे यार भी नहीं॥

हम प्रतिद्वन्द्वी (अग़ियार) के प्रति शत्रुताके भाव कहाँसे रखें। हमारा हृदय तो निर्बलताके कारण अब प्रेयसीकी चाहतका भार भी नहीं उठा पा रहा है।

न जानूँ नेक हूँ या बद हूँ, पर सुहबत मुख़ालिफ़ है।
जो गुल हूँ तो हूँ गुलख़नमें जो ख़स हूँ तो हूँ गुलशनमें॥

यह तो मुझे मालूम नहीं कि मैं अच्छा हूँ या बुरा हूँ। लेकिन सुहबत मुझे मुख़ालिफ़ मिली है अर्थात् वातावरण प्रतिकूल है। यदि मैं फूल हूँ तो बजाय गुलशनके मैं भट्ठी (गुलख़न) में हूँ और अगर मैं कांटा (ख़स) हूँ तो चमनमें हूँ।

दिल ही तो है न संगोख़िश्त[1] दर्दसे भर न आये क्यों ?
रोएँगे हम हज़ार बार, कोई हमें सताये क्यों ?
दैर[2] नहीं, हरम[3] नहीं, दर नहीं, आस्ताँ[4] नहीं।
बैठे हैं रहगुज़रपै[5] हम, ग़ैर हमें उठाए क्यों॥

× × ×

क़ैदेहयातो बन्देग़म अस्लमें दोनों एक हैं।
मौतसे पहले आदमी ग़मसे निजात पाए क्यों ?

यह जीव शरीर रूपी पिंजरेमें क़ैद है। जब तक इस शरीरमें रहेगा कष्ट उठाता रहेगा। ज़िन्दगी और कष्टोंका बंधन (क़ैदेहयात और बन्देग़म) परस्पर भिन्न नहीं, अपितु एक ही अवस्थाके दो नाम हैं।

---

[1]ईंट-पत्थर; [2]मन्दिर; [3]मस्जिद;
[4]किसीकी बैठक; [5]रास्तेमें।

लोग कहते हैं कि जहाँ सुख है, वहाँ दुख है, जहाँ शोक है, वहाँ हर्ष भी है। हमें तो इससे मतलव कुछ नहीं, क्योंकि हमारे भाग्यमें तो दुख ही दुख है।

कभी जो याद भी आता हूँ मैं तो कहते हैं—
कि "आज बज़्ममें कुछ फ़ितन-ओ-फ़िसाद[1] नहीं॥"

तुम उनके वादेका जिक्र उनसे क्यों करो 'ग़ालिब'!
यह क्या कि तुम कहो और वोह कहें कि याद नहीं* ॥

आशय यह है कि इतना भी गिरना किस कामका।

आहका किसने असर देखा है?
हम भी इक अपनी हवा बाँधते हैं॥

आह करनेका कुछ प्रभाव नहीं होगा, यह हम भी जानते हैं। हम तो केवल शेख़ीके मारे कहते हैं कि हमारी आह उनको-प्रभावित करके रहेगी।

सब कहाँ कुछ लालओगुलमें नुमायाँ हो गईं।
ख़ाकमें क्या सूरतें होंगी कि पिनहाँ हो गईं॥

सब सूरतें तो नहीं, हाँ कुछ सूरतें फूलोंके रूपमें प्रकट (नुमायाँ) हुई हैं। यानी फूलोंके सौन्दर्यसे अनुमान लगाया जा सकता है कि मिट्टी-में कैसी-कैसी सूरतें विलीन हो गई हैं।

---

[1]झगड़ा, ऊधम;

*तेरे सवालपै चुप हैं इसे ग़नीमत जान।
कहीं जवाव न दे दें कि मैं नहीं सुनता॥
—अज्ञात

अर्ज़ेग़म न कर ऐ दिल, देख हम न कहते थे।
रह गये वह 'ऊँह' कहकर, सुन लिया जवाब उनका!
—जिगर मुरादाबादी

नामावर पत्र देकर मुहँ देखने लगा है। पत्र देनेपर इसे चला जाना चाहिए था। पर मुहँ देखनेसे अनुमान होता है कि इसे कुछ कहना है। कहनेका साहस नहीं है, मालूम होता है शायद पत्रके साथ ज़बानी गालियाँ भी भेजी हैं।

बारहा देखी हैं उनकी रंजिशें।
पर कुछ अबके सरगरानी और है* ॥

यूँ तो अनेक बार (बारहा) हमने उन्हें नाराज़ देखा है, पर अबकी बार तो इतने नाराज़ हैं कि मननेमें ही नहीं आते।

कोई उम्मीद बर नहीं आती[1]।
कोई सूरत नज़र नहीं आती ॥
मौतका एक दिन मुअ़य्यन है[2]।
नींद क्यों रातभर नहीं आती ॥

× × ×

आगे आती थी हाले़दिलपै हँसी।
अब किसी बातपर नहीं आती ॥

हाले दिल जितना क़ाबिले रहम था, वह तो सब जानते हैं, पहले हमारी सहनशक्ति इतनी थी कि उन दुखोंपर भी हँस दिया करते थे। अब जी इतना बुझ गया है कि सुख-संवाद भी हमें हर्षित नहीं कर सकता।

जानता हूँ सवाबेताअ़तो ज़ुहद[3]।
पर तबियत उधर नहीं आती ॥

---

*वफ़ाएवादा नहीं, वादएदिगर भी नहीं।
वह हमसे रूठे तो थे, लेकिन इस क़दर भी नहीं ॥
—फ़ैज़

[1]पूरी नहीं होती; [2]निश्चित; [3]सदाचरणका पुण्य।

हसरते दीदार (देखनेकी अभिलाषा) के पीछे रो-रो कर और घुल-घुल कर हमने दिल नष्ट कर दिया। यानी जिस दिलको हसरते दीदार थी, हमने उसी को नष्ट कर दिया। मगर जब उनका दीदार हुआ, तो पता लगा कि हम में उनका सौन्दर्य्य देखने की शक्ति ही नहीं है, अर्थात् सारा प्रयत्न व्यर्थ गया।

मिलना तेरा अगर नहीं आसाँ तो सहल है।
दुश्वार तो यही है कि दुश्वार भी नहीं॥

तेरा मिलना आसान न होता, यानी दुश्वार होता तो कोई दिक़्क़त नहीं थी। क्योंकि हम हताश होकर बैठ रहते और उत्कंठा तथा अभिलाषा की चिन्तासे मुक्ति पाते। परन्तु मुश्किल तो यह है कि तेरा मिलना जिस तरह आसान नहीं, उसी तरह दुश्वार भी नहीं। प्रयत्न करने पर सफलता मिल सकती है। इसी आशा और विश्वास पर हम दिन-रात संलग्न रहते हैं।

बेइश्क़ उम्र कट नहीं सकती है और याँ।
ताक़त बक़दरे लज़्ज़ते आज़ार भी नहीं॥

जिस जीवनमें प्यार नहीं वह जीवन भी क्या? प्रेमके बिना जीवन व्यतीत हो ही नहीं सकता; परन्तु यहाँ निर्बलताका यह हाल है कि कष्टोंके आनन्दको सहन करनेकी भी क्षमता नहीं रही; फिर प्रेम किस बलबूते पर किया जाय?

शोरीदगीके हाथसे सर है बबालेदोश।
सहरामें ऐ ख़ुदा कोई दीवार भी नहीं॥

हमारी दीवानगी (शोरीदगी) का यह आलम है कि अपने कन्धों पर सरका बोझ भी बबालेजान मालूम होता है। जी चाहता है कि सरको फोड़-फोड़ कर ख़त्म कर दें; मगर अफ़सोस जंगलमें सर फोड़नेको दीवार भी नहीं मिलती।

वैभवके आडम्बरोंपर कैसी करारी चोट की है।

बेतलब[1] दें तो मजा उसमें सिवा मिलता है।
वोह गदा[2] जिसको न हो ख़ूएसवाल[3] अच्छा है॥

क़तरा दरियामें जो मिल जाय तो दरिया हो जाय।
काम अच्छा है वोह जिसका कि मआल[4] अच्छा है॥

हमको मालूम है जन्नतकी हक़ीक़त लेकिन—
दिलके ख़ुश रखनेको 'ग़ालिब' यह ख़याल अच्छा है॥

× × ×

न हुई गर मेरे मरनेसे तसल्ली न सही।
इम्तहाँ और भी बाक़ी हो तो यह भी न सही॥

अगर मेरे मरनेसे भी तुम्हारी तसल्ली नहीं हुई है और अभी अत्याचार करनेके वलवले बाक़ी हैं तो अभी मेरी लाश मौजूद है, आप शौक़से अपनी अभिलाषा पूरी करें।

इशरते सुहबते ख़ूबाँ ही ग़नीमत समझो।
न हुई 'ग़ालिब' अगर उम्रेतबीई न सही॥*

प्रथम तो जीवनमें सुख मिलता नहीं और मिलता भी है तो क्षणिक। अतः यदि पूरी आयु (उम्रे तबीई) प्राप्त न हुई तो न सही, प्रेयसीके निकट जो क्षण भर गुज़रा है वही ग़नीमत है।

---

[1]बे माँगे; [2]फ़क़ीर सन्यासी; [3]माँगनेकी आदत; [4]अन्त।

*उम्रभर रेंगते रहनेसे कहीं बहतर है।
एक लम्हा जो तेरी रूहमें वुसअ़त भर दे॥

एक लम्हा जो तेरे गीतको शोख़ी दे दे।
एक लम्हा जो तेरी लै में मसर्रत भर दे॥

—साहिर लुधियानवी

मुझे इससे प्रसन्नता होती है, ख्वाह किसी बहानेसे भी सही, मेरा ज़िक्र तो वहाँ होता है* ।

हर बुलहविसने हुस्नपरस्ती शआ़रकी ।
अब आबरूए शेवए अहले नज़र गई ॥

प्रत्येक कामुक प्रेमीने सौन्दर्य्य पूजाको अपना धन्धा बना लिया । टके सेर भाजी टके सेर खाजा हो गया । अब पारखियोंके हुनरका कौन सम्मान करेगा, सच्चे प्रेमीके गुणको कौन जानेगा ।

तुमको भी हम दिखाएँ कि मजनूँने क्या किया ।
फ़ुरसत कशाकशे ग़मेपिनहाँसे गर मिले ॥

बड़ा चर्चा है इस बातका कि मजनूँ सरीखा संसारमें आज तक कोई आशिक़ नहीं हुआ । हमारा दावा है कि हमारे सामने मजनूँ भी कुछ नहीं, और हम यह साबित कर सकते हैं, परन्तु क्या करें, दुखोंकी खींचातानी दम लेने दे तभी तो ।

कोई दिन गर जिन्दगानी और है ।
अपने जीमें हमने ठानी और है ॥

आतिशे दोज़ख़में[1] यह गर्मी कहाँ ?
सोजेग़महाए निहानी[2] और है ॥

× × ×

देके ख़त मुँह देखता है नामाबर ।
कुछ तो पैग़ामेज़बानी और है ॥

---

* वोह दुश्मनीसे देखते हैं, देखते तो हैं ।
मैं शाद हूँ कि हूँ तो किसीकी, निगाहमें ॥
—अमीर मीनाई

[1]नर्काग्नि में; [2]दिलमें छुपे हुए दुखोंकी जलन ।

कहाँ मयख़ानेका दरवाजा 'ग़ालिब' और कहाँ वाइज़ ।
पर, इतना जानते हैं, कल वोह जाता था कि हम निकले ।।

× × ×

सियाही जैसे गिर जाये दमेतहरीर काग़ज़पर ।
मेरी क़िस्मतमें यूँ तसवीर है शबहायेहिजराँकी ।।

मेरे जीवनमें विरहकी रातें (शबहाए हिज्राँ) यूँ भरी पड़ी हैं, जैसे लिखते समय (दमे तहरीर) काग़ज़पर सियाही गिर पड़े और काले धब्बोंसे काग़ज़ भर जाय ।

पच आ पड़ी है वादयेदिलदारकी मुझे ।
वोह आये या न आये, मुझे इन्तज़ार है ।।*

मुझे भी उनके वादा करनेसे ज़िद (पच) हो गई है कि इन्तज़ार ज़रूर करना, चाहे वोह आवें या न आवें ।

फूँका है किसने गोशेमुहब्बतमें ऐ ख़ुदा !
अफ़सूने इन्तज़ारे तमन्ना कहें जिसे ।।

तानेके ढंग पर मिर्ज़ा ख़ुदासे पूछते हैं कि ऐ ख़ुदा ! मुहब्बतके कानमें यह जादू (अफ़सूँ) किसने फूँक दिया कि तमन्नाके पूरी होनेका इन्तज़ार करते रहना । न तमन्ना कभी पूरी होगी न मोहब्बतका इन्तज़ार समाप्त होगा । यह इन्तज़ार ही शायद मोहब्बतकी जान है ।§

---

* न जाने किस लिए उम्मीदवार बैठा हूँ ।
एक ऐसी राहपै जो उनकी रहगुज़र भी नहीं ।।
—फ़ैज़

§ कहीं वह आके मिटा दें न इन्तज़ारका लुत्फ़ ।
कहीं क़बूल न हो जाय इल्तजा मेरी ।।
—जिगर मुरादाबादी

मेरे अंधेरे घर (ज़ुलमतकदे) में दुखकी रात (शबेग़म) पूर्ण रूपसे अपना प्रभुत्व जमाए हुए है, और काटे नहीं कटती। रात समाप्त हो तो कुछ चैन नसीब हो। पर सुबह है कि होनेमें ही नहीं आती। यूँ, शमअ़का बुझ जाना सूर्योदयका द्योतक होता है, पर यहाँ शमअ़ भी बुझ चुकी (ख़ामोश) है, फिर भी अंधेरा ज्योंका त्यों है। दुख और निराशाके अंधकारका कितना भयानक चित्र है*।

हूँ सरापा[1] साज़े आहंगे शिकायत[2], कुछ न पूछ।
है यही बहतर कि लोगोंमें न छेड़े तू मुझे॥†

मैं शिकायतोंसे भरा बैठा हूँ, तूने ज़रा छेड़ा और मैंने दिलकी भड़ास निकाली। सबमें तेरी बदनामी हो जायगी।‡

और बाज़ारसे ले आये अगर टूट गया।
साग़िरे जमसे[3] मेरा जामेसिफ़ाल[4] अच्छा है॥

---

*एक और जगह इसी मज़मूनको ग़ालिब इस तरह बांधते हैं:—

जिसे नसीब हो रोज़ेसियाह मेरा-सा।
वह शख़्स दिन न कहे रातको तो क्योंकर हो॥

[1]मुजस्सिम; [2]शिकायतके सुर निकालनेका बाजा;

†हम भरे बैठे थे क्यों आपने छेड़ा साहब।
देखा आख़िर न, कि फोड़ेकी तरह फूट बहे॥
—ज़ौक़

‡इसी मज़मूनको एक जगह और बांधा है—

पुर हूँ मैं शिकवेसे यूँ रागसे जैसे बाजा।
एक ज़रा छेड़िये फिर देखिये क्या होता है॥

[3]जमशेद बादशाहका प्रसिद्ध प्याला; [4]मिट्टीका प्याला।

कहते हुए साक़ीसे हया आती है वर्ना।
है यूँ कि मुझे दुर्देतहेजाम बहुत है॥

हमारा स्वाभिमान हमें इजाज़त नहीं देता कि हम अपना भरम साक़ी पर प्रकट करें। अन्यथा हमारी स्थिति तो ये है कि जिस शराबकी तलछट (दुर्देतहेजाम) को वह फेंक रहा है, वही हमारे लिए पर्याप्त है। एक स्वाभिमानीकी अभिलषित मनोदशाका कितना सजीव चित्रण है।

नै तीर कमाँमें है न सैयाद कमींमें।
गोशेमें क़फ़सके मुझे आराम बहुत है॥

बुलबुल कहती है कि मैं पिंजरेमें बहुत आरामसे हूँ, न अब मेरे लिए कोई कमानमें तीर लगाता है और न सैयाद ताकमें रहता है। भाव ये है कि मैं एकान्तमें रहकर इतना गुमनाम जीवन व्यतीत कर रहा हूँ कि किसीको भी ईर्ष्या नहीं होती*।

ज़मज़म ही पै छोड़ो मुझे क्या तोफ़ेहरमसे।
आलूदा बमय जामये अहराम बहुत है॥

ज़मज़म काबेके एक पवित्र कुएँका नाम है। जहाँपर हाजी मदीनेकी परिक्रमा देनेसे पूर्व शरीर-शुद्धिके लिए वज़ू करते हैं, और जामये अहराम उस लिबासका नाम है, जिसे पहनकर परिक्रमा दी जाती है। मिर्ज़ाकी रिन्दाना जुरअतका क्या कहना ? वे हजमें भी शराब साथ ले गये और ग़ज़ब यह किया कि जामये अहराम पहन कर जमजम पर बैठकर इतनी पी कि बेख़ुदीमें वह यात्रा करनेका पवित्र लिबास भी

*—शोहरत और ख़ुशीकी जिन्दगी ही दुखोंको निमंत्रण देती है, इस भावको असग़र गोण्डवीने यूँ अदा किया है—

नग़मये पुरदर्द छेड़ा मैंने इस अन्दाज़से।
ख़ुदबख़ुद पड़ने लगी मुझपर नजर सैयादकी॥

कौन है जो नहीं है हाजतमन्द।
किसकी हाजत रवा करे कोई॥

× × ×

क्या किया ख़िज्ऱने सिकन्दरसे।
अब किसे रहनुमा करे कोई॥

ख़िज्ऱ सिकन्दरको आबेहयातके चश्मेपर ले तो गया, मगर आबे-हयात स्वयं पी लिया और उसे उन आदमियोंके सामने ले गया, जिन्होंने यह आबेहयात पी तो लिया था, लेकिन बुढ़ापे और कमज़ोरीकी वजहसे गोश्तके लोथड़ेसे मालूम होते थे। सिकन्दरने उनकी यह हालत देखकर पानी न पिया। मिर्ज़ा फ़र्माते हैं जब ख़िज्ऱ जैसा राहबर ऐसा धोखा दे सकता है, तब और किस रहनुमापर विश्वास किया जाय?

हज़ारों ख़्वाहिशें ऐसी कि हर ख़्वाहिशपै दम निकले।
बहुत निकले मेरे अरमान लेकिन् फिर भी कम निकले॥
मगर[1] लिखवाये कोई उसको ख़त तो हमसे लिखवाये।
हुई सुबह और घरसे कानपर रखकर क़लम निकले॥

× × ×

हुई जिनसे तवक़्क़ोह ख़स्तगीकी दाद पानेकी।
वोह हमसे भी ज़ियादा ख़स्तये तेग़े सितम निकले॥

जिन लोगोंसे हमें अपने दुख (ख़स्तगी) में सहानुभूति और सहायता पानेकी आशा (तवक़्क़ोह) थी, वह हमसे भी बढ़कर दुखों का शिकार (ख़स्तएतेग़े सितम) नज़र आये। अर्थात् अब किसी तरफ़से कोई आशा नहीं।

मुहब्बतमें नहीं है फ़र्क़ जीने और मरनेका।
उसीको देखकर जीते हैं जिस काफ़िरपै दम निकले॥

---

[1] शायद।

मौतसे कहते हैं कि अभी तो इश्क़का शुरू है, और तू अभीसे हमारी जान लेनेको आ गई। अभी तो मुझे बहुत काम करने हैं। कमसे कम जिगरका ख़ून तो आँखोंसे टपक जाय। अर्थात् इश्क़की कुछ मंज़िलें तो तै कर लें।

होगा कोई ऐसा भी कि ग़ालिबको न जाने।
शायर तो वह अच्छा है, पै बदनाम बहुत है॥

मुद्दत हुई है यारको मेहमाँ किए हुए।
जोशे क़दहसे[1] बज़्म चराग़ाँ[2] किए हुए॥
करता हूँ जमा फिर जिगरे लख़्त-लख़्तको[3]।
मुद्दत हुई है दावते मिज़गाँ[4] किए हुए॥
फिर दिल तवाफ़े कूए मलामत[5]को जाए है।
पिन्दारका[6] सनमकदा[7] वीराँ किए हुए॥
फिर शौक़ कह रहा है ख़रीदारकी तलब।
अर्ज़ मताए अक़्लो दिलोजाँ किए हुए॥
दौड़े है फिर हर एक गुलो लाला पर ख़याल।
सदगुलसिताँ निगाहका सामाँ किए हुए॥
फिर चाहता हूँ नामए दिलदार खोलना।
जाँ नज़्रे दिल फ़रेबिए उनवाँ[8] किए हुए॥
माँगे है फिर किसीको मुक़ाबिलमें आर्ज़ू।
सुरमेसे तेज़ दश्नए मिज़गाँ[9] किए हुए॥

---

[1]प्यालों से; [2]आलोकित; [3]जिगरके टुकड़ोंको;
[4]पलकोंको निमंत्रित; [5]बदनाम कूचेकी तरफ़; [6]स्वाभिमानका;
[7]मन्दिर; [8]सरनामेकी दिलफ़रेबीपर न्यौछावर;
[9]पलकोंका खंजर।

ग़ालिब बुरा न मान जो वाइज़ बुरा कहे।
ऐसा भी कोई है कि सब अच्छा कहें जिसे॥

× × ×

नाकरदा[1] गुनाहोंकी भी हसरत की मिले दाद[2]।
यारब ! अगर इन करदा गुनाहोंकी सजा है॥

हे ईश्वर ! यह कहाँका न्याय है कि जो मैंने गुनाह किये हैं, उनकी तो तू सज़ा दे रहा है, लेकिन जो गुनाह मैंने नहीं किये हैं, उनका पुरस्कार कुछ भी नहीं मिल रहा है। ईश्वरके समक्ष इतनी निर्भीकता और स्पष्टता-से बोलना, मिर्ज़ाकी दिलेरी और शोख़ीकी बहतरीन मिसाल है।

वाइज़ ! न तुम पियो न किसीको पिला सको।
क्या बात है तुम्हारी शराबेतहूरकी !!

वाइज़ पर छींटा फका है कि तुम बहिश्तकी शराब (शराबे तहूर) की शेख़ी क्या बघारते हो, प्रत्यक्ष कोई चीज़ हो तो हम मानें।

गरमी सही कलाममें लेकिन न इस क़दर।
की जिससे बात उसने शिकायत ज़रूर की॥

ज़बानमें थोड़ी-बहुत शोख़ी और चुस्ती तो ठीक, लेकिन इतनी गर्मी भी किस कामकी कि हर एक शिकायत करे।

'ग़ालिब' गर इस सफ़रमें मुझे साथ ले चलें।
हजका सवाब नज़्र करूँगा हुज़ूरकी॥

कौन दीवाना हजके पुण्य (सवाब) का अभिलाषी है। किसी तरह उनके साथ रहूँ, यही मेरी तमन्ना है। अगर मुझे वे अपने साथ हजको ले चलें तो हज यात्राका पुण्य जो मुझे प्राप्त होगा, वह मैं उन्हींको दे दूँगा। बादशाहके हजको जानेके लिए तय्यार होते समय यह शेर कहा था।

---

[1] न किए हुए; [2] पुरस्कार।

आया न एक बार अयादत[1]को वोह मसीह ।
सौ बार मैं फ़रेबसे बीमार हो चुका ॥
जब आस्तानेयारपै[2] हाज़िर हुए हैं हम ।
दरबाँसे यह सुना है कि दरबार हो चुका ॥

चाइज़ो ! हश्रका हर मर्तबा चरचा कैसा ?
रोज़का तुमने निकाला है ये झगड़ा कैसा ?
नब्ज़ देखी तो हरारतसे जली नब्ज़ेमसीह* ।
तेरे बीमारे मुहब्बतका मदावा[3] कैसा ॥

मस्जिदसे सूए मैकदा ऐ शेख़ ! यूँ न देख ।
बालाएताक़ हो न अक़ीदा मुरीदका ॥
आने तो दो बहार यह दोनों है रहने मय ।
ख़िरक़ा[4] न पीरका है न जुब्बर मुरीदका ॥
इस ग़मकदेमें कट गई यूँ अपनी ज़िन्दगी ।
क़ैदीपै जैसे रोज़ गुज़र जाये ईदका ॥

पछता रहे हैं ख़ून मेरा करके क्यों हुज़ूर ?
अब इसपै ख़ाक डालिये जो कुछ हुआ-हुआ ॥
यह ज़ोफ़से सुबक[5] हूँ कि नक़्शे क़दम मेरा ।
पड़ता तो है ज़मीनपै लेकिन मिटा हुआ ॥
बोसा तलब किया तो यह कहने लगा वो बुत ।
"कुदरत ख़ुदाकी ! तुमको भी यह हौसला हुआ" ॥

---

[1]बीमारीकी हालत पूछनेको; [2]प्रेयसीके दर्वाज़ेपर;
* नाड़ी छूअत वैदके पड़ो फफोला हाथ ।
[3]इलाज; [4]पुराना वस्त्र;
[5]हलका-फुलका ।

भिगो लिया। होश आने पर जामये अहरामकी हालत देखी तो बड़े पसोपेशमें पड़े, इससे यात्रा कौन करने देगा और ज़ाहिदोनासेह क्या-क्या न बकेंगे। इसीलिए वह यात्रा स्थगित करके जामये अहरामके धब्बोंको आबे ज़मज़मसे धोनेके लिए रुकना चाहते हैं! एक तो रिन्दाना जुरअत यह देखिये कि हजके कपड़ोंसे ज़मजमपर शराब पी, दूसरी शोख़ी यह कि जिस कुएँपर हाजी आचमन करते हैं, उसे आप धोबीघाट समझते हैं[1]। इसी मज़मूनका एक और शेर है।

रात पी ज़मज़मपै मय और सुबहदम।
धोये धब्बे जामए अहरामके॥

× × ×

ख़ूँ होके जिगर आँखसे टपका नहीं ऐ मर्ग!
रहने दे मुझे याँ कि अभी काम बहुत है॥[2]

---

[1]—इसी भावको रियाज़ ख़ैराबादीने भी किस ख़ूबीसे बयान किया है—

धोना है दाग़ जामये अहराम सुबह-सुबह।
हुजरेसे शेख़ पानीकी छागल उठा तो ला॥

मिर्ज़ा ज़मज़मको धोबी घाट बनाते हैं तो रियाज़ धर्माचार्य्यको अपना नौकर समझकर उसीसे पानी मँगाते है; और 'दर्द' की हिम्मत देखिये कि वे अपने वस्त्रोंको धोना तो दरकिनार, अब भी उसे इतना पवित्र समझते है कि फ़रिश्ते भी उससे वज़ू करना चाहें—

तर दामनीपै शेख़ हमारी न जाइयो।
दामन निचोड़ दें तो फ़रिश्ते वज़ू करें॥

---

[2]बाग़े बहिश्तसे मुझे हुक्मे सफ़र दिया था क्यों?
कारेजहाँ दराज़ है, अब मेरा इन्तज़ार कर॥
—इक़बाल

फाड़ खाता है जो ग़ैरोंको झपटकर सगेयार[1]।
मैं यह कहता हूँ "मिरे शेर, तेरा क्या कहना"॥
दमे आख़िर तो बुतो ! यादे ख़ुदा करने दो।
जिन्दगी भर तो किया मैंने तुम्हारा कहना॥
शौक़ काबे लिये जाता है हविस जानिबेदैर।
मेरे अल्लाह बजालाऊँ मैं किसका कहना॥

गोर भी बेगोरकन[2] तामीर हो सकती नहीं।
कौनसे घरमें गुज़र होता नहीं मज़दूरका॥

वोह मस्त हूँ नसीब मुझे तब कफ़न हुआ।
जब रहन मयफ़रोशके घर पैरहन हुआ॥
वाइज़का था लिहाज़ तो फ़स्ले ख़िज़ाँ तलक।
लो आ गई बहार, मैं तौबा शिकन हुआ॥

शेख़ काबेसे गया उसतक बिरहमन दैरसे।
एक थी दोनोंकी मंज़िल फेर था कुछ राहका॥
कुछ न समझे हो न बूझे हो कि वह क्या चीज़ है ?
नाम तुमने सुन लिया है ज़ाहिदो ! अल्लाहका॥

है किश्वरे अदममें ख़ुदा जाने सैर क्या।
आया न फिरके मंज़िले हस्तीसे जो गया॥
पीरीमें आई मौत, जवानी गुज़र गई।
जागा तमाम शब मैं दमे सुबह सो गया॥
मातम किया किसीने न मेरा तो क्या हुआ ?
अब आके ख़ाकेगोरपै[3] हर नक़्श रो गया॥

---

[1]प्रेयसीका कुत्ता; [2]क़ब्र खोदने वालेके बिना; [3]क़ब्रकी धूलपै।

ज़ाहिद ! लिहाज़ रख कि न गुल हो चिराग़ेज़ुहद[1]।
झोंका न आने पाये हवाएग़रूरका ॥
क्या डर जो क़िस्रेउफ़ू[2] मुक़ामेबुलन्द है।
ज़ीना लगाके पहुँचूँगा उज्रे गुनाहका ॥
या रब ! अकेले रहनेकी आदत नहीं मुझे।
जमघट रहे मज़ारपै ग़िलमानो हूरका ॥

मिरे ही सामने दामन उठाकर नाज़से चलना।
मुझीसे फिर गिला उलटा मेरे चाकेगरेबाँका[3]॥

कहाँ सामाँ था वहशतमें कि नामा[4] यारको लिखता।
दिया क़ासिदको पुर्ज़ा फाड़कर मैंने गरेबाँका ॥
किया इज़हारे दर्देदिल तो खींचा म्यानसे ख़ंजर।
नया नुस्ख़ा निकाला आपने यह दर्देहिजराँका[5] ॥
कहाँ जायेंगे उड़कर यह परीरू[6] मेरी चालोंसे।
मजावर[7] मैं बनूँगा जाके दरगाहे सुलेमाँका ॥
लबेबाम उस परीने बाल क्या चहरेसे सरकाये।
उठाकर अब्रके[8] परदेको गोया बर्क़ने[9] झाँका ॥
ज़रा-सी छेड़में क्यों फूट बहते हो तुम ऐ छालो।
इसीसे छेड़ता है तुमको हर काँटा बयाबाँका ॥

---

[1]संयमका दीपक; [2]क्षमा मन्दिर;
[3]कुरता, अंगरखाका गला फाड़नेकी शिकायत;
[4]पत्र; [5]विरहव्यथा मिटानेका; [6]परीमुख, हसीन;
[7]क़ब्रका रक्षक; [8]वर्षारूपी घूंघटको; [9]बिजलीने।

न पूछ ऐश जवानीका हमसे पीरीमें।
मिली थी ख़्वाबमें वोह सल्तनत शबाब न था ॥
कलीम[1]! शुक्र करो हश्रतक न होश आता।
हुई यह ख़ैर कि वोह शोख़ बेनक़ाब न था ॥
यह बार-बार जो करता था जिक्रेमय वाइज़।
पिये हुए तो कहीं ख़ानुमा ख़राब न था?
कहा जो मैंने कि यूसुफ़को यह हिजाब[2] न था।
तो हँसके बोले "वोह मुँह क़ाबिले नक़ाब न था" ॥
मेरे जनाज़ेपै अब आते शर्म आती है।
हलाल करनेको बैठे थे जब हिजाब न था ॥
दुआए तौबा भी हमने पढ़ी तो मय पीकर।
मज़ा ही हमको किसी शैका बेशराब न था ॥
वे बैठे-बैठे जो दे बैठे क़त्लेआमका हुक्म।
हँसी थी उनकी, किसीपर कोई अताब[3] न था ॥
जो लाश भेजी थी क़ासिदकी, भेजते ख़त भी।
रसीद वोह तो मेरे ख़तकी थी, जवाब न था ॥

कहाँका काबा है, दैर कैसा, बताओ कूचेका उसके रस्ता।
मैं पूछता हूँ पता कहींका, निशान देते हो तुम कहींका ॥

जो बगोला दश्तेग़ुरबतमें[4] उठा, समझा ये मैं।
करते हैं तामीर दीवाने मेरे घरका जवाब ॥
शेख़ कहता है बिरहमनको, बिरहमन उसको सख़्त।
काबओ बुतख़ानेमें पत्थर हैं पत्थरका जवाब ॥

---

[1] हज़रतेमूसा; [2] लाज; [3] क्रोध; [4] प्रवासमें जंगलमें।

बराबर आइनेके भी न समझे क़द्र वोह दिलकी ।
इसे ज़ेरे क़दम रक्खा, उसे पेशे नज़र रक्खा ॥

बड़ा अहसाँ है मेरे सरपै उसकी लग़्ज़िशेपाका[1] ।
कि उसने बेतहाशा हाथ मेरे दोशपर[2] रक्खा ॥

फले-फूले चमनमें दफ़्न करना चाहिए मुझको ।
कि हूँ मारा हुआ इक नौजवाँ गुलरूके जोबनका ॥

खुला है बाबेअजाबत[3] दुआ तो कर ग़ाफ़िल !
दरेकरीम[4] सुना है कभी कि बन्द हुआ ?

किसीने लफ़्ज़रुख़ बेनुक़्ता कब आलममें देखा है ।
न होता किस तरह नुक़्ता रुख़ेमहबूबपर तिलका ॥

इस तरह लिक्खी मेरी तक़दीरकी बरगश्तगी[5]।
घिसके उलटा हो गया ख़त नामये तक़दीरका ॥

चमकी यह किस ग़रीबकी सहरामें[6] बर्क़ेआह[7]।
रहज़नसे[8] डरके रहरवे मंज़िल[9] लिपट गया ॥
लैला तो महमिले दिले मजनूंमें थी मकीं ।
दीवाना था जो देखके महमिल लिपट गया ॥

रोके उस शोख़से क़ासिद मेरा रोना कहना ।
हँस पड़े उसपै तो फिर हर्फ़े तमन्ना[10] कहना ॥

---

[1]काँपते हुए पाँवोंका; [2]कन्धेपर;
[3]न्यायका दर; [4]दयालुका दर्वाज़ा;
[5]भाग्य फिरना; [6]जंगलमें;
[7]आहरूपी बिजली; [8]लुटेरेसे;
[9]यात्री; [10]अभिलाषा ।

छनता है नूर[1] आरिज़े गुलगूँसे इस क़दर।
हो जाती है सफ़ेद भी उसकी नक़ाब सुर्ख़॥

है वसीयत मेरी मरक़दपै[2] यह लिख दें अहबाब।
"कि करे कोई किसीसे न वफ़ा मेरे बाद"॥
शुक्र है कुछ तो मुहब्बतमें हुआ रंगे असर।
तीन दिन उसने लगाई न हिना[3] मेरे बाद॥

ढीली है कमर, कसके ज़रा बाँध दुबारा।
गिर जाये न ख़त खुलके कहीं राहमें क़ासिद!

आशिक़ोमाशूक़ अपने-अपने आलममें हैं मस्त।
वाँ नज़ाकतपै तो याँ है नातवानीपर[4] घमंड॥

काटकर राह मेरे घरकी चले और तरफ़।
यह तरीक़ा नहीं मुझको किसी दस्तूर पसन्द॥

मेरे रोनेने फ़ुरक़तमें रुलाया एक आलमको।
बहाये अब्रने[5] दरिया मेरे एक-एक आँसूपर॥

सदफ़की[6] क्या हक़ीक़त है अगर उसमें न हो गौहर[7]।
न क्योंकर आबरू हो आँखकी मौक़ूफ़ आँसूपर॥

वे करते हैं बातें अजब चिकनी-चिकनी।
यह मतलब कि चौपट हो कोई फिसलकर॥

---

[1]सौन्दर्यरूपी रंग; [2]समाधिपर;
[3]मुहदी; [4]निर्बलतापर;
[5]मेंहने, वर्षाने; [6]सीपकी;
[7]मोती।

हया तो उसको बिठाये हज़ार पर्देमें।
मगर जो बैठने दे शौक़ ख़ुदनुमाईका[1]॥
सम्भलके देखो अगर देखते हो आईना।
फिसल न जाये कहीं पाँव ख़ुदनुमाईका॥
वोह नातवाँ[2] हूँ अगर नब्ज़को हुई जुम्बिश।
तो साफ़ जोड़ जुदा हो गया कलाईका॥

ग़ैरने उस गुलके बालोंमें कभी कंघी जो की।
मिस्ले सम्बुल[3] तार-तार अपना गिरेबाँ हो गया॥

क्या बला थी निगहे होश रुबा साक़ीकी।
उठ गई आँख तो कोसों कोई हुश्यार न था॥
बात रख ली मेरे क़ातिलने गुनहगारोंमें।
इस गुनहपै मुझे मारा कि गुनहगार न था॥
वाक़िफ़ वोह हालसे हो जो रखता हो कुछ ग़रज़।
क्या जाने हम बख़ील[4] कि हातिम[5] करीम[6] था॥
राज़दारियेमुहब्बतका[7] मैं क्या दावा करूँ।
जिस क़दर महरम[8] हुआ उतना ही ना महरम हुआ॥
लज़्ज़तेशर्मेगुनह थी कब फ़रिश्तोंको नसीब।
यह मज़ा चखनेको पैदा ख़ल्क़में आदम हुआ॥
वोह कौन था जो ख़राबातमें ख़राब न था।
हम आज पीर हुए क्या कभी शबाब न था॥

---

[1]आत्मविज्ञापनका; [2]निर्बल;
[3]एकप्रकारकी सुगन्धित वनस्पति, जटामासी;
[4]कंजूस; [5]एक प्रसिद्ध दानी [6]दानी, दयालु;
[7]प्रेमके भेद जाननेका; [8]परिचित।

वोह नातवाँ हूँ जो लेटा कभी मैं विस्तरपर।
गुमाँ हुआ कि शिकन पड़ गई है चादरपर॥
किया उड़ूने जो गेसूए यारसें शाना[1]।
हुआ यह रश्क कि आरे चले यहाँ सरपर॥

बोला वोह बुत सिरहाने मेरे आके वक़्तेनज़्अ[2]।
"फ़रियादको हमारी चले हो ख़ुदाके पास?"

ज़ेवा हो ख़ाक! इश्क़का जामा रक़ीबको।
क्योंकर ख़ुश आये मर्दका पहने जो ज़न लिबास॥

नज़र आ जाये जो वह मुसहफ़ेरुख़[3]।
हिन्दुओंको भी हो इस्लामकी हिर्स॥
हिजोए[4] मयकश[5] है लबेवाइज़पर।
दिलमें पोशीदा मय-ओ-जामकी हिर्स॥

तुम्हारी ज़ातसे मतलब है दोनो दुनियाँमें।
न कुछ यहाँसे ग़रज है न कुछ वहाँसे ग़रज़॥

तौबा सौबार मैं कर लूँगा कुछ इन्कार नहीं।
मयकशीसे तो ज़रा हो मुझे फ़ुरसत वाइज़!
काँपता ख़ौफ़से मस्तोंका है रूआँ-रूआँ।
कुछ ज़बाँसे नहीं तौबाकी ज़रूरत वाइज़!
तू जो रिन्दोंकी हक़ीक़त नहीं समझा, न समझ।
रिन्द समझे हैं तेरी ख़ूब हक़ीक़त वाइज़!

---

[1]कंघी; [2]मृत्युके समय;
[3]क़ुरान-जैसी किताबी सूरत; [4]बुराई;
[5]शराबियोंकी।

मेरे चेहरयेज़र्दके अक्ससे।
हुई साक़िया ज़ाफ़रानी[1] शराब॥

दिल शिकस्ता मैं वोह हूँ ख़त जो कबूतरको दिया।
गिर पड़ा उड़ते ही टूटे हुए परकी सूरत॥
बाँध रख कसके गिरहमें कि वहुत थोड़ी है।
आबरू है जो ख़ुदादाद गुहरकी सूरत॥
रात-दिन कावये दिलमें है बुतोंका मजमा।
क्यासे क्या हो गई अल्लाहके घरकी सूरत॥

क़ाज़ी बरहना[2] सर है तो ज़ख़्मी है मुहतसिब[3]।
शायद कि पी गये हैं वहुत बादाख़ार[4] आज॥

हमारे रोनेपै आती नहीं किसे रिक़्क़त[5]।
हुबाब[6] रोते हैं आँखोंपै रखके दामने मौज॥

तुम तो आते ही क़यामत करते हो साहब बपा।
दिलमें आते हो तो आओ घरमें आनेकी तरह॥
दरसे काबेके नहीं उठता सर अपना इसलिए।
इसमें भी कुछ-कुछ है तेरे आस्तानेकी तरह॥

पूछो न कुछ जवानी ओ पीरीकी सरगुज़िश्त[7]।
यह माजराए शाम है वोह माजराए सुबह॥

---

[1]केसरिया; [2]नंगे सर;
[3]आचरणका निरीक्षण करनेवाला कर्मचारी;
[4]शराबी; [5]तरस;
[6]पानीके बुलबुले;
[7]बीती हुई बातें।

काँटा हुआ हूँ सूखके लेकिन निहाल हूँ।
खटकूँगा और अपने उदूकी निगाहमें॥

मुझको साहिलतक ख़ुदा पहुँचायगा ऐ नाख़ुदा[1]!
अपनी किश्तीकी बयाँ तुझसे तबाही क्या करूँ?

ऐ इन्क़लाबेदहर! मिटाता है क्यों मुझे।
नक़्शे हजार मिट गये हैं, तब बना हूँ मैं॥

नामे[2] वोह बारी-बारी उश्शाक़के[3] पढ़ेंगे।
उजलतमें[4] कुछ न होगा नम्बर लगे हुए हैं॥
मैं जानता हूँ बुलबुल! है जो तेरी हक़ीक़त।
इकमुश्ते इस्तख़्वाँ[5] हैं दो पर लगे हुए हैं॥
है हुक्मे यार कोई मेरी तरफ़ न देखे।
ये इश्तहार अब तो घर-घर लगे हुए हैं॥
मुझ बेनवा[6] गदाको[7] पूछे 'अमीर' वोह क्या?
शाहोंके उस गलीमें बिस्तर लगे हुए हैं॥

मिलनेका वादा उनके तो मुँहसे निकल गया।
पूछी जगह जो मैंने कहा हँसके 'ख़्वाबमें'॥
क़ासिद! है क़ौल-ओ-फ़ेलका[8] क्या उनके एतबार।
पैग़ाम कुछ कहा है, लिखा कुछ जवाबमें॥

---

[1]मल्लाह; [2]पत्र;
[3]प्रेमियोंके; [4]जल्दी करनेसे;
[5]मुट्ठीभर हड्डियाँ; [6]मूक;
[7]भिक्षुकको, अभिलाषीको;
[8]कहने और करने का।

यही सोज़ेदिल[1] है जो महशरमें जलकर।
जहन्नुम उगल देगा मुझको निगलकर ॥
यह मेरी तरफ़ पाँव महफ़िलमें कैसे ?
ज़रा आदमीयतसे बैठो सम्हलकर ॥
'अमीर' अहले मस्जिदसे इज़हारेतक़वा[2] !
अभी आये हो मयकदेसे निकलकर ॥
इरादा है ख़ुद उनसे पूछूँ मैं चलकर।
"यह ख़त तुमने फाड़ा कि क़ासिदने जलकर" ॥
जो बरसातमें तादरेयार[3] पहुँचे।
बहाना किया ख़ुद गिरे हम फिसलकर ॥
तवक़्क़ोह है धोकेमें आकर वोह पढ़ लें।
कि लिक्खा है नामा[4] उन्हें ख़त बदलकर ॥
थके मुद्दतों राहमें जिनकी चलकर।
वे दरतक भी आये न घरसे निकलकर ॥
उठा ऐ दिल ! आँखोंसे इतना न तूफ़ाँ।
कुए बैठ जाते हैं अक्सर उबलकर ॥

मयसे कपड़े ज़ाहिदाने ख़ुश्कके क्या तर किये।
जलके हमने आग रख दी जुब्बहोदस्तारपर[5] ॥

मर्तबा पेशे ख़ुदा होता है उतना ही बुलन्द।
जिस क़दर चलता है इन्सानसे इन्साँ झुककर ॥
है यह ईमाँ कि चला चाहते हैं ज़ेरे ज़मीं।
चलते हैं मौसमेपीरीमें जो इन्साँ झुककर ॥

[1]दिलकी डाह; [2]सदाचार का वर्णन; [3]प्रेयसीके द्वारतक;
[4]पत्र; [5]पगड़ीपर।

मुहतसिबके[1] लाख-लाख अहसाँ कि ख़ोशेकी[2] तरह ।
काटकर मस्तोंके सर लटका दिये अंगूरमें ॥

जमा-माल, इन्साँ तो क्या, हैवाँको करता है तबाह ।
शहद दिलवाता है आतिश[3], ख़ानये ज़म्बूरमें[4] ॥

दुनियासे हाथ धोके चलें कूए यारमें ।
जाइज़ नहीं कि तौफ़े हरम बेवज़ू करें ॥
दीवानगीका सिल्सिला ताअतमें[5] भी न जाय ।
पहले पढ़ें नमाज़ तो पीछे वज़ू करें ॥
ज़ाहिद तेरे फ़रिश्तोंको यह दिन नहीं नसीब ।
जन्नतसे दूर आयें जो हम आरज़ू करें ॥

घबराके जब फ़िराक़में माँगी दुआए वस्ल ।
आई सदा "यही तो मुक़ाम इम्तहाँके हैं" ॥
मरकर भी हमको मयसे तअल्लुक़ वही रहा ।
तख़्ते लहदमें[6] पीरेमुग़ाँकी[7] दुकाँके हैं ॥

निहाँ रहता है आईनेसे वोह बेगानाख़ू[8] बरसों ।
हया देखो, नहीं आता है अपने रोबरू बरसों ॥
सरापा जुर्म हूँ लेकिन वोह रिन्दे पाकतीनत हूँ ।
किया ज़ाहिदने मेरे आबेख़िजलतसे[9] वज़ू बरसों ॥

---

[1]आचरण निरीक्षकके; [2]गुच्छोंकी; [3]आग; [4]मधुमक्खियोंके छत्तेमें; [5]उपासनामें; [6]क़ब्रमें; [7]मधुशालाकी; [8]स्वभावत: उपेक्षा रखनेवाला; [9]शर्मके पसीनेसे ।

जामेमय देखके जामेसे हुआ तू बाहर।
पीले दो घूँट तो क्या हो तेरी सूरत वाइज़ !
देख मयख़ानेमें घनघोर घटा छाई है॥
सरपै मस्तोंके है अल्लाहकी रहमत वाइज़ !
ऐसे पढ़नेसे तो अच्छा था कि जाहिल रहता।
न हया तुझमें है बाक़ी न मुरव्वत वाइज़ !

फूल गर मुरझाएँ तो मुझसे न करना कुछ गिला।
ऐ सबा ! चलनेको मैं चलता हूँ गुलशनकी तरफ़॥

लाग़िर[1] हूँ इस क़दर मुझे पहचानती नहीं।
रह-रहके देखती है क़ज़ा सरसे-पाँवतक॥

ग़श आया है मुझे मस्जिदमें बे मय।
चलो लेकर मुझे पोरेमुग़ा[2] तक॥

हो गये मुर्दा हिज्रेयारमें हम।
घरमें अपने हैं या मज़ारमें हम।
कौन पूछेगा हम ग़रीबोंको।
रोज़ेमहशर हैं किस शुमारमें हम*॥

शबेविसाल सरेशामसे वोह कहते हैं।
कि आज क्यों नहीं होती सहर[3], नहीं मालूम॥

---

[1]निर्बल; [2]मधुशालाके स्वामी;

* ऊँचे-ऊँचे मुजरिमोंकी पूछ होगी हश्रमें।
कौन पूछेगा मुझे ? मैं किन गुनहगारोंमें हूँ ?
—अज्ञात

[3]सुबह।

मेरे घरकी तरफ़ भी आलमेमस्तीमें आ निकले ।
तरंग ऐसी कभी या रब ! मिज़ाजेयारमें आये ॥

है नमाज़ उन ज़ाहिदोंकी ज़ोफ़े ईमाँपर दलील ।
सामने अल्लाहके जाते हैं उठते-बैठते ॥
ख़ुदनुमाईकी बदौलत कितने ओच्छे हैं हसीन ।
मँहदी मलते हैं तो इतराते हैं उठते-बैठते ॥

यक़ीं हुआ जो गिरा दाँत कोई पीरीमें ।
कि आज खुल गई खिड़की क़ज़ाके आनेकी ॥

बाद मुर्दन भी मेरे ज़ोफ़की क़ूवत न घटी ।
ख़ाक उठी भी तो चकराके वहीं बैठ गई ॥
इन दिनों दुख़्तरेरिज़का[1] नहीं मिलता है पता ।
कहीं क़ाज़ीके तो घर जाके नहीं बैठ गई ॥

वाइज़ा समझा है तू दोज़ख़ जिसे ।
कुछ शरर हैं आहेआतिश वारके ॥

लिया जो ख़्वाबमें बोसा तो यार जाग उठा ।
तमाम उम्रका हम एतबार खो बैठे ॥
बलाएँ लेते ही वोह और हो गया वहशी ।
हम अपने हाथोंसे अपना शिकार खो बैठे ॥

हज़ारों ख़ार, लाखों फूल, उस गुलशनमें हैं लेकिन ।
न तुम-सा नाज़नीं कोई, न हम-सा नातवाँ कोई ॥

नसीहत करनेवालोंको अगर कुछ भी समझ होती ।
जो समझाते हैं मुझको वोह मेरे दिलबरको समझाते ॥

---

[1] अंगूरकी बेटी (शराब) का ।

क़ाज़ी भी अब तो आये हैं बज़्मेशराबमें।
साक़ी हज़ार शुक्र ख़ुदाकी जनाबमें॥

हाजत नहीं तो दौलते दुनियासे काम क्या।
फँसता है तिश्नादाम[1] फ़रेबे सराबमें[2]॥

दिल साफ़ हो तो कशमकशेदहर[3] क्या करे ?
शोला है कब धुएँकी तरह पेचोताबमें॥

परवा नहीं है हमको अगर हैं क़फ़समें बन्द।
सैयाद ! सैर बाग़की करते हैं ख़्वाबमें॥

ज़ाहिदको फ़ैज़े सुहबते रिन्दाँसे क्या 'अमीर'।
आलिम कभी न रहके हो, कीड़ा किताबमें॥

हरचन्द मान्दगीने हमको बिठा दिया है।
सद्शुक्र दूरसे तो मंज़िलको देखते हैं॥

आँखोंको बन्द कर लें ख़ालिक़से लौ लगाएँ।
क्यों ग़र्क़ होनेवाले साहिलको[4] देखते हैं॥

यह क़ज़ा है कि अदा आपकी सुभान अल्लाह।
सफ़[5] उलटती है जो मस्जिदमें जनाब आते हैं॥

ताबो[6] तवाँ[7] न मुझमें न अक़्लो हवासो होश।
शक्ल आदमीकी सूरते मरदुमगयाह[8] हूँ॥

मैं मरके ख़ाक हुआ ख़ाक हो गई बरबाद।
वे मौतका भी नहीं ऐतबार करते हैं॥

---

[1]प्यासा पथिक; [2]मृगमरीचिकामें; [3]संसारका मायाजाल;
[4]किनारेको; [5]नमाज़ियोंकी क़तारें; [6]तेज;
[7]बल;
[8]चीन देशकी एक घास जो मनुष्यकी सूरतसे मिलती है।

कौन वाक़िफ़ नहीं ? उसके यहाँ यक़ीनन मुहब्बतकी कोई टीस नहीं है, कोई तड़पा देनेवाला दर्द नहीं है, कोई ऐसा नश्तर नहीं है जो दिलमें पैवस्त हो जाये । उसके यहाँ तमाम बातें वही हैं, जो आँख लड़ाने और आँख लग जानेके सिलसिलेमें पैदा होती हैं । वही घातें और लगावटें हैं, जो मुहब्बतकी अदना क़िस्ममें पाई जाती हैं । यानी उसका कलाम जो फ़िज़ा पेश करता है, वोह वही 'ज़हरेइश्क़' वाली फ़िज़ा है कि —

जिस मुहल्लेमें था हमारा घर ।
वहीं रहता था एक सौदागर ॥

"उस (सौदागर)की एक माहेजबीं लड़की थी । जिससे आँख लड़ गई । आपसमें ख़तोकिताबत हुई । मिलनेके बहाने ढूंडे गये । कभी कामयाबी हुई, कभी नाकामयाबी । कामयाबी हुई तो सरशारिएवस्लकी लज्ज़तोंका ज़िक्र होने लगा । नाकामी हुई तो गिला-शिकवा शुरू हो गया । चन्द दिन यह हंगामा रहा और आख़िरकार जब मुहब्बतके हौसले निकल गये या महबूबा कहीं चली गई या मर गई तो सब्र करके बैठ गये ।

"ज़ाहिर है मुहब्बतकी इस दुनियामें जो जज़्बात पैदा होंगे, उनमें कोई गहराई न होगी और न वोह शायरीमें कोई मुस्तक़िल नक़्श छोड़ जाएँगे । लेकिन जलालका कमाल यही है कि उसने इसी फ़िज़ाकी शायरीमें महज़ अपने अन्दाज़े बयानसे वोह बातें पैदा की हैं कि हम उसकी दाद देनेपर मजबूर होते हैं" ।[1]

जलालकी ग़ज़लोंके चार दीवान मिलते हैं । इनके अतिरिक्त ७–८ ग्रन्थ अन्य विषयोंपर लिखे हैं । अल्लामा नियाज़ फ़तहपुरी लिखते हैं— "जलालके कलामकी ख़सूसियत यह है कि बावजूद लखनऊमें नश्वोनुमा

---

[1]मक्तूबाते नियाज़, भाग दूसरा, पृ० १५०–५१

मैं उल्फ़तके वोह हुस्नके जोशमें ।
न मैं होशमें हूँ न वोह होशमें ॥
न उठो अभी बज़्मसे मयकशो !
हमें भी तो आ लेने दो होशमें ॥

समझा यह मैं, जो निकले शाख़ोंसे गुल चमनमें ।
सूफ़ी निकलके बैठे ख़िलवतसे[1] अंजुमनमें[2] ॥

साफ़ कह दो नहीं दीदार दिखाना है अगर ।
काबा-ओ-दैरमें दौड़ाते हो क्यों तुम मुझको ॥

आज महफ़िलसे तुम आये हो उठाने हमको ।
हाय ! वोह दिन कि जो उठते थे बिठाने हमको ॥*

बुलहविस[3] और दुआए सोजेइश्क़[4] ।
दाग़ खानेको कलेजा चाहिए ॥

यह वजह है जो आरिज़ेजानाँपै है नक़ाब ।
करती है जिल्द ख़ूब हिफ़ाज़त किताबकी ॥

देखो तो इत्तहाद ज़रा हुस्नोइश्क़का ।
बुलबुलके आँसुओंमें है ख़ुशबू गुलाबकी ॥

तुम चौधवींका चाँद हो तो अपने वास्ते ।
क्या फ़ायदा, किसीको किसीके कमालसे ॥

---

[1]एकान्तसे; [2]महफ़िलमें;

* वोह जो उठते थे बिठानेके लिए ।
आज बैठे हैं उठानेके लिए ॥
—अज्ञात

[3]विषयलोलुपी; [4]सच्चे प्रेमकी प्रार्थना ।

शब्दोंसे वचनेकी प्रवृत्ति) शायद ज़रूरतसे ज़्यादा, और ज़वानके हक़में नुक़्साँ रसाँ हद तक (हानिकी परिधि तक) ग़ुलो था। हमारे मुतक़द्दमीनकी विसात (पुरातन शायरों रूपी शतरंज) के वे आख़िरी मुहरे थे।

"अमीर-दाग़के वाद मेरे वालिदेमाजिद उनसे मशवरये सुख़न करते थे। वे वालिदके पास अक्सर तशरीफ़ लाया करते थे, और कभी-कभी वालिदके हमराह, कभी-कभी तनहा, मैं भी हज़रते जलालके यहाँहाज़िरी दिया करता था। उस ज़मानेके तीन क़ाविले ज़िक्र वाक़यात मुझे याद हैं। वातें छोटी-छोटी हैं, मगर उनसे उस ज़मानेके मिज़ाजपर रोशनी पड़ती है।

१—एक रोज़ मैं हज़रते जलालके यहाँ पहुँचा। सुवहका वक़्त था। वे ड्योढ़ीकी दहलीज़पर जनानेकी तरफ़ मुँह किये खड़े अपनी वीवियोंको जो आपसमें नज़ाएलफ़्ज़ी (गाली-गलौज) कर रही थीं, डाँट रहे थे। लेकिन ग़ुस्सेकी आवाजको दवा-दवाकर, ताकि कोई और न सुन ले। अपना दुवला-पतला हाथ किस वेकसीसे उठा-उठाकर कह रहे थे कि—'अरे कम्वख़्तो 'मुझ मुर्देको जीने भी दोगी कि नहीं ?' कि मेरी चाप सुनकर वोह झटसे चुप हो गये। शर्माकर फ़र्शपर वैठ गये और मेरा सलाम लेकर वड़े इत्मीनानके साथ वोले कि 'मियाँ वड़ी ख़ैर हुई, तुम तो ख़ैर अपने वच्चे हो। अगर इस वक़्त कोई और आ जाता तो जलाल मुँह दिखानेके क़ाविल न रहता।' फिर थोड़ी देर ख़ामोश रहकर कहने लगे—'देखो वेटे ! एक नसीहत करता हूँ, उसे गिरहमें वाँध लो। इस दुनियामें जो जीमें आये करना, लेकिन दो वीवियाँ न करना। हरगिज़-हरगिज़ न करना। जलालकी कितनी ग़ज़लें हलाल (स्वाहा) करके रख दी हैं, इन चुड़ैलोंकी तू-तू मैं-मैं ने।'

२—एक रोज़ शाहपीर मुहम्मदके टीलेकी तरफ़से मेरे वालिदके साथ गाड़ीमें गुज़र रहे थे कि टीलेकी मस्जिदपर नजर पड़ी। उन्होंने

किया, किन्तु नवावकी गुणग्राहकता और उदारताके कारण वहीं रहनेको वाध्य रहे। रामपुरमें २० वर्षके लगभग रहे। इसी ज़मानेमें मिर्ज़ा 'दाग़', 'अमीर' मीनाई, और 'तसलीम' भी रामपुरमें क़याम फ़र्माते थे, और चारों उस्ताद मिसरा-तरही मुशायरोंमें ग़ज़ल पढ़ते थे।

नवावकी मृत्यु होनेके वाद रियासतमें 'कौंसिल आफ़ रीजेन्सी' क़ायम होनेके कारण जलाल लखनऊ वापिस चले गये। फिर काठियावाड़ इलाक़ेकी एक छोटी-सी रियासत मंगलोरके नवावने इन्हें अपने यहाँ रखना चाहा, किन्तु दूर होने तथा स्वास्थ्यके अनुकूल न होनेके कारण चन्द ही दिनमें वहाँसे भी लखनऊ चले आये। फिर भी नवाव साहव इनको २५ रु० मासिक और हर क़सीदेपर १०० रु० भेजते रहे। ७६ वर्षकी आयुमें १९०९ ई०में लखनऊमें इन्तक़ाल हुआ।

अल्लामा नियाज़ फ़तहपुरी अपने किसी मित्रको पत्रोत्तर देते हुए लिखते हैं—

"लखनऊके दौरे मुताख़्ख़रीनमें 'जलाल' का-सा अन्दाज़े वयान 'अमीर' का क्या ज़िक्र है; मुतवस्सतीनमें 'आतिश' को भी नसीव न हुआ। और इस हैसियतसे कि ख़ारजी-ओ-दाख़िली दोनों रंग उसके यहाँ पूरी तरह रचे हुए हैं, मुझे तो देहलीमें भी कोई नज़र नहीं आता। वोह न सिर्फ़ फ़नका वादशाह था, वल्कि जज़्वात निगारीका मालिक था। यक़ीनन उसमें न मोमिन का रंग है, न ग़ालिवके-से तेवर, न आतिश का-सा जोशोख़रोश है, न मुसहफ़ीकी-सी हलावत, न हसरत और जुरअतका-सा खुल-खेलना है, न मीरो दर्दकी-सी उफ़तादगी। लेकिन फिर भी एक चीज़ ऐसी है जो थोड़ी देर के लिये उन सबको भुला देती है। इसमें शक नहीं कि लखनऊका ख़ारजी रंग उसमें पूरी तरह पाया जाता है। लेकिन उसका असलूबे वयान एक ऐसी दिलकश बैकग्राउण्ड पैदा कर देता है कि गहराइयोंकी जुस्तजू करनेवाले भी एक वार सतहपर ठहरकर महव हो जाते हैं। रही ज़बानकी सेहत और पाकीज़गी। सो इस वातमें उसकी एहतयातसे

सोच रहे हैं आप ? जल्दी उठिये और इस मुएकी ज़वानको वन्द कीजिये । नहीं तो हम मुहल्लेमें मुँह दिखानेके क़ाविल नहीं रहेंगे ।' चुनाँचे हाँफ़ता-काँपता मैं जल्दी-जल्दी दरवाज़ेपर आया । उस गँवारने मेरी तरफ़ घीका ज़र्फ़ (वर्तन) वढ़ाया और मैंने झुंझलाकर कहा—'ले जाओ वापिस, ले जाओ, यह जलाल होत वाला मरदूद घी इसी वक़्त वापिस ले जाओ । मैं नहीं लूंगा, नहीं लूँगा, नहीं लूँगा ।'

"यह थे हज़रत जलालके तेवर, यह थीं क़दमाकी वजअदारियाँ, अब न वोह रख रखाव हैं न वोह आन-वान; लद गये वे ज़माने, निकल गये वोह कारवाँ और उजड़ गई वोह वस्तियाँ, रहे नाम अल्लाहका ।"[1]

जलालके शिष्योंमें—जलालके पुत्र 'कमाल', मीर ज़ाकिर हुसेन 'यास', 'आरज़ू' लखनवी, 'एहसान' शाहजहाँपुरी, प्रसिद्ध हैं । इनका परिचय वर्तमानयुगीन ग़ज़लगो शायरोंमें शेरोसुख़नके दूसरे भागमें दिया जायगा ।

---

[1] 'आजकल', अप्रेल १९५० ई०

पाने (शिक्षित-दीक्षित होने) के उन्होंने देहलवी रंगे तग़ज़्ज़ुलको पसन्द किया।"[1] लखनवी शायरीका उल्लेख करते हुए आगे लिखते हैं—लखनवी शायरीका यह वदनुमा दौर 'अमीर' मीनाईके वक़्त तक रहा। लेकिन इसके वाद शागिर्दाने मोमिन-ओ-ग़ालिवका कलाम फिर मक़बूल होने लगा, और खुद अहले लखनऊने भी आख़िरकार इसको महसूस किया कि शायरी नाम ज़िला जुगतका नहीं, बल्कि वारदाते क़ल्बसे वहस करनेका है। सबसे पहले यह अहसास जलालको हुआ और इसके वाद जब शुअराये देहलीने रामपुर पहुँचकर लखनवी शुअराको मुतास्सिर (प्रभावित) किया तो रफ़्ता-रफ़्ता वोह तमाम नक़ाइस व मुआइव (नुक़्स और ऐव) दूर होने लगे। हत्ताकि इस वक़्त कोई एक भी क़ाविले ज़िक्र शायर लखनऊका ऐसा नहीं है, जो देहली स्कूलका पैरो न हो।"[2]

शायरे इन्क़लाव जोश मलीहाबादी लिखते हैं—"हज़रत जलालको मैंने अपने लड़कपनमें देखा था। उस वक़्त वहुत ही ज़ईफ़ (वृद्ध) हो चुके थे और दमेकी पुरानी शिकायतने उनकी जिस्मानी हालतको औरभी अवतर कर रक्खा था। जवानीमें उनका शुमार ख़ूवसूरत लोगोंमें होगा। क्योंकि इस उम्रमें भी वोह सुर्ख़ो-सफ़ेद और ख़ुशरू थे। दमेकी वजहसे वोह ऊभ-ऊभ कर वातें करते थे। लेकिन उसमें एक दिलकशी थी। उनकी आँखोंमें ज़हानतका फ़रोग़ था और कलामें फ़नका ग़रूर। उनके कलाममें देहली और लखनऊका गंगा-जमुनी रंग था। उनकी ग़ज़लें धूप-छाँव होती थीं। वे फ़न्ने शेरके वहुत वड़े माहिर और तानीस-ओ तज़कीर और अलफ़ाज़की तहक़ीक़के नव्वाज़ (शब्दोंकी प्रामाणिकताके डाक्टर) थे, और मतरूकातमें उन्हें ग़ुलो (वहिष्कृत

---

[1]इन्तक़ादियात, भाग २, पृ० १५१

[2]इनाक़ादियात, भाग २, पृ० २००

जब ज़ख़ुद रफ़्तगीसे[1] आँख खुली।
सामने ही खड़े थे मंजिलके॥

क़ाबिले लुत्फ़ कोई और सही।
ख़ैर हमपर जफ़ाओ जौर सही॥

अबतक है जोशे आह वही, कुछ कमी नहीं।
कल रातसे चली है जो आँधी, थमी नहीं॥

वादा क्यों बार-बार करते हो।
ख़ुदको बेऐतबार करते हो॥

फाँस होती है दिले आशिक़की क्या कम्बख़्त फाँस।
रह गई तो जान ली, निकली तो रुसवाई हुई॥

गुजर गया तेरी फ़ुरक़तमें यूँ शबाब अपना।
कि जैसे वस्लकी शब ऐ निगार! जाती है॥

निजात हो गई नासहसे उम्रभरके लिए।
उसीको भेज दिया यारकी ख़बरके लिए॥

हमसे उक़बा न बनाई गई जाहिदकी तरह।
कोई मजदूर न थे रोज जो मेहनत होती॥

वस्लमें मना मयकशी! आपकी है ज्यादती।
हाँ यह कहेंगे, शेख़जी! हिज्रमें मय हराम है॥

शबको मय ख़ूब-सी पी सुबहको तौबा करली।
रिन्दके रिन्द रहे हाथसे जन्नत न गई॥

किसकी महशरमें हम करें फ़रियाद।
दावरेहश्र[2] हो तुम्हीं न कहीं॥

---

[1]तन्मयतासे; [2]हश्रमें न्याय करनेवाला, न्यायाधीश, ख़ुदा।

मस्जिदकी तरफ़ हाथ उठाकर वालिदसे कहा—'ख़ाँ साहब बहादुर ! यह क्या चीज़ है ? वालिदने हैरतसे कहा—'मस्जिद ! भला मीर साहब ! यह भी कोई पूछनेकी बात है ?' जलालने पुरजलाल अन्दाज़से आँख उठाई और मस्जिदकी तरफ़ इशारा करते हुए बड़े तमतराक़से कहा—'ख़ाँ साहब ! इस मस्जिदकी हुरमतकी क़सम खाकर कहता हूँ कि जलालका-सा शायर न अब तक पैदा हुआ है न आइन्दा पैदा होगा।' वालिदने फ़ौरन ताईद फ़रमाई। लेकिन मेरे मुँहसे निकल गया—'उफ़' इतनी बड़ी बात।' जलालने या तो सुना नहीं या सुनी-अनसुनी करके वालिदसे पूछने लगे 'ख़ाँ साहब ! साहबज़ादेके तेवर बता रहे हैं कि इन्हें चश्मेबद्दूर मेरा यह दावा गिराँ गुज़रा।' वालिदने बड़ी लजाजतसे बात काटकर कहा—'तौबा-तौबा मीरसाहब ! इसकी क्या मजाल है कि इसे नागवार गुज़रे। जलाल फ़र्ते ग़रूरसे मुस्कराने लगे।

३—वालिदकी यह आदत थी कि हिन्दोस्तानके अहबाबको बिल-अमूम और लखनऊके अहबाबको बिलख़सूस फल, ग़ल्ला, घी, वग़ैरह हमेशा रवाना करते थे। चुनाँचे हस्बदस्तूर हज़रत जलालकी ख़िदमतमें घी रवाना किया गया। लेकिन ख़िलाफ़ दस्तूर वह वापिस आ गया। एक हफ़्तेके बाद जब वालिद लखनऊ तशरीफ़ ले गये तो सवारी भेजकर हज़रत जलालको तलब फ़रमाया और पूछा—'कि भला मीर साहब ! यह इस बार ख़िलाफ़े आदत घी क्यों वापिस फ़रमा दिया ?' यह सुनते ही जलाल-के चेहरेपर ख़ुशूनतो कुब्र (क्रोध और घमंड) के आसार पैदा हो गये। और कहने लगे—'ख़ाँ साहब ! इस मर्तबा आपने यह किस गँवारको मेरे पास भेजा था ? इस्तग़फ़र अल्लाह ! मैं घरमें बैठा हुआ था कि दरवाज़ेपर किसी मर्दकने आवाज़ें देना शुरू कर दीं—'जलाल होत, जलाल होत,' यह सुनकर मुझपर बिजली-सी गिर पड़ी। मबहूत होकर रह गया। मैं और 'जलाल होत' से पुकारा जाऊँ ? मेरी बड़ी बीवीने उस मर्दककी तीसरी 'जलाल-होत' आवाज़पर बिलबिलाकर मुझसे कहा—'हैं ! क्या

यूँ वोह उठ जाएँ सम्भाले हुए दामन अपना ।
और मेरे हाथ दुपट्टेका न आँचल आये ॥

यूँ तो रूठे हैं, मगर लोगोंसे ।
पूछते हाल हैं अक्सर मेरा ॥

अहद किया था अभी कैसा 'निज़ाम' !
फिर वहीं जानेका इरादा किया ॥
तौबा वाँ जानेसे करते हो 'निज़ाम' !
क्या करोगे वोह अगर याद आया ॥

दिले वहाँ जाये भला हमसे रहा जाये कहाँ ?
दिलसे उस बज़्ममें जानेका मज़ा जाये कहाँ ?

फिर उसीसे तू जा मिलेगा 'निज़ाम' !
तेरी तौबाका एतबार नहीं ॥

अब हमारा न हाल पूछो 'निज़ाम' !
क्या कहें कुछ कहा नहीं जाता ॥

अब हाले 'निज़ाम' कुछ न पूछो ।
ग़म होगा तुम्हें भी गर कहूँगा ॥

आजकल आपसे[1] बाहर है 'निज़ाम' !
कहीं महफ़िलमें न बुलवाइयेगा ॥

अब हम उनकी ग़ज़लोंके चन्द शेर 'इन्तक़ादयात' से और पेश करते हैं—

---

[1]आपेमें नहीं ।

न जीते जी मिली राहत न बादेमर्ग उल्फ़तमें ।
फ़लककी क्या शिकायत ? हमको पीसा की ज़मीं बरसों ॥

आये थे लाख दिलसे तेरी अंजुमनमें[1] हम ।
जाते हैं अपने घर अजब इक बेदिलीके साथ ॥

उठ देर न कर कहती हैं वोह सीधी निगाहें ।
"जल्द आके लिपट, देख ज़माना न पलट जाय" ॥

यह अश्केहसरत[2] जो गिर पड़ा है तुम्हारे आगे अभी टपककर ।
इसीने आँखोंमें सुबह करदीं बहुत-सी रातें खटक-खटककर ॥

एक अपनी आरज़ू हो, तो बताएँ ऐ फ़लक !
झगड़े लगे हुए हैं, हज़ार आदमीके साथ ॥
बाँधो कमर बदीपै दिया था दिल इसलिए ?
नेकी कोई जहाँमें करे क्या किसीके साथ ?॥

जलवा किसीका देखके आँखें-सी खुल गईं ।
परदे जो ग़फ़लतोंके पड़े थे उलट गये ॥

सितम है तेरा लुत्फ़से पेश आना ।
यही मार रखता है, क़ातिल यही है ॥

बहसने आया जो तुमसे आईना, आने भी दो ।
ख़ैर, तुम अपनी तरफ़ देखो, चलो, जाने भी दो ॥

रुख़ेरोशनसे किसने उलटी नक़ाब ?
जल उठे दाग़ इक बुझेदिलके ॥

---

[1]महफ़िलमें; [2]अभिलाषाका आँसू ।

सच है 'निज़ाम' याद भी उसको न होंगे हम ।
पर क्या करें वोह हमसे भुलाया न जायगा ॥

कहनेसे न मना कर, कहूँगा ।
तू मेरी न सुन, मगर कहूँगा ॥
तुझसे ही छुपाऊँगा ग़म अपना ।
तुझसे ही कहूँगा, गर कहूँगा ॥

कहा क्यों दोस्तो तुमने ख़ुदा जाने वोह क्या समझें ?
हमारा हाल उनपर आप ही इज़हार हो जाता ॥

ख़ुदा ही जाने कि क्या दिल पै चोट लगती है ।
तुम्हारे पास जो आया वोह दर्द मन्द हुआ ॥

मैंने जो तुझसे कहा था वोह तो तूने कह दिया ।
नामाबर ! मुझसे न कहना उस सितमगरका जवाब ॥

वोह झरोकेसे जो देखें तो मैं इतना पूछूँ ।
बिस्तर अपना पसेदीवार करूँ या न करूँ ॥
तू भी उस शोख़से वाक़िफ़ है बता कुछ तो 'निज़ाम' !
मुझसे दिल माँगे तो इनकार करूँ या न करूँ ॥

लपेटे मुँह पड़े रहना तेरी कुछ याद ला-ला कर ।
बनाया करते हैं अब दिलसे हम दो-दो पहर बातें ॥

क्या कहें यह कि "कब उन तक है रसाई अपनी ?"
पूछनेवालोंसे कहते हैं कि "हाँ मिल आये" ॥

बातें थी दिलमें क्या-क्या कहनेको थे न क्या कुछ ।
मुँहसे न उसके आगे कुछ भी कलाम निकला ॥

उठते हैं और उनमें एक विशेषता आ जाती है। इसी तरहकी कलापूर्ण अदानिगारी और मामलाबन्दी शायरीको निज़ामने 'हालिया' शायरी कहा है। इस बदनाम रंगमें लिखते हुए भी निज़ामने क्या ख़ूब शेर कहे हैं—

ख़ुदा जाने मुझको दिखायेगा क्या ?
यह छुप-छुपके अपना उधर देखना ॥

वोह हाय बिगड़कर उसका जाना।
रोना वहीं ज़ार-ज़ार मेरा ॥

तुम्हें यह भी कहीं ख़याल आया।
कि कोई राह देखता होगा ॥

गो न किया अर्ज़े तमन्नाये दिल।
मुँहको वोह लेकिन मेरे देखा किया ॥

मुझको सुना-सुनाके वोह कहना किसीका हाय।
"जिससे कि जीमें रंज हो उससे कलाम क्या" ॥

मुँह फेरकर हँस-हँसके वोह इक़रारकी बातें।
इस तौरसे करते हैं कि बावर नहीं होता ॥

"कह, 'निज़ाम' अब तेरे क्या जीमें है कह दे मुझसे"।
हाय पूछे वोह कभी मुझसे यह तनहा होकर ॥

ऐ जान ! कहो फिर इस अदासे—
"मैं आज 'निज़ाम' से ख़फ़ा हूँ" ॥

अबस यह हर दमका चौंकना है अबस यह उठ-उठके देखना है।
भला वोह ऐसे हुए थे किस दिन वही तो वादा वफ़ा करेंगे ॥

हमदम ! न कह वोह बात जो दिलको बुरी लगे ।
उस बेवफ़ासे गो मेरी रंजिश हज़ार है ॥

रूठकर बैठे हो उनसे किस तवक़्क़ोह पर 'निज़ाम' !
होशमें आओ, वोह आएँगे मनानेके लिए !

यह बात पूछते हैं उनके जानेवालों से ।
हमारे बाबमें वोह कुछ कहा भी करते हैं ?

शिकवा उस बुतका हर किसीसे 'निज़ाम' !
उससे कहदे ख़ुदा करे कोई ॥

कहीं उस बज़्मतक रसाई हो ।
फिर कोई देखे अहतमाम मिरा ॥

२१ दिसम्बर १९५०

एकदम दिलसे भुलाया नहीं जाता तुमको।
कुछ ख़ुदा जाने कि किस हाल में देखा है तुम्हें॥

चैन मिलता नहीं ज़रा दिलको।
तुमसे मिलकर यह क्या हुआ दिलको॥
किसी चर्चामें जी नहीं लगता।
या इलाही यह क्या हुआ दिलको॥

क्या कहें आपके नज़दीक ही रहता है 'निज़ाम'।
रोज़ पिछलेको जो रोनेकी सदा आती है॥

उनको मैं किस तरह भुलाऊँ 'निज़ाम'!
याद किस बातपर नहीं आते॥

किया क़हर वादेने वर्ना शबेहिज्र।
मुझे ग़म तो होता पर इतना न होता॥

तुझसे कुछ कहनेको था, भूल गया।
हाय क्या बात थी, क्या भूल गया॥

जो दिलमें आये किसीके वोह कुछ कहे मुझको।
मुझे तो नाज़ है इस दर पै जिबहसाईका[1]॥

'निज़ाम' उनको तो आदत कभी सितम की न थी।
ख़याल आगया क्या उल्फ़त आज़माईका॥

यूँ आप तो कहूँगा न रंजिशका माजरा।
पूछोगे तुम तो मुझसे छुपाया न जायगा॥

---

[1]नतमस्तक होनेका।

पहले तो दिलमें मुहब्बतका शजर[1] पैदा हुआ।
फिर लगे हसरतकेगुल[2] ग़मका समर[3] पैदा हुआ॥

सोजिशेदाग़ेअलमसे[4] पहले भेजा जल गया।
बाद उसके दिल जला और फिर कलेजा जल गया॥
उफ़! मिरे मज़मूने सोज़े दिलमें भी क्या आग है।
ख़त जो क़ासिद उसको मैंने लिखके भेजा जल गया॥

मेरी आँख बन्द थी जबतलक वोह नज़रमें नूरेजमाल था।
खुली आँख तो न ख़बर रही, कि वोह ख़्वाब था कि ख़याल था॥
मेरे दिलमें था कि कहूँगा मैं जो यह दिलपै रंजोमलाल है।
वोह जब आ गया मेरे सामने, न तो रंज था न मलाल था॥

उसको इन्सॉं मत समझ हो सरकशी जिसमें 'ज़फ़र'!
ख़ाकसारीके लिए है ख़ाकसे इन्सॉं बना॥

उड़ाकर आशियाँ सर-सरने मेरा।
किया साफ़ इस क़दर तिनका न पाया॥
उसे पाना नहीं आसाँ, कि हमने
न जबतक आपको खोया, न पाया॥

तुझे भी ख़बर है कि ओ ग़ैरतेगुल[5]!
कोई हो गया ग़ममें घुल-घुलके काँटा॥

है इश्क़की मंज़िलमें यह हाल अपना कि जैसे।
लुट जाये कहीं राहमें सामान किसीका॥

---

[1]वृक्ष; [2]अभिलाषाओंके फूल;
[3]फल; [4]व्यथा-पीड़ाकी आगसे;
[5]अपने सौन्दर्यसे फूलोंको लज्जित करने वाले।

हैरानसे रह जाते हैं हम सामने उसके।
हमसे तो 'निज़ाम' उससे गिला हो नहीं सकता ॥

मुझे उम्मीदेवफ़ा तुमसे, तुम्हें दुश्मनसे।
यह अगर ज़ब्त हैं तो, मुझसे ज्यादा है तुम्हें ॥

कलका वादा किया फिर उसने आज।
और भी एक दिन जिये ही बनी ॥

तेरा मिलना तो एक आफ़त है।
ग़ैरका हाल क्या हुआ होगा ॥
आप ही आप ऐसे रोये 'निज़ाम'!
दिलमें कुछ ध्यान आ गया होगा ॥

जो मेरे देखनेको आता है।
फिर वोह बारे दिगर नहीं आता ॥

वाँ जानेसे फ़ायदा तो मालूम।
दिल और भी बेक़रार होगा ॥

वोह मुझको 'निज़ाम' क्यों मनाते?
क्या जानिये यह भी क्या महल था ॥

हम तो कह गुज़रे हाले दिल अपना।
नहीं मालूम उसने क्या जाना ॥

जुज़ उस गलीके दिल नहीं लगता कहीं 'निज़ाम'!
सौबार हमतो साकिने दैरो हरम हुए ॥

सब कहते हैं मुझको नहीं बचनेका 'निज़ाम' अब।
"किस वास्ते मरता है?" तुम इतना नहीं कहते ॥

आपकी ख़ातिरसे हम करते थे ज़ब्ते इज़्तराब[1] ।
देखकर बेताब हमको और घबरायेंगे आप ॥

दर्दमन्दाने मुहब्बतका तबीबोंसे इलाज ?
किस तरहसे हो सके यारो यह बीमारी है और ॥
मयकदेमें इश्क़के जो लोग हैं काफ़िर तो हैं ।
लेकिन उनके कुफ़्रमें अन्दाज़े दींदारी है और ॥

जब कि पूछे यार मुझसे "शेफ़्ता[2] है किसपै तू" !
मुँहसे मैं अपने कहूँ क्योंकर, कहो तो क्या करूँ ?
अपना अहवालेमुहब्बत[3] सामने उसके 'ज़फ़र' ।
आप मैं लिखकर पढ़ूँ क्योंकर, कहो तो क्या करूँ ?

सब्र मुश्किल है न कर सब्रका दावा हरगिज़ ।
इश्क़में तुझसे 'ज़फ़र' ! यह कभी होनेका नहीं ॥

तुम नज़र आ जाओ शायद इस हविसमें[4] आज हम ।
सुबहसे ताशाम सूएरहगुज़र[5] देखा किये ॥
गर नहीं है रब्त कुछ बाहम तो फिर महफ़िलमें शब
तुम उन्हें और वोह तुम्हें क्यों ऐ 'ज़फ़र' देखा किये ॥

नहीं है ताक़तेपरवाज़[6] आह ऐ सैयाद !
ख़ुदा करे कि तू अब वा दरेक़फ़स[7] न करे ॥
जो उसकी जानपै गुज़रे है, वोही जाने है ।
ख़ुदा किसीको जहाँमें किसीके बस न करे ॥

---

[1]सन्तोष, धैर्यधारण; [2]आसक्त;
[3]प्रेमवर्णन; [4]आशामें;
[5]मार्गकी ओर; [6]उड़नेकी शक्ति;
[7]पिंजरेका दर्वाजा न खोले ।

न देखा वह कहीं जलवा जो देखा ख़ानये दिलमें।
बहुत मस्जिदमें सर मारा बहुत-सा ढूँढ़ा बुतख़ाना॥

न थी हालकी जब हमें अपनी ख़बर, रहे देखते औरोंके ऐबोहुनर।
पड़ी अपनी बुराइयोंपर जो नज़र तो निगाहमें कोई बुरा न रहा॥
'ज़फ़र' आदमी उसको न जानियेगा वोह हो कैसा ही साहबेफ़हमोज़का।
जिसे ऐशमें यादे ख़ुदा न रही, जिसे तैशमें ख़ौफ़े ख़ुदा न रहा॥

नीचे कुछ चुने हुए शेर दिये जा रहे हैं—

किसीने उसको समझाया तो होता।
कोई याँतक उसे लाया तो होता॥
मज़ा रखता है ज़ख़्मे ख़ंजरे इश्क़।
कभी ऐ बुलहविस[1] खाया तो होता॥
न भेजा लिखके तूने एक परचा।
हमारे दिलको परचाया तो होता॥
जो कुछ होता सो होता तूने तक़दीर!
वहाँतक मुझको पहुँचाया तो होता॥

क्या जानें बनी क़ैसपै[2] क्या दश्ते जनूँमें[3]!
जो ख़ाकबसर आज बगोला नज़र आया॥

गुलसे भी नाज़ुक बदन उसका है लेकिन दोस्तो!
यह ग़ज़ब क्या है कि दिल पहलूमें पत्थर-सा बना॥

चारागर[4] भर न सके मेरे जिगरके नासूर।
एक गर बन्द किया दूसरा रोज़न[5] निकला॥

---

[1]कामान्ध; [2]मजनूंपै; [3]दीवानगीमें;
[4]चिकित्सक; [5]सूराख़।

(अप्रसन्न) भी हो जाते थे। वार-वार पहलू वदलते। 'इधर तकिया लगाओ, फिर पढ़ो, और फिर पढ़ो, क्या मिसरा वका है? क्या लग्व (व्यर्थ) वन्दिश है? यह हमारे पास इसलाह लेने थोड़े ही आते हैं; यह तो हमारा इम्तहान लेने आते हैं साहव!'

वाहरके शागिर्दोंके कलामकी इसलाह देनेकी सूरत इस तरह वयान करते हैं—"आप पलंगड़ी पर लेटे हैं या गावतकियेसे लगे बैठे हैं। चारों तरफ तलामज़ा (शिष्यों) का झुरमुट है, और एक साहव ग़ज़लोंका थव्वा (वण्डल) सामने रखे क़लम हाथमें लिये एक-एक ग़ज़ल पढ़ते जाते हैं। हाज़रीन (उपस्थित शिष्य समूह) हर शेरको ग़ौरसे समाअ़त फ़र्माते (सुनते) हैं, और मुनासिव मौक़ेपर अपनी-अपनी राय भी देते जाते हैं। अगर इस मशवरेसे उस्तादकी रायको भी इत्तफ़ाक हो गया तो वही अल्फ़ाज उस ग़ज़लमें वना दिये गये, वर्ना जो उस्तादने वग़ौर ख़ुद ईमा फ़र्माया वजिन्सही (हू-व-हू) वोह उस मुक़ामपर जड़ दिया गया। इस तरह इस्लाहकी इस्लाह हो जाती थी और आपसके तवादलए ख़यालातसे मालूमातका दायरा भी वसीअ़ हो जाता था"।[1]

दाग़के एक दूसरे शिष्य अहसन माहरहरवी फ़र्माते हैं—"जिस ज़मानेमें राक़िम (लेखक) हैदरावाद गया और चन्दसाल मुसलसल (वरावर) ख़िदमतमें हाज़िर रहा, उस ज़मानेमें रोजाना १५–२० ग़ज़लें इसलाह होकर डाकमें भेजी जाती थीं। इनके अलावा मुक़ामी शागिर्द और वाहरसे आये हुए तलामज़ा सुवहोशाम हाज़िर रहते और इसलाह लिया करते।...आलाहज़रत (निज़ाम हैदरावाद) की ग़ज़ल अमूमन कोई शाही चौवदार लाता। जिसको वह ख़ुद देखते और अक्सर ख़िलवत (एकान्त) में देखते और जल्दसे जल्द इस्लाहके वाद वापिस कर दी जाती"।[2]

---

[1]नक़्दो नज़र, पृ० २१२–१३; [2]मुन्तख़िवेदाग़—मुक़द्दमा।

यह आस्माँ ग़ुलाम है किस महजमालका[1] ?
पहने फिरे है कानमें वाला हिलालका[2] ॥

दे दिया दिल और नहीं अब याद यह किसको दिया ।
इश्क़को खोदे ख़ुदा जिसने जहाँसे खो दिया ॥
ख़्वाह वह दाग़ेजुनूँ हो ख़्वाह कोई अश्केख़ूँ ।
हमने सर आँखोंपै रक्खा, इश्क़ तूने जो दिया ॥

क़सम ख़ुदाकी तुझे क़ासिदा कि यह पैग़ाम ।
कहा है यारने या तूने अपने जीसे कहा ॥

दन्दाँकी[3] ताब देखके अंजुम[4] हुए ख़िजल[5] ।
वोह महजबीं[6] जो शबको लबेबाम[7] हँस पड़ा ॥
क्या बात याद आ गई उसको कि ऐ 'ज़फ़र' !
वह यकबयक जो सुनके मिरा नाम हँस पड़ा ॥

कूचेमें तेरे तनहा हर शब मुझे हो जाना ।
दो-चार घड़ी अपना दिल खोलके रो जाना ॥

हमने कहके अपना हालेदिल दिया सबको रुला ।
हर तरफ़ रूमालपर रूमाल तर होने लगा ॥
कूचये जानाँमें जाना ही पड़ेगा, हो सो हो ।
क्या करूँ बेताब दिल फिर ऐ 'ज़फ़र'! होने लगा ॥

---

[1] चन्द्रमुखीका;
[2] दोजके चान्दको वालीकी उपमा दी है;
[3] दन्तपंक्तियोंकी;
[4] नक्षत्र; [5] लज्जित;
[6] चन्द्रमुखी; [7] कोठेपर ।

१—दाग़के शिष्यों और प्रशंसकोंने उनकी महत्ताका अतिशयोक्ति पूर्ण वर्णन करते हुए पूर्ववर्ती और समकालीन शायरोंसे उन्हें श्रेष्ठ सिद्ध करनेका कुछ इस प्रकार प्रयत्न किया कि पूर्ववर्ती और समकालीन शायरोंके अनुयायियोंको कुछ चुनौती-सी मालूम दी। इसलिए फिर उन्होंने भी नहलेपर दहला लगाना उचित समझा।

२—दाग़की बढ़ती हुई कीर्ति और ख्यातिको ईर्ष्यालु सहन न कर सकनेके कारण मनमाने छींटे उड़ाने लगे।

३—कुछ ऐसे निष्पक्षपाती साहित्यिक जो दाग़की शायराना हैसियत-से अवगत थे, दाग़की अनावश्यक क़ीमत बढ़ते देख वास्तविक मूल्य बतानेको मजबूर हुए। ताकि जनता भ्रममें न पड़ जाए।

अब हम तीनों प्रकारके आलोचकोंका संक्षिप्तमें सार देनेका प्रयत्न करेंगे। जहाँ दाग़के प्रशंसक यह कहते हुए नहीं थकते कि दाग़की कमाले-शायरीके समक्ष आतिश, नासिख़, ग़ालिब, और मोमिन भी फीके पड़ते हैं। वहाँ ईर्ष्यालु यह कहनेसे बाज़ नहीं आते कि अमीर मीनाईके अक्सर शागिर्द दाग़से अच्छा कहते हैं।[1] दाग़के शिष्य अपने उस्तादको सदाचारी और संयमी घोषित करते हैं तो विरोधी 'हिजाब' वेश्याके सम्बन्धका ढिंढोरा पीटते हैं। यदि दाग़के प्रशंसक उनको खुशरू और खुशरंग सिद्ध करते हैं तो विरोधी जवाबमें स्वयं दाग़का यह मिसरा पेश करते हैं—

"जिसे दाग़ कहते हैं दोस्तो! इसी रूसियाहका नाम है।"

जब दाग़के अनुयायी कहते हैं कि रामपुरमें जो क़द्र दाग़की हुई, वह किसीकी न हुई, तब ईर्ष्यालु जवाब देते हैं कि दाग़ रामपुरमें सिर्फ़ ५० रु० माहवारपर अस्तबलके दारोग़ा थे, और पुष्टिमें किसी वेअदबका यह शेर पेश करते हैं—

---

[1] मजामीने चकबस्त, पृ० ६८।

"मैं उस्तादकी खिदमतमें इस तरह हाज़िर होता था जैसे ग़ुलाम आक़ा (स्वामी) के सामने, या गुनहगार हाकिमे वक़्तके रोबरू। लरज़ता, काँपता, थर्राता और कभी वजुज़ ज़रूरत के (आवश्यकताके अतिरिक्त) कोई कलमा मेरी ज़बानसे न निकलता। जो कुछ पूछना होता पूछा, जो पूछा वह अर्ज़ किया। बाक़ी वक़्त, ख़ामोश—और यही हाल उनका था। वे भी मुझे शेरकी निगाहसे देखते थे। मैं हाज़िर हुआ हूँ, कमरेमें क़हक़हे उड़ रहे हैं, और जहाँ मैंने अन्दर क़दम रक्खा, लबे फ़र्श पहुँचकर आदाब बजा लाया और सबसे फ़र्दतर बैठ गया। अब वहीं मुक़ाम इस तरह सुन सान और ख़ामोश था, जैसे वहाँ कोई ज़ीरूह (कोई भी प्राणी) नहीं। मेरी इसलाह क्या होती थी, गोया जंगेअज़ीम (महासमर) *का एक अल्टीमेटम होता था। उधर हज़ार गोशेदर आवाज़ (सैकड़ों* सुननेवाले उपस्थित) इधर मैं ख़ौफ़से लरज़ाँ और लब कुश्तये मतालिब (ओठ मनकी बात कहनेमें असमर्थ), उधर उस्तादको मामूलसे ज़्यादा कावशेमतलूब (आवश्यकतासे अधिक मतलबकी बात सुननेकी जल्दी), त्यौरी चढ़ी हुई हैं, एक भौं माथेतक खिंचकर जा पहुँची है, और जितना बुलन्द-से-बुलन्द शेर होता था, बिगड़-बिगड़कर फ़र्माते—'आगे चलो जी' और जहाँ ज़रा-सा भी सुक़म (नुक़्स) नज़र आगया बस बरस पड़े, क़यामत कर दी। 'यह क्या साहब! यह क्या? ज़रा फिर इनायत कीजिए। माशा अल्लाह! सुभान अल्लाह!! यह आपने लिखा है?' ग़रज़ जान छुड़ानी मुश्किल हो जाती। इस सरज़-निश (मलामत, तम्बीह) और मुआसरीन (समकालीन अन्य शिष्यों) की मौजूदगीका इस दर्जा ख़ौफ़ होता था कि एक-एक मिसरेपर जान लगा देनी पड़ती थी। तब जाकर वोह फ़र्माते थे कि—'आगे चलो, आगे चलो।' हाँ, अलबत्ता जिन मिसरोंपर मिसरा लगाना मेरे बसका रोग न होता, वह बेशक मैं चुनकर ले जाता था, और बाज़ औक़ात उन्हींकी इसलाहमें उन्हें सख़्त काविश करनी पड़ती थी, और उन्हीं पर वे अक्सर मुनग़ज़

१—दाग़के शिष्यों और प्रशंसकोंने उनकी महत्ताका अतिशयोक्ति पूर्ण वर्णन करते हुए पूर्ववर्ती और समकालीन शायरोंसे उन्हें श्रेष्ठ सिद्ध करनेका कुछ इस प्रकार प्रयत्न किया कि पूर्ववर्ती और समकालीन शायरोंके अनुयायियोंको कुछ चुनौती-सी मालूम दी। इसलिए फिर उन्होंने भी नहलेपर दहला लगाना उचित समझा।

२—दाग़की बढ़ती हुई कीर्ति और ख्यातिको ईर्ष्यालु सहन न कर सकनेके कारण मनमाने छींटे उड़ाने लगे।

३—कुछ ऐसे निष्पक्षपाती साहित्यिक जो दाग़की शायराना हैसियत-से अवगत थे, दाग़की अनावश्यक क़ीमत बढ़ते देख वास्तविक मूल्य बतानेको मजबूर हुए। ताकि जनता भ्रममें न पड़ जाए।

अब हम तीनों प्रकारके आलोचकोंका संक्षिप्तमें सार देनेका प्रयत्न करेंगे। जहाँ दाग़के प्रशंसक यह कहते हुए नहीं थकते कि दाग़की कमाले-शायरीके समक्ष आतिश, नासिख, ग़ालिब, और मोमिन भी फीके पड़ते हैं। वहाँ ईर्ष्यालु यह कहनेसे बाज नहीं आते कि अमीर मीनाई के अक्सर शागिर्द दाग़से अच्छा कहते हैं।[1] दाग़के शिष्य अपने उस्तादको सदाचारी और संयमी घोषित करते हैं तो विरोधी 'हिजाब' वेश्याके सम्बन्धका ढिंढोरा पीटते हैं। यदि दाग़के प्रशंसक उनको खुशरू और खुशरंग सिद्ध करते हैं तो विरोधी जवाबमें स्वयं दाग़का यह मिसरा पेश करते हैं—

"जिसे दाग़ कहते हैं दोस्तो ! इसी रूसियाहका नाम है।"

जब दाग़के अनुयायी कहते हैं कि रामपुरमें जो क़द्र दाग़की हुई, वह किसीकी न हुई, तब ईर्ष्यालु जवाब देते हैं कि दाग़ रामपुरमें सिर्फ़ ५० रु० माहवारपर अस्तबलके दारोग़ा थे, और पुष्टिमें किसी बेमदबका यह शेर पेश करते हैं—

---

[1] मज़ामीने चकबस्त, पृ० ६८।

इन संशोधनोंसे तंग आकर दाग़ अपने पत्रमें अमीर मीनाई को लिखते हैं—

"आप यह जानते होंगे कि दाग़की मश्क़ बढ़ी हुई है। 'महताबे-दाग़' (दाग़का दीवान) को छपे दो बरसका ज़माना गुज़रा। इन दो बरसमें बीस ग़ज़लें कही हैं। क्या इसका नाम मश्क़ है ? हर महीनेमें दो-चार नये ख़त वास्ते दुआए शागिर्दी (शिष्य बननेकी प्रार्थनाके) आते रहते हैं। दुहाई देता हूँ कि फ़ुरसत नहीं, सेहत नहीं, नौकर हूँ, आज़ाद नहीं। मुसन्निफ़ अमीरुललुग़ात (अमीरमीनाई) के पास कलाम भिजवाओ। वे उस्ताद मुसल्लिमउलसबूत (प्रामाणिक विद्वान और श्रेष्ट गुरु) हैं। कोई कमबख़्त नहीं सुनता। ग़ज़लोंसे क़सीदोंका नम्बर बढ़ा, क़सीदोंसे दीवानका नम्बर आया। अब दीवानके दीवान चले आते हैं। छः महीनेके सफ़रमें तीन सौ ग़ज़लें मैंने बनाकर भेजी हैं। हज़ार आठसौ इस वक़्त बाक़ी हैं। अगर आपको फ़ुर्सत हो तो भेज दूँ ? मगर आपके पास क्या इससे कम होंगी"[1]

दाग़के ख्याति प्राप्त शिष्योंमेंसे कुछ नाम ये हैं—नवाब मीर महबूब अलीख़ाँ 'आसफ़' (निज़ाम हैदराबाद), सर 'इक़बाल', नवाब 'साइल' देहलवी, 'बेख़ुद' देहलवी, आग़ाशायर देहलवी, अहसन माहरहरवी, 'बेख़ुद' बदायूनी, 'नूह' नारवी, 'सीमाब' अकबरावादी 'नसीम' भरतपुरी, 'जिगर' मुरादाबादी आदि।

दाग़के उक्त शिष्योंका परिचय 'शेर-ओ-सुख़नके दूसरे भागमें दिया जायगा। दाग़की ख्याति और प्रतिष्ठाके कारण अनेक ईर्षालु और आलोचक भी उनके जीवन-कालमें ही हो गये थे, और उनपर फब्तियाँ कसने और कीचड़ उछालने लगे थे। इन कटु आलोचनाओंके निम्न तीन कारण थे—

---

[1] निगार, नवम्बर १९५०।

नासेहका दिल चला था हमारी तरफ़ मगर।
उलफ़तकी देख-देखके उफ़्ताद रह गया॥
हैं तेरे दिलमें सबके ठिकाने बुरे-भले।
मैं ख़ानुमाँ ख़राब ही बर्बाद रह गया॥

देखना हश्रमें जब तुमपै मचल जाऊँगा।
मैं भी क्या वादा तुम्हारा हूँ कि टल जाऊँगा॥

तेरे वादेपर सितमगर अभी और सब्र करते।
अगर अपनी ज़िन्दगीका हमें एतबार होता॥

नामाबर कहता है मुझको क्या करामत है तुम्हें।
जो वोह लिखते वह भी तुमने ख़तमें लिखकर रख दिया॥
ज़िबह करते ही मुझे क़ातिलने धोये अपने हाथ।
और ख़ूँ आलूदा ख़ंजर ग़ैरके घर रख दिया॥
शामसे ही लोटना है मुझको अंगारों पै आज।
इसलिए मैंने अलग तह करके बिस्तर रख दिया॥

मेरे सवालके मानी वोह मुझसे कह देते।
मगर सवालका मेरे कोई जवाब न था॥
हज़ारों परदेमें मुश्ताक़ देख लेते हैं।
उसे हिजाब था मूसाको तो हिजाब न था॥
पयाम्बर! तुझे लाखों सवाल करने थे।
न था हज़ारमें इक बातका जवाब न था॥
अगर्चे बादाकशी थी गुनाह ऐ ज़ाहिद!
जो तुमसे छीनकर पीता तो कुछ अज़ाब न था॥
सुना कलाम जो रिन्दोंका शेख़ घबराया।
वहाँ तो बातका छींटा भी बेशराब न था॥

इन संशोधनोंसे तंग आकर दाग़ अपने पत्रमें अमीर मीनाई को लिखते हैं—

"आप यह जानते होंगे कि दाग़की मश्क़ बढ़ी हुई है। 'महताबे-दाग़' (दाग़का दीवान) को छपे दो बरसका ज़माना गुज़रा। इन दो बरसमें बीस ग़ज़लें कही हैं। क्या इसका नाम मश्क़ है? हर महीनेमें दो-चार नये ख़त वास्ते दुआए शागिर्दी (शिष्य बननेकी प्रार्थनाके) आते रहते हैं। दुहाई देता हूँ कि फ़ुरसत नहीं, सेहत नहीं, नौकर हूँ, आज़ाद नहीं। मुसन्निफ़ अमीरूललुग़ात (अमीरमीनाई) के पास कलाम भिजवाओ। वे उस्ताद मुसल्लिमउलसबूत (प्रामाणिक विद्वान और श्रेष्ठ गुरु) हैं। कोई कमबख़्त नहीं सुनता। ग़ज़लोंसे क़सीदोंका नम्बर बढ़ा, क़सीदोंसे दीवानका नम्बर आया। अब दीवानके दीवान चले आते हैं। छः महीनेके सफ़रमें तीन सौ ग़ज़लें मैंने बनाकर भेजी हैं। हज़ार आठसौ इस वक़्त बाक़ी हैं। अगर आपको फ़ुर्सत हो तो भेज दूँ? मगर आपके पास क्या इससे कम होंगी"[1]

दाग़के ख्याति प्राप्त शिष्योंमेंसे कुछ नाम ये हैं—नवाब मीर महबूब अलीख़ाँ 'आसफ़' (निज़ाम हैदराबाद), सर 'इक़बाल', नवाब 'साइल' देहलवी, 'बेख़ुद' देहलवी, आग़ाशायर देहलवी, अहसन माहरहरवी, 'बेख़ुद' बदायूनी, 'नूह' नारवी, 'सीमाब' अकबराबादी 'नसीम' भरतपुरी, 'जिगर' मुरादाबादी आदि।

दाग़के उक्त शिष्योंका परिचय 'शेर-ओ-सुख़नके दूसरे भागमें दिया जायगा। दाग़की ख्याति और प्रतिष्ठाके कारण अनेक ईर्षालु और आलोचक भी उनके जीवन-कालमें ही हो गये थे, और उनपर फब्तियाँ कसने और कीचड़ उछालने लगे थे। इन कटु आलोचनाओंके निम्न तीन कारण थे—

---

[1] निगार, नवम्बर १९५०।

अपने दिलको भी बताऊँ न ठिकाना तेरा ।
सबने जाना, जो पता एकने जाना तेरा ॥

इस सलीक़ेकी अदावत कहीं देखी न सुनी ।
तू ज़मानेका उदू, दोस्त ज़माना तेरा ॥

क़िस्मत उसकी है कि जिसने उसे पाया तनहा ।
ख़्वाबमें भी तो न आया मेरे डरसे तनहा ॥
साथ लाकर वोह रक़ीबोंको यह फ़र्माते हैं ।
"क्या सबब था जो मुझे तूने बुलाया तनहा ?"

जब यह सुना कि 'दाग़' का आज़ार कम हुआ ।
ज़ानू पै हाथ मारके बोले "सितम हुआ" ॥
अफ़सोस है रक़ीबने की आपसे दग़ा ।
मुझको भी रंज आपके सरकी क़सम हुआ ॥

यह मैं हज़ार जगह हश्रमें पुकार आया ।
कि "और भी कोई मुझ-सा गुनाहगार आया" ॥
जो वजह देरकी पूछी कहा ये क़ासिदने—
"गुज़ारने थे मुसीबतके दिन, गुज़ार आया" ॥
उड़ाये हैं मलिकुल्मौतने भी तेरे ढंग ।
हज़ार बार बुलाया तो एक बार आया ॥
ख़ुदाके वास्ते झूठी न खाइये क़स्में ।
मुझे यक़ीन हुआ, मुझको एतबार आया ॥

तौबाके बाद भी ख़ाली-ख़ाली ।
कोई साग़र नहीं देखा जाता ॥
मुख़्तसर ये है कि अब 'दाग़' का हाल ।
बन्दापरवर नहीं देखा जाता ॥

गिरियेने एक दममें बना दी वह घरकी शक्ल।
मेरी नज़रमें साफ़ बयाबान फिर गया।
लाये थे कुए यारसे हम 'दाग़' को अभी।
लो उसकी मौत आई, वोह नादान फिर गया॥

हम तो उस मुद्दआके क़ायल हैं।
जो ज़बाँसे निकल नहीं सकता॥

सुन-सुनके तेरे इश्क़में अग़ियारके ताने।
मेरा ही कलेजा है कि मैं कुछ नहीं कहता॥
ख़तमें मुझे अव्वल तो सुनाई हैं हज़ारों।
आख़िरमें यह लिखा है कि मैं कुछ नहीं कहता॥
तुमको यही शायाँ है कि तुम देते हो दुश्नाम।
मुझको यही ज़ेबा है कि मैं कुछ नहीं कहता॥

दुनियामें मज़ा इश्क़से बहतर नहीं होता।
यह ज़ायक़ा वोह है कि मयस्सर नहीं होता॥
बेदाद तेरी देखके यह हाल हुआ है।
आशिक़ कोई दुनियामें किसीपर नहीं होता॥

उनकी शुहरत भी मिटी जाती है।
कुछ ठिकाना मेरी रुसवाईका?

न मयस्सर हुई कहीं ख़िलवत।
कुछ हमें भी कलाम करना था॥

ग़ज़ब किया तेरे वादेका एतबार किया।
तमाम रात क़यामतका इन्तज़ार किया॥

यूँ आँख उनकी करके इशारा पलट गई।
गोया कि लबसे होके कुछ इरशाद रह गया॥

नजर चुराके वोह यूँ हर बशरको देखते हैं।
किसीको यह नहीं साबित किधरको देखते हैं॥
तुम्हारे पास कहीं भूलकर न आया हो।
हमें तलाश है हम नामाबरको देखते हैं॥
हमें गुमान यह होता है, हमको रोता है।
किसी जगह जो किसी नौहागरको देखते हैं॥
हया तो देखिये आइनेसे भी परदा है।
वोह अपने हाथ ही पहले सहरको देखते हैं॥

कुछ इस तरहसे वोह क़ातिल सवाल करता है।
हमारे मुँह को हमारे गवाह देखते हैं॥

चला है काबेको तू ख़ाक छानने ज़ाहिद!
फ़क़त ख़ुदा ही ख़ुदा है, हरममें ख़ाक नहीं॥

कुछ न पूछो जो सदा आती है मयख़ानेसे।
कभी मस्जिदसे जो हम पढ़के नमाज़ आते हैं॥

वोह रातें, वोह बातें, वोह घातें ग़ज़ब!
जवानीमें थे किस शरारतके दिन॥

आँख पड़ती है कहीं पाँव कहीं पड़ता है।
सबकी है तुमको ख़बर अपनी ख़बर कुछ भी नहीं॥
काबे जाना भी तो बुतख़ानेसे होकर ज़ाहिद!
दूर इस राहसे अल्लाहका घर कुछ भी नहीं॥

मेरे मरनेकी ख़बर सुनकर कहा—
"वाक़ई कुछ भी नहीं इन्सानमें"॥
जिसने दिल खोया उसीको कुछ मिला।
फ़ायदा देखा इसी नुक़सानमें॥

क़यामत है सुनें वोह सर झुकाये।
ख़ुदाके सामने इज़हार मेरा॥

इन्कार तो करते हो मगर यह भी समझ लो।
बे वजह किसीसे कोई साइल नहीं होता॥

मेरे ही दमसे ज़िन्दा है आज़ार इश्क़का।
मैं मर गया अगर तो यह आज़ार मर गया॥

तरीक़ा ख़ूब है यह उम्रके बढ़ानेका।
कि मुन्तज़िर रहूँ ताहश्र उनके आनेका॥
चढ़ाओ फूल मेरी क़ब्रपर जो आये हो।
कि अब ज़माना गया तेवरी चढ़ानेका॥
समाएँ अपनी निगाहोंमें ऐसे-वैसे क्या?
रक़ीब ही सही, हो आदमी ठिकानेका॥

ऐ काश! अब हम ठोकरें खाकर ही सम्भलते।
सर मिलते हैं उस कूचेमें पत्थर नहीं मिलता॥

शौक़ ऐसा कि तेरी राहमें मरकर भी चलूँ।
ज़ौफ़ ऐसा कि नहीं जानसे जाया जाता॥

नामाबर देखके तेवर उन्हें ख़त देना था।
बातों-बातोंमें फ़क़त काम निकाला होता॥

दिए जा ऐ फ़लक! पूरा ही आज़ार।
न हो क़िस्मतसे कम हिस्सा हमारा॥
तेरे आलमको जबसे हमने देखा।
तमाशाई है इक आलम हमारा॥

कुछ इन्तजार मुझको नहीं मय,[1] न साजका[2] ।।
नाचार हूँ कि हुक्म नहीं कश्फ़ेराज़का[3] ।।

हमसे पूछें कि इसी खेलमें खोई है उम्र ।
खेल जो लोग समझते हैं लगाना दिलका ।।

अभी ऐ 'शेफ़्ता' ! वाक़िफ़ नहीं तुम ।
कि बातें इश्क़में होती हैं क्या क्या ।।

दुश्मनके फ़ेलकी तुम्हें तौज़ीह[4] क्या ज़रूर ।
तुमसे फ़क़त मुझे गिलए दोस्ताना था ।।

अर्ज़ो तमन्नासे रहा बेक़रार ।
शब वोह मुझे, मैं उसे छेड़ा किया ।।
गैरको ही चाहे है अब 'शेफ़्ता' !
कुछ तो है जो यारने ऐसा किया ।।

कम-रग़बतीसे[5] लेते हैं दिल, होशयार हैं ।
बढ़ता है मोल, शौक़े ख़रीदार देखकर ।।

हैं जाँ-ब-लब[6] किसीकी इशारतको देर है ।
देखे है उस निगाहको क़ज़ा और क़ज़ाको हम ।।

बचते हैं इस क़दर जो उधरकी हवासे हम ।
वाक़िफ़ हैं शेवए दिले शोरिश अदासे हम ।।

---

[1] शराब; [2] संगीतका;
[3] भेद खोलने का; [4] स्पष्टीकरण;
[5] उपेक्षासे; बेपरवाहीसे;
[6] मरणासन्न ।

उस तौबापर है नाज़ तुझे ज़ाहिद ! इस क़दर ।
जो टूटकर शरीक हो मेरे गुनाहमें ॥
आती है बात-बात मुझे याद बार-बार ।
कहता हूँ दौड़-दौड़के क़ासिदसे राहमें ॥

उड़ गई यूँ वफ़ा ज़मानेसे ।
कभी गोया किसीमें थी ही नहीं ॥
दिल लगी दिल्लगी नहीं नासह !
तेरे दिलको अभी लगी ही नहीं ॥

पड़ा फ़लकको अभी दिलजलोंसे काम नहीं ।
अगर न आग लगा दूँ तो 'दाग़' नाम नहीं ॥

दैरसे काबेको डरते हुए हम जाते हैं ।
देख लेता है जो कोई वहीं थम जाते हैं ॥

इन्हीं लोगोंके आनेसे तो मयख़ानेकी इज्ज़त है ।
क़दम लो शेख़के तशरीफ़ लाये बादा ख़्वारोंमें ॥

नहीं जानते इसका अंजाम क्या है ।
वोह मरना मेरा दिल्लगी जानते हैं ॥
समझता है तू 'दाग़'को रिन्द ज़ाहिद !
मगर रिन्द उसको वली जानते हैं ॥

नासहोंसे कलाम कौन करे ?
अपनी ऐसोंसे गुफ़्तगू ही नहीं ॥

ख़ुदा करे कि मज़ा इन्तज़ारका न मिटे ।
मेरे सवालका वोह दें जवाब बरसोंमें ॥

उसे लाएँ, मुझे ले जाएँ, या पैग़ाम पहुँचाएँ ।
यह क्या करते हैं सब बैठे हुए ग़मख़्वार पहलूमें ॥

है दिलको शुक्रेवफ़ाएउदूसे बेताबी ।
करूँ मैं कुछ गिलएलुत्फ़ गर अताब न हो ।।
—शायर, जनवरी १९४९, पृ० ४६

हाय वोह 'शेफ़्ताकी' बेताबी ।
थाम लेना वोह तेरे महफ़िलको ।।

इतनी भी बुरी है बेक़रारी ।
अब आपसे उन्स कम करेंगे ।।

न पूछो 'शेफ़्ता' का हाल साहब !
यह हालत है कि अपनेमें नहीं है ।।
—निगार, अक्तूबर १९४६, पृ० ५९

७ अगस्त १९५०

इज़हारे इश्क़ उससे न करना था 'शेफ़्ता' !
यह क्या किया कि दोस्तको दुश्मन बना दिया ॥

हसरतसे[1] उसके कूचेको क्योंकर न देखिये।
अपना भी इस चमनमें कभी आशियाना[2] था ॥

यादने जिसकी भुलाया सब कुछ।
उसकी मैं याद भुलाऊँ क्योंकर ॥

ऐ ताबेबर्क़[3] थोड़ी-सी तकलीफ़ और भी।
कुछ रह गये हैं ख़ारोख़शेआशियाँ[4] हनूज़[5] ॥

आरामसे है कौन जहानेख़राबमें[6] ?
गुलसीना चाक[7] और सबा इज़्तराबमें[8] ॥

क्या जाने गुज़री ग़ैरपै क्या उसकी बज़्ममें।
आये वे इस तरह कि मुझे प्यार आ गया ॥

तूफ़ानेनूह लानेसे ऐ चश्म ! फ़ायदा ?
दो अश्क भी बहुत हैं अगर कुछ असर करें ॥

वोह 'शेफ़्ता' कि धूम थी हज़रतके ज़ुहदकी[9]।
मैं क्या कहूँ कि रात मुझे किसके घर मिले ॥

शायद इसीका नाम मुहब्बत है 'शेफ़्ता'।
इक आग-सी है सीनेके अन्दर लगी हुई ॥

---

[1]अभिलाषासे; [2]घर, घोंसला;
[3]बिजलीके करिश्मे; [4]घोंसलेके तिनके और काँटे;
[5]अभीतक; [6]दुःखी संसारमें;
[7]फूलका सीना फटा है; [8]विकलतामें, बेचैनीमें;
[9]धार्मिकताकी।

जो चाहो फ़क़ीरीमें इज्ज़तसे रहना।
न रक्खो अमीरोंसे मिल्लत जियादा ॥
है उल्फ़त भी वहशत भी दुनियासे लाज़िम।
पै उल्फ़त जियादा न वहशत जियादा ॥
फ़रिश्तेसे बहतर है इन्सान बनना।
मगर इसमें पड़ती है महनत जियादा ॥

कबक[1]-ओ-क़ुमरीमें[2] है झगड़ा कि चमन किसका है।
कल बता देगी ख़िज़ाँ यह कि चमन किसका है ॥
वाइज़! इक ऐबसे तू पाक है (?) या ज़ाते ख़ुदा।
वर्ना बे ऐब ज़मानेमें चलन किसका है?

रहेंगे न मल्लाह ये दिन सदा।
कोई दिनमें गंगा उतर जायगी ॥

हमारे ज़र्फ़ ही इनआमके क़ाबिल नहीं वर्ना,
लुँढ़ाये ख़ुमपै ख़ुम ग़ैरोंपै क्यों, मुमसिक[3] हो गर साक़ी ॥

दोस्तगर भाई न हो, दोस्त है तो भी, लेकिन।
भाई गर दोस्त नहीं, तो नहीं कुछ भाई भी ॥

जो कहिये तो झूठी जो सुनिये तो सच्ची।
ख़ुशामद भी हमने अजब चीज़ पाई ॥
हुई आके पीरीमें क़द्रे जवानी।
समझ हमको आई यह ना वक़्त आई ॥

इतनी ही दुश्वार अपने ऐबकी पहचान है।
जिस क़दर करनी मलामत औरको आसान है ॥

---

[1]चकोर; [2]एक पक्षी;
[3]कंजूस।

कम इल्तफ़ातियोंका[1] है वहम अहले बज़्मको ।
शर्मिन्दा हो गये तेरी शर्मो-हयासे हम ॥

गह हमसे ख़फ़ा वो हैं गहे उनसे ख़फ़ा हम ।
मुद्दतसे इसी तरह निभी जाती है बाहम ॥

अहले ज़माना देखते हैं ऐब ही को बस ।
क्या फ़ायदा कि 'शेफ़्ता' ! अर्ज़े हुनर करे ॥

कहता हूँ जो "ग़ैरसे न मिलिये" ।
कहता है कि "क्या मैं वेवफ़ा हूँ ?"

जो हाल पूछना है तुम उससे ही पूछ लो ।
मुझको दमाग़ेक़िस्सये ग़महाये दिल नहीं ॥

हम आजतक छिपाते हैं यारोंसे राज़े इश्क़ ।
हालाँकि दुश्मनोंसे यह क़िस्सा[2] निहाँ नहीं ॥

लग जाये शायद आँख कोई दम शबेफ़िराक़ ।
नासेहको ही ले आओ गर अफ़सानाख़्वाँ नहीं ॥

कहते हैं तुमको होश नहीं इज़्तराबमें ।
सारे गिले तमाम हुए इक जवाबमें ॥

इस नौबहारे हुस्नको बदनाम मत करो ।
थी 'शेफ़्ता'के पहले ही शोरिश दमाग़में ॥

दोनोंका एक हाल है यह मुद्दआ हो काश !
वो ही ख़त उसने भेज दिया क्यों जवाबमें ॥

अफ़सुर्दा ख़ातिरी वोह बला है कि 'शेफ़्ता' !
ताअ़तमें कुछ मज़ा है न लज़्ज़त गुनाहमें ॥

---

[1] कृपाओंका; [2] छुपा हुआ ।

१०१

मजरूह

(स्वर्गीय १६०२)

मीर महदी 'मजरूह' मीरहुसेन फ़िगारके पुत्र और दिल्लीके रहनेवाले थे। ग़ालिबके प्रिय और योग्य शिष्य थे। ग़दरके हंगामोंमें यह दिल्ली छोड़कर पानीपत चले गये थे। उपद्रव शान्त होनेपर पुनः दिल्ली वापिस आ गये। फिर आजीविकाकी खोजमें अलवर गये तो वहाँके राजा शिवध्यानसिंहने इनकी अच्छी क़द्र की। अन्तिम दिनोंमें नवाब साहबकी क़द्रदानी और मेहरबानियोंसे आकर्षित होकर रामपुर जा बसे थे। 'मज़हरे मानी' नामक दीवान वहींसे प्रकाशित कराया।

'मजरूह' की भाषा सरल और मधुर है। छोटी बहरोंमें सारगर्भित शेर कहते थे। इनकी शायरी भावोंकी मौलिकता या नवीनताकी दृष्टिसे हीन होते हुए भी छन्द शास्त्रके दोषोंसे मुक्त हैं। इनको लिखे हुए मिर्ज़ा ग़ालिबके अक्सर दिलचस्प पत्र 'उर्दूएमुअ़ल्ला' में छपे हैं। मौ० हाली भी इनका बहुत आदर करते थे।

मेरे दिलमें हो, गो मुझसे निहाँ हो।
मुझे भी ढूँड लेना तुम जहाँ हो॥
तक़ाज़ाए मुहब्बत है वगर्ना।
मुझे और झूठका तुमपर गुमाँ हो॥

एक ही दोस्त और उससे हमें छुड़वाते हो।
नासहो अब तुम्हें दुश्मन कहें या दोस्त बताओ ?

बढ़ाओ न आपसमें मिल्लत जियादा।
मुबादा कि हो जाय नफ़रत जियादा॥
तकल्लुफ़ अलामत है बेगानगीकी।
न डालो तकल्लुफ़की आदत जियादा॥
करो दोस्तो पहले आप अपनी इज्जत।
जो चाहो करें लोग इज्जत जियादा॥
निकालो न रख़ने नसबमें किसीके।
नहीं कोई इससे रजालत जियादा॥
करो इल्मसे इक्तसाबे शराफ़त।
नजाबतसे है ये शराफ़त जियादा॥
फ़राग़तसे दुनियामें दम भर न बैठो।
अगर चाहते हो फ़राग़त जियादा॥
जहाँ राम होता है मीठी जबाँसे।
नहीं लगती कुछ इसमें दौलत जियादा॥
मुसीबतका इक-इकसे अहवाल कहना।
मुसीबतसे है ये मुसीबत जियादा॥
फिर औरोंकी तकते-फिरोगे सख़ावत।
बढ़ाओ न हदसे सख़ावत जियादा॥
कहीं दोस्त तुमसे न हो जाएँ बदज़न।
जताओ न अपनी मुहब्बत जियादा॥

चापलूसों, मुसाहबों, टुकड़खोरोंकी-सी न रहकर एक कमाऊ व्यक्तिकी हो गई। मुलाज़िमतमें होते हुए भी इन गुणियोंके स्वाभिमान और आवश्यकताओंका नवाब पूर्ण ध्यान रखते थे। कोई उनके साथ दुर्व्यवहार नहीं कर सकता था, और हर खुशीके अवसरोंपर उन्हें इनाम-इकराम देकर आदर दिया जाता था।

नवाबका गद्य और पद्य दोनोंका अभ्यास था। गद्यमें उनकी कई पुस्तकें मशहूर हैं। फ़ारसी-शायरीका दीवान भी है। उर्दूमें 'अमीर मीनाई'से इस्लाह लेते थे। उर्दूमें चार दीवान उनकी योग्यताके परिचायक हैं। 'नवाब' उपनामसे निहायत उम्दा शेर कहते थे। भाषाकी शुद्धता और सुन्दरताका बहुत खयाल रखते थे।

इनके पिताने देहलवी-लखनवी शायरीकी दो धाराओंका एकीकरण करनेके लिए जो संगम निर्माण किया था, इनके युगमें उसपर उत्तरोत्तर यात्री आने लगे; और दोनों धाराओंका ऐसा एकीकरण हुआ कि अब उर्दूके सभी शायर बिना किसी भेदभावके इस मिली-जुली गंगा-जमनी शायरीके उपासक हैं। श्री रामबाबू सकसेना लिखते हैं—

"नासिखका तर्ज़ उनके शागिर्दोंके ज़मानेमें जो कि अपने उस्तादकी उस्तादाना रविशको क़ायम न रख सके थे, बदसे बदतर हो गया था। उन लोगोंके कलाममें इस तर्ज़के तमाम अयूब (दोष) तो मौजूद थे, मगर खूबियाँ मफ़क़ूद (ग़ायब) थीं। इस तर्ज़के बरतनेवाले रामपुरमें बहर, मुनीर, क़ल्क और असीर थे। बरख़िलाफ़ इसके तर्ज़ दिल्लीके पैरो (अनु-यायी, समर्थक) दाग़ और तसलीम थे।....इनमें और लखनऊ-वालोंमें ज़मीनो-आस्मानका फ़र्क़ था। उनके (दाग़के) अशआर बहुत मक़बूल हुए। हर शख्स उनके रंगका दिलदादा था। तसलीम गो कि लखनऊके थे, मगर रंग बिल्कुल दिल्लीका अख़्तियार किया था। ये 'नसीम' देहलवी (मोमिनके शागिर्द) के शागिर्द थे। लखनऊ शायरीके रंगका जादू कभी नहीं चला। वे हमेशा इससे दूर रहते रहे, और

था न जुज़ग़म[1] बिसातेआशिक़में[2] ।
ग़मको राहतफ़िज़ा[3] किया तूने ॥

कर दिया ख़ूगरे[4] जफ़ा तूने ।
ख़ूब डाली थी इब्तदा तूने ॥

शेख़ ! जब दिल ही दैरमें न लगा ।
आके मस्जिदमें क्या लिया तूने ?

दूर हो ऐ दिले मआलअन्देश[5] ।
खो दिया उम्रका मज़ा तूने ॥

---

[1]व्यथाके अतिरिक्त;
[2]प्रेमीके भाग्यमें;
[3]आनन्दमय;
[4]अत्याचारका अभ्यस्त;
[5]परिणामसे डरनेवाला ।

ज़ेरे क़लम—

शेर-ओ-सुख़न

भाग दूसरा

१९०१ से १९५१ तकके वर्तमान युगीन सर्वश्रेष्ठ २०१ ग़ज़लगो शायरोंका परिचय और उनके श्रेष्ठतम कलामका संकलन तथा वर्तमान शायरीकी गति-विधि पर सिंहावलोकन

पुरातन शायरीका कायाकल्प किस प्रकार हुआ, कैसे-कैसे अजीबो-ग़रीब इन्क़लाब आये, उर्दू-शायरीने कैसे-कैसे पहलू बदले और कितनी करवटें लीं, बाज़ारी माशूक़से नफ़रत, हया परवर शीला नारीका सम्मान, रोने-विसूरनेकी प्रथा बन्द, व्यक्तिगत दुखोंको भूलकर विश्वके दीन-दुखियोंके ग़मोंको अपनानेका इतिहास, आलोचनात्मक विवेचन, शायरोंसे साक्षात मिलकर उनके रेखाचित्र, उनके स्वयं पसन्दीदा अशआर, गोयलीयजीकी लेखनीका वास्तविक चमत्कार।

कुछ ख्यातिप्राप्त शायर

पुरानी यादगारें

१ शाद अज़ीमाबादी
२ नज्म तबा तबाई
३ आसी ग़ाज़ीपुरी
४ रियाज़ ख़ैराबादी
५ असग़र गोण्डवी
६ फ़ानी बदायूंनी
७ जलील मानिकपुरी
८ सफ़ी लखनवी
९ अज़ीज़ लखनवी
१० आरज़ू लखनवी
११ आग़ा शायर देहलवी
१२ साइल देहलवी
१३ हसरत मोहानी
१४ नातिक़ गुलावठी
१५ नूह नारवी
१६ सीमाब अकबराबादी
१७ ताजवर नजीबाबादी

नवाब यूसुफ़अलीख़ाँ—नवाब मुहम्मद सईदख़ाँके पुत्र थे। ये बड़े गुणज्ञ, कला-पारखी, और सहृदय थे। उर्दू-फ़ारसी दोनोंमें शेर कहते थे। 'नाज़िम' उपनाम था। साहिबे दीवान हुए हैं। प्रारम्भमें 'मोमिन' से इस्लाह लेते थे। उनके बाद 'ग़ालिब'से मशवरएसुख़न लेते रहे। उनके बाद 'असीर' को कलाम दिखलाते रहे। दिल्ली-लखनऊ-दरबारोंके ग़दरमें उजड़नेके बाद अक्सर शायर इन्हींके आश्रयमें आ गये। जिनमें ग़ालिब, मौलाना फ़ज़लहक़ ख़ैराबादी, तसकीन, असीर, वग़ैरह थे। शायरोंके रामपुरमें एकत्र होनेसे उर्दू-शायरीको एक बहुत बड़ा लाभ ये पहुँचा कि वह अभीतक देहलवी और लखनवी जुदा-जुदा धाराओंमें विभक्त थी। यहाँ आकर वह एक हो गई और रामपुर संगम बन गया।

नवाब क़ल्बअलीख़ाँ—अपने पिता यूसुफ़अलीके जन्नतनशीन होनेके बाद १८६५ ई०में सिंहासनारूढ़ हुए। इनके शासनकालमें पहलेसे भी अधिक उर्दू-शायरीको फ़रोग़ मिला। इनका शासनकाल उर्दू-शायरीका निःसंकोच स्वर्णयुग कहा जा सकता है। इन्होंने इस छोटी-सी रियासतमें भारतके ऐसे सर्वश्रेष्ठ कलाकार एकत्र कर लिये कि जिनके अन्यत्र उदाहरण नहीं मिलते। शायरोंका भी बहुत बड़ा समूह था, जिनके चन्द नाम ये हैं—असीर, बहर, अमीर मीनाई, दाग़, जलाल, तसलीम, मुनीर, क़ल्क, उरूज, हया, जान साहब, आग़ाहिजो शरफ़, उन्स, शाग़ल, शादाँ, ग़नी, ज़िया, ख़्वाजा, मन्सूर, रज़ा। शायरों और साहित्यिकोंके अतिरिक्त संगीतज्ञ, हकीम, ज्योतिषी, चित्रकार आदि भी एक-से-एक बढ़कर एकत्र किये गये थे।

ये गुणी और कलाकार रियासतके लिए भारस्वरूप न हो जाएँ, इसलिए इनको रियासतके भिन्न-भिन्न पदोंपर नियत कर दिया था। योग्यतानुसार अपनी ड्यूटी भी करते थे और अपने विशेष गुणका जौहर भी दिखलाते थे। इस नियुक्तिसे रियासत और गुणियों दोनोंको ही लाभ पहुँचा। रियासत तो व्यर्थके व्ययसे बच गई और गुणियोंकी स्थिति

[फरवरी १९५१ में प्रकाशित]

पंच-प्रदीप

श्री शान्ति एम० ए०

आमुख-लेखक श्री सुमित्रानन्दन पन्त लिखते हैं:—"शांतिजीका कविहृदय संस्कारतः स्वच्छ सुथरे कक्षके भीतर प्रतिष्ठित है, जहाँसे उनका सहज बोध भावनाके उत्थान-पतनों, सुख-दुखके मधुर-तिक्त संवेदनों तथा बाह्य जगत्‌के आघातों और विक्षोभोंको एक स्वस्थ संयमन तथा आगे बढ़नेकी प्रेरणा प्रदान करता रहता है। कहीं भी कवयित्रीकी समर्थ भावना ऊबड़-खाबड़ धरतीकी ठोकर खाकर परास्त होती नहीं प्रतीत होती, और न वह भावोच्छ्‌वास मात्र बनकर बाष्पकी तरह हवामें उड़ती दिखाई देती है।...कवयित्रीकी भाषामें स्वाभाविकता, सजीवता, मधुर प्रवाह तथा शक्तिका सन्तुलित सौष्ठव है। वह अपने काव्य-निर्माणमें बच्चन तथा महादेवीजीकी झंकारोंको आत्मसात् कर उन्हें नवीन रूप प्रदान कर देती है।" मूल्य दो रु०

[फरवरी १९५१ में प्रकाशित]

मेरे बापू

श्री हुकुमचन्द्र बुखारिया 'तन्मय'

डा० रामकुमार वर्मा—

"मेरे बापूमें युग पुरुषको कविकी श्रद्धाञ्जलि समर्पित हुई है। इन श्रद्धाञ्जलिमें कविकी अनुभूति और कल्पनाके ऐसे प्रसून हैं, जिनकी सुगन्धि निरन्तर पूजाकी पवित्रता लिए रहेगी। बापूका व्यक्तित्व ही काव्यका सहज विषय है। कवित्वके इस जागरणमें कविकी लेखनी संदेश-वाहिका बन गई है। ये सन्देश शताब्दियोंतक गूँजते रहेंगे। मूल्य ढाई रु०

वैदिक साहित्य

प्रस्तावना-लेखक :—श्री सम्पूर्णानन्दजी, शिक्षा-मन्त्री

इसके लेखक वैदिक साहित्यके प्रकाण्ड-विद्वान् श्री पं० रामगोविन्द त्रिवेदी हैं। वैदिक साहित्य का इतना सांगोपांग परिचय हिन्दी तो क्या सम्भवतया भारतकी अन्य भाषाओं में भी उपलब्ध नहीं है। [illegible] लगभग ५०० पृष्ठों में अबतक प्राप्त ११ संहिताओं, १८ [illegible] ग्रन्थों, ९ आख्यायिकाओं और २२० उपनिषदोंकी [illegible] उनके सम्बन्धमें अन्य ज्ञातव्य बातोंका विवेचन है। मूल्य [illegible]

१७७३ ई०में इनके पुत्र राजा कल्याणसिंह उसी पदपर नियुक्त हुए। इनका उपनाम 'राजा' था और मीर ज़ियाउद्दीन 'ज़िया'से इसलाह लेते थे। 'फ़ुग़ाँ'ने भी मुर्शिदावाद और फ़ैज़ाबादसे लौटकर यहीं सम्मानपूर्वक जीवन व्यतीत किया, महाराजा इनका वहुत आदर-सत्कार करते थे।

मुर्शिदाबाद—मुर्शिदाबादके नवाबोंने भी शायरोंका उचित स्वागत किया। सोज़, क़ुदरत, अन्तमें वहीं रहने लगे थे और वहीं उन्होंने समाधि पाई। मिर्ज़ा ज़हूर अली 'ख़लील' भी नवावके निमंत्रणपर गये थे। मर्सियागो शायर थे। यहाँका वातावरण राजनैतिक षड्यन्त्रोंसे दूषित और अशांत रहता था। इसलिए इस ओर विशेष शायर नहीं आये।

टौंक—टौंकके नवाव सर हाफ़िज़ मुहम्मद इब्राहीम अलीख़ाँ १८६६ ई०में राज्यासीन हुए। ये 'ख़लील' उपनामसे शायरी करते थे। 'अमीर' मीनाईके शिष्य 'बिस्मिल' ख़ैराबादी इनके कविता-गुरु थे। ज़हीर, असद, मुजतर आदि शायर इनके यहाँसे भी सम्मानित हुए थे। 'असद'के यहाँ कई शिष्य थे। जिनमें असग़रअली 'आबरू' हबीबुल्ला 'जब्र' प्रसिद्ध हैं। इन नवाबोंके उत्तराधिकारी भी शायरीसे दिलचस्पी रखते हैं।

अलवर—अलवरके महाराजा शिवध्यानसिंह—ज़हीर, तसवीर, तिश्ना, मजरूह, सालिक आदिके आश्रयदाता थे। 'फ़सानयेआज़ाद'के ख्याति-प्राप्त लेखक पं० रतननाथ 'सरशार'को भी बुलाकर सम्मानित किया था।

अन्य स्थान—भोपाल, मंगलोर (काठियावाड़) जयपुर, ग्वालियर कोटला, बहावलपुरके शासक भी शायरोंका उचित आदर-सत्कार करते रहे हैं।

११ अक्टूबर १९५० ई०

समाप्त

[मार्च १९५१ में प्रकाशित]

गहरे पानी पैठ

[सूक्तिरूपमें ११८ मर्मस्पर्शी कहानियाँ]

श्री अयोध्याप्रसाद गोयलीय

गुरुजनोंके चरणोंमें बैठकर जो सुना.
इतिहास और धर्मग्रन्थोंमें जो पढ़ा.
और हियेकी आँखोंसे जो देखा.

वही जीवनभरका अध्ययन और अनुभव लेखकने कागज़पर बखेर दिया है। प्रवचनों और व्याख्यानोंमें उदाहरण स्वरुप दी जानेवाली श्रेष्ठतम आख्यायिकाएँ।

मूल्य ढाई रु०

[मार्च १९५१ में प्रकाशित]

ज्ञानगंगा

[संसारके महान् साधकोंकी सूक्तियोंका अक्षय भण्डार]

श्री नारायणप्रसाद जैन

इन सूक्तियोंको पढ़कर पता चलता है कि मनुष्यके जागरित मनमें पृथ्वीके विभिन्न खण्डोंमें रहकर अनन्त युगोंतक जीवनसे जूझकर और जीवनको अपनाकर अपने अनुभव द्वारा सत्यको किस प्रकार प्राप्त किया है और उसे किस अमर वाणीमें व्यक्त किया है। यह मानव-सन्ततिका अक्षय भंडार और अखंड उत्तराधिकार है। यहाँ देश, काल, जाति और भाषाकी सीमाओंसे परे सारा विश्व ज्ञानके प्रकाशसे उद्भासित सत्यके बलसे अनुप्राणित और सौन्दर्यके आकर्षणसे एकाकार प्रतीत होता है। ज्ञानकी यह कितनी बड़ी करामात है कि वह मानव-मात्रमें भेद ही उत्पन्न नहीं करता, जीवनकी मौलिक एकताका आधार साक्षर वाणीमें व्यक्त करता है और इतिहासके पृष्ठोंपर अमरत्वकी छाप लगा देता है।

मूल्य छः रु०

[फरवरी १९५१ में प्रकाशित]

पंच-प्रदीप

श्री शान्ति एम० ए०

आमुख-लेखक श्री सुमित्रानन्दन पन्त लिखते हैं:—"शांतिजीका कविहृदय संस्कारतः स्वच्छ सुथरे कक्षके भीतर प्रतिष्ठित है, जहांसे उनका सहज बोध भावनाके उत्थान-पतनों, सुख-दुखके मधुर-तिक्त संवेदनों तथा बाह्य जगत्के आघातों और विक्षोभोंको एक स्वस्थ संयमन तथा आगे बढ़नेकी प्रेरणा प्रदान करता रहता है। कहीं भी कवयित्रीकी समर्थ भावना ऊबड़-खाबड़ धरतीकी ठोकर खाकर परास्त होती नहीं प्रतीत होती, और न वह भावोच्छ्वास मात्र बनकर वाष्पकी तरह हवामें उड़ती दिखाई देती है।. . .कवयित्रीकी भाषामें स्वाभाविकता, सजीवता, मधुर प्रवाह तथा गवितका सन्तुलित सौष्ठव है। वह अपने काव्य-निर्माणमें बच्चन तथा महादेवीजीकी झंकारोंको आत्मसात् कर उन्हें नवीन रूप प्रदान कर देती है।" मूल्य दो रु०

[फरवरी १९५१ में प्रकाशित]

मेरे बापू

श्री हुकुमचन्द्र बुखारिया 'तन्मय'

डा० रामकुमार वर्मा—

"मेरे बापूमें युग पुरुषको कविकी श्रद्धाञ्जलि समर्पित हुई है। इस श्रद्धाञ्जलिमें कविकी अनुभूति और कल्पनाके ऐसे प्रसून हैं, जिनकी सुगन्धि निरन्तर पूजाकी पवित्रता लिए रहेगी। बापूका व्यक्तित्व ही काव्यका सहज विषय है। कवित्वके इस जागरणमें कविकी लेखनी सन्देश-वाहिका बन गई है। ये सन्देश शताब्दियोंतक गूँजते रहेंगे। मूल्य ढाई रु०

वैदिक साहित्य

प्रस्तावना लेखक :—श्री सम्पूर्णानन्दजी, शिक्षा-मन्त्री

इसके लेखक वैदिक साहित्यके प्रकाण्ड-विद्वान् श्री पं० रामगोविन्द त्रिवेदी हैं। वैदिक साहित्य का इतना सांगोपांग परिचय हिन्दी तो क्या सम्भवतया भारतकी अन्य भाषाओं में भी उपलब्ध नहीं है। [illegible] लगभग ५०० पृष्ठों में अबतक प्राप्त ११ संहिताओं, [illegible] ग्रन्थों, ९ आख्यायिकाओं और २२० उपनिषदोंकी [illegible] उनके सम्बन्धमें अन्य ज्ञातव्य बातोंका विवेचन है। मूल्य [illegible] रु०

वोह नातवाँ हूँ जो लेटा कभी मैं विस्तरपर।
गुमाँ हुआ कि शिकन पड़ गई है चादरपर॥
किया उद्गने जो गेसूए यारमें शाना[1]।
हुआ यह रश्क कि आरे चले यहाँ सरपर॥

बोला वोह बुत सिरहाने मेरे आके वक़्तेनज़अ[2]।
"फ़रियादको हमारी चले हो ख़ुदाके पास?"

ज़ेबा हो ख़ाक! इश्क़का जामा रक़ीबको।
क्योंकर ख़ुश आये मर्दका पहने जो ज़न लिबास॥

नज़र आ जाये जो वह मुसहफ़ेरुख़[3]।
हिन्दुओंको भी हो इस्लामकी हिर्स॥
हिजोए[4] मयकश[5] है लवेवाइज़पर।
दिलमें पोशीदा मय-ओ-जामकी हिर्स॥

तुम्हारी ज़ातसे मतलब है दोनों दुनियाँमें।
न कुछ यहाँसे ग़रज़ है न कुछ वहाँसे ग़रज़॥

तौवा सौबार मैं कर लूँगा कुछ इन्कार नहीं।
मयकशीसे तो ज़रा हो मुझे फ़ुरसत वाइज़!
काँपता ख़ौफ़से मस्तोंका है रूआँ-रूआँ।
कुछ ज़बाँसे नहीं तौवाकी ज़रूरत वाइज़!
तू जो रिन्दोंकी हक़ीक़त नहीं समझा, न समझ।
रिन्द समझे हैं तेरी ख़ूब हक़ीक़त वाइज़!

---

[1]कंघी; [2]मृत्युके समय;
[3]क़ुरान-जैसी किताबी सूरत; [4]बुराई;
[5]शराबियोंकी।

जामेमय देखके जामेसे हुआ तू बाहर।
पीले दो घूँट तो क्या हो तेरी सूरत वाइज़ !
देख मयख़ानेमें घनघोर घटा छाई है॥
सरपै मस्तोंके है अल्लाहकी रहमत वाइज़ !
ऐसे पढ़नेसे तो अच्छा था कि जाहिल रहता।
न हया तुझमें है बाक़ी न मुरव्वत वाइज़ !

फूल गर मुरझाएँ तो मुझसे न करना कुछ गिला।
ऐ सबा ! चलनेको मैं चलता हूँ गुलशनकी तरफ़॥

लाग़िर[1] हूँ इस क़दर मुझे पहचानती नहीं।
रह-रहके देखती है क़ज़ा सरसे-पाँवतक॥

ग़श आया है मुझे मस्जिदमें बे मय।
चलो लेकर मुझे पीरेमुग़ा[2] तक॥

हो गये मुर्दा हिज्रेयारमें हम।
घरमें अपने हैं या मज़ारमें हम।
कौन पूछेगा हम ग़रीबोंको।
रोज़ेमहशर हैं किस शुमारमें हम*॥

शबेविसाल सरेशामसे वोह कहते हैं।
कि आज क्यों नहीं होती सहर[3], नहीं मालूम॥

---

[1]निर्बल; [2]मधुशालाके स्वामी;

* ऊँचे-ऊँचे मुजरिमोंकी पूछ होगी हश्रमें।
कौन पूछेगा मुझे ? मैं किन गुनहगारोंमें हूँ ?
—अज्ञात

[3]सुबह।

काँटा हुआ हूँ सूखके लेकिन निहाल हूँ।
खटकूँगा और अपने उदूकी निगाहमें॥

मुझको साहिलतक ख़ुदा पहुँचायगा ऐ नाख़ुदा[1]!
अपनी किश्तीकी बयाँ तुझसे तबाही क्या करूँ ?

ऐ इन्क़लाबेदहर ! मिटाता है क्यों मुझे।
नक़्शे हज़ार मिट गये हैं, तब बना हूँ मैं॥

नामे[2] वोह बारी-बारी उश्शाक़के[3] पढ़ेंगे।
उजलतमें[4] कुछ न होगा नम्बर लगे हुए हैं॥
मैं जानता हूँ बुलबुल ! है जो तेरी हक़ीक़त।
इकमुश्ते इस्तख़्वाँ[5] हैं दो पर लगे हुए हैं॥
है हुक्मे यार कोई मेरी तरफ़ न देखे।
ये इश्तहार अब तो घर-घर लगे हुए हैं॥
मुझ बेनवा[6] गदाको[7] पूछे 'अमीर' वोह क्या ?
शाहोंके उस गलीमें बिस्तर लगे हुए हैं॥

मिलनेका वादा उनके तो मुँहसे निकल गया।
पूछी जगह जो मैंने कहा हँसके 'ख़्वाबमें'॥
क़ासिद ! है क़ौल-ओ-फ़ेलका[8] क्या उनके एतबार।
पैग़ाम कुछ कहा है, लिखा कुछ जवाबमें॥

---

[1]मल्लाह; [2]पत्र;
[3]प्रेमियोंके; [4]जल्दी करनेसे;
[5]मुट्ठीभर हड्डियाँ; [6]मूक;
[7]भिक्षुकको, अभिलाषीको;
[8]कहने और करने का।

क़ाज़ी भी अब तो आये हैं बज़्मेशराबमें।
साक़ी हज़ार शुक्र ख़ुदाकी जनाबमें॥

हाजत नहीं तो दौलते दुनियासे काम क्या।
फँसता है तिश्नादाम[1] फ़रेबे सराबमें[2]॥

दिल साफ़ हो तो कशमकशेदहर[3] क्या करे?
शोला है कब धुएँकी तरह पेचोताबमें॥

परवा नहीं है हमको अगर हैं क़फ़समें बन्द।
सैयाद! सैर बाग़की करते हैं ख़्वाबमें॥

ज़ाहिदको फ़ैज़े सुहबते रिन्दाँसे क्या 'अमीर'।
आलिम कभी न रहके हो, कीड़ा किताबमें॥

हरचन्द मान्दगीने हमको बिठा दिया है।
सद्‌शुक्र दूरसे तो मंज़िलको देखते हैं॥

आँखोंको बन्द कर लें ख़ालिक़से लौ लगाएँ।
क्यों ग़र्क़ होनेवाले साहिलको[4] देखते हैं॥

यह क़ज़ा है कि अदा आपकी सुभान अल्लाह।
सफ़[5] उलटती है जो मस्जिदमें जनाब आते हैं॥

ताबो[6] तवाँ[7] न मुझमें न अक़्लो हवासो होश।
शक्ल आदमीकी सूरते मरदुमगयाह[8] हूँ॥

मैं मरके ख़ाक हुआ ख़ाक हो गई बरबाद।
वे मौतका भी नहीं ऐतबार करते हैं॥

---

[1]प्यासा पथिक; [2]मृगमरीचिकामें; [3]संसारका मायाजाल; [4]किनारेको; [5]नमाज़ियोंकी क़तारें; [6]तेज; [7]बल; [8]चीन देशकी एक घास जो मनुष्यकी सूरतसे मिलती है।

मुहतसिबके[1] लाख-लाख अहसाँ कि ख़ोशेकी[2] तरह ।
काटकर मस्तोंके सर लटका दिये अंगूरमें ।।

जमा-माल, इन्साँ तो क्या, हैवाँको करता है तबाह ।
शहद दिलवाता है आतिश[3], ख़ानये जम्बूरमें[4] ।।

दुनियासे हाथ धोके चलें कूए यारमें ।
जाइज़ नहीं कि तौफ़े हरम बेवज़ू करें ।।
दीवानगीका सिल्सिला ताअ़तमें[5] भी न जाय ।
पहले पढ़ें नमाज़ तो पीछे वज़ू करें ।।
ज़ाहिद तेरे फ़रिश्तोंको यह दिन नहीं नसीब ।
जन्नतसे दूर आयें जो हम आरज़ू करें ।।

घबराके जब फ़िराक़में माँगी दुआए वस्ल ।
आई सदा "यही तो मुक़ाम इम्तहाँके हैं" ।।
मरकर भी हमको मयसे तअ़ल्लुक़ वही रहा ।
तख़्ते लहदमें[6] पीरेमुग़ाँकी[7] दुकाँके हैं ।।

निहाँ रहता है आईनेसे वोह बेगानाख़ू[8] बरसों ।
हया देखो, नहीं आता है अपने रोबरू बरसों ।।
सरापा जुर्म हूँ लेकिन वोह रिन्दे पाकतीनत हूँ ।
किया ज़ाहिदने मेरे आबेख़िजलतसे[9] वज़ू बरसों ।।

---

[1]आचरण निरीक्षकके; [2]गुच्छोंकी;
[3]आग; [4]मधुमक्खियोंके छत्तेमें;
[5]उपासनामें; [6]क़ब्रमें;
[7]मधुशालाकी; [8]स्वभावतः उपेक्षा रखनेवाला;
[9]शर्मके पसीनेसे ।

मैं उल्फ़तके वोह हुस्नके जोशमें।
न मैं होशमें हूँ न वोह होशमें॥
न उठो अभी बज़्मसे मयकशो!
हमें भी तो आ लेने दो होशमें॥

समझा यह मैं, जो निकले शाख़ोंसे गुल चमनमें।
सूफ़ी निकलके बैठे ख़िलवतसे[1] अंजुमनमें[2]॥

साफ़ कह दो नहीं दीदार दिखाना है अगर।
काबा-ओ-दैरमें दौड़ाते हो क्यों तुम मुझको॥

आज महफ़िलसे तुम आये हो उठाने हमको।
हाय! वोह दिन कि जो उठते थे बिठाने हमको॥*

बुलहविस[3] और दुआए सोज़ेइश्क़[4]।
दाग़ खानेको कलेजा चाहिए॥

यह वजह है जो आरिज़ेजानाँपै है नक़ाब।
करती हैं जिल्द ख़ूब हिफ़ाज़त किताबकी॥

देखो तो इत्तहाद ज़रा हुस्नोइश्क़का।
बुलबुलके आँसुओंमें है ख़ुशबू गुलाबकी॥

तुम चौधवींका चाँद हो तो अपने वास्ते।
क्या फ़ायदा, किसीको किसीके कमालसे॥

---

[1]एकान्तसे;　　[2]महफ़िलमें;

*　　वोह जो उठते थे बिठानेके लिए।
　　आज बैठे हैं उठानेके लिए॥
—अज्ञात

[3]विषयलोलुपी;　　[4]सच्चे प्रेमकी प्रार्थना।

मेर घरकी तरफ़ भी आलमेमस्तीमें आ निकले।
तरंग ऐसी कभी या रब ! मिज़ाजेयारमें आये ॥

है नमाज़ उन ज़ाहिदोंकी ज़ोफ़े ईमाँपर दलील।
सामने अल्लाहके जाते हैं उठते-बैठते ॥
ख़ुदनुमाईकी बदौलत कितने ओच्छे हैं हसीन।
मँहदी मलते हैं तो इतराते हैं उठते-बैठते ॥

यक़ीं हुआ जो गिरा दाँत कोई पीरीमें।
कि आज खुल गई खिड़की क़ज़ाके आनेकी ॥

बाद मुर्दन भी मेरे ज़ोफ़की क़ूवत न घटी।
ख़ाक उठी भी तो चकराके वहीं बैठ गई ॥
इन दिनों दुख़्तरेरिज़का[1] नहीं मिलता है पता।
कहीं क़ाज़ीके तो घर जाके नहीं बैठ गई ॥

वाइज़ा समझा है तू दोज़ख़ जिसे।
कुछ शरर हैं आहेआतिश बारके ॥

लिया जो ख़्वाबमें बोसा तो यार जाग उठा।
तमाम उम्रका हम एतबार खो बैठे ॥
बलाएँ लेते ही वोह और हो गया वहशी।
हम अपने हाथोंसे अपना शिकार खो बैठे ॥

हज़ारों ख़ार, लाखों फूल, उस गुलशनमें हैं लेकिन।
न तुम-सा नाज़नीं कोई, न हम-सा नातवाँ कोई ॥

नसीहत करनेवालोंको अगर कुछ भी समझ होती।
जो समझाते हैं मुझको वोह मेरे दिलबरको समझाते ॥

---

[1] अंगूरकी बेटी (शराब) का।

किया, किन्तु नवावकी गुणग्राहकता और उदारताके कारण वहीं रहनेको वाध्य रहे। रामपुरमें २० वर्षके लगभग रहे। इसी ज़मानेमें मिर्ज़ा 'दाग़', 'अमीर' मीनाई, और 'तसलीम' भी रामपुरमें क़याम फ़र्माते थे, और चारों उस्ताद मिसरा-तरही मुशायरोंमें ग़ज़ल पढ़ते थे।

नवावकी मृत्यु होनेके वाद रियासतमें 'कौंसिल आफ़ रीजेन्सी' क़ायम होनेके कारण जलाल लखनऊ वापिस चले गये। फिर काठियावाड़ इलाक़ेकी एक छोटी-सी रियासत मंगलोरके नवावने इन्हें अपने यहाँ रखना चाहा, किन्तु दूर होने तथा स्वास्थ्यके अनुकूल न होनेके कारण चन्द ही दिनमें वहाँसे भी लखनऊ चले आये। फिर भी नवाव साहव इनको २५ रु० मासिक और हर क़सीदेपर १०० रु० भेजते रहे। ७६ वर्षकी आयुमें १९०९ ई०में लखनऊमें इन्तक़ाल हुआ।

अल्लामा नियाज़ फ़तहपुरी अपने किसी मित्रको पत्रोत्तर देते हुए लिखते हैं—

"लखनऊके दौरे मुताख़्ख़रीनमें 'जलाल' का-सा अन्दाज़े वयान 'अमीर' का क्या जिक्र है; मुतवस्सतीनमें 'आतिश' को भी नसीव न हुआ। और इस हैसियतसे कि ख़ारजी-ओ-दाख़िली दोनों रंग उसके यहाँ पूरी तरह रचे हुए हैं, मुझे तो देहलीमें भी कोई नज़र नहीं आता। वोह न सिर्फ फ़नका वादशाह था, वल्कि जज़्वात निगारीका मालिक था। यक़ीनन उसमें न मोमिन का रंग है, न ग़ालिवके-से तेवर, न आतिश का-सा जोशोख़रोश है, न मुसहफ़ीकी-सी हलावत, न हसरत और जुरअतका सा खुल-खेलना है, न मीरो दर्दकी-सी उफ़तादगी। लेकिन फिर भी एक चीज़ ऐसी है जो थोड़ी देर के लिये उन सवको भुला देती है। इसमें शक नहीं कि लखनऊका ख़ारजी रंग उसमें पूरी तरह पाया जाता है। लेकिन उसका असलूबे वयान एक ऐसी दिलकश वैकग्राउण्ड पैदा कर देता है कि गहराइयोंकी जुस्तजू करनेवाले भी एक वार सतहपर ठहरकर महव हो जाते हैं। रही ज़बानकी सेहत और पाकीज़गी। सो इस वातमें उसकी एहतयातसे

कौन वाक़िफ़ नहीं ? उसके यहाँ यक़ीनन मुहब्बतकी कोई टीस नहीं है, कोई तड़पा देनेवाला दर्द नहीं है, कोई ऐसा नश्तर नहीं है जो दिलमें पैवस्त हो जाये। उसके यहाँ तमाम बातें वही हैं, जो आँख लड़ाने और आँख लग जानेके सिलसिलेमें पैदा होती हैं। वही घातें और लगावटें हैं, जो मुहब्बतकी अदना क़िस्ममें पाई जाती हैं। यानी उसका कलाम जो फ़िज़ा पेश करता है, वोह वही 'ज़हरेइश्क़' वाली फ़िज़ा है कि —

जिस मुहल्लेमें था हमारा घर।
वहीं रहता था एक सौदागर॥

"उस (सौदागर)की एक माहेजबीं लड़की थी। जिससे आँख लड़ गई। आपसमें ख़तोकितावत हुई। मिलनेके बहाने ढूंडे गये। कभी कामयाबी हुई, कभी नाकामयाबी। कामयाबी हुई तो सरशारिएवस्लकी लज़्ज़तोंका ज़िक्र होने लगा। नाकामी हुई तो गिला-शिकवा शुरू हो गया। चन्द दिन यह हंगामा रहा और आख़िरकार जब मुहब्बतके हौसले निकल गये या महबूबा कहीं चली गई या मर गई तो सब्र करके बैठ गये।

"ज़ाहिर है मुहब्बतकी इस दुनियामें जो जज़्बात पैदा होंगे, उनमें कोई गहराई न होगी और न वोह शायरीमें कोई मुस्तक़िल नक़्श छोड़ जाएँगे। लेकिन जलालका कमाल यही है कि उसने इसी फ़िज़ाकी शायरीमें महज़ अपने अन्दाज़े बयानसे वोह बातें पैदा की हैं कि हम उसकी दाद देनेपर मजबूर होते हैं"।[1]

जलालकी ग़ज़लोंके चार दीवान मिलते हैं। इनके अतिरिक्त ७–८ ग्रन्थ अन्य विषयोंपर लिखे हैं। अल्लामा नियाज़ फ़तहपुरी लिखते हैं— "जलालके कलामकी ख़सूसियत यह है कि बावजूद लखनऊमें नश्वोनुमा

---

[1]मक्तूबाते नियाज़, भाग दूसरा, पृ० १५०–५१

पाने (शिक्षित-दीक्षित होने) के उन्होंने देहलवी रंगे तग़ज़्ज़ुलको पसन्द किया।"[1] लखनवी शायरीका उल्लेख करते हुए आगे लिखते हैं—लखनवी शायरीका यह वदनुमा दौर 'अमीर' मीनाईके वक़्त तक रहा। लेकिन इसके वाद शागिर्दाने मोमिन-ओ-ग़ालिवका कलाम फिर मक़बूल होने लगा, और ख़ुद अहले लखनऊने भी आख़िरकार इसको महसूस किया कि शायरी नाम ज़िला जुगतका नहीं, वल्कि वारदाते क़ल्वसे वहस करनेका है। सवसे पहले यह अहसास जलालको हुआ और इसके वाद जव शुअराये देहलीने रामपुर पहुँचकर लखनवी शुअराको मुतास्सिर (प्रभावित) किया तो रफ़्ता-रफ़्ता वोह तमाम नक़ाइस व मुआइव (नुक़्स और ऐव) दूर होने लगे। हत्ताकि इस वक़्त कोई एक भी क़ाविले ज़िक्र शायर लखनऊका ऐसा नहीं है, जो देहली स्कूलका पैरो न हो।"[2]

शायरे इन्क़लाव जोश मलीहावादी लिखते हैं—"हज़रत जलालको मैंने अपने लड़कपनमें देखा था। उस वक़्त वहुत ही ज़ईफ़ (वृद्ध) हो चुके थे और दमेकी पुरानी शिकायतने उनकी जिस्मानी हालतको और भी अवतर कर रक्खा था। जवानीमें उनका शुमार ख़ूवसूरत लोगोंमें होगा। क्योंकि इस उम्रमें भी वोह सुर्ख़ो-सफ़ेद और ख़ुशरू थे। दमेकी वजहसे वोह ऊभ-ऊभ कर वातें करते थे। लेकिन उसमें एक दिलकशी थी। उनकी आँखोंमें ज़हानतका फ़रोग़ था और कलामें फ़नका ग़रूर। उनके कलाममें देहली और लखनऊका गंगा-जमुनी रंग था। उनकी ग़ज़लें धूप-छाँव होती थीं। वे फ़न्ने शेरके वहुत वड़े माहिर और तानीस-ओ तज़कीर और अलफ़ाज़की तहक़ीक़के नव्वाज़ (शब्दोंकी प्रामाणिकताके डाक्टर) थे, और मतरूकातमें उन्हें ग़ुलो (वहिष्कृत

---

[1]इन्तक़ादियात, भाग २, पृ० १५१

[2]इनाक़ादियात, भाग २, पृ० २००

शब्दोंसे वचनेकी प्रवृत्ति) शायद ज़रूरतसे ज़्यादा, और ज़बानके हक़में नुक़्साँ रसाँ हद तक (हानिकी परिधि तक) ग़ुलो था। हमारे मुतक़द्दमीनकी बिसात (पुरातन शायरों रूपी शतरंज) के वे आख़िरी मुहरे थे।

"अमीर-दाग़के वाद मेरे वालिदेमाजिद उनसे मशवरये सुख़न करते थे। वे वालिदके पास अक्सर तशरीफ़ लाया करते थे, और कभी-कभी वालिदके हमराह, कभी-कभी तनहा, मैं भी हज़रते जलालके यहाँहाज़िरी दिया करता था। उस ज़मानेके तीन क़ाबिले ज़िक्र वाक़यात मुझे याद हैं। बातें छोटी-छोटी हैं, मगर उनसे उस ज़मानेके मिज़ाजपर रोशनी पड़ती है।

१—एक रोज़ मैं हज़रते जलालके यहाँ पहुँचा। सुवहका वक़्त था। वे ड्योढ़ीकी दहलीज़पर ज़नानेकी तरफ़ मुँह किये खड़े अपनी बीवियोंको जो आपसमें नज़ाएलफ़्ज़ी (गाली-गलौज) कर रही थीं, डाँट रहे थे। लेकिन गुस्सेकी आवाज़को दबा-दबाकर, ताकि कोई और न सुन ले। अपना दुबला-पतला हाथ किस बेकसीसे उठा-उठाकर कह रहे थे कि—'अरे कम्बख़्तो 'मुझ मुर्देको जीने भी दोगी कि नहीं ?' कि मेरी चाप सुनकर वोह झटसे चुप हो गये। शर्माकर फ़र्शपर बैठ गये और मेरा सलाम लेकर बड़े इत्मीनानके साथ बोले कि 'मियाँ बड़ी ख़ैर हुई, तुम तो ख़ैर अपने बच्चे हो। अगर इस वक़्त कोई और आ जाता तो जलाल मुँह दिखानेके क़ाबिल न रहता।' फिर थोड़ी देर ख़ामोश रहकर कहने लगे—'देखो बेटे ! एक नसीहत करता हूँ, उसे गिरहमें बाँध लो। इस दुनियामें जो जीमें आये करना, लेकिन दो बीवियाँ न करना। हरगिज़-हरगिज़ न करना। जलालकी कितनी ग़ज़लें हलाल (स्वाहा) करके रख दी हैं, इन चुड़ैलोंकी तू-तू मैं-मैं ने।'

२—एक रोज़ शाहपीर मुहम्मदके टीलेकी तरफ़से वे मेरे वालिदके साथ गाड़ीमें गुज़र रहे थे कि टीलेकी मस्जिदपर नज़र पड़ी। उन्होंने

मस्जिदकी तरफ़ हाथ उठाकर वालिदसे कहा—'ख़ाँ साहब बहादुर! यह क्या चीज़ है? वालिदने हैरतसे कहा—'मस्जिद! भला मीर साहब! यह भी कोई पूछनेकी बात है?' जलालने पुरजलाल अन्दाज़से आँख उठाई और मस्जिदकी तरफ़ इशारा करते हुए बड़े तमतराक़से कहा—'ख़ाँ साहब! इस मस्जिदकी हुरमतकी क़सम खाकर कहता हूँ कि जलालका-सा शायर न अब तक पैदा हुआ है न आइन्दा पैदा होगा।' वालिदने फ़ौरन ताईद फ़रमाई। लेकिन मेरे मुँहसे निकल गया—'उफ़' इतनी बड़ी बात।' जलालने या तो सुना नहीं या सुनी-अनसुनी करके वालिदसे पूछने लगे 'ख़ाँ साहब! साहबज़ादेके तेवर बता रहे हैं कि इन्हें चश्मेबद्दूर मेरा यह दावा गिराँ गुज़रा।' वालिदने बड़ी लजाजतसे बात काटकर कहा—'तौबा-तौबा मीरसाहब! इसकी क्या मजाल है कि इसे नागवार गुज़रे। जलाल फ़र्ते ग़रूरसे मुस्कराने लगे।

३—वालिदकी यह आदत थी कि हिन्दोस्तानके अहबाबको बिल-अमूम और लखनऊके अहबाबको बिलख़सूस फल, ग़ल्ला, घी, वग़ैरह हमेशा रवाना करते थे। चुनाँचे हस्बदस्तूर हज़रत जलालकी ख़िदमतमें घी रवाना किया गया। लेकिन ख़िलाफ़ दस्तूर वह वापिस आ गया। एक हफ़्तेके बाद जब वालिद लखनऊ तशरीफ़ ले गये तो सवारी भेजकर हज़रत जलालको तलब फ़रमाया और पूछा—'कि भला मीर साहब! यह इस बार ख़िलाफ़े आदत घी क्यों वापिस फ़रमा दिया?' यह सुनते ही जलाल-के चेहरेपर ख़ुशूनतो कुब्र (क्रोध और घमंड) के आसार पैदा हो गये। और कहने लगे—'ख़ाँ साहब! इस मर्तबा आपने यह किस गँवारको मेरे पास भेजा था? इस्तग़फ़र अल्लाह! मैं घरमें बैठा हुआ था कि दरवाज़ेपर किसी मर्दकने आवाज़ें देना शुरू कर दीं—'जलाल होत, जलाल होत,' यह सुनकर मुझपर बिजली-सी गिर पड़ी। मबहूत होकर रह गया। मैं और 'जलाल होत' से पुकारा जाऊँ? मेरी बड़ी बीवीने उस मर्दककी तीसरी 'जलाल-होत' आवाज़पर बिलबिलाकर मुझसे कहा—'हैं! क्या

सोच रहे हैं आप ? जल्दी उठिये और इस मुएकी जबानको बन्द कीजिये। नहीं तो हम मुहल्लेमें मुँह दिखानेके क़ाबिल नहीं रहेंगे।' चुनाँचे हाँफ़ता-काँपता मैं जल्दी-जल्दी दरवाज़ेपर आया। उस गँवारने मेरी तरफ़ घीका ज़र्फ़ (बर्तन) बढ़ाया और मैंने झुंझलाकर कहा—'ले जाओ वापिस, ले जाओ, यह जलाल होत वाला मरदूद घी इसी वक़्त वापिस ले जाओ। मैं नहीं लूंगा, नहीं लूँगा, नहीं लूँगा।'

"यह थे हज़रत जलालके तेवर, यह थीं क़दमाकी वज़अदारियाँ, अब न वोह रख रखाव हैं न वोह आन-बान; लद गये वे ज़माने, निकल गये वोह कारवाँ और उजड़ गईं वोह बस्तियाँ, रहे नाम अल्लाहका।"[1]

जलालके शिष्योंमें—जलालके पुत्र 'कमाल', मीर ज़ाकिर हुसेन 'यास', 'आरज़ू' लखनवी, 'एहसान' शाहजहाँपुरी, प्रसिद्ध हैं। इनका परिचय वर्तमानयुगीन ग़ज़लगो शायरोंमें शेरोसुख़नके दूसरे भागमें दिया जायगा।

---

[1]'आजकल', अप्रेल १९५० ई०

न जीते जी मिली राहत न बादेमर्ग उल्फ़तमें ।
फ़लककी क्या शिकायत ? हमको पीसा की ज़मीं बरसों ॥

आये थे लाख दिलसे तेरी अंजुमनमें[1] हम ।
जाते हैं अपने घर अजब इक बेदिलीके साथ ॥

उठ देर न कर कहती हैं वोह सीधी निगाहें ।
"जल्द आके लिपट, देख ज़माना न पलट जाय" ॥

यह अश्केहसरत[2] जो गिर पड़ा है तुम्हारे आगे अभी टपककर ।
इसीने आँखोंमें सुबह करदीं बहुत-सी रातें खटक-खटककर ॥

एक अपनी आरज़ू हो, तो बताएँ ऐ फ़लक !
झगड़े लगे हुए हैं, हजार आदमीके साथ ॥
बाँधो कमर बदीपै दिया था दिल इसलिए ?
नेकी कोई जहाँमें करे क्या किसीके साथ ? ॥

जलवा किसीका देखके आँखें-सी खुल गईं ।
परदे जो ग़फ़लतोंके पड़े थे उलट गये ॥

सितम है तेरा लुत्फ़से पेश आना ।
यही मार रखता है, क़ातिल यही है ॥

बहसने आया जो तुमसे आईना, आने भी दो ।
ख़ैर, तुम अपनी तरफ़ देखो, चलो, जाने भी दो ॥

रुख़ेरोशनसे किसने उलटी नक़ाब ?
जल उठे दाग़ इक बुझेदिलके ॥

---

[1]महफ़िलमें; [2]अभिलाषाका आँसू ।

जब जखुद रफ़्तगीसे[1] आँख खुली।
सामने ही खड़े थे मंजिलके॥

क़ाबिले लुत्फ़ कोई और सही।
ख़ैर हमपर जफ़ाओ जौर सही॥

✓अबतक है जोशे आह वही, कुछ कमी नहीं।
कल रातसे चली है जो आँधी, थमी नहीं॥

वादा क्यों बार-बार करते हो।
ख़ुदको बेऐतबार करते हो॥

फाँस होती है दिले आशिक़की क्या कम्बख़्त फाँस।
रह गई तो जान ली, निकली तो रुसवाई हुई॥

गुजर गया तेरी फ़ुरक़तमें यूँ शबाब अपना।
कि जैसे वस्लकी शब ऐ निगार! जाती है॥

निजात हो गई नासहसे उम्रभरके लिए।
उसीको भेज दिया यारकी ख़बरके लिए॥

हमसे उक़बा न बनाई गई जाहिदकी तरह।
कोई मजदूर न थे रोज जो मेहनत होती॥

वस्लमें मना मयकशी! आपकी है ज्यादती।
हाँ यह कहेंगे, शेख़जी! हिज्रमें मय हराम है॥

शबको मय ख़ूब-सी पी सुबहको तौबा करली।
रिन्दके रिन्द रहे हाथसे जन्नत न गई॥

किसकी महशरमें हम करें फ़रियाद।
दावरेहश्र[2] हो तुम्हीं न कहीं॥

---

[1] तन्मयतासे; [2] हश्रमें न्याय करनेवाला, न्यायाधीश, ख़ुदा।

उठते हैं और उनमें एक विशेपता आ जाती है। इसी तरहकी कलापूर्ण अदानिगारी और मामलावन्दी शायरीको निज़ामने 'हालिया' शायरी कहा है। इस वदनाम रंगमें लिखते हुए भी निज़ामने क्या ख़ूब शेर कहे हैं—

ख़ुदा जाने मुझको दिखायेगा क्या ?
यह छुप-छुपके अपना उधर देखना ॥

वोह हाय विगड़कर उसका जाना।
रोना वहीं ज़ार-ज़ार मेरा ॥

तुम्हें यह भी कहीं ख़याल आया ।
कि कोई राह देखता होगा ॥

गो न किया अर्ज़े तमन्नाये दिल ।
मुँहको वोह लेकिन मेरे देखा किया ॥

मुझको सुना-सुनाके वोह कहना किसीका हाय ।
"जिससे कि जीमें रंज हो उससे कलाम क्या" ॥

मुँह फेरकर हँस-हँसके वोह इक़रारकी वातें।
इस तौरसे करते हैं कि वावर नहीं होता ॥

"कह, 'निज़ाम' अब तेरे क्या जीमें है कह दे मुझसे"।
हाय पूछे वोह कभी मुझसे यह तनहा होकर ॥

ऐ जान ! कहो फिर इस अदासे—
"मैं आज 'निज़ाम' से ख़फ़ा हूँ" ॥

अवस यह हर दमका चौंकना है अवस यह उठ-उठके देखना है।
भला वोह ऐसे हुए थे किस दिन वही तो वादा वफ़ा करेंगे ॥

यूँ वोह उठ जाएँ सम्भाले हुए दामन अपना ।
और मेरे हाथ दुपट्टेका न आँचल आये ॥

यूँ तो रूठे हैं, मगर लोगोंसे ।
पूछते हाल हैं अक्सर मेरा ॥

अहद किया था अभी कैसा 'निज़ाम' !
फिर वहीं जानेका इरादा किया ॥
तौबा वाँ जानेसे करते हो 'निज़ाम' !
क्या करोगे वोह अगर याद आया ॥

बे वहाँ जाये भला हमसे रहा जाये कहाँ ?
दिलसे उस बज़्ममें जानेका मज़ा जाये कहाँ ?

फिर उसीसे तू जा मिलेगा 'निज़ाम' !
तेरी तौबाका एतबार नहीं ॥

अब हमारा न हाल पूछो 'निज़ाम' !
क्या कहें कुछ कहा नहीं जाता ॥

अब हाले 'निज़ाम' कुछ न पूछो ।
ग़म होगा तुम्हें भी गर कहूँगा ॥

आजकल आपसे[1] वाहर है 'निज़ाम' !
कहीं महफ़िलमें न बुलवाइयेगा ॥

अब हम उनकी ग़ज़लोंके चन्द शेर 'इन्तख़ादयात' से और पेश करते हैं—

---

[1]आपेमें नहीं ।

एकदम दिलसे भुलाया नहीं जाता तुमको ।
कुछ ख़ुदा जाने कि किस हाल में देखा है तुम्हें ॥

चैन मिलता नहीं ज़रा दिलको ।
तुमसे मिलकर यह क्या हुआ दिलको ॥
किसी चर्चामें जी नहीं लगता ।
या इलाही यह क्या हुआ दिलको ॥

क्या कहें आपके नज़दीक ही रहता है 'निज़ाम' ।
रोज़ पिछलेको जो रोनेकी सदा आती है ॥

उनको मैं किस तरह भुलाऊँ 'निज़ाम' !
याद किस बातपर नहीं आते ॥

किया क़हर वादेने वर्ना शबेहिज्र ।
मुझे ग़म तो होता पर इतना न होता ॥

तुझसे कुछ कहनेको था, भूल गया ।
हाय क्या बात थी, क्या भूल गया ॥

जो दिलमें आये किसीके वोह कुछ कहे मुझको ।
मुझे तो नाज़ है इस दर पै जिबहसाईका[1] ॥

'निज़ाम' उनको तो आदत कभी सितम की न थी ।
ख़याल आगया क्या उल्फ़त आज़माईका ॥

यूँ आप तो कहूँगा न रंजिशका माजरा ।
पूछोगे तुम तो मुझसे छुपाया न जायगा ॥

---

[1]नतमस्तक होनेका ।

सच है 'निज़ाम' याद भी उसको न होंगे हम।
पर क्या करें वोह हमसे भुलाया न जायगा॥

कहनेसे न मना कर, कहूँगा।
तू मेरी न सुन, मगर कहूँगा॥
तुझसे ही छुपाऊँगा ग़म अपना।
तुझसे ही कहूँगा, गर कहूँगा॥

कहा क्यों दोस्तो तुमने ख़ुदा जाने वोह क्या समझें ?
हमारा हाल उनपर आप ही इज़हार हो जाता॥

ख़ुदा ही जाने कि क्या दिल पै चोट लगती है।
तुम्हारे पास जो आया वोह दर्द मन्द हुआ॥

मैंने जो तुझसे कहा था वोह तो तूने कह दिया।
नामाबर ! मुझसे न कहना उस सितमगरका जवाब॥

वोह झरोकेसे जो देखें तो मैं इतना पूछूँ।
बिस्तर अपना पसेदीवार करूँ या न करूँ॥
तू भी उस शोख़से वाक़िफ़ है बता कुछ तो 'निज़ाम' !
मुझसे दिल माँगे तो इनकार करूँ या न करूँ॥

लपेटे मुँह पड़े रहना तेरी कुछ याद ला-ला कर।
बनाया करते हैं अब दिलसे हम दो-दो पहर बातें॥

क्या कहें यह कि "कब उन तक है रसाई अपनी ?"
पूछनेवालोंसे कहते हैं कि "हाँ मिल आये"॥

बातें थी दिलमें क्या-क्या कहनेको थे न क्या कुछ।
मुँहसे न उसके आगे कुछ भी कलाम निकला॥

हैरानसे रह जाते हैं हम सामने उसके।
हमसे तो 'निज़ाम' उससे गिला हो नहीं सकता ॥

मुझे उम्मीदेवफ़ा तुमसे, तुम्हें दुश्मनसे।
यह अगर ज़ब्त हैं तो, मुझसे ज्यादा है तुम्हें ॥

कलका वादा किया फिर उसने आज।
और भी एक दिन जिये ही बनी ॥

तेरा मिलना तो एक आफ़त है।
ग़ैरका हाल क्या हुआ होगा ॥
आप ही आप ऐसे रोये 'निज़ाम'!
दिलमें कुछ ध्यान आ गया होगा ॥

जो मेरे देखनेको आता है।
फिर वोह बारे दिगर नहीं आता ॥

वाँ जानेसे फ़ायदा तो मालूम।
दिल और भी बेक़रार होगा ॥

वोह मुझको 'निज़ाम' क्यों मनाते?
क्या जानिये यह भी क्या महल था ॥

हम तो कह गुज़रे हाले दिल अपना।
नहीं मालूम उसने क्या जाना ॥

जुज़ उस गलीके दिल नहीं लगता कहीं 'निज़ाम'!
सौबार हमतो साकिने दैरो हरम हुए ॥

सब कहते हैं मुझको नहीं बचनेका 'निज़ाम' अब।
"किस वास्ते मरता है?" तुम इतना नहीं कहते ॥

हमदम ! न कह वोह बात जो दिलको बुरी लगे ।
उस बेवफ़ासे गो मेरी रंजिश हजार हैं ।।

रूठकर बैठे हो उनसे किस तवक़्कोह पर 'निज़ाम' !
होशमें आओ, वोह आएँगे मनानेके लिए !

यह बात पूछते हैं उनके जानेवालों से ।
हमारे बाबमें वोह कुछ कहा भी करते हैं ?

शिकवा उस बुतका हर किसीसे 'निज़ाम' !
उससे कहदे ख़ुदा करे कोई ।।

कहीं उस बज़्मतक रसाई हो ।
फिर कोई देखे अहतमाम मिरा ।।

२१ दिसम्बर १९५०

न देखा वह कहीं जलवा जो देखा ख़ानये दिलमें।
बहुत मस्जिदमें सर मारा बहुत-सा ढूँढ़ा बुतख़ाना ॥

न थी हालकी जब हमें अपनी ख़बर, रहे देखते औरोंके ऐबोहुनर।
पड़ी अपनी बुराइयोंपर जो नजर तो निगाहमें कोई बुरा न रहा ॥
'ज़फ़र' आदमी उसको न जानियेगा वोह हो कैसा ही साहबेफ़हमोज़का।
जिसे ऐशमें यादे ख़ुदा न रही, जिसे तैशमें ख़ौफ़े ख़ुदा न रहा ॥

नीचे कुछ चुने हुए शेर दिये जा रहे हैं—

किसीने उसको समझाया तो होता।
कोई याँतक उसे लाया तो होता ॥
मजा रखता है ज़ख़्मे ख़ंजरे इश्क़।
कभी ऐ बुलहविस[1] खाया तो होता ॥
न भेजा लिखके तूने एक परचा।
हमारे दिलको परचाया तो होता ॥
जो कुछ होता सो होता तूने तक़दीर!
वहाँतक मुझको पहुँचाया तो होता ॥

क्या जानें बनी क़ैसपै[2] क्या दश्ते जनूँमें[3];
जो ख़ाकबसर आज बगोला नजर आया ॥

गुलसे भी नाज़ुक बदन उसका है लेकिन दोस्तो!
यह ग़ज़ब क्या है कि दिल पहलूमें पत्थर-सा बना ॥

चारागर[4] भर न सके मेरे जिगरके नासूर।
एक गर बन्द किया दूसरा रोज़न[5] निकला ॥

---

[1]कामान्ध; [2]मजनूंपै; [3]दीवानगीमें;
[4]चिकित्सक; [5]सूराख़।

पहले तो दिलमें मुहब्बतका शजर[1] पैदा हुआ।
फिर लगे हसरतकेगुल[2] ग़मका समर[3] पैदा हुआ॥
सोज़िशेदाग़ेअलमसे[4] पहले भेजा जल गया।
बाद उसके दिल जला और फिर कलेजा जल गया॥
उफ़! मिरे मज़मूने सोज़े दिलमें भी क्या आग है।
ख़त जो क़ासिद उसको मैंने लिखके भेजा जल गया॥

मेरी आँख बन्द थी जबतलक वोह नज़रमें नूरेजमाल था।
खुली आँख तो न ख़बर रही, कि वोह ख़्वाब था कि ख़याल था॥
मेरे दिलमें था कि कहूँगा मैं जो यह दिलपै रंजोमलाल है।
वोह जब आ गया मेरे सामने, न तो रंज था न मलाल था॥

उसको इन्सॉं मत समझ हो सरकशी जिसमें 'ज़फ़र'!
ख़ाकसारीके लिए है ख़ाकसे इन्सॉं बना॥

उड़ाकर आशियाँ सर-सरने मेरा।
किया साफ़ इस क़दर तिनका न पाया॥
उसे पाना नहीं आसाँ, कि हमने
न जबतक आपको खोया, न पाया॥

तुझे भी ख़बर है कि ओ ग़ैरतेगुल[5]!
कोई हो गया ग़ममें घुल-घुलके काँटा॥

है इश्क़की मंज़िलमें यह हाल अपना कि जैसे।
लुट जाये कहीं राहमें सामान किसीका॥

---

[1]वृक्ष; [2]अभिलाषाओंके फूल;
[3]फल; [4]व्यथा-पीड़ाकी आगसे;
[5]अपने सौन्दर्यसे फूलोंको लज्जित करने वाले।

यह आस्माँ ग़ुलाम है किस महजमालका[1] ?
पहने फिरे है कानमें वाला हिलालका[2] ॥

दे दिया दिल और नहीं अब याद यह किसको दिया ।
इश्क़को खोदे ख़ुदा जिसने जहाँसे खो दिया ॥
ख़्वाह वह दाग़ेजुनूँ हो ख़्वाह कोई अश्केख़ूँ ।
हमने सर आँखोंपै रक्खा, इश्क़ तूने जो दिया ॥

क़सम ख़ुदाकी तुझे क़ासिदा कि यह पैग़ाम ।
कहा है यारने या तूने अपने जीसे कहा ॥

दन्दाँकी[3] ताब देखके अंजुम[4] हुए ख़िजल[5] ।
वोह महजबीं[6] जो शबको लबेबाम[7] हँस पड़ा ॥
क्या बात याद आ गई उसको कि ऐ 'ज़फ़र' !
वह यकबयक जो सुनके मिरा नाम हँस पड़ा ॥

कूचेमें तेरे तनहा हर शब मुझे हो जाना ।
दो-चार घड़ी अपना दिल खोलके रो जाना ॥

हमने कहके अपना हालेदिल दिया सबको रुला ।
हर तरफ़ रूमालपर रूमाल तर होने लगा ॥
कूचये जानाँमें जाना ही पड़ेगा, हो सो हो ।
क्या करूँ बेताब दिल फिर ऐ 'ज़फ़र'! होने लगा ॥

---

[1]चन्द्रमुखीका;
[2]दोजके चान्दको बालीकी उपमा दी है;
[3]दन्तपंक्तियोंकी;
[4]नक्षत्र; [5]लज्जित;
[6]चन्द्रमुखी; [7]कोठेपर ।

आपकी ख़ातिरसे हम करते थे ज़ब्ते इज़्तराब[१]।
देखकर बेताब हमको और घबरायेंगे आप ॥

दर्दमन्दाने मुहब्बतका तबीबोंसे इलाज ?
किस तरहसे हो सके यारो यह बीमारी है और ॥
मयकदेमें इश्क़के जो लोग हैं काफ़िर तो हैं।
लेकिन उनके कुफ़्रमें अन्दाज़े दींदारी है और ॥

जब कि पूछे यार मुझसे "शेफ़्ता[२] है किसपै तू" !
मुँहसे मैं अपने कहूँ क्योंकर, कहो तो क्या करूँ ?
अपना अहवालेमुहब्बत[३] सामने उसके 'ज़फ़र'।
आप मैं लिखकर पढ़ूँ क्योंकर, कहो तो क्या करूँ ?

सब्र मुश्किल है न कर सब्रका दावा हरगिज़।
इश्क़में तुझसे 'ज़फ़र' ! यह कभी होनेका नहीं ॥

तुम नज़र आ जाओ शायद इस हविसमें[४] आज हम।
सुबहसे ताशाम सूएरहगुज़र[५] देखा किये ॥
गर नहीं है रब्त कुछ बाहम तो फिर महफ़िलमें शब
तुम उन्हें और वोह तुम्हें क्यों ऐ 'ज़फ़र' देखा किये ॥

नहीं है ताक़तेपरवाज़[६] आह ऐ सैयाद !
ख़ुदा करे कि तू अब वा दरेक़फ़स[७] न करे ॥
जो उसकी जानपै गुज़रे है, वोही जाने है।
ख़ुदा किसीको जहाँमें किसीके बस न करे ॥

---

[१]सन्तोष, धैर्यधारण; [२]आसक्त;
[३]प्रेमवर्णन; [४]आशामें;
[५]मार्गकी ओर; [६]उड़नेकी शक्ति;
[७]पिंजरेका दर्वाज़ा न खोले ।

"मैं उस्तादकी ख़िदमतमें इस तरह हाज़िर होता था जैसे ग़ुलाम आक़ा (स्वामी) के सामने, या गुनहगार हाकिमे वक़्तके रोबरू। लरज़ता, काँपता, थर्राता और कभी बजुज़ ज़रूरत के (आवश्यकताके अतिरिक्त) कोई कलमा मेरी जबानसे न निकलता। जो कुछ पूछना होता पूछा, जो पूछा वह अर्ज़ किया। बाक़ी वक़्त, ख़ामोश—और यही हाल उनका था। वे भी मुझे शेरकी निगाहसे देखते थे। मैं हाज़िर हुआ हूँ, कमरेमें क़हक़हे उड़ रहे हैं, और जहाँ मैंने अन्दर क़दम रक्खा, लबे फ़र्श पहुँचकर आदाब बजा लाया और सबसे फ़र्दतर बैठ गया। अब वहीं मुक़ाम इस तरह सुन सान और ख़ामोश था, जैसे वहाँ कोई ज़ीरूह (कोई भी प्राणी) नहीं। मेरी इसलाह क्या होती थी, गोया जंगेअज़ीम (महासमर) का एक अल्टीमेटम होता था। उधर हज़ार गोशबर आवाज़ (सैकड़ों सुननेवाले उपस्थित) इधर मैं ख़ौफ़से लरज़ाँ और लब कुश्तये मतालिब (ओठ मनकी बात कहनेमें असमर्थ), उधर उस्तादको मामूलसे ज़्यादा काविशेमतलूब (आवश्यकतासे अधिक मतलबकी बात सुननेकी जल्दी), त्यौरी चढ़ी हुई हैं, एक भौं माथेतक खिचकर जा पहुँची है, और जितना बुलन्द-से-बुलन्द शेर होता था, बिगड़-बिगड़कर फ़र्माते—'आगे चलो जी' और जहाँ ज़रा-सा भी सुक़म (नुक़्स) नज़र आगया बस बरस पड़े, क़यामत कर दी। 'यह क्या साहब ! यह क्या ? ज़रा फिर इनायत कीजिए। माशा अल्लाह ! सुभान अल्लाह !! यह आपने लिखा है ?' ग़रज़ जान छुड़ानी मुश्किल हो जाती। इस सरज़निश (मलामत, तम्बीह) और मुआसरीन (समकालीन अन्य शिष्यों) की मौजूदगीका इस दर्जा ख़ौफ़ होता था कि एक-एक मिसरेपर जान लगा देनी पड़ती थी। तब जाकर वोह फ़र्माते थे कि—'आगे चलो, आगे चलो।' हाँ, अलबत्ता जिन मिसरोंपर मिसरा लगाना मेरे बसका रोग न होता, वह बेशक मैं चुनकर ले जाता था, और बाज़ औक़ात उन्हींकी इसलाहमें उन्हें सख़्त काविश करनी पड़ती थी, और उन्हीं पर वे अक्सर मुनग़ज़

(अप्रसन्न) भी हो जाते थे। बार-बार पहलू बदलते। 'इधर तकिया लगाओ, फिर पढ़ो, और फिर पढ़ो, क्या मिसरा बका है? क्या लग्व (व्यर्थ) बन्दिश है? यह हमारे पास इसलाह लेने थोड़े ही आते हैं; यह तो हमारा इम्तहान लेने आते हैं साहब!'

बाहरके शागिर्दोंके कलामकी इसलाह देनेकी सूरत इस तरह बयान करते हैं—"आप पलंगड़ी पर लेटे हैं या गावतकियेसे लगे बैठे हैं। चारों तरफ तलामज़ा (शिष्यों) का झुरमुट है, और एक साहब ग़ज़लोंका थब्बा (बण्डल) सामने रखे क़लम हाथमें लिये एक-एक ग़ज़ल पढ़ते जाते हैं। हाज़रीन (उपस्थित शिष्य समूह) हर शेरको ग़ौरसे समाअ़त फ़र्माते (सुनते) हैं, और मुनासिब मौक़ेपर अपनी-अपनी राय भी देते जाते हैं। अगर इस मशवरेसे उस्तादकी रायको भी इत्तफ़ाक़ हो गया तो वही अल्फ़ाज उस ग़ज़लमें बना दिये गये, वर्ना जो उस्तादने बतौर ख़ुद ईमा फ़र्माया बजिन्सही (हू-ब-हू) वोह उस मुक़ामपर जड़ दिया गया। इस तरह इस्लाहकी इस्लाह हो जाती थी और आपसके तबादलए ख़यालातसे मालूमातका दायरा भी वसीअ़ हो जाता था"।[1]

दाग़के एक दूसरे शिष्य अहसन माहरहरवी फ़र्माते हैं—"जिस ज़मानेमें राक़िम (लेखक) हैदराबाद गया और चन्दसाल मुसलसल (बराबर) ख़िदमतमें हाज़िर रहा, उस ज़मानेमें रोज़ाना १५–२० ग़ज़लें इसलाह होकर डाकमें भेजी जाती थीं। इनके अलावा मुक़ामी शागिर्द और बाहरसे आये हुए तलामज़ा सुबहोशाम हाज़िर रहते और इसलाह लिया करते।...आलाहज़रत (निज़ाम हैदराबाद) की ग़ज़ल अमूमन कोई शाही चौबदार लाता। जिसको वह ख़ुद देखते और अक्सर ख़िलवत (एकान्त) में देखते और जल्दसे जल्द इस्लाहके बाद वापिस कर दी जाती"।[2]

---

[1]नक़्दो नज़र, पृ० २१२–१३; [2]मुन्तख़िबेदाग़—मुक़द्दमा।

इन संशोधनोंसे तंग आकर दाग़ अपने पत्रमें अमीर मीनाई को लिखते हैं—

"आप यह जानते होंगे कि दाग़की मश्क़ बढ़ी हुई है। 'महताबे-दाग़' (दाग़का दीवान) को छपे दो बरसका ज़माना गुज़रा। इन दो बरसमें बीस ग़ज़लें कही हैं। क्या इसका नाम मश्क़ है? हर महीनेमें दो-चार नये ख़त वास्ते दुआए शागिर्दी (शिष्य बननेकी प्रार्थनाके) आते रहते हैं। दुहाई देता हूँ कि फ़ुरसत नहीं, सेहत नहीं, नौकर हूँ, आज़ाद नहीं। मुसन्निफ़ अमीरूललुग़ात (अमीरमीनाई) के पास कलाम भिजवाओ। वे उस्ताद मुसल्लिमउलसबूत (प्रामाणिक विद्वान और श्रेष्ठ गुरु) हैं। कोई कमबख़्त नहीं सुनता। ग़ज़लोंसे क़सीदोंका नम्बर बढ़ा, क़सीदोंसे दीवानका नम्बर आया। अब दीवानके दीवान चले आते हैं। छः महीनेके सफ़रमें तीन सौ ग़ज़लें मैंने बनाकर भेजी हैं। हज़ार आठसौ इस वक़्त बाक़ी हैं। अगर आपको फ़ुर्सत हो तो भेज दूँ? मगर आपके पास क्या इससे कम होंगी।"[1]

दाग़के ख्याति प्राप्त शिष्योंमेंसे कुछ नाम ये हैं—नवाब मीर महबूब अलीख़ाँ 'आसफ़' (निज़ाम हैदराबाद), सर 'इक़बाल', नवाब 'साइल' देहलवी, 'बेख़ुद' देहलवी, आग़ाशायर देहलवी, अहसन माहरहरवी, 'बेख़ुद' बदायूनी, 'नूह' नारवी, 'सीमाब' अकबराबादी 'नसीम' भरतपुरी, 'जिगर' मुरादाबादी आदि।

दाग़के उक्त शिष्योंका परिचय 'शेर-ओ-सुख़नके दूसरे भागमें दिया जायगा। दाग़की ख्याति और प्रतिष्ठाके कारण अनेक ईर्षालु और आलोचक भी उनके जीवन-कालमें ही हो गये थे, और उनपर फब्तियाँ कसने और कीचड़ उछालने लगे थे। इन कटु आलोचनाओंके निम्न तीन कारण थे—

---

[1] निगार, नवम्बर १९५०।

१—दाग़के शिष्यों और प्रशंसकोंने उनकी महत्ताका अतिशयोक्ति पूर्ण वर्णन करते हुए पूर्ववर्ती और समकालीन शायरोंसे उन्हें श्रेष्ठ सिद्ध करनेका कुछ इस प्रकार प्रयत्न किया कि पूर्ववर्ती और समकालीन शायरोंके अनुयायियोंको कुछ चुनौती-सी मालूम दी। इसलिए फिर उन्होंने भी नहलेपर दहला लगाना उचित समझा।

२—दाग़की बढ़ती हुई कीर्ति और ख्यातिको ईर्ष्यालु सहन न कर सकनेके कारण मनमाने छींटे उड़ाने लगे।

३—कुछ ऐसे निष्पक्षपाती साहित्यिक जो दाग़की शायराना हैसियत-से अवगत थे, दाग़की अनावश्यक क़ीमत बढ़ते देख वास्तविक मूल्य बतानेको मजबूर हुए। ताकि जनता भ्रममें न पड़ जाए।

अब हम तीनों प्रकारके आलोचकोंका संक्षिप्तमें सार देनेका प्रयत्न करेंगे। जहाँ दाग़के प्रशंसक यह कहते हुए नहीं थकते कि दाग़की कमाले-शायरीके समक्ष आतिश, नासिख़, ग़ालिब, और मोमिन भी फीके पड़ते हैं। वहाँ ईर्ष्यालु यह कहनेसे बाज़ नहीं आते कि अमीर मीनाईके अक्सर शागिर्द दाग़से अच्छा कहते हैं।[1] दाग़के शिष्य अपने उस्तादको सदाचारी और संयमी घोषित करते हैं तो विरोधी 'हिजाब' वेश्याके सम्बन्धका ढिंढोरा पीटते हैं। यदि दाग़के प्रशंसक उनको खुशरू और खुशरंग सिद्ध करते हैं तो विरोधी जवाबमें स्वयं दाग़का यह मिसरा पेश करते हैं—

"जिसे दाग़ कहते हैं दोस्तो! इसी रूसियाहका नाम है।"

जब दाग़के अनुयायी कहते हैं कि रामपुरमें जो क़द्र दाग़की हुई, वह किसीकी न हुई, तब ईर्ष्यालु जवाब देते हैं कि दाग़ रामपुरमें सिर्फ़ ५० रु० माहवारपर अस्तबलके दारोग़ा थे, और पुष्टिमें किसी बेअदबका यह शेर पेश करते हैं—

---

[1]मज़ामीने चकबस्त, पृ० ६८।

इन संशोधनोंसे तंग आकर दाग़ अपने पत्रमें अमीर मीनाई को लिखते हैं—

"आप यह जानते होंगे कि दाग़की मश्क़ बढ़ी हुई है। 'महताबे-दाग़' (दाग़का दीवान) को छपे दो बरसका ज़माना गुज़रा। इन दो बरसमें बीस ग़ज़लें कही हैं। क्या इसका नाम मश्क़ है? हर महीनेमें दो-चार नये ख़त वास्ते दुआए शागिर्दी (शिष्य बननेकी प्रार्थनाके) आते रहते हैं। दुहाई देता हूँ कि फ़ुरसत नहीं, सेहत नहीं, नौकर हूँ, आज़ाद नहीं। मुसन्निफ़ अमीरूललुग़ात (अमीरमीनाई) के पास कलाम भिजवाओ। वे उस्ताद मुसल्लिमउलसबूत (प्रामाणिक विद्वान और श्रेष्ठ गुरु) हैं। कोई कमबख़्त नहीं सुनता। ग़ज़लोंसे क़सीदोंका नम्बर बढ़ा, क़सीदोंसे दीवानका नम्बर आया। अब दीवानके दीवान चले आते हैं। छः महीनेके सफ़रमें तीन सौ ग़ज़लें मैंने बनाकर भेजी हैं। हज़ार आठसौ इस वक़्त बाक़ी हैं। अगर आपको फ़ुर्सत हो तो भेज दूँ? मगर आपके पास क्या इससे कम होंगी।"[1]

दाग़के ख्याति प्राप्त शिष्योंमेंसे कुछ नाम ये हैं—नवाब मीर महबूब अलीख़ाँ 'आसफ़' (निज़ाम हैदराबाद), सर 'इक़बाल', नवाब 'साइल' देहलवी, 'बेख़ुद' देहलवी, आग़ाशायर देहलवी, अहसन माहरहरवी, 'बेख़ुद' बदायूनी, 'नूह' नारवी, 'सीमाब' अकबराबादी 'नसीम' भरतपुरी, 'जिगर' मुरादाबादी आदि।

दाग़के उक्त शिष्योंका परिचय 'शेर-ओ-सुख़नके दूसरे भागमें दिया जायगा। दाग़की ख्याति और प्रतिष्ठाके कारण अनेक ईर्षालु और आलोचक भी उनके जीवन-कालमें ही हो गये थे, और उनपर फब्तियाँ कसने और कीचड़ उछालने लगे थे। इन कटु आलोचनाओंके निम्न तीन कारण थे—

---

[1] निगार, नवम्बर १९५०।

१—दाग़के शिष्यों और प्रशंसकोंने उनकी महत्ताका अतिशयोक्ति पूर्ण वर्णन करते हुए पूर्ववर्ती और समकालीन शायरोंसे उन्हें श्रेष्ठ सिद्ध करनेका कुछ इस प्रकार प्रयत्न किया कि पूर्ववर्ती और समकालीन शायरोंके अनुयायियोंको कुछ चुनौती-सी मालूम दी। इसलिए फिर उन्होंने भी नहलेपर दहला लगाना उचित समझा।

२—दाग़की बढ़ती हुई कीर्ति और ख्यातिको ईर्ष्यालु सहन न कर सकनेके कारण मनमाने छींटे उड़ाने लगे।

३—कुछ ऐसे निष्पक्षपाती साहित्यिक जो दाग़की शायराना हैसियत-से अवगत थे, दाग़की अनावश्यक क़ीमत बढ़ते देख वास्तविक मूल्य बतानेको मजबूर हुए। ताकि जनता भ्रममें न पड़ जाए।

अब हम तीनों प्रकारके आलोचकोंका संक्षिप्तमें सार देनेका प्रयत्न करेंगे। जहाँ दाग़के प्रशंसक यह कहते हुए नहीं थकते कि दाग़की कमाले-शायरीके समक्ष आतिश, नासिख़, ग़ालिब, और मोमिन भी फीके पड़ते हैं। वहाँ ईर्ष्यालु यह कहनेसे बाज़ नहीं आते कि अमीर मीनाईके अक्सर शागिर्द दाग़से अच्छा कहते हैं।[1] दाग़के शिष्य अपने उस्तादको सदाचारी और संयमी घोषित करते हैं तो विरोधी 'हिजाब' वेश्याके सम्बन्धका ढिढोरा पीटते हैं। यदि दाग़के प्रशंसक उनको ख़ुशरू और ख़ुशरंग सिद्ध करते हैं तो विरोधी जवाबमें स्वयं दाग़का यह मिसरा पेश करते हैं—

"जिसे दाग़ कहते हैं दोस्तो! इसी रूसियाहका नाम है।"

जब दाग़के अनुयायी कहते हैं कि रामपुरमें जो क़द्र दाग़की हुई, वह किसीकी न हुई, तब ईर्ष्यालु जवाब देते हैं कि दाग़ रामपुरमें सिर्फ़ ५० रु० माहवारपर अस्तबलके दारोग़ा थे, और पुष्टिमें किसी बेअदबका यह शेर पेश करते हैं—

---

[1]मज़ामीने चकबस्त, पृ० ६८।

गिरियेने एक दममें बना दी वह घरकी शक्ल।
मेरी नज़रमें साफ़ बयाबान फिर गया।
लाये थे कुए यारसे हम 'दाग़' को अभी।
लो उसकी मौत आई, वोह नादान फिर गया॥

हम तो उस मुद्दआके क़ायल हैं।
जो ज़बाँसे निकल नहीं सकता॥

सुन-सुनके तेरे इश्क़में अग़ियारके ताने।
मेरा ही कलेजा है कि मैं कुछ नहीं कहता॥
ख़तमें मुझे अव्वल तो सुनाई हैं हज़ारों।
आख़िरमें यह लिखा है कि मैं कुछ नहीं कहता॥
तुमको यही शायाँ है कि तुम देते हो दुश्नाम।
मुझको यही ज़ेबा है कि मैं कुछ नहीं कहता॥

दुनियामें मज़ा इश्क़से बहतर नहीं होता।
यह ज़ायक़ा वोह है कि मयस्सर नहीं होता॥
बेदाद तेरी देखके यह हाल हुआ है।
आशिक़ कोई दुनियामें किसीपर नहीं होता॥

उनकी शुहरत भी छिटी जाती है।
कुछ ठिकाना मेरी रुसवाईका?

न मयस्सर हुई कहीं ख़िलवत।
कुछ हमें भी कलाम करना था॥

ग़ज़ब किया तेरे वादेका एतबार किया।
तमाम रात क़यामतका इन्तज़ार किया॥

यूँ आँख उनकी करके इशारा पलट गई।
गोया कि लबसे होके कुछ इरशाद रह गया॥

नासहका दिल चला था हमारी तरफ़ मगर ।
उलफ़तकी देख-देखके उफ़्ताद रह गया ॥
हैं तेरे दिलमें सबके ठिकाने बुरे-भले ।
मैं ख़ानुमाँ ख़राब ही बर्बाद रह गया ॥

देखना हश्रमें जब तुमपै मचल जाऊँगा ।
मैं भी क्या वादा तुम्हारा हूँ कि टल जाऊँगा ॥

तेरे वादेपर सितमगर अभी और सब्र करते ।
अगर अपनी ज़िन्दगीका हमें एतबार होता ॥

नामाबर कहता है मुझको क्या करामत है तुम्हें ।
जो वोह लिखते वह भी तुमने ख़तमें लिखकर रख दिया ॥
ज़िबह करते ही मुझे क़ातिलने धोये अपने हाथ ।
और खूँ आलूदा ख़ंजर ग़ैरके घर रख दिया ॥
शामसे ही लोटना है मुझको अंगारों पै आज ।
इसलिए मैंने अलग तह करके बिस्तर रख दिया ॥

मेरे सवालके मानी वोह मुझसे कह देते ।
मगर सवालका मेरे कोई जवाब न था ॥
हज़ारों परदेमें मुश्ताक़ देख लेते हैं ।
उसे हिजाब था मूसाको तो हिजाब न था ॥
पयाम्बर ! तुझे लाखों सवाल करने थे ।
न था हज़ारमें इक बातका जवाब न था ॥
अगर्चे बादाकशी थी गुनाह ऐ ज़ाहिद !
जो तुमसे छीनकर पीता तो कुछ अज़ाब न था ॥
सुना कलाम जो रिन्दोंका शेख़ घबराया ।
वहाँ तो बातका छींटा भी बेशराब न था ॥

क़यामत है सुनें वोह सर झुकाये।
ख़ुदाके सामने इज़हार मेरा ॥

इन्कार तो करते हो मगर यह भी समझ लो।
बे वजह किसीसे कोई साइल नहीं होता ॥

मेरे ही दमसे ज़िन्दा है आज़ार इश्क़का।
मैं मर गया अगर तो यह आज़ार मर गया ॥

तरीक़ा ख़ूब है यह उम्रके बढ़ानेका।
कि मुन्तज़िर रहूँ ताहश्र उनके आनेका ॥
चढ़ाओ फूल मेरी क़ब्रपर जो आये हो।
कि अब ज़माना गया तेवरी चढ़ानेका ॥
समाएँ अपनी निगाहोंमें ऐसे-वैसे क्या ?
रक़ीब ही सही, हो आदमी ठिकानेका ॥

ऐ काश ! अब हम ठोकरें खाकर ही सम्भलते।
सर मिलते हैं उस कूचेमें पत्थर नहीं मिलता ॥

शौक़ ऐसा कि तेरी राहमें मरकर भी चलूँ।
ज़ौफ़ ऐसा कि नहीं जानसे जाया जाता ॥

नामाबर देखके तेवर उन्हें ख़त देना था।
बातों-बातोंमें फ़क़त काम निकाला होता ॥

दिए जा ऐ फ़लक ! पूरा ही आज़ार।
न हो क़िस्मतसे कम हिस्सा हमारा ॥
तेरे आलमको जबसे हमने देखा।
तमाशाई है इक आलम हमारा ॥

अपने दिलको भी बताऊँ न ठिकाना तेरा ।
सबने जाना, जो पता एकने जाना तेरा ॥

इस सलीक़ेकी अदावत कहीं देखी न सुनी ।
तू ज़मानेका उदू, दोस्त ज़माना तेरा ॥

क़िस्मत उसकी है कि जिसने उसे पाया तनहा ।
ख़्वाबमें भी तो न आया मेरे डरसे तनहा ॥
साथ लाकर वोह रक़ीबोंको यह फ़र्माते हैं ।
"क्या सबब था जो मुझे तूने बुलाया तनहा ?"

जब यह सुना कि 'दाग़' का आज़ार कम हुआ ।
ज़ानू पै हाथ मारके बोले "सितम हुआ" ॥
अफ़सोस है रक़ीबने की आपसे दग़ा ।
मुझको भी रंज आपके सरकी क़सम हुआ ॥

यह मैं हज़ार जगह हश्रमें पुकार आया ।
कि "और भी कोई मुझ-सा गुनाहगार आया" ॥
जो वजह देरकी पूछी कहा ये क़ासिदने—
"गुज़ारने थे मुसीबतके दिन, गुज़ार आया" ॥
उड़ाये हैं मलिकुल्मौतने भी तेरे ढंग ।
हज़ार बार बुलाया तो एक बार आया ॥
ख़ुदाके वास्ते झूठी न खाइये क़स्में ।
मुझे यक़ीन हुआ, मुझको एतबार आया ॥

तौबाके बाद भी ख़ाली-ख़ाली ।
कोई साग़र नहीं देखा जाता ॥
मुख़्तसर ये है कि अब 'दाग़' का हाल ।
बन्दापरवर नहीं देखा जाता ॥

उस तौबापर है नाज़ तुझे ज़ाहिद ! इस क़दर ।
जो टूटकर शरीक हो मेरे गुनाहमें ॥

आती है बात-बात मुझे याद बार-बार ।
कहता हूँ दौड़-दौड़के क़ासिदसे राहमें ॥

उड़ गई यूँ वफ़ा ज़मानेसे ।
कभी गोया किसीमें थी ही नहीं ॥
दिल लगी दिल्लगी नहीं नासह !
तेरे दिलको अभी लगी ही नहीं ॥

पड़ा फ़लकको अभी दिलजलोंसे काम नहीं ।
अगर न आग लगा दूँ तो 'दाग़' नाम नहीं ॥

दैरसे काबेको डरते हुए हम जाते हैं ।
देख लेता है जो कोई वहीं थम जाते हैं ॥

इन्हीं लोगोंके आनेसे तो मयख़ानेकी इज़्ज़त है ।
क़दम लो शेख़के तशरीफ़ लाये बादा ख़्वारोंमें ॥

नहीं जानते इसका अंजाम क्या है ।
वोह मरना मेरा दिल्लगी जानते हैं ॥
समझता है तू 'दाग़'को रिन्द ज़ाहिद !
मगर रिन्द उसको वली जानते हैं ॥

नासहोंसे कलाम कौन करे ?
अपनी ऐसोंसे गुफ़्तगू ही नहीं ॥

ख़ुदा करे कि मज़ा इन्तज़ारका न मिटे ।
मेरे सवालका वोह दें जवाब बरसोंमें ॥

उसे लाएँ, मुझे ले जाएँ, या पैग़ाम पहुँचाएँ ।
यह क्या करते हैं सब बैठे हुए ग़मख़्वार पहलूमें ॥

नज़र चुराके वोह यूँ हर बशरको देखते हैं।
किसीको यह नहीं साबित किधरको देखते हैं॥
तुम्हारे पास कहीं भूलकर न आया हो।
हमें तलाश है हम नामाबरको देखते हैं॥
हमें गुमान यह होता है, हमको रोता है।
किसी जगह जो किसी नौहागरको देखते हैं॥
हया तो देखिये आइनेसे भी परदा है।
वोह अपने हाथ ही पहले सहरको देखते हैं॥

कुछ इस तरहसे वोह क़ातिल सवाल करता है।
हमारे मुँह को हमारे गवाह देखते हैं॥

चला है काबेको तू ख़ाक छानने ज़ाहिद!
फ़क़त ख़ुदा ही ख़ुदा है, हरममें ख़ाक नहीं॥

कुछ न पूछो जो सदा आती है मयख़ानेसे।
कभी मस्जिदसे जो हम पढ़के नमाज़ आते हैं॥

वोह रातें, वोह बातें, वोह घातें ग़ज़ब!
जवानीमें थे किस शरारतके दिन॥

आँख पड़ती है कहीं पाँव कहीं पड़ता है।
सबकी है तुमको ख़बर अपनी ख़बर कुछ भी नहीं॥
काबे जाना भी तो बुतख़ानेसे होकर ज़ाहिद!
दूर इस राहसे अल्लाहका घर कुछ भी नहीं॥

मेरे मरनेकी ख़बर सुनकर कहा—
"वाक़ई कुछ भी नहीं इन्सानमें"॥
जिसने दिल खोया उसीको कुछ मिला।
फ़ायदा देखा इसी नुक़सानमें॥

इज़हारे इश्क़ उससे न करना था 'शेफ़्ता' !
यह क्या किया कि दोस्तको दुश्मन बना दिया ॥

हसरतसे[1] उसके कूचेको क्योंकर न देखिये ।
अपना भी इस चमनमें कभी आशियाना[2] था ॥

यादने जिसकी भुलाया सब कुछ ।
उसकी मैं याद भुलाऊँ क्योंकर ॥

ऐ तानेबर्क़[3] थोड़ी-सी तकलीफ़ और भी ।
कुछ रह गये हैं ख़ारोख़शेआशियाँ[4] हनूज़[5] ॥

आरामसे है कौन जहानेख़राबमें[6] ?
गुलसीना चाक[7] और सबा इज़्तराबमें[8] ॥

क्या जाने गुज़री ग़ैरपै क्या उसकी बज़्ममें ।
आये वे इस तरह कि मुझे प्यार आ गया ॥

तूफ़ानेनूह लानेसे ऐ चश्म ! फ़ायदा ?
दो अश्क भी बहुत हैं अगर कुछ असर करें ॥

वोह 'शेफ़्ता' कि धूम थी हज़रतके ज़ुहदकी[9] ।
मैं क्या कहूँ कि रात मुझे किसके घर मिले ॥

शायद इसीका नाम मुहब्बत है 'शेफ़्ता' ।
इक आग-सी है सीनेके अन्दर लगी हुई ॥

---

[1]अभिलाषासे; [2]घर, घोंसला;
[3]बिजलीके करिश्मे; [4]घोंसलेके तिनके और काँटे;
[5]अभीतक; [6]दुःखी संसारमें;
[7]फूलका सीना फटा है; [8]विकलतामें, बेचैनीमें;
[9]धार्मिकताकी ।

कुछ इन्तजार मुझको नहीं मय,[1] न साजका[2] ।।
नाचार हूँ कि हुक्म नहीं कश्फ़ेराजका[3] ।।

हमसे पूछें कि इसी खेलमें खोई है उम्र ।
खेल जो लोग समझते हैं लगाना दिलका ।।

अभी ऐ 'शेफ़्ता' ! वाक़िफ़ नहीं तुम ।
कि बातें इश्क़में होती हैं क्या क्या ।।

दुश्मनके फ़ेलकी तुम्हें तौज़ीह[4] क्या जरूर ।
तुमसे फ़क़त मुझे गिलए दोस्ताना था ।।

अर्ज़े तमन्नासे रहा बेक़रार ।
शब वोह मुझे, मैं उसे छेड़ा किया ।।
ग़ैरको ही चाहे है अब 'शेफ़्ता' !
कुछ तो है जो यारने ऐसा किया ।।

कम-रग़बतीसे[5] लेते हैं दिल, होशयार हैं ।
बढ़ता है मोल, शौक़े ख़रीदार देखकर ।।

हैं जाँ-ब-लब[6] किसीकी इशारतको देर है ।
देखे है उस निगाहको क़जा और क़ज़ाको हम ।।

बचते हैं इस क़दर जो उधरकी हवासे हम ।
वाक़िफ़ हैं शेवए दिले शोरिदा अदासे हम ।।

---

[1]शराब; [2]संगीतका;
[3]भेद खोलने का; [4]स्पष्टीकरण;
[5]उपेक्षासे; बेपरवाहीसे;
[6]मरणासन्न ।

कम इल्तफ़ातियोंका[1] है वहम अहले बज़्मको।
शर्मिन्दा हो गये तेरी शर्मो-हयासे हम ॥

गह हमसे ख़फ़ा वो हैं गहे उनसे ख़फ़ा हम।
मुद्दतसे इसी तरह निभी जाती है बाहम ॥

अहले ज़माना देखते हैं ऐब ही को बस।
क्या फ़ायदा कि 'शेफ़्ता'! अर्ज़े हुनर करे ॥

कहता हूँ जो "ग़ैरसे न मिलिये"।
कहता है कि "क्या मैं बेवफ़ा हूँ ?"

जो हाल पूछना है तुम उससे ही पूछ लो।
मुझको दमाग़ेक़िस्सये ग़महाये दिल नहीं ॥

हम आजतक छिपाते हैं यारोंसे राज़े इश्क़।
हालाँकि दुश्मनोंसे यह क़िस्सा[2] निहाँ नहीं ॥
लग जाये शायद आँख कोई दम शबेफ़िराक़।
नासेहको ही ले आओ गर अफ़सानाख़्वाँ नहीं ॥

कहते हैं तुमको होश नहीं इज़्तराबमें।
सारे गिले तमाम हुए इक जवाबमें ॥
इस नौबहारे हुस्नको बदनाम मत करो।
थी 'शेफ़्ता'के पहले ही शोरिश दमाग़में ॥
दोनोंका एक हाल है यह मुद्दआ हो काश!
वो ही ख़त उसने भेज दिया क्यों जवाबमें ॥

अफ़सुर्दा ख़ातिरी वोह बला है कि 'शेफ़्ता'!
ताअ़तमें कुछ मज़ा है न लज़्ज़त गुनाहमें ॥

---

[1]कृपाओंका; [2]छुपा हुआ ।

है दिलको शुक्रेवफ़ाएउदूसे बेताबी।
करूँ मैं कुछ गिलएलुत्फ़ गर अताब न हो॥

—शायर, जनवरी १९४९, पृ० ४६

हाय वोह 'शेफ़्ताकी' बेताबी।
थाम लेना वोह तेरे महमिलको॥

इतनी भी बुरी है बेक़रारी।
अब आपसे उन्स कम करेंगे॥

न पूछो 'शेफ़्ता' का हाल साहब!
यह हालत है कि अपनेमें नहीं है॥

—निगार, अक्तूबर १९४६, पृ० ५९

७ अगस्त १९५०

मेरे दिलमें हो, गो मुझसे निहाँ हो।
मुझे भी ढूँड लेना तुम जहाँ हो॥
तक़ाज़ाए मुहब्बत है वगर्ना।
मुझे और झूठका तुमपर गुमाँ हो॥

एक ही दोस्त और उससे हमें छुड़वाते हो।
नासहो अब तुम्हें दुश्मन कहें या दोस्त बताओ?

बढ़ाओ न आपसमें मिल्लत जियादा।
मुबादा कि हो जाय नफ़रत जियादा॥
तकल्लुफ़ अलामत है बेगानगीकी।
न डालो तकल्लुफ़की आदत जियादा॥
करो दोस्तो पहले आप अपनी इज्ज़त।
जो चाहो करें लोग इज्ज़त जियादा॥
निकालो न रख़ने नसबमें किसीके।
नहीं कोई इससे रज़ालत जियादा॥
करो इल्मसे इक्तसाबे शराफ़त।
नजाबतसे है ये शराफ़त जियादा॥
फ़राग़तसे दुनियामें दम भर न बैठो।
अगर चाहते हो फ़राग़त जियादा॥
जहाँ राम होता है मीठी ज़बाँसे।
नहीं लगती कुछ इसमें दौलत जियादा॥
मुसीबतका इक-इकसे अहवाल कहना।
मुसीबतसे है ये मुसीबत जियादा॥
फिर औरोंकी तकते फिरोगे सख़ावत।
बढ़ाओ न हदसे सख़ावत जियादा॥
कहीं दोस्त तुमसे न हो जाएँ बदज़न।
जताओ न अपनी मुहब्बत जियादा॥

जो चाहो फ़क़ीरीमें इज्ज़तसे रहना।
न रक्खो अमीरोंसे मिल्लत ज़ियादा ॥
है उल्फ़त भी वहशत भी दुनियासे लाज़िम।
पै उल्फ़त ज़ियादा न वहशत ज़ियादा ॥
फ़रिश्तेसे बहतर है इन्सान बनना।
मगर इसमें पड़ती है महनत ज़ियादा ॥

कबक[1]-ओ-क़ुमरीमें[2] है झगड़ा कि चमन किसका है।
कल बता देगी ख़िज़ाँ यह कि चमन किसका है ॥
वाइज़! इक ऐबसे तू पाक है (?) या ज़ाते ख़ुदा।
वर्ना बे ऐब ज़मानेमें चलन किसका है ?

रहेंगे न मल्लाह ये दिन सदा।
कोई दिनमें गंगा उतर जायगी ॥

हमारे ज़र्फ़ ही इनआमके क़ाबिल नहीं वर्ना,
लुँढ़ाये ख़ुमपै ख़ुम ग़ैरोंपै क्यों, मुमसिक[3] हो गर साक़ी ॥

दोस्तगर भाई न हो, दोस्त है तो भी, लेकिन।
भाई गर दोस्त नहीं, तो नहीं कुछ भाई भी ॥

जो कहिये तो झूठी जो सुनिये तो सच्ची।
ख़ुशामद भी हमने अजब चीज़ पाई ॥
हुई आके पीरीमें क़द्रे जवानी।
समझ हमको आई यह ना वक़्त आई ॥

इतनी ही दुश्वार अपने ऐबकी पहचान है।
जिस क़दर करनी मलामत औरको आसान है ॥

---

[1]चकोर; [2]एक पक्षी;
[3]कंजूस।

था न जुज़ग़म[1] बिसातेआशिक़म[2] ।
ग़मको राहतफ़िज़ा[3] किया तूने ॥

कर दिया ख़ूगरे[4] जफ़ा तूने ।
ख़ूब डाली थी इब्तदा तूने ॥

शेख़ ! जब दिल ही दैरमें न लगा ।
आके मस्जिदमें क्या लिया तूने ?
दूर हो ऐ दिले मआलअन्देश[5] ।
खो दिया उसका मज़ा तूने ॥

---

[1]व्यथाके अतिरिक्त;
[2]प्रेमीके भाग्यमें;
[3]आनन्दमय;
[4]अत्याचारका अभ्यस्त;
[5]परिणामसे डरनेवाला ।

१०१

मजरूह

(स्वर्गीय १९०२)

मीर महदी 'मजरूह' मीरहुसेन फ़िगारके पुत्र और दिल्लीके रहनेवाले थे। ग़ालिबके प्रिय और योग्य शिष्य थे। ग़दरके हंगामोंमें यह दिल्ली छोड़कर पानीपत चले गये थे। उपद्रव शान्त होनेपर पुनः दिल्ली वापिस आ गये। फिर आजीविकाकी खोजमें अलवर गये तो वहाँके राजा शिवध्यानसिंहने इनकी अच्छी क़द्र की। अन्तिम दिनोंमें नवाब साहबकी क़द्रदानी और मेहरबानियोंसे आकर्षित होकर रामपुर जा बसे थे। 'मज़हरे मानी' नामक दीवान वहींसे प्रकाशित कराया।

'मजरूह' की भाषा सरल और मधुर है। छोटी बहरोंमें सारगर्भित शेर कहते थे। इनकी शायरी भावोंकी मौलिकता या नवीनताकी दृष्टिसे हीन होते हुए भी छन्द शास्त्रके दोषोंसे मुक्त हैं। इनको लिखे हुए मिर्ज़ा ग़ालिबके अक्सर दिलचस्प पत्र 'उर्दूएमुअ़ल्ला' में छपे हैं। मौ० हाली भी इनका बहुत आदर करते थे।

नवाब यूसुफ़अलीख़ाँ—नवाब मुहम्मद सईदख़ाँके पुत्र थे। ये ‹
गुणज्ञ, कला-पारखी, और सहृदय थे। उर्दू-फ़ारसी दोनोंमें शेर क
थे। 'नाज़िम' उपनाम था। साहिबे दीवान हुए हैं। प्रारम्भमें 'मोमि
से इस्लाह लेते थे। उनके बाद 'ग़ालिब'से मशवरएसुख़न लेते र
उनके बाद 'असीर' को कलाम दिखलाते रहे। दिल्ली-लखनऊ-दरबा
ग़दरमें उजड़नेके बाद अक्सर शायर इन्हींके आश्रयमें आ गये। जि
ग़ालिब, मौलाना फ़ज़लहक़ ख़ैराबादी, तसकीन, असीर, वग़ैरह
शायरोंके रामपुरमें एकत्र होनेसे उर्दू-शायरीको एक बहुत बड़ा ‹
ये पहुँचा कि वह अभीतक देहलवी और लखनवी जुदा-जुदा धारा
विभक्त थी। यहाँ आकर वह एक हो गई और रामपुर संगम बन ग

नवाब क़ल्बअलीख़ाँ—अपने पिता यूसुफ़अलीके जन्नतनशीन ह
बाद १८६५ ई०में सिंहासनारूढ़ हुए। इनके शासनकालमें पहलेसे
अधिक उर्दू-शायरीको फ़रोग़ मिला। इनका शासनकाल उर्दू-शाय
निःसंकोच स्वर्णयुग कहा जा सकता है। इन्होंने इस छोटी-सी रिया
भारतके ऐसे सर्वश्रेष्ठ कलाकार एकत्र कर लिये कि जिनके अन्यत्र
हरण नहीं मिलते। शायरोंका भी बहुत बड़ा समूह था, जिनके
नाम ये हैं—असीर, बहर, अमीर मीनाई, दाग़, जलाल, तसलीम, म
क़ल्क, उरूज, हया, जान साहब, आग़ाहिजो शरफ़, उन्स, शाग़ल, ‹
ग़नी, ज़िया, ख़्वाजा, मन्सूर, रज़ा। शायरों और साहित्यिकोंके
रिक्त संगीतज्ञ, हकीम, ज्योतिषी, चित्रकार आदि भी एक-से-एक ‹
एकत्र किये गये थे।

ये गुणी और कलाकार रियासतके लिए भारस्वरूप न हो
इसलिए इनको रियासतके भिन्न-भिन्न पदोंपर नियत कर दिया
योग्यतानुसार अपनी ड्यूटी भी करते थे और अपने विशेष गुणका
भी दिखलाते थे। इस नियुक्तिसे रियासत और गुणियों दोनों
लाभ पहुँचा। रियासत तो व्यर्थके व्ययसे बच गई और गुणियोंकी

चापलूसों, मुसाहबों, टुकड़खोरोंकी-सी न रहकर एक कमाऊ व्यक्तिकी हो गई। मुलाज़िमतमें होते हुए भी इन गुणियोंके स्वाभिमान और आवश्यकताओंका नवाब पूर्ण ध्यान रखते थे। कोई उनके साथ दुर्व्यवहार नहीं कर सकता था, और हर ख़ुशीके अवसरोंपर उन्हें इनाम-इकराम देकर आदर दिया जाता था।

नवाबका गद्य और पद्य दोनोंका अभ्यास था। गद्यमें उनकी कई पुस्तकें मशहूर हैं। फ़ारसी-शायरीका दीवान भी है। उर्दूमें 'अमीर मीनाई'से इस्लाह लेते थे। उर्दूमें चार दीवान उनकी योग्यताके परिचायक हैं। 'नवाब' उपनामसे निहायत उम्दा शेर कहते थे। भाषाकी शुद्धता और सुन्दरताका बहुत ख़याल रखते थे।

इनके पिताने देहलवी-लखनवी शायरीकी दो धाराओंका एकीकरण करनेके लिए जो संगम निर्माण किया था, इनके युगमें उसपर उत्तरोत्तर यात्री आने लगे; और दोनों धाराओंका ऐसा एकीकरण हुआ कि अब उर्दूके सभी शायर बिना किसी भेदभावके इस मिली-जुली गंगा-जमनी शायरीके उपासक हैं। श्री रामबाबू सकसेना लिखते हैं—

"नासिख़का तर्ज़ उनके शागिर्दोंके ज़मानेमें जो कि अपने उस्तादकी उस्तादाना रविशको क़ायम न रख सके थे, बदसे बदतर हो गया था। उन लोगोंके कलाममें इस तर्ज़के तमाम अयूब (दोष) तो मौजूद थे, मगर ख़ूबियाँ मफ़क़ूद (ग़ायब) थीं। इस तर्ज़के बरतनेवाले रामपुरमें बहर, मुनीर, क़लक और असीर थे। बरख़िलाफ़ इसके तर्ज़े दिल्लीके पैरौ (अनुयायी, समर्थक) दाग़ और तसलीम थे।....इनमें और लखनऊवालोंमें ज़मीनो-आस्मानका फ़र्क़ था। उनके (दाग़के) अशआर बहुत मक़बूल हुए। हर शख़्स उनके रंगका दिलदादा था। तसलीम गो कि लखनऊके थे, मगर रंग बिल्कुल दिल्लीका अख़्तियार किया था। ये 'नसीम' देहलवी (मोमिनके शागिर्द)के शागिर्द थे। इनपर नासिख़के रंगका जादू कभी नहीं चला। वे हमेशा उसको बुरा समझते रहे, और

१७७३ ई०में इनके पुत्र राजा कल्याणसिंह उसी पदपर नियुक्त हुए। इनका उपनाम 'राजा' था और मीर ज़ियाउद्दीन 'ज़िया'से इसलाह लेते थे। 'फ़ुग़ाँ'ने भी मुर्शिदाबाद और फ़ैज़ाबादसे लौटकर यहीं सम्मान पूर्वक जीवन व्यतीत किया, महाराजा इनका बहुत आदर-सत्कार करते थे।

मुर्शिदाबाद—मुर्शिदाबादके नवाबोंने भी शायरोंका उचित स्वागत किया। सोज़, क़ुदरत, अन्तमें वहीं रहने लगे थे और वहीं उन्होंने समाधि पाई। मिर्ज़ा ज़हूर अली 'ख़लील' भी नवाबके निमंत्रणपर गये थे। मर्सिया-गो शायर थे। यहाँका वातावरण राजनैतिक षड्यन्त्रोंसे दूषित और अशांत रहता था। इसलिए इस ओर विशेष शायर नहीं आये।

टौंक—टौंकके नवाब सर हाफ़िज़ मुहम्मद इब्राहीम अलीख़ाँ १८६६ ई०में राज्यासीन हुए। ये 'ख़लील' उपनामसे शायरी करते थे। 'अमीर' मीनाईके शिष्य 'बिस्मिल' ख़ैराबादी इनके कविता-गुरु थे। ज़हीर, असद, मुज़तर आदि शायर इनके यहाँसे भी सम्मानित हुए थे। 'असद'के यहाँ कई शिष्य थे। जिनमें असग़रअली 'आबरू' हबीबुल्ला 'जब्र' प्रसिद्ध हैं। इन नवाबोंके उत्तराधिकारी भी शायरीसे दिलचस्पी रखते हैं।

अलवर—अलवरके महाराजा शिवध्यानसिंह—ज़हीर, तसवीर, तिश्ना, मजरूह, सालिक आदिके आश्रयदाता थे। 'फ़सानयेआज़ाद'के ख्याति-प्राप्त लेखक पं० रतननाथ 'सरशार'को भी बुलाकर सम्मानित किया था।

अन्य स्थान—भोपाल, मंगलोर (काठियावाड़) जयपुर, मालियर कोटला, बहावलपुरके शासक भी शायरोंका उचित आदर-सत्कार करते रहे हैं।

११ अक्टूबर १९५० ई०

समाप्त

ज़ेरे क़लम—

शेर-ओ-सुख़न

भाग दूसरा

१९०१ से १९५१ तकके वर्तमान युगीन सर्वश्रेष्ठ २०१
ग़ज़लगो शायरोंका परिचय और उनके श्रेष्ठतम
कलामका संकलन तथा वर्तमान शायरीकी
गति-विधि पर सिंहावलोकन

पुरातन शायरीका कायाकल्प किस प्रकार हुआ, कैसे-कैसे अजीबो-ग़रीब इन्क़लाब आये, उर्दू-शायरीने कैसे-कैसे पहलू बदले और कितनी करवटें लीं, बाज़ारी माशूक़से नफ़रत, हया परवर शीला नारीका सम्मान, रोने-विसूरनेकी प्रथा बन्द, व्यक्तिगत दुखोंको भूलकर विश्वके दीन-दुखियोंके ग़मोंको अपनानेका इतिहास, आलोचनात्मक विवेचन, शायरोंसे साक्षात मिलकर उनके रेखाचित्र, उनके स्वयं पसन्दीदा अशआर, गोयलीयजीकी लेखनीका वास्तविक चमत्कार।

कुछ ख्यातिप्राप्त शायर

पुरानी यादगारें

१ शाद अज़ीमाबादी
२ नज़्म तबा तबाई
३ आसी ग़ाज़ीपुरी
४ रियाज़ ख़ैराबादी
५ असग़र गोण्डवी
६ फ़ानी बदायूंनी
७ जलील मानिकपुरी
८ सफ़ी लखनवी
९ अज़ीज़ लखनवी
१० आरज़ू लखनवी
११ आग़ा शायर देहलवी
१२ साइल देहलवी
१३ हसरत मोहानी
१४ नातिक़ गुलावठी
१५ नूह नारवी
१६ सीमाब अकबराबादी
१७ ताजवर नजीबाबादी

[मार्च १९५१ में प्रकाशित]

गहरे पानी पैठ

[सूक्तिरूपमें ११८ मर्मस्पर्शी कहानियाँ]

श्री अयोध्याप्रसाद गोयलीय

गुरुजनोंके चरणोंमें बैठकर जो सुना.

इतिहास और धर्मग्रन्थोंमें जो पढ़ा.

और हियेकी आँखोंसे जो देखा.

वही जीवनभरका अध्ययन और अनुभव लेखकने काग़ज़पर बखेर दिया है। प्रवचनों और व्याख्यानोंमें उदाहरण स्वरूप दी जानेवाली श्रेष्ठतम आख्यायिकाएँ।

मूल्य ढाई रु०

[मार्च १९५१ में प्रकाशित]

ज्ञानगंगा

[संसारके महान् साधकोंकी सूक्तियोंका अक्षय भण्डार]

श्री नारायणप्रसाद जैन

इन सूक्तियोंको पढ़कर पता चलता है कि मनुष्यके जागरित मनमें पृथ्वीके विभिन्न खण्डोंमें रहकर अनन्त युगोंतक जीवनसे जूझकर और जीवनको अपनाकर अपने अनुभव द्वारा सत्यको किस प्रकार प्राप्त किया है और उसे किस अमर वाणीमें व्यक्त किया है। यह मानव-सन्ततिका अक्षय भंडार और अखंड उत्तराधिकार है। यहाँ देश, काल, जाति और भाषाकी सीमाओंसे परे सारा विश्व ज्ञानके प्रकाशसे उद्भासित सत्यके बलसे अनुप्राणित और सौन्दर्यके आकर्षणसे एकाकार प्रतीत होता है। ज्ञानकी यह कितनी बड़ी करामात है कि वह मानव-मात्रमें भेद ही उत्पन्न नहीं करता, जीवनकी मौलिक एकताका आधार साक्षर वाणीमें व्यक्त करता है और इतिहासके पृष्ठोंपर अमरत्वकी छाप लगा देता है।

मूल्य छः रु०

[फरवरी १९५१ में प्रकाशित]

पंच-प्रदीप

श्री शान्ति एम० ए०

आमुख-लेखक श्री सुमित्रानन्दन पन्त लिखते हैं:—"शांतिजीका कविहृदय संस्कारतः स्वच्छ सुथरे कक्षके भीतर प्रतिष्ठित है, जहाँसे उनका सहज बोध भावनाके उत्थान-पतनों, सुख-दुखके मधुर-तिक्त संवेदनों तथा बाह्य जगत्के आघातों और विक्षोभोंको एक स्वस्थ संयमन तथा आगे बढ़नेकी प्रेरणा प्रदान करता रहता है। कहीं भी कवयित्रीकी समर्थ भावना ऊबड़-खाबड़ धरतीकी ठोकर खाकर परास्त होती नहीं प्रतीत होती, और न वह भावोच्छ्वास मात्र बनकर वाष्पकी तरह हवामें उड़ती दिखाई देती है।. . . कवयित्रीकी भाषामें स्वाभाविकता, सजीवता, मधुर प्रवाह तथा शक्तिका सन्तुलित सौष्ठव है। वह अपने काव्य-निर्माणमें बच्चन तथा महादेवीजीकी झंकारोंको आत्मसात् कर उन्हें नवीन रूप प्रदान कर देती है।" मूल्य दो रु०

[फरवरी १९५१ में प्रकाशित]

मेरे बापू

श्री हुकुमचन्द्र बुखारिया 'तन्मय'

डा० रामकुमार वर्मा—

"मेरे बापूमें युग पुरुषको कविकी श्रद्धाञ्जलि समर्पित हुई है। इस श्रद्धाञ्जलिमें कविकी अनुभूति और कल्पनाके ऐसे प्रसून हैं, जिनकी सुगन्धि निरन्तर पूजाकी पवित्रता लिए रहेगी। बापूका व्यक्तित्व ही काव्यका सहज विषय है। कवित्वके इस जागरणमें कविकी लेखनी संदेश-वाहिका बन गई है। ये सन्देश शताब्दियोंतक गूँजते रहेंगे। मूल्य ढाई रु०

वैदिक साहित्य

प्रस्तावना-लेखक :—श्री सम्पूर्णानन्दजी, शिक्षा-मन्त्री

इसके लेखक वैदिक साहित्यके प्रकाण्ड-विद्वान् श्री पं० रामगोविन्द त्रिवेदी हैं। वैदिक साहित्य का इतना सांगोपांग परिचय हिन्दी तो क्या सम्भवतया भारतकी अन्य भाषाओं में भी उपलब्ध नहीं है। पुस्तकमें लगभग ५०० पृष्ठों में अबतक प्राप्त ११ संहिताओं, १८ ब्राह्मण ग्रन्थों, ९ आख्यायिकाओं और २२० उपनिषदोंकी [illegible] [illegible] उनके सम्बन्धमें अन्य ज्ञातव्य बातोंका विवेचन है। मूल्य [illegible]

स

[मार्च १९५१ में प्रकाशित]

गहरे पानी पैठ

[सूक्तिरूपमें ११८ मर्मस्पर्शी कहानियाँ]

श्री अयोध्याप्रसाद गोयलीय

गुरुजनोंके चरणोंमें बैठकर जो सुना.
इतिहास और धर्मग्रन्थोंमें जो पढ़ा.
और हियेकी आँखोंसे जो देखा.

वही जीवनभरका अध्ययन और अनुभव लेखकने कागज़पर बखेर दिया है। प्रवचनों और व्याख्यानोंमें उदाहरण स्वरूप दी जानेवाली श्रेष्ठतम आख्यायिकाएँ।

मूल्य ढाई रु०

[मार्च १९५१ में प्रकाशित]

ज्ञानगंगा

[संसारके महान् साधकोंकी सूक्तियोंका अक्षय भण्डार]

श्री नारायणप्रसाद जैन

इन सूक्तियोंको पढ़कर पता चलता है कि मनुष्यके जागरित मनमें पृथ्वीके विभिन्न खण्डोंमें रहकर अनन्त युगोंतक जीवनसे जूझकर और जीवनको अपनाकर अपने अनुभव द्वारा सत्यको किस प्रकार प्राप्त किया है और उसे किस अमर वाणीमें व्यक्त किया है। यह मानव-सन्ततिका अक्षय भंडार और अखंड उत्तराधिकार है। यहाँ देश, काल, जाति और भाषाकी सीमाओंसे परे सारा विश्व ज्ञानके प्रकाशसे उद्भासित सत्यके बलसे अनुप्राणित और सौन्दर्यके आकर्षणसे एकाकार प्रतीत होता है। ज्ञानकी यह कितनी बड़ी करामात है कि वह मानव-मात्रमें भेद ही उत्पन्न नहीं करता, जीवनकी मौलिक एकताका आधार साक्षर वाणीमें व्यक्त करता है और इतिहासके पृष्ठोंपर अमरत्वकी छाप लगा देता है।

मूल्य छः रु०